MAA OMWATI DEGREE COLLEGE HASSANPUR (PALWAL)

Notes

B.com 5th Sem

International Business Environment

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय–एक परिचय
(International Business–An Introduction)

1. परिचय व अर्थ (Introduction and Meaning)

पिछले कुछ वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में बहुत तेजी से विकास हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व निवेश में बाधाओं में कमी आ रही है, इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय को बढ़ावा मिल रहा है। यातायात व दूरसंचार साधनों के विकास से विभिन्न देशों के मध्य दूरियाँ कम हो रही हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में उत्पाद व सेवाओं में विदेशी व्यापार, विदेशी निवेश का अंतर्प्रवाह व बाहरी प्रवाह, बौद्धिक संपदा संबंधी व्यवहार, टेक्नोलॉजी संबंधी व्यवहार, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आउटसोर्सिंग आदि शामिल हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय ने हमारे दैनिक जीवन को बहुत प्रभावित किया है। जीवन के प्रत्येक पहलू में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार/व्यवसाय का प्रभाव झलकता है। यदि हम किसी डिपार्टमेंटल स्टोर जाते है, तो वहाँ हमें जापान, तायवान व चीन में बना बिजली का सामान तथा चीन, हांगकांग, भारत में बना कपड़ा देखने को मिलता है। यदि हम सड़क पर जाते है तो वहाँ हमें जापान, जर्मनी, कोरिया, संयुक्त राज्य अमेरिका में बने ऑटोमोबाइल्ज देखने को मिलते हैं, जो इरान, इराक, साऊदी अरब व कुवैत से निकले तेल का प्रयोग करते हैं। घर में हम भारत, इंडोनेशिया, श्रीलंका में बनी चाय, तथा ब्राजील में बनी कॉफी पीते हैं। हम फिनलैंड, कोरिया, स्वीडन, जापान, चीन में बने मोबाइल हैंडसेट इस्तेमाल करते हैं। इस तरह आज जन-सामान्य भी अपनी साधारण जिंदगी में दूरस्थ देशों के उत्पादों का प्रयोग करते हैं, परंतु हम यह भूल जाते है कि विभिन्न देशों में बने ये उत्पाद हम तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार/व्यवसाय के जटिल नेटवर्क से पहुँचे हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के विकास से विश्व के विभिन्न देश एक वैश्विक गाँव का अंश बनने लगे हैं। विभिन्न देशों द्वारा अपनायी गयी वैश्वीकरण की नीति के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। वैश्वीकरण में घरेलू अर्थव्यवस्था का अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ संबंध बढ़ाया जाता है। इसके अंतर्गत बहुराष्ट्रीय कंपनियों को घरेलू अर्थव्यवस्था में निवेश करने के लिए आकर्षित किया जाता है। वैश्वीकरण का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके अंतर्गत विश्व अर्थव्यवस्था में खुलेपन, परस्पर आर्थिक निर्भरता तथा आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा दिया जाता है।

वैश्वीकरण में घरेलू अर्थव्यवस्था को विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश के लिए खोल दिया जाता है। आयात पर लगे प्रतिबंधों को कम किया जाता है तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा दिया जाता है। अब बहुराष्ट्रीय कंपनियां उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी निवेश कर सकती है जो पहले विदेशी कंपनियों के लिए वर्जित या प्रतिबंधित थे। वैश्वीकरण नीति का यह मानना है कि घरेलू अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इससे विश्व की उच्चस्तरीय तकनीक, विशिष्ट ज्ञान, उत्पादों व सेवाओं आदि का घरेलू अर्थव्यवस्था में अंतरप्रवाह बढ़ेगा। विकसित देशों की पूँजी व टेक्नोलॉजी विश्व के विकासशील देशों; जैसे- चीन, भारत आदि में निवेश की जाएगी। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। अब बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कंपनियां कई देशों में अपने उत्पाद, सेवाएं, टेक्नोलॉजी आदि बेचती हैं। संचार व परिवहन की सुविधाओं के विकास से एक देश के लोगों के अन्य देशों में आवागमन में बहुत वृद्धि हुई है। लोग उच्च शिक्षा ग्रहण करने, पर्यटन, चिकित्सा, नौकरी आदि के लिए अन्य देशों में पहले से अधिक जाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे-विश्व व्यापार संगठन (WTO), अंकटाड (UNCTAD), अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), विश्व बैंक आदि अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय को बढ़ावा दे रही हैं। विश्व व्यापार संगठन मंच पर, सदस्य देश उत्पादों व सेवाओं के प्रवाह पर लगी टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को कम करने के लिए सहमत होते हैं। विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह व बाहरी प्रवाह पर लगी प्रशासनिक बाधाओं को कम करने के लिए भी सदस्य देश सहमत होते हैं। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व निवेश को बढ़ावा मिला है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विकास में बहुत वृद्धि हुई है।

विदेशों में व्यवसाय करने हेतु प्रवेश की विभिन्न विधियाँ इस प्रकार हैं: व्यापार रूट, अनुबंधीय प्रवेश रूट व निवेश रूट। व्यापार रूट में उत्पादों व सेवाओं का निर्यात व आयात किया जाता है। अनुबंधीय प्रवेश रूट में, अमूर्त मदों (Intangible Items) जैसे- पेटेन्ट, कॉपीराइट, टेक्नोलॉजी आदि का विदेशों में निर्यात किया जाता है। निवेश रूट में, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश द्वारा अन्य देशों में सहायक कंपनियाँ स्थापित की जाती हैं, विदेशी कंपनियों का अधिग्रहण किया जाता है, उनमें विलयन (Merger) किया जाता है।

प्रारंभिक अवस्था में, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय केवल विदेशी उत्पादों के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार अर्थात् निर्यात व आयात तक ही सीमित होता है। बाद में सेवाओं का निर्यात व आयात भी किया जाने लगता है। अब अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय व्यापार रूट से बढ़कर निवेश रूट से भी हो रहा है। अब बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विश्व के विभिन्न देशों में अपनी उत्पादन इकाइयाँ स्थापित कर रही हैं। निवेश रूट अपनाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ न केवल परिवहन लागत में ही बचत करती हैं, बल्कि सस्ते उत्पादन साधनों, जैसे सस्ता कच्चा माल, सस्ती आगतों आदि से भी लाभान्वित होती हैं। विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विकासशील देशों में अपनी सहायक कंपनियाँ स्थापित करती हैं ताकि विकासशील देशों की सस्ती श्रम लागत से लाभ उठाया जा सके।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय केवल घरेलू व्यवसाय का विदेशों में विस्तार ही नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में कुछ विशेष समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है, जो घरेलू व्यवसाय में नहीं आतीं। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं: सांस्कृतिक अंतर, भाषा संबंधी समस्याएँ, विनिमय दर में उतार-चढ़ाव, टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ, देश संबंधी जोखिम, राजनीतिक जोखिम आदि।

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की परिभाषाएँ (Definitions of International Business)

(i) रोजर बैनेट के अनुसार, "**अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का तात्पर्य उत्पादों, पूँजी, सेवाओं, कर्मचारियों, टेक्नोलॉजी के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रवाह, आयात-निर्यात, बौद्धिक संपदा (पेटेन्ट, ट्रेडमार्क, तकनीकी-ज्ञान, कॉपीराइट आदि) से संबंधी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रवाह से है। यह व्यवसाय लाइसेंसिंग, फ्रेंचाइज़िंग, विदेशों में भौतिक व वित्तीय संपत्तियों में निवेश, उत्पादों के संग्रहण द्वारा स्थानीय विक्रय या अन्य देशों में निर्यात, विदेशों में क्रय-विक्रय, विदेशों में वेयरहाउसिंग व वितरण व्यवस्था स्थापित करना, विदेशों से आयात करके घरेलू अर्थव्यवस्था में विक्रय आदि के रूप में हो सकता है।**" (International business is concerned with international movement of goods, capital, services, employees and technology, importing and exporting, cross border transactions in intellectual property (patents, trademark, know-how, copyright, etc.) via licensing and franchising, investment in physical and financial assets in foreign countries, assembly of goods abroad for local sale or for export to other nations, buying and selling in foreign countries, establishment of foreign warehousing and distribution systems, import of goods from other country for local sale. **–Roger Bennett**)

(ii) जॉन डी० डैनियल्स व एच०सी० के अनुसार, "**अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में दो या दो से अधिक देशों के मध्य किए गए सभी कामर्शियल व्यवहार शामिल हैं, जैसे-विक्रय, निवेश, परिवहन आदि।**" (International business consists of all commercial transactions such as sales, investment and transportation that take place between two or more countries. **–John D. Daniel and H. Lee**)

(iii) एस० हार्ट के अनुसार, "**अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में दो या दो से अधिक देशों के मध्य ऐसी सभी व्यावसायिक क्रियाएँ शामिल हैं, जिनमें उत्पादों, सेवाओं, संसाधनों से संबंधी व्यवहार होते हैं। संसाधनों के व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादों व सेवाओं के उत्पादन हेतु पूँजी व मानवीय संसाधनों से संबंधी व्यवहार भी शामिल हैं।**" (International business refers to all those business activities which involve cross border transactions of goods, services, resources between two or more nations.

Transactions of resources include capital, skills, people, etc. for international production of goods and services. –**S. Hart)**

संक्षेप में, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में निम्न विशेषताएँ शामिल है:

(i) घरेलू अर्थव्यवस्था का वैश्विक अर्थव्यवस्था से एकीकरण।

(ii) अर्थव्यवस्था को विदेशी पूँजी, विदेशी टेक्नोलॉजी व विदेशी प्रतिस्पर्धा के लिए खोलना।

(iii) स्वतंत्र विदेशी व्यापार व निर्यातों व आयातों के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण। टैरिफ व कोटा की समाप्ति।

(iv) बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विस्तार।

■ 3. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की विशेषताएँ/तत्त्व/संघटक (Characteristics/Elements/Components of International Business)

(1) उत्पादों व सेवाओं का स्वतंत्र व्यापार (Free Trade of Goods and Services): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में उत्पादों व सेवाओं के आयात व निर्यात के लिए उदार नीति अपनाई जाती है। विभिन्न देशों के मध्य उत्पादों व सेवाओं की क्रय-विक्रय पर लगी टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को हटाया जाता है। संपूर्ण विश्व को एक वैश्विक इकाई माना जाता है।

(2) पूँजी का स्वतंत्र प्रवाह (Free Movement of Capital): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का तात्पर्य है - घरेलू अर्थव्यवस्था को विदेशी पूँजी व विदेशी निवेश के प्रवाह के लिए खोलना तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश पर लगी रुकावटों को समाप्त करना। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में पूँजी के अंतरप्रवाह व बाहरी प्रवाह पर लगे प्रतिबंधों को हटाया जाता है तथा विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए विभिन्न रियायतें दी जाती हैं।

(3) श्रम का स्वतंत्र प्रवाह (Free Movement of Labour): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में श्रम के विभिन्न देशों के मध्य अंतर व बाहरी प्रवाह को स्वतंत्र किया जाता है। मानव-संसाधनों के प्रवास तथा अप्रवास (Emigration and Immigration) संबंधी प्रावधानों को उदार बनाया जाता है। तकनीकी विशेषज्ञों व सुयोग्य मानवीय संसाधनों की सेवाओं को प्राप्त करना सरल बनाया जाता है। इससे व्यावसायिक इकाइयां अन्य देशों में उपलब्ध सस्ते व कुशल मानवीय संसाधनों; जैसे-तकनीकी विशेषज्ञों, पेशेवर प्रबंधकों की सेवाएं प्राप्त कर सकती हैं। इससे विभिन्न देशों की परस्पर निर्भरता बढ़ती है।

■ 4. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के प्रकार/अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के प्रति दृष्टिकोण (Types of International Business/Approaches to International Business)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय विभिन्न तरीकों से किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के मुख्य तरीके इस प्रकार हैं: अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, तकनीकी सहयोग, अंतर्राष्ट्रीय निवेश आदि। इनकी चर्चा निम्नलिखित है:

(1) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के इस प्रारूप में एक देश अपने आधिक्य उत्पादन का अन्य देशों को निर्यात करता है। ये निर्यात प्रत्यक्ष निर्यात, अप्रत्यक्ष निर्यात या प्रति व्यापार के रूप में हो सकते हैं। **प्रत्यक्ष निर्यात** में, मूल कंपनी अंतिम उपभोक्ताओं को अपने एजेंटों की सहायता से सीधे उत्पाद बेचती है। औद्योगिक उत्पादों व बहुत कीमती उत्पादों की दशा में प्रत्यक्ष निर्यात किए जाते हैं। **अप्रत्यक्ष निर्यात** (Indirect Export) में मूल कंपनी अतिरिक्त उत्पाद (Surplus Products) को वितरकों व विपणन मध्यस्थों आदि को बेचती है। फिर ये वितरक/मध्यस्थ उत्पाद को अंतिम उपभोक्ताओं को बेचते हैं। **प्रति-व्यापार समझौते** में एक देश दूसरे देश से आयात इस शर्त पर करता है कि दूसरा देश भी पहले देश से उतने ही मूल्य के उत्पाद आयात करेगा। इस समझौते में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(2) तकनीकी सहयोग/संयुक्त उपक्रम (Technological Collaboration/Joint Ventures): जब किसी देश ने स्वयं के अनुसंधान व विकास प्रयासों से टेक्नोलॉजी विकसित की है, तो यह मूल देश इस टेक्नोलॉजी को अन्य देशों को उपलब्ध करवा कर रॉयल्टी कमा सकता है। इससे मूल देश टेक्नोलॉजी के अनुसंधान व विकास पर किए गए खर्चे को पूरा

भी कर सकता है तथा लाभ भी कमा सकता है। तकनीकी सहयोग से मूल कंपनी विदेशी बाजार में बिना पूँजी निवेश किए भी प्रवेश प्राप्त कर सकती है। इसे केवल अपनी टेक्नोलॉजी ही मेजबान देश को उपलब्ध करवानी पड़ती है। विदेशी व्यवसाय के इस प्रारूप को तब अपनाया जाता है, जब मूल कंपनी के पास मेजबान देश में निवेश करने हेतु अधिक पूँजी नहीं होती, या मेजबान देश के बाजार का आकार बहुत छोटा है या मेजबान देश में प्रत्यक्ष निवेश पर प्रतिबंध लगा है तथा मूल देश के पास विकसित टेक्नोलॉजी है।

(3) **अंतर्राष्ट्रीय निवेश** (International Investment): अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के इस प्रारूप में मेजबान देश में पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी या आंशिक स्वामित्व वाली सहायक कंपनी स्थापित की जाती है। यह निवेश मेजबान देश में पहले से स्थापित कंपनी के साथ विलयन या अधिग्रहण के रूप में भी हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय का यह प्रारूप तब अपनाया जाता है जब मूल कंपनी के पास निवेश हेतु पर्याप्त वित्तीय कोष है, प्रबंधकीय कौशल व जोखिम वहन क्षमता है। यह निवेश प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment–FDI) या पोर्टफोलियो निवेश के रूप में हो सकता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में मूल कंपनी, मेजबान देश में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनी स्थापित करती है तथा उसका प्रबंध अपने नियंत्रण में रखती है। पोर्टफोलियो निवेश में मूल कंपनी मेजबान देश के अंश तो खरीदती है परन्तु इसका उद्देश्य मेजबान कंपनी के प्रबंध को नियंत्रित करना न होकर केवल निवेश करना ही होता है। **विलयन व अधिग्रहण** (Merger and Acquisition) भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के अन्य प्रारूप हैं। इस प्रारूप में मूल देश की व्यावसायिक इकाई, मेजबान देश की विद्यमान इकाई से सहयोग समझौता करती है। इसमें एक देश की व्यावसायिक इकाई अन्य देश की व्यावसायिक इकाई से यह गठबंधन करती है कि वह उसके बाजार क्षेत्र में प्रवेश करेगी। इसमें मेजबान देश में, मूल कंपनी द्वारा कोई नयी कंपनी स्थापित नहीं की जाती, बल्कि मेजबान देश में पहले से विद्यमान कंपनी के साथ ही समझौता किया जाता है। यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) से भिन्न है, क्योंकि FDI में मेजबान देश में नयी कंपनी स्थापित की जाती है, जबकि विलयन व अधिग्रहण में मेजबान देश में मूल कंपनी कोई नयी कंपनी स्थापित नहीं करती। **व्यूहरचनात्मक गठबंधन** (Strategic Alliance) भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय करने का एक प्रारूप है। यह गठबंधन दो व्यावसायिक इकाइयों के मध्य किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है; जैसे-नवाचार/टेक्नोलॉजी के विकास के लिए साझी अनुसंधान व विकास इकाई स्थापित करना, साझे प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा दोनों व्यावसायिक इकाइयों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना, दोनों व्यावसायिक इकाइयों के ग्राहकों को विक्रय उपरांत सेवाएं उपलब्ध करवाने के लिए साझा उपभोक्ता सेवा केंद्र (Common Customer Service Centre) स्थापित करना आदि।

■ 5. व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण की अवस्थाएँ/प्रक्रिया
(Stages/Process of Internationalisation of Business)

व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीयकरण का तात्पर्य व्यवसाय की क्रियाओं को विश्व के अन्य देशों तक पहुँचाना है। यह विदेशी व्यापार, तकनीकी सहयोग/संयुक्त उपक्रम, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, विलयन, व्यूहरचनात्मक गठबंधन आदि के प्रारूप में हो सकता है। व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं से निकलती है। व्यावसायिक इकाई को वैश्विक इकाई बनने के लिए विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है, इसकी चर्चा निम्नलिखित है:

(1) **निर्यात-आयात अवस्था** (Export-Import Stage): यह व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की प्रारंभिक अवस्था है। घरेलू व्यावसायिक इकाई अपने अधिक्य उत्पादन का अन्य देशों को निर्यात करती है। ये निर्यात प्रत्यक्ष निर्यात या अप्रत्यक्ष निर्यात के रूप में हो सकते हैं। प्रत्यक्ष निर्यात में व्यावसायिक इकाई एजेंटों की सहायता से उत्पादों को अंतिम उपभोक्ताओं को सीधा बेचती है। कीमती उत्पादों व औद्योगिक उत्पादों की दशा में प्रत्यक्ष निर्यात द्वारा उत्पादों को विदेशी आयातकों को सीधा बेचा जाता है। अप्रत्यक्ष निर्यात में व्यावसायिक इकाई वितरकों/विपणन मध्यस्थों को उत्पाद बेचते हैं। ये वितरक मध्यस्थ उत्पाद को अंतिम उपभोक्ताओं को बेचते हैं। इसी तरह घरेलू व्यावसायिक इकाई आवश्यक कच्चे माल, उपकरण, टेक्नोलॉजी, कल-पुर्जे आदि विदेशों से आयात करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। घरेलू व्यावसायिक इकाइयाँ इन कल-पुर्जों, टेक्नोलॉजी को स्वयं बनाने के स्थान पर आयात करना उचित मानती है, क्योंकि

उत्पादों को स्वयं बनाने में लागत भी अधिक पड़ती है तथा इसमें सुलभता भी कम होती है। व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की प्रारंभिक अवस्था में, व्यावसायिक इकाई अलग निर्यात-आयात विभाग की स्थापना करती है तथा इस विभाग में ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों की नियुक्ति करती है, जो निर्यात व आयात संबंधी कागजी कार्यवाही से भली-भाँति परिचित हों।

(2) **तकनीकी सहयोग/संयुक्त उपक्रम** (Technological Collaborations/Joint Ventures): जब विदेशों में व्यवसाय का आकार बढ़ जाता है, तब केवल निर्यात-आयात विभाग की सहायता से विदेशी व्यवसाय को चलाना बहुत मुश्किल हो जाता है। तब व्यावसायिक इकाई विदेशी कंपनियों के साथ तकनीकी समझौता करती है या संयुक्त उपक्रम स्थापित करती है। तकनीकी सहयोग में मूल कंपनी अपनी मुख्य टेक्नोलॉजी मेजबान देश की व्यावसायिक इकाई को उपलब्ध करवाती है तथा इसके लिए वह रॉयल्टी वसूल करती है। इसके अलावा कई बार मूल कंपनी के पास मेजबान देश में निवेश हेतु पर्याप्त वित्त नहीं होता, तब वह विदेशी इकाई के साथ सहयोग द्वारा संयुक्त उपक्रम स्थापित करती है। व्यावसायिक इकाई विदेशी साझेदार को अपने ब्राड के नाम से उत्पाद बनाने हेतु लाइसेंस दे देती है या फ्रेंचाइजी दे देती है। फ्रेंचाइजी में विदेशी साझेदार को मूल कंपनी के नाम से व्यवसाय करने की अनुमति मिल जाती है।

(3) **निवेश अवस्था** (Investment Stage): व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की यह अंतिम अवस्था है। इस अवस्था में व्यावसायिक इकाई विदेशों में अपनी सहायक कंपनियां स्थापित करती है। ये सहायक कंपनियाँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश द्वारा स्थापित की जाती हैं। इस प्रारूप में विदेशों में उत्पादन इकाइयाँ स्थापित की जाती है। इन उत्पादन इकाइयों में उत्पाद बनाकर मेजबान देश में भी बेचा जाता है, तथा इसे अन्य देशों में भी निर्यात किया जाता है। निवेश का एक अन्य प्रारूप-विलयन व अधिग्रहण है। इसमें विदेशी कंपनी अन्य देश में विद्यमान व्यावसायिक इकाई के साथ विलयन या अधिग्रहण का समझौता करती है। यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से भिन्न है, क्योंकि इसमें मेजबान देश में एक नयी कंपनी की स्थापना की जाती है, जबकि विलयन व अधिग्रहण में मूल कंपनी मेजबान देश में पहले से स्थापित व्यावसायिक इकाई के साथ गठबंधन का समझौता करती है। विलयन व अधिग्रहण से मूल कंपनी मेजबान देश के व्यावसायिक वातावरण को बेहतर ढंग से समझ सकती है तथा पहले से स्थापित कंपनी के अनुभवों व ज्ञान से लाभान्वित हो सकती है। अन्तर्राष्ट्रीयकरण की इस अवस्था में व्यावसायिक इकाई पूर्ण रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनी बन जाती है। इस अवस्था में व्यावसायिक इकाई के विदेशों में स्वयं के उत्पादन केंद्र, वितरण केंद्र, सेवा केंद्र आदि होते हैं। इससे मूल कंपनी विदेशी बाजारों के उपभोक्ताओं की रुचि, पसंद, प्राथमिकता के अनुरूप उत्पाद बना सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के इस प्रारूप में व्यावसायिक इकाई स्वयं विपणन अनुसंधान करती है, विदेशी मीडिया में विज्ञापन देती है, विदेशों में वितरकों की नियुक्ति करती है तथा इस तरह यह वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई बन जाती है। वर्तमान में अधिकतर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की इस अवस्था में हैं, जैसे नेस्ले, नोकिया, सोनी, टोयोटा, फोक्सवेगन, शैवरलेट, कोका-कोला, यूनीलीवर, प्रोक्टर व गैंबल आदि।

■ 6. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में कठिनाइयाँ/चुनौतियाँ
(Difficulties/Challenges in International Business)

(1) **सांस्कृतिक अंतर** (Cultural Differences): विभिन्न देशों के सांस्कृतिक चरों; जैसे-भाषा, सोच-विचार, रीति-रिवाज, कार्यशैली, धर्म, मूल्य प्रणाली आदि में बहुत विभिन्नता होती है। अतः विभिन्न देशों में सांस्कृतिक आयामों का अध्ययन बहुत जटिल हो जाता है। इसके अलावा किसी एक देश के अंदर भी विभिन्न उप-संस्कृतियाँ (Sub-cultures) पाई जाती हैं। अतः राष्ट्रीय आधार पर संस्कृति का विश्लेषण (Country to Country Cultural Analysis) बहुत मुश्किल हो जाता है। विभिन्न देशों के मध्य व एक ही देश के भीतर भी सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण उपभोक्ताओं का क्रय-व्यवहार एक समान नहीं होता। यदि अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई मेजबान देशों के सांस्कृतिक वातावरण के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करने में त्रुटि करती है, तो इसे अत्यधिक जोखिम का सामना करना पड़ सकता है। यहाँ तक कि इसे बंद करने की नौबत भी आ सकती है।

(2) **लेखांकन प्रमापों तथा व्यवहारों में अंतर** (Difference in Accounting Standards and Practices): विभिन्न देशों में लेखांकन प्रमापों की विभिन्नता के कारण लेखे तैयार करने संबंधी वैधानिक व्यवस्था अलग-अलग है,

जैसे- भारत में लेखाकन प्रमापों को इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया द्वारा जारी किया गया है। अमेरिका में लेखाकन प्रमापों को 'वित्तीय लेखाकन प्रमाप बोर्ड' (Financial Accounting Standard Board–FASB) द्वारा तैयार किया गया है। फ्रांस तथा जर्मनी में लेखाकन व्यवहारों को पेशेवर लेखापालकों द्वारा न बनाकर, इन्हें कानून द्वारा या न्यायालय के फैसलों के आधार पर बनाया गया है। विभिन्न देशों में लेखाकन संबंधी अलग-अलग नियमों तथा प्रमापों के कारण वहाँ के लेखाकन व्यवहारों में विभिन्नता है; जैसे-अमेरिका में स्थिति विवरण को तरलता क्रम (Liquidity Order) में बनाया जाता है, जबकि यूरोप के देशों में चिट्ठे या स्थिति विवरण को स्थायित्व क्रम (Permanence Order) में बनाया जाता है। बहुराष्ट्रीय निगमों को एकीकृत वित्तीय विवरण तैयार करते समय विभिन्न समस्याओं जैसे-करेंसी अनुवाद, विभिन्न प्रकार के लेखाकन व्यवहारों, विभिन्न लेखाकन नीतियों व प्रमापों आदि का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा विभिन्न लेखाकन व्यवहारों के कारण, विभिन्न देशों में कार्यरत सहायक कंपनियों के निष्पादन मूल्यांकन तथा तुलना में भी कठिनाई आती है।

(3) **भाषा संबंधी बाधाएँ** (Language Barriers): विभिन्न देशों की भाषाओं में विभिन्नता अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के संचार में एक बड़ी बाधा है। विश्वभर में 10,000 से भी अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। प्रत्येक भाषा में विभिन्न शब्दों के अलग-अलग अर्थ है। अमेरिका तथा इंग्लैंड दोनों में अंग्रेजी भाषा बोली जाती है, लेकिन इन दोनों समभाषीय देशों में भी अंग्रेजी के शब्दों के हिज्जों (Spellings) व अर्थ में अंतर है तथा बोलचाल का तरीका भी भिन्न है। भाषा की विभिन्नता के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई को विभिन्न देशों में कार्यरत अधिकारियों के मध्य, डीलरों, बाजार-मध्यस्थों व ग्राहकों के मध्य संचार में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। विभिन्न भाषाओं के अनुवाद में भी कठिनाई आती है। कुछ शब्दों का प्रत्यक्ष अनुवाद संभव नहीं होता। अनुवाद में थोड़ी सी त्रुटि होने पर संचार गलत हो जाता है।

(4) **अधिक जटिल नियंत्रण** (Control More Complex): घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय बहुत विशाल भौगोलिक क्षेत्र में फैला होता है। कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की व्यावसायिक क्रियाएँ 150 से भी अधिक देशों में फैली हुई है। अत्यधिक दूरी के कारण परस्पर मेल-जोल बहुत अधिक समय अंतराल पर ही होता है। मूल कंपनी व सहायक कंपनियों के अधिकारियों के मध्य प्रत्यक्ष सभाएँ बहुत कम बार होती हैं। आधुनिक संचार संयत्रों; जैसे-वीडियो कान्फ्रेंसिंग, ई-मेल के बावजूद भी प्रभावी नियंत्रण में संचार की कमी की समस्या का समाधान नहीं हो पाया है। इसके अलावा मेजबान देश व घरेलू देश में सांस्कृतिक विभिन्नताएँ बहुत अधिक हो सकती हैं। इस कारण घरेलू देश व मेजबान देश में कार्य पद्धतियाँ, कार्य शैली, मूल्य, नीति शास्त्र में बहुत अधिक भिन्नता हो सकती है। अत्यधिक सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण सहायक कंपनियों पर नियंत्रण करने में बहुत कठिनाई आती है।

(5) **अधिक जोखिम** (More Risk Involved): घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम अधिक होता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में, एक व्यावसायिक इकाई अन्य देशों में कार्य करती है। इन अन्य देशों में मूल देश की तुलना में सांस्कृतिक आयाम जैसे- भाषा, रिवाज, फैशन, कार्यशैली, सोच, आदर्शवाद, मूल्य-व्यवस्था (Value-System) आदि में काफी अंतर हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से संबंधित सरकारी नीतियाँ; जैसे- टैरिफ नीति, विदेशी निवेश नीति, कराधान नीति आदि में विभिन्न देशों में अत्यधिक अंतर पाया जाता है। इसके अलावा मेजबान देश के निवासियों व सामाजिक संगठनों का विदेशी उपक्रमों के प्रति दृष्टिकोण ठीक नहीं होता। वे उन्हें घरेलू अर्थव्यवस्था में जबरदस्ती घुसे हुए उपक्रम मानते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण का विश्लेषण घरेलू व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन की तुलना में कहीं अधिक जटिल है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं: सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण जोखिम, राजनीतिक अस्थिरता, लंबी भौगोलिक दूरी के कारण व्यावसायिक क्रियाओं के समन्वय में कठिनाई, प्रशासनिक कठिनाइयाँ, सरकारी नीति में प्रतिकूल परिवर्तन होने का जोखिम, मेजबान देश की जनता का प्रतिकूल दृष्टिकोण, आयातकों की साख गुणवत्ता के बारे में जानकारी के अभाव में अधिक साख जोखिम, विदेशी बाजारों में आए आकस्मिक प्रतिकूल बदलावों, विनिमय दरों में प्रतिकूल परिवर्तन आदि।

(6) **उपभोक्ताओं की पसंद व प्राथमिकताओं में अंतर** (Difference in Consumers' Tastes and Preferences): विभिन्न देशों में उपभोक्ताओं की पसंद, प्राथमिकताएँ, वातावरणीय दशाएँ, भोजन-आदतें, शिक्षा

स्तर, आर्थिक विकास का स्तर आदि भिन्न-भिन्न होने के कारण उपभोक्ताओं की उत्पाद की विशेषताओं के प्रति विभिन्न प्राथमिकताएँ होती है। ऐसी स्थिति में वैश्विक कंपनियों के लिए विभिन्न तरह के उपभोक्ताओं के लिए भिन्न-भिन्न उत्पाद बनाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

(7) **सरकार की नीतियों में अनिश्चितताएँ** (Uncertainties in Government Policy): यदि मेजबान देश में राजनीतिक अस्थिरता है तो ऐसी स्थिति में सरकार की नीतियों में बहुत अनिश्चितता रहती है। टैरिफ दरें, आयात लाइसेंस, आयात कोटा, परमिट आदि के संबंध में अनिश्चितता बनी रहती है। अतः विदेशी कंपनी अंतर्राष्ट्रीय विपणन से संबंधित दीर्घकालीन योजनाएँ नहीं बना सकती। मेजबान देश की सरकार कभी भी आयात या निर्यात पर प्रतिबंध लगा देती है या पैकिंग संबंधी प्रावधानों में परिवर्तन कर देती है। मेजबान देश व मूल देश के मध्य संबंध कभी भी तनावपूर्ण हो सकते हैं, जिससे इन दोनों देशों के मध्य व्यापारिक संबंध समाप्त हो सकते है।

(8) **प्रशासनिक बाधाएँ** (Bureaucratic Hurdles): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में अत्यधिक कागजी कार्यवाही होती है। विदेशी कंपनियों को विभिन्न सरकारी विभागों से मंजूरी लेनी पड़ती है, जो बहुत ही जटिल कार्य है। कस्टम विभाग से क्लीयरेंस (Custom Clearance) लेना बहुत ही कठिन कार्य है। कई बार सरकारी अधिकारी बिना किसी ठोस त्रुटि के विदेशी व्यावसायिक इकाइयों को उलझा देते हैं। कई बार विदेशी बाजारों में प्रवेश लेने के लिए वैश्विक कंपनियों को वहाँ के मंत्रियों को बहुत बड़ी राशि में रिश्वत देनी पड़ती है। अन्यथा वे बिना वजह के इन विदेशी कंपनियों के रास्ते में रुकावटें पैदा करते हैं।

(9) **विदेशी विनिमय में उतार-चढ़ाव** (Foreign Exchange Fluctuations): दो देशों के मध्य विनिमय दर कभी भी स्थिर नहीं रहती। इसमें वृद्धि या गिरावट आती रहती है। विनिमय दर में प्रतिकूल परिवर्तन होने पर निर्यातकों व आयातकों को अत्यधिक हानि होती है। इससे निर्यातकों व आयातकों के लिए अनिश्चितता का माहौल बना रहता है।

(10) **घरेलू उत्पादकों द्वारा विरोध** (Opposition by Domestic Manufacturers): प्रायः मेजबान देश की व्यावसायिक इकाइयाँ विदेशी कंपनियों के उत्पादों का विरोध करती है, क्योंकि इससे मेजबान देश की घरेलू व्यावसायिक इकाइयों को अत्यधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। यदि वैश्विक कंपनी के उत्पादों की क्वालिटी बहुत बढ़िया है, तो इससे मेजबान देश की घरेलू व्यावसायिक इकाइयों के बंद होने की नौबत भी आ जाती है। कई बार घरेलू देश के सामाजिक संगठन भी विदेशी उत्पादों के विरुद्ध प्रदर्शन करते है। इससे विदेशी उत्पादों की छवि खराब हो जाती है।

(11) **टेक्नोलॉजी की चोरी** (Technological Piracy): कई बार कुछ मेजबान देशों में पेटेन्ट संबंधी अधिनियम बहुत सख्त नहीं होते। इससे विदेशी कंपनी की नवाचारी टेक्नोलॉजी, कॉपीराइट आदि की चोरी हो जाती है। मेजबान देश में इसके नकली उत्पाद बनने लग जाते है। अतः वैश्विक कंपनियाँ ऐसे देशों में जाने में हिचकिचाती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade)

■ 1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of International Trade)

वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रय-विक्रय को व्यापार कहा जाता है। एक देश के व्यापार को दो भागों में बाँटा जा सकता है: (i) **आंतरिक व्यापार**: आंतरिक व्यापार वह व्यापार है जो एक देश के निवासियों द्वारा विभिन्न स्थानों या क्षेत्रों के बीच होता है। इसे **राष्ट्रीय व्यापार, अंतर-क्षेत्रीय व्यापार** या **घरेलू व्यापार** कहा जाता है। पंजाब, हरियाणा या हिमाचल प्रदेश के बीच होने वाला व्यापार आंतरिक व्यापार है। (ii) **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार**: अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वह व्यापार है जो दो या दो से अधिक देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान- प्रदान द्वारा होता है। भारत और अमेरिका के बीच होने वाले व्यापार को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार या **विदेशी व्यापार** कहा जाता है। जब भारत से अमेरिका को सामान भेजा जायेगा उसे भारत के **निर्यात** कहा जाएगा। इसके विपरीत भारत, अमेरिका से जो सामान मँगवायेगा उसे भारत के **आयात** कहा जाएगा। जहाँ तक वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन का संबंध है, सभी देश अपने आप में आत्मनिर्भर नहीं होते। इसका कारण यह है कि प्रकृति ने विभिन्न देशों को विभिन्न संसाधनों से सम्पन्न किया है। ये संसाधन प्राकृतिक संसाधन या मनुष्य निर्मित संसाधन या मानवीय संसाधन हो सकते हैं। सामान्यतया एक देश के पास कुछ संसाधन प्रचुर (तथा आधिक्य)

मात्रा में पाए जाते है तो कुछ अन्य ससाधनों की दुर्लभता भी पाई जाती है। उदाहरण के लिए, खाड़ी देशों के पास खनिज तेल उनकी आवश्यकता से बहुत अधिक पाया जाता है, परतु औद्योगिक वस्तुओं व खाद्यान्न की दुर्लभता उन्हें बहुत पीड़ित करती है। ऐसी स्थितियों में आप सीमा पर व्यापार द्वारा अपनी वस्तु के आधिक्य के बदले में उन वस्तुओं को प्राप्त कर सकते हैं जो आपके देश में या तो उपलब्ध नही है या बहुत दुर्लभ है। अतएव अतर्राष्ट्रीय व्यापार का निहितार्थ **अंतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण** है।

(i) **पेन्गुविन शब्दकोश** के अनुसार, **"एक देश तथा दूसरे देश के मध्य होने वाले वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं।"** (The exchange of goods and services between one country and another is called international trade. –**Penguin Dictionary**)

(ii) **एनातोल मुराद** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय व्यापार राष्ट्रों के बीच होने वाला व्यापार है।"** (International trade is trade between nations. –**Anatol Murad**)

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार/अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के निर्धारक तत्त्व (Basis of International Trade/Determinants of International Trade)

(1) **अंतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण** (International Specialisation): अतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक मुख्य कारण अतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण है। इसका अभिप्राय यह है कि ससार के विभिन्न देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करते है जिनके उत्पादन के लिए उनके पास विशेष साधन होते है। अतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण श्रम विभाजन का परिणाम है। **प्रो॰ हैरोड** के अनुसार, **''साधारणतया, विनिमय श्रम विभाजन का आवश्यक परिणाम है। जब श्रम विभाजन राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर जाता है तब विदेशी व्यापार उत्पन्न होता है। यह अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन का अनिवार्य परिणाम है।''** अतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं:

(i) **प्राकृतिक संपन्नता** (Natural Endowments): प्राकृतिक सपन्नता अतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण का आधार है। इससे अभिप्राय एक देश के उस ससाधन आधार से है जो प्रकृति से नि:शुल्क उपहार के रूप में प्राप्त होता है। खाड़ी (Gulf) देशों में तेल के कुए, भारत में अभ्रक के अपार भण्डार, रूस में मैंगनीज, जापान और बांग्लादेश जैसे तटीय देशों में मछली उत्पादन की बहुत अधिक सभावना आदि विश्व के विभिन्न देशों के बीच विभिन्न प्राकृतिक सपन्नताओं के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। प्राकृतिक सपन्नताओं में प्रकृति और भूमि का उपजाऊपन तथा जलवायु सबधी स्थितियाँ भी शामिल होती है। इसलिए भारत और श्रीलंका ने चाय के लिए उपयुक्त जलवायु स्थितियों के कारण चाय के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त की हुई है।

(ii) **तकनीकी ज्ञान** (Technical Know-how): अतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण का एक निर्धारक तत्त्व तकनीकी ज्ञान है। अपनी प्रौद्योगिकी के विकास के कारण, विश्व के विकसित देशों ने प्राकृतिक संपन्नता की सभी रुकावटों पर काबू पा लिया है। जापान केवल एक तटीय देश है जिसके पास न के बराबर प्राकृतिक संसाधन आधार हैं, परंतु इसकी तकनीकी वरिष्ठता (Superiority) ने मोटरगाड़ी उत्पादन के क्षेत्र में एक बहुत ही विकसित देश की **विशिष्टता** (Distinction) प्राप्त कर ली है। इसी भाँति विकसित तकनीकी ज्ञान के आधार पर यू. एस. ए. ने F-16 और Patriot Missiles जैसी युद्ध सामग्री के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर ली है।

(iii) **लागत अंतर** (Cost Difference): उत्पादन की लागत में अतर, वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण का मुख्य आधार है। विभिन्न देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं जिनमें निरपेक्ष अथवा तुलनात्मक लागत अतर होता है।

(iv) **विपणन घटक** (Marketing Factors): कुछ देशों की व्यावसायिक इकाइयों के ब्रांड अन्य देशों में भी बहुत लोकप्रिय होते है। अन्य देशो के लोग भी इन ब्राडिड उत्पादों को प्राथमिकता देते हैं। इसी तरह कुछ व्यावसायिक इकाइयों का विक्रयकला कौशल, उत्पाद अनुठापन, विज्ञापन व पब्लिसिटी आदि बहुत प्रबल होते हैं। ये विभिन्न देशो के उपभोक्ताओं को आकर्षित कर लेते हैं। इस तरह विपणन घटक; जैसे- उच्चकोटि के ब्रांड, उच्चकोटि की विक्रय कला, वस्तु विभेद, विज्ञापन एव प्रचार अतर्राष्ट्रीय उपभोक्तावाद के आधुनिक युग में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार बन रहे है।

(2) **किसी एक विशेष साधन का उपलब्ध न होना** (Non-availability of a Specific Factor): प्रत्येक देश में विभिन्न प्रकार के सभी साधन उपलब्ध नही होते। किसी एक देश में कुछ साधन उपलब्ध होते है तथा दूसरे देश में अन्य प्रकार के साधन पाये जाते हैं। जैसे इग्लैंड में चाय तथा जापान में लोहा नहीं होता। ये उन्हें आयात करने पड़ते है। इसी प्रकार भारत टीन का आयात करता है क्योंकि यहाँ टीन नहीं पाया जाता।

(3) **विभिन्न प्रकार के उत्पादों के उपभोग की इच्छा** (Desire to Consume Variety of Goods): कई बार एक देश किसी एक वस्तु का उत्पादन करते हुए भी उसी वस्तु का आयात करता है। जैसे, हमारे देश में कपड़ा बहुत मात्रा में बनता है और हम उसका निर्यात भी करते है परतु कई प्रकार का कपड़ा हम आयात भी करते है। यह इसलिए किया जाता है ताकि हम विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उपभोग कर सकें।

■ 3. अंतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण या अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ (Advantages of International Specialisation or International Trade)

अतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ की व्याख्या निम्नलिखित तीन वर्गों को मिलने वाले फायदे के रूप में की जा सकती है (A) निर्यातकर्ता देश के लिए, (B) आयातकर्ता देश के लिए और (C) संपूर्ण विश्व के लिए।

● (A) निर्यातकर्ता देश को लाभ (Gains to Exporting Countries)

निर्यातक देश में निर्यातों से अधिक आय प्राप्त की जाती है। इनसे आगे **विशिष्टीकरण, बड़े पैमाने के उत्पादन** और **पैमाने की बचतें** प्राप्त हो सकती हैं। अधिक निर्यात आय से निर्यात क्षेत्र में ऊँची मजदूरी व ऊँचे लाभ प्राप्त हो सकते है तथा समाज में कल्याण की वृद्धि की कल्पना की जा सकती है। इनके प्रभावों के ब्योरे की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है:

(1) **उत्पादन में वृद्धि** (Increased Output): अतर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप उत्पादन वृद्धि से कुल उत्पादन अधिकतम होगा, ससाधनों का पूर्ण उपयोग होगा और उत्पादन की लागतें सभवतया कम हो सकती है। यह सभी तब सभव है जब वह देश जिस वस्तु का उत्पादन करता है उसमे विशिष्टता प्राप्त कर ले।

(2) **अधिक विशिष्टीकरण** (Greater Specialisation): देश की सीमा पर होने वाले व्यापार के फलस्वरूप प्रत्येक देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर लेता है जो उसके लिए बहुत उपयुक्त है अथवा जिसके उत्पादन में उसको तुलनात्मक लाभ प्राप्त है। यह उपयुक्तता भूमि, श्रम अथवा पूँजी जैसे प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इन साधनों को **'साधन संपन्नता'** (Factor Endowment) भी कहा जाता है। इसलिए यदि भारत या ताइवान के लिए श्रम प्रधान वस्तुएँ उत्पादन करना उपयुक्त है तथा जापान या जर्मनी के लिए पूँजी प्रधान वस्तुओं का उत्पादन करना, तब ये देश अपने उत्पादन की इसी दिशा में विशिष्टता प्राप्त करेंगे। इससे उत्पादन ससाधनों का इष्टतम प्रयोग होगा और अतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन सभव होगा।

(3) **तेज आर्थिक विकास** (Faster Economic Development): विश्व व्यापार की वृद्धि से सभी सहभागी देशों में उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि होगी जिससे अधिक आय होगी तथा राष्ट्रीय उत्पाद की दर ऊँची होगी। इससे आर्थिक विकास की तीव्र गति प्राप्त होगी।

(4) **विस्तृत बाजार तथा निम्न लागतें** (Wider Market and Lower Cost): अतर्राष्ट्रीय व्यापार से बाजार का विस्तार होता है और व्यापार में शामिल की जाने वाली वस्तु का उत्पादन अधिक होता है। उत्पादन की मात्रा के बढ़ने से पैमाने की बचतें बढ़ती हैं और उत्पादन लागत तथा कीमतें घट सकती है।

(5) **अतिरिक्त उत्पादन का विक्रय** (Sale of Surplus Goods): अतर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पादक देश के अतिरिक्त उत्पादन को विश्व बाजारों में बेचा जा सकता है तथा अर्जित विदेशी मुद्रा से देश मे कम मात्रा मे उपलब्ध ससाधनों का आयात किया जा सकता है।

(6) **उत्पादन के साधनों को अधिक प्रत्याय** (Higher Return to Factors of Production): अधिक निर्यातों के कारण निर्यातकर्ता देश में उत्पादन के साधनों को अधिक प्रत्याय प्राप्त होता है। निर्यातों के बढ़ने से निर्यातकर्ता देश में उत्पादन बढ़ता है, जिससे उत्पादन के साधनों की माँग बढ़ जाती है।

● **(B) आयातकर्ता देश को लाभ (Gains to Importing Countries)**

इसी प्रकार के लाभ उन देशों को भी प्राप्त होंगे जो वस्तुओं का आयात करते हैं। इन देशों में आयातित वस्तुओं की आवश्यकता को महसूस किया जाता है और इसलिए आयात भी इन देशो के लिए उपयोगी होते है। इन देशों को मिलने वाले लाभों की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है:

(1) **वस्तुओ और सेवाओं का अधिक उपभोग** (Larger Consumption of Goods and Services): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से वस्तुओं एव सेवाओं का अधिक उपभोग सभव हो जाता है। इससे सतुष्टि में वृद्धि होती है और सामान्य रूप से लोगो के जीवन स्तर में सुधार होता है। ऐसा सभव है कि आयातित वस्तुएँ देश के भीतर उपलब्ध न हों या जिनका उत्पादन ऊँची लागतों तथा ऊँची कीमतो पर हो सकता है परतु इन वस्तुओं के आयात से देश को स्वय उत्पादन करने की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

(2) **उच्च आर्थिक संवृद्धि** (Higher Economic Growth): यदि आयात की जाने वाली वस्तुएँ उत्पादन में प्रयोग होने वाला कच्चा माल या मध्यवर्ती वस्तुएँ अथवा निवेश में प्रयोग की जाने वाली पूँजीगत वस्तुएँ है तब घरेलू निवेश तथा उत्पादन सभावना में वृद्धि होगी। इससे वस्तुओं तथा सेवाओं का अधिक उत्पादन होगा और आर्थिक सवृद्धि अधिक होगी। विकासशील देशों के लिए आयात संवृद्धि के इजन के रूप में कार्य करते है क्योकि इन देशों को विदेशी ससाधन तथा प्रौद्योगिकी के साथ पूजी पदार्थों की आवश्यकता सदा बनी रहती है।

(3) **वस्तुओं की विभिन्नता** (Variety of Goods): आयातकर्ता देश वे विभिन्न वस्तुएँ प्राप्त करता है जिनका उत्पादन वह स्वय नहीं कर सकता। अन्य देशों द्वारा प्राप्त विभिन्न कौशलो का लाभ यह देश उठाता है। उदाहरण के लिए भारत के लोग आयातो से उन वस्तुओं के उपभोग का आनद प्राप्त कर सकते है जिन्हें या तो देश के भीतर पैदा नहीं किया जा सकता या उनको पैदा करना महंगा पड़ता है।

(4) **नई तकनीक सीखने का अवसर** (Opportunity to Learn New Techniques): आयातकर्ता देश विदेश से आयातित वस्तुओं का उत्पादन करना सीख सकता है और स्वय उन वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है तथा देशीय उत्पादित विदेशी वस्तुओं का पुन:निर्यात करके अंतर्राष्ट्रीय बाजारों पर कब्जा कर सकता है। इसका जीता-जागता उदाहरण जापान (चीन भी) है जिन्होंने शुरू में विदेशी वस्तुओं की नकल की और जापानियों ने उस कला को सीख लिया और आज विश्व बाजार में सशक्त प्रतिस्पर्धी देश बन गए हैं।

(5) **प्राकृतिक आपदा का सामना करने में सहायक** (Helps to Face Natural Calamity): प्राकृतिक आपदा बाढ़, सूखा, सुनामी, भूचाल आदि के रूप में हो सकती है। बाढ़ व सूखा कृषि-उत्पादन को कुप्रभावित करते है। इससे कृषि पर आधारित उद्योगों को भी नुकसान होता है। इसी तरह औद्योगिक क्षेत्रों (Industrial belts) में यदि भूचाल आ जाए तो इससे औद्योगिक इकाइयो को बहुत नुकसान होता है। ऐसी दशा में प्राकृतिक आपदा से पीड़ित क्षेत्रों में आवश्यक उत्पादों की कमी हो जाती है। इस कमी को आयात द्वारा पूरा किया जा सकता है।

● **(C) संपूर्ण विश्व को लाभ (Overall Gains to the World)**

निर्यातकर्ता और आयातकर्ता देशों के उपरोक्त विवरण के अतिरिक्त सपूर्ण विश्व भी कई तरीकों से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभान्वित हो सकता है। ये लाभ निम्नलिखित है:

(1) **व्यापार के सभी भागीदारों को लाभ** (Benefits to All Trade Partners): अधिक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिक उत्पादन, विश्व उत्पादकता में वृद्धि, अधिक आय तथा ऊँची सवृद्धि दर सभी सहभागी देशों को प्राप्त हो सकती है। विदेशी व्यापार द्वारा देशों का आर्थिक विकास सुविधाजनक हो जाता है। कुछ देशों में बड़े पैमाने के उत्पादन से उत्पादकता बढ़ती है और लागतें कम होती हैं। इसका लाभ व्यापार में भाग लेने वाले सभी देशों को होता है। यह लाभ उपभोक्ताओं को कम कीमतों या अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुओं की प्राप्ति तथा उत्पादकों को ऊँचे लाभों से प्राप्त होता है।

(2) **विश्व बाजार का विस्तार** (Widening of World Market): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बाजार को विस्तृत करता है और उत्पादन के पैमाने को बढ़ाता है। इससे उत्पादन के बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं। इससे संसाधनों का उत्तम उपभोग

सभव होता है। उत्पादन बढ़ने से शोध और विकास में निवेश सभव होता है और तकनीक मे सुधार होता है इससे सभी देशों को लाभ प्राप्त होता है।

(3) **व्यापार में वृद्धि का गुणक प्रभाव** (Multiplier Effect of Increase in Trade): व्यापार से कुछ देशो मे उपभोग तथा कल्याण में वृद्धि होती है और अन्य देशों मे उत्पादन अधिक होता है। यदि सपूर्ण विश्व को ले ले तब अधिक उत्पादन और उपभोग से अधिक लाभ होते है, जैसे-रोजगार, राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, कल्याण मे वृद्धि, आदि और इसके परिणामस्वरूप व्यापार का गुणक प्रभाव सभी देशों की अर्थव्यवस्थाओ पर पड़ता है।

(4) **दुर्लभ साधनों का उत्तम उपयोग** (Better Utilisation of Scarce Resources): क्योंकि सभी देशों की साधन सपन्नता भिन्न-भिन्न होती है इसलिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से वे अपने दुर्लभ साधनों का उत्तम उपयोग करके परस्पर लाभ उठा सकते हैं। जिन देशों में अपर्याप्त पूँजी उत्पाद है वे विकसित देशों से पूँजी उत्पाद आयात करके अपनी विकास प्रक्रिया को बढ़ा सकते हैं।

■ 4. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की हानियां (Disadvantages or Demerits of International Trade)

(1) **प्राकृतिक साधनों की समाप्ति** (Exhaustion of Natural Resources): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रमुख दोष यह है कि एक अविकसित देश कच्चे माल का निर्यात करके अपने प्राकृतिक साधनों को समाप्त कर लेता है। इससे अविकसित देश को दोहरी हानि होती है। एक तो सस्ते दामों पर कच्चा माल निर्यात करना और दूसरा महंगे दामो पर निर्मित माल का आयात करना पड़ता है।

(2) **राजनीतिक हस्तक्षेप** (Political Interference): अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक संबधों के कारण अविकसित देश केवल वस्तुओं का आयात ही नहीं करते बल्कि धनी देशों से ऋण भी लेते है। धीरे-धीरे ये धनी देश अविकसित देशों की राजनीति तथा प्रशासन में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर देते हैं।

(3) **विदेशी प्रतिस्पर्धा** (Foreign Competition): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण विभिन्न देशो मे प्रतियोगिता बढ़ती है। कई क्षेत्रों में घरेलू उद्योगो को भीषण प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है और वहाँ घरेलू उद्योग पनप नही पाते। भारत में कुटीर उद्योगों के पतन का यही मुख्य कारण है।

(4) **राशिपातन** (Dumping): विकसित देश निर्धन देशों की विदेशी मण्डियों पर अधिकार करने के लिए लागत से कम कीमत पर वस्तुओं का निर्यात करने लगते हैं। ताकि निर्धन देश के घरेलू उद्योग विवश होकर बद हो जाए तथा विदेशी कंपनियों को इन बाजारों में एकाधिकार प्राप्त हो जाए। इस प्रक्रिया को राशिपातन कहते है। इसके परिणामस्वरूप अविकसित देशों के उद्योग नहीं पनप पाते तथा वे देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़े रह जाते है।

(5) **अंतर्राष्ट्रीय द्वेष** (International Rivalry): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में एक ही देश की मण्डी पर अधिकार करने के लिए कई देश प्रयत्न करते हैं। उनकी इस प्रतिस्पर्धा के कारण अंतर्राष्ट्रीय द्वेष का जन्म होता है। विश्व में दो महायुद्ध इसी के परिणामस्वरूप हुए हैं।

(6) **कीमतों में वृद्धि** (Increase in Prices): कई उत्पादक अधिक आय के लालच में अथवा सरकार अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लोभ में कुछ आवश्यक वस्तुओं का निर्यात कर देते हैं। इसके फलस्वरूप घरेलू अर्थव्यवस्था में इन वस्तुओं की कमी हो जाती है और कीमतें बढ़ जाती हैं। अत: देश के लोगों का जीवन स्तर गिरने लगता है।

(7) **व्यर्थ उपभोग में वृद्धि** (Increase in Wasteful Consumption): कई बार विलासितापूर्ण व दिखावटी विदेशी उत्पादों का आयात किया जाता है। इससे व्यर्थ उपभोग व्ययों व प्रदर्शन प्रभाव मे वृद्धि होती है। इससे आयातक देश की घरेलू बचतों व पूँजी निर्माण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(8) **निर्भरता** (Dependence): विदेशी व्यापार द्वारा कई बार बढ़िया तथा सस्ती वस्तुओं के आयात के कारण विदेशों पर निर्भरता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि देश में उन वस्तुओं का उत्पादन बन्द हो जाता है। परतु युद्ध अथवा अन्य किसी प्रकार का आर्थिक संकट आने पर यदि इन वस्तुओं का आयात बन्द हो जाए तो देश को काफी कठिनाई उठानी पड़ती है।

(9) कृषि प्रधान देशों को हानि (Loss to Agricultural Countries): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप कृषि प्रधान देशों को सबसे अधिक हानि होती है। कृषि वस्तुओं की माँग कम मूल्य सापेक्ष (Less Price Elastic) होने के कारण उनकी कीमत कम होने पर भी माँग में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती। इसके साथ-साथ कृषि में घटते प्रतिफल का नियम शीघ्र लागू होता है। जबकि आयात की जाने वाली निर्मित वस्तुओं की माँग अधिक मूल्य सापेक्ष होती है और उन पर बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

(10) अति उत्पादन (Over Production): अधिक निर्यात करके विदेशी विनिमय कमाने के लालच में वस्तुओं का अत्यधिक उत्पादन किया जाता है। यदि विदेशों में माँग अचानक कम हो जाए तो अति उत्पादन की स्थिति पैदा हो जाती है। इससे देश में मन्दी की लहर फैल जाती है जिसके परिणामस्वरूप मजदूरों की छंटनी करनी पड़ती है। यह प्रभाव अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में फैल जाता है और देश के लिए बड़ा हानिकारक सिद्ध होता है।

(11) असन्तुलित विकास (Lopsided Development): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण एक देश केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिनमें अधिकतम लाभ हो। इसके परिणामस्वरूप विविध प्रकार के उद्योगों का विकास न होकर कुछ ही उद्योग उन्नत होते हैं। इस प्रकार देश के उद्योगों का असतुलित विकास हो पाता है।

(12) आर्थिक बुराइयों का प्रभाव (Effect of Economic Evils): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण देश की आर्थिक बुराइया या संकट दूसरे देश में भी प्रवेश कर जाते हैं और इस प्रकार सारा विश्व आर्थिक संकट का शिकार बन जाता है। 1929-30 की महामन्दी सोवियत रूस को छोड़कर सभी देशों में फैली हुई थी। सोवियत रूस का उस समय दूसरे देशों के साथ व्यापार नहीं था। वर्ष 2008-09 में संयुक्त राज्य अमेरिका में शुरू हुए आर्थिक संकट ने संपूर्ण विश्व को अपनी चपेट में ले लिया था। इसी तरह, वर्ष 2011-12 व 2012-13 में यूरोपीयन देशों में आए सार्वजनिक ऋण संकट ने अन्य कई देशों को भी कुप्रभावित किया है।

(13) विशिष्टीकरण-एक बुराई (Specialisation–an Evil): यद्यपि विशिष्टीकरण के कई लाभ हैं, परंतु कई बार ये हानिकारक भी सिद्ध होता है। जब एक देश कुछ वस्तुओं में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है तो अन्य उद्योगों का विकास रुक जाता है। इसके कारण देश में आत्मनिर्भरता में कमी आती है। इससे देश में लोगों को रोजगार मिलने की सभावना भी कम हो जाती है।

(14) अल्पविकसित देशों के लिए हानिकारक (Harmful to Underdeveloped Countries): कई प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों जैसे गुनर मिर्डल, सिंगर आदि के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों को हानि उठानी पड़ी है। इसका कारण यह है कि **व्यापार की शर्तें** (Terms of Trade) विकसित देशों के अनुकूल तथा अल्पविकसित देशों के प्रतिकूल होती है।

संक्षेप में, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ तथा हानियों के वर्णन का सैद्धान्तिक महत्त्व तो हो सकता है परंतु व्यावहारिक दृष्टि से संसार का प्रत्येक देश अपने विदेशी व्यापार के विकास के लिए प्रयत्नशील है। हमारी प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में विदेशी व्यापार को अधिक से अधिक महत्त्व दिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रत्येक देश के लिए महत्त्व है।

● बहुपक्षीय व्यापार को क्षेत्रीय आर्थिक समूहों द्वारा चुनौती
(Challenges Posed by Regional Economic Groups to Multilateral Trade)

विश्व व्यापार व्यवस्था में क्षेत्रीय व्यापार समझौतों का बहुत प्रसार हो रहा है। इनका मुख्य उद्देश्य एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र में स्थित सदस्य देशों के मध्य व्यापार को बढ़ावा देना है। मुख्य क्षेत्रीय आर्थिक समूह इस प्रकार हैं: यूरोपियन यूनियन (EU), नाफ्टा (NAFTA), सार्क (SAARC), एसियन (ASEAN) आदि। क्षेत्रीय आर्थिक समूह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वतंत्र प्रवाह में एक बाधा उत्पन्न कर रहे है। ये क्षेत्रीय समूह अपने समूह के सदस्य देशों के साथ व्यापार करने पर प्रोत्साहन देते है लेकिन गैर-सदस्य देशों के साथ व्यापार करने में बाधा उत्पन्न करते है। क्षेत्रीय आर्थिक समूह बहुपक्षीय व्यापार निकायों जैसे विश्व व्यापार संगठन (WTO) के लिए भी चुनौतियाँ उत्पन्न कर रहे है।

■ 5. विकासशील देशों की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी समस्याएं
(Problems of Developing Countries Related to International Trade)

(1) भुगतान शेष की समस्या (Problem of Balance of Payments): अल्पविकसित देशों की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबधित मुख्य समस्या उनका प्रतिकूल भुगतान शेष है। इसका कारण यह है कि इनके आयात, निर्यातों की तुलना में अधिक होते हैं। इससे इन देशों का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता है। प्रतिकूल भुगतान शेष की दशा में विकासशील देशों को विदेशों से ऋण लेना पड़ता है। इन विदेशी ऋणों पर ब्याज देना पड़ता है। इस तरह विकासशील देशों पर विदेशी ऋणों व ब्याज का भार बढ़ जाता है।

(2) व्यापार की शर्तों संबंधी समस्या (Problem Related to Terms of Trade): किसी देश के आयात और निर्यात में जिस दर पर विनिमय होता है उसे व्यापार की शर्तें (Terms of Trade) कहते है. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की एक अन्य समस्या व्यापार की शर्तों का प्रतिकूल होना है। निर्धन देशों की व्यापार की शर्तों के **प्रतिकूल** (Unfavourable) रहने के कारण उनकी आय का काफी भाग धनी देशों में जाता रहता है। इसका अल्पविकसित देशों के विकास पर काफी बुरा प्रभाव पड़ता है। इस तरह व्यापार की शर्तें विकसित देशों के लाभ की रहती है तथा अल्प-विकसित देशों को हानि उठानी पड़ती है। विकासशील देशों की व्यापार की शर्तें प्राय: निम्न कारणों से प्रतिकूल होती है - (i) पिछड़ी तकनीक, (ii) मोलभाव करने की क्षमता की कमी, (iii) विकासशील देशों के निर्यातों की कम लोच माँग, (iv) विकासशील देशों में सुदृढ़ क्षेत्रीय व्यापार संगठनों का अभाव, (v) विकसित देशों द्वारा प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन, (vi) विकासशील देशों में आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं का न होना आदि।

(3) प्राथमिक उत्पादों के निर्यात में कम वृद्धि (Less Growth in Exports of Primary Products): प्राथमिक पदार्थों का अर्थ कृषि-क्षेत्र के उत्पादों से है; जैसे-चाय, कॉफी, चावल, रबड आदि। विकासशील देशों के अधिकतर निर्यात प्राथमिक पदार्थों के है परतु निम्न कारणों से विकासशील देशों के प्राथमिक पदार्थों का निर्यात बढ़ नहीं पा रहा। इससे विकासशील देशों का विश्व-निर्यातों में हिस्सा कम होता जा रहा है। उनका व्यापार-शेष प्रतिकूल होता जा रहा है और ये देश विदेशी ऋणों के जाल में फस गये है।

(i) प्राथमिक उत्पादों की माँग की **आय लोच बहुत कम** होती है। इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ताओं की आय में एक निश्चित वृद्धि से प्राथमिक उत्पादों की माँग में बहुत ही कम वृद्धि होगी। अत: प्राथमिक उत्पादो की माँग मे वृद्धि होने की बहुत ही कम सम्भावना है, जैसे - खाद्यान्न (Foodgrains), चीनी, चाय, कॉफी आदि।

(ii) विकसित देशों में जनसख्या वृद्धि दर बहुत ही कम है इसलिये विकसित देशो मे प्राथमिक वस्तुओं की **माँग बढ़ने की सम्भावना** भी कम है।

(iii) प्राथमिक पदार्थों की माँग पर **कृत्रिम प्रतिस्थापन वस्तुओं** (Synthetic Substitutes) की उपलब्धता का भी प्रभाव पड़ता है। कई कृषि पदार्थों जैसे कपास, रबड, जूट आदि के कृत्रिम प्रतिस्थापन उपलब्ध है। इनके फलस्वरूप प्राथमिक वस्तुओं की माँग कम होती है तथा इनकी कीमतें नही बढ़ने पाती।

(4) पुरानी व पिछड़ी तकनीक (Backward Technology): विकासशील देशों में, विकसित देशों की तुलना में पुरानी और पिछड़ी तकनीक का प्रयोग किया जाता है। पुरानी तकनीक से बनाये गए उत्पाद घटिया किस्म के होते है। यही नहीं उनकी उत्पादन-लागत भी अधिक होती है। अत: विकासशील देशों के उत्पाद अंतर्राष्ट्रीय बाजार में विकसित देशों के उत्पादों की बराबरी नहीं कर सकते। इससे विकासशील देशों के निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(5) आवश्यक आयात (Essential Imports): विकासशील देश प्राय: आवश्यक पदार्थों जैसे-पेट्रोलियम-उत्पाद, मशीनरी, तकनीक, खादें, दवाइयां आदि का आयात करते है। इनके आयात को कम नही किया जा सकता। इन आवश्यक आयातों का भुगतान करने के लिये विकासशील देशों को प्राय: महँगे विदेशी ऋणों पर निर्भर होना पड़ता है।

(6) राशिपातन (Dumping): बहुत से विकसित देश अपने उत्पादों को विकासशील देशों में बडे ही कम मूल्य पर बेचते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य विकासशील देशों के घरेलू उद्योगों को नुकसान पहुँचाना है।

(7) उपभोक्ता उत्पादों की अधिक माँग (More Demand of Consumption Goods): विकासशील देशों की जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसके कारण विकासशील देशों में उपभोक्ता वस्तुओं की माँग बहुत तेजी से बढ़ रही है। इससे विकासशील देशों को अधिक आयात करने पड़ते है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या-विस्फोट से उपभोक्ता-वस्तुएं अपने देश में ही लग जाती हैं और निर्यात करने के लिये कम मात्रा बचती है। इससे निर्यात कम हो जाते है। अत: जनसंख्या-विस्फोट के कारण, उपभोक्ता वस्तुओं का आयात बढ़ जाता है, निर्यात कम हो जाता है जिसका व्यापार-शेष (Balance of Trade) पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(8) पिछड़ा औद्योगिक-ढांचा (Backward Industrial Structure): विकासशील देशों का औद्योगिक ढाचा विकसित देशों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। इस पिछड़े औद्योगिक ढाचे के कारण हैं- पूँजी की कमी, पुरानी तकनीक, कुशल उद्यमियों की कमी आदि। विकासशील देशों में पूँजीगत सामान बनाने वाले उद्योग (Capital Goods Industries) बहुत कम हैं। परिणामस्वरूप विकासशील देशों में औद्योगिकीकरण के लिये मूलभूत सुविधाओं (Basic Requisites) का अभाव पाया जाता है। इससे इन देशों के उद्योग पिछड जाते हैं। पिछड़े उद्योगों के कारण, विकासशील देशों से निर्मित और अर्ध-निर्मित वस्तुओं का निर्यात बहुत ही कम होता है।

(9) पिछड़ा सेवा-क्षेत्र एवं अधोसंरचना (Backward Tertiary Sector and Infrastructure): विकासशील देशों में सेवा क्षेत्र जैसे व्यापार, बैंकिंग, बीमा और अधोसरचना, विकसित देशों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। यह विकासशील देशो के विकास में बहुत बड़ी बाधा है। पिछड़े सेवा क्षेत्र और पिछड़ी अधोसरचना से औद्योगिकीकरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण से हमारे औद्योगिक-उत्पाद अतर्राष्ट्रीय बाजार में विदेशी उत्पादों की बराबरी नहीं कर सकते। अत: पिछड़ा सेवाक्षेत्र और पिछड़ी अधोसरचना विकासशील देशों के अतर्राष्ट्रीय व्यापार में रुकावट है।

(10) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा (Foreign Competition): विकासशील देशो के निर्यात उत्पाद, अतर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक प्रतिस्पर्द्धा का सामना कर रहे है। वैश्वीकरण के कारण अब अतर्राष्ट्रीय व्यापार पहले से बहुत बढ़ गया है। इससे अतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्द्धा का स्तर बढ गया है। उदाहरण के लिये– भारत मुख्यत: जूट, चाय, कपड़े का निर्यात करता है। परतु अब इन उत्पादों में विदेशी-प्रतिस्पर्द्धा बढ़ गई है। अब जूट के निर्यात में बाग्लादेश हमारा प्रतियोगी बन गया है। श्रीलका और इण्डोनेशिया चाय उद्योग में तथा कोरिया और चीन कपड़ा-उद्योग में भारत के प्रतियोगी हैं। इससे हमारे निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(11) कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि (Increase in the Price of Crude Oil): प्राय: विकासशील देश तेल का आयात करते है। पेट्रोलियम उत्पादों की कीमत में बहुत अधिक वृद्धि होने से सभी विकासशील देश बुरी तरह से प्रभावित हुए इससे विकासशील देशों का कुल आयात बिल काफी बढ़ गया। पेट्रोलियम उत्पादों की कीमत बढ़ने से विकासशील देशों की घरेलू अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा और विकासशील देशों का व्यापार शेष प्रतिकूल हो गया।

(12) ऊँचा घरेलू मूल्य-स्तर (High Domestic Price Level): पिछड़ी हुई तकनीक के कारण, विकासशील देशों के उत्पादों की लागत, विकसित देशों की तुलना मे काफी अधिक है। अत: विकासशील देशों में मूल्य स्तर ऊँचे है। विकासशील देशों के उत्पाद महँगे होने के कारण विकसित देशो के उत्पादों की बराबरी नहीं कर सकते।

(13) उद्यमियों की कमी (Lack of Entrepreneurs): विकासशील देशो मे अनुभवी तथा कुशल उद्यमियों की कमी होती है। ये उद्यमी विदेशी व्यापार करने से झिझकते हैं। इनके पास विदेशी व्यापार के लिए पर्याप्त पूँजी व अनुभव का अभाव होता है।

(14) अन्य समस्याएं (Other Problems):

(i) **घटिया किस्म** (Poor Quality): विकासशील देशों के उत्पादों की क्वालिटी, विकसित देशों के उत्पादों की तुलना मे घटिया होती है।

(ii) **सीमित-बाजार** (Limited Market): विकासशील देशों के उत्पाद बहुत ही कम देशों में बिकते है। इसमें विकासशील देशो के निर्यात बढ़ नही पाते, जबकि विकसित देशों के उत्पाद बहुत ज्यादा देशों में बिकते है।

(iii) प्रचार की कमी (Lack of Publicity): अतर्राष्ट्रीय बाजार में विकासशील देशो के उत्पाद का अधिक प्रचार नहीं होता। इससे विदेशों में विकासशील देशों के उत्पादों की माँग नही बढ़ती, जिससे विकासशील देशों के निर्यात नहीं बढ़ते।

(iv) विकसित देशों द्वारा लगाई गयी टैरिफ व गैर-टैरिफ-रुकावटें (Tariff and Non-tariff Barriers imposed by Developed Countries): विकसित देशों ने विकासशील देशो से आने वाले आयातों पर विभिन्न टैरिफ व गैर-टैरिफ रुकावटें लगा रखी है, जैसे- कोटा, टैरिफ-ड्यूटी, पैकिंग अधिनियम, सुरक्षा नियम (Tariff-duties, Packing regulations, Safety norms, etc.), आदि। इससे विकासशील देशों के निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(v) अनुचित-व्यापार-व्यवहार (Unfair-Trade Practices): कई बार विकासशील देशों के निर्यातक अल्पकालीन लाभ कमाने के लिए अनुचित-व्यापार व्यवहारों में लग जाते है। वे दिखाये गये सैम्पल (Samples) के अनुसार माल नही भेजते। इससे विदेशी आयातकों का विश्वास उठ जाता है।

■ 6. विकासशील देशों की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी समस्याओं को दूर करने के लिए सुझाव (Suggestions to Overcome Problems of Developing Countries related to International Trade)

(1) आधुनिक तकनीक का प्रयोग।

(2) विकासशील देशों के आपसी व्यापार को बढ़ावा देना।

(3) विकासशील देशों की घरेलू अर्थव्यवस्था में आयात प्रतिस्थापित वस्तुओं का निर्माण करना।

(4) निर्यातों का विविधीकरण करना।

(5) विकासशील देशों द्वारा सुदृढ क्षेत्रीय व्यापार सगठन बनाना।

(6) घरेलू मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण रखना।

(7) विकासशील देशों में जनसंख्या पर नियत्रण रखना जिससे निर्यात के लिए अधिक वस्तुएँ बच सकें।

(8) विकासशील देशों की सरकारों द्वारा घरेलू उत्पादों का विदेशी बाजारो में अधिक प्रचार करना।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण से आपका क्या अभिप्राय है? अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय चलाने में आने वाली मुख्य कठिनाइयों का भी वर्णन करें।
What do you mean by internationalisation of business? Also explain the main difficulties in conducting international business.

2. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय को परिभाषित करें। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय को चलाने में कौन-सी मुख्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?
Define international business. What are the main difficulties in carrying on international business?

3. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय तथा इसकी प्रकृति क्या है? व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें।
What is international business and its nature? Explain various stages in the process of internationalisation of business.

4. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से आपका क्या अभिप्राय है? अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों का संक्षेप में वर्णन करें। (M.D.U. 2013)
What do you mean by international trade? Examine briefly the advantages of international trade.

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त में प्रवृत्तियाँ
(Trends in International Trade and Finance)

■ 1. भूमिका व अर्थ (Introduction and Meaning)

विश्व-व्यापार में वृद्धि विश्व-अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास, विभिन्न देशों के आपसी सम्बन्धों, अन्तर्राष्ट्रीय तरलता (Liquidity) और विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने वाली संगठनों पर निर्भर करती है। विश्व व्यापार में वृद्धि तथा विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की विकास दर में धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। अर्थात जिन अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी व्यापार का सकल घरेलू उत्पाद से अनुपात अधिक है उनमें आर्थिक-विकास का स्तर भी ऊंचा है। वर्तमान में विश्व व्यापार की वृद्धि दर, विश्व-उत्पादन की वृद्धि दर से अधिक है। वर्ष 1995 से 2012 तक की अवधि में विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में 4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई, जबकि इसी अवधि में विश्व-व्यापार की वृद्धि दर 6.9 प्रतिशत वार्षिक रही। वर्ष 2010 में विश्व-व्यापार में 12.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि विश्व उत्पादन की वृद्धि दर 5.2 प्रतिशत रही। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार वर्ष 2011 में विश्व उत्पादन व विश्व व्यापार में क्रमशः 3.9 प्रतिशत व 5.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 2012 में विश्व उत्पादन व विश्व व्यापार की विकास दर कम हो कर क्रमशः 3.2 प्रतिशत व 2.8 प्रतिशत रह गई। वर्ष 2013 में, विश्व-उत्पादन व विश्व-व्यापार दोनों में ही वृद्धि दर 3 प्रतिशत रही। इस कमी का मुख्य कारण यूरोज़ोन ऋण संकट व इसके परिणामस्वरूप आयी वैश्विक अनिश्चितता था। IMF के पूर्वानुमानों के अनुसार वर्ष 2014 व 2015 में विश्व व्यापार में वृद्धि दर क्रमशः 4.3 प्रतिशत व 5.3 प्रतिशत होने की उम्मीद है। इसी अवधि में विश्व उत्पादन में वृद्धि दर क्रमशः 3.6 प्रतिशत व 3.9 प्रतिशत होने की उम्मीद है। अब वैश्विक अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे वैश्विक मंदी से बाहर आ रही है। उभरती अर्थव्यवस्थाएँ; जैसे-चीन व भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था को मंदी से बाहर लाने व वैश्विक विकास दर बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

विश्व-व्यापार से एक देश अपने प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग कर सकता है, और अपने अतिरिक्त उत्पादन (Surplus production) का निर्यात कर सकता है। विश्व-व्यापार के कारण ही तेल-निर्यातक-देश अपने प्राकृतिक साधनों का प्रयोग कर पाये है, और इस कारण से ही ये देश अपने आर्थिक-विकास की दर को बढ़ा पाये हैं। विश्व-व्यापार से विभिन्न देश तकनीकी ज्ञान का आयात कर सके है। इससे ये देश विश्व की सर्वोत्तम तकनीक का प्रयोग कर पाये हैं। प्राकृतिक-संकट की दशा में एक देश दूसरे देश से अनाज तथा अन्य वस्तुएं प्राप्त कर सकता है। विश्व-व्यापार के कारण विकासशील और अति अल्पविकसित देश औद्योगिक रूप से सम्पन्न देशों से मशीनें, पूंजीगत सामान तथा तकनीकी ज्ञान का आयात कर सके हैं। विश्व व्यापार से विकसित देशों को भी लाभ हुआ है। विश्व-व्यापार से विकसित देशों के उद्योगों को बड़ा बाजार प्राप्त हुआ है, क्योंकि अब वे अपने उत्पाद को विश्व के बहुत से देशों में बेच पा रहे हैं।

बहुत वर्ष पहले विश्व-व्यापार वस्तु-विनिमय प्रणाली (Barter System) के द्वारा किया जाता था। बाद में विभिन्न देश स्वर्ण को विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग करने लगे। लेकिन सोने की कमी व इसकी अन्य सीमाओं के कारण बाद में अन्तर्राष्ट्रीय-व्यापार में स्वर्ण का प्रयोग अप्रचलित हो गया। इससे विश्व-व्यापार में रिक्तता आ गयी। इसके लिये अमेरिका में ब्रेटन वुड्स स्थान पर, वर्ष 1944 में एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में 44 देशों ने भाग लिया। भारत ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में विश्व स्तर पर दो संस्थाएं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व-बैंक बनाये जाने का निर्णय लिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिये तरलता (Liquidity) में वृद्धि की। इसके लिये I.M.F. ने विशेष आहरण अधिकार (Special Drawing Rights–SDR) के नाम से पेपर-स्वर्ण-मुद्रा (Paper-Gold-Currency) जारी की। बाद में पाँच देशों: अमेरिकन-डॉलर, ब्रिटेन-पौंड, जर्मन-डियूच मार्क, जापानी-येन, फ्रांस-फ्रेंक की मुद्राओं का अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में प्रयोग किया जाने लगा। वर्तमान में, यूरो, अमेरिकन डॉलर, ब्रिटिश पौंड व जापानी येन का अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में प्रयोग किया जाता है। व्यापार और टैरिफ पर सामान्य

समझौता और विश्व-व्यापार-संगठन की स्थापना से विश्व-व्यापार को और भी बढ़ावा मिला। वर्तमान में SDR को चार प्रचलित मुद्राओं यूरो, अमेरिकन-डॉलर, ब्रिटिश-पौंड तथा जापान के येन के साथ परिभाषित किया गया है।

■ 2. विश्व-व्यापार की प्रवृत्तियाँ (Trends in World Trade)

विश्व-व्यापार की प्रवृत्तियों का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

(1) विश्व के निर्यातों में वृद्धि (Increase in World's Exports): विश्व के निर्यात व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है। वर्ष 1950 में विश्व-निर्यात केवल 55 बिलियन डॉलर थे। वर्ष 2008 में ये बढ़कर 16,099 बिलियन डॉलर हो गये। इस प्रकार इन 58 वर्षों (1950 से 2008) में विश्व निर्यातों में 292 गुणा वृद्धि हुई। वर्ष 2009 में वैश्विक मंदी के कारण विश्व निर्यातों में कमी आई। 2009 में विश्व निर्यात 12,419 बिलियन US डॉलर थे। वर्ष 2012 में विश्व निर्यात बढ़कर 18,401 बिलियन US डॉलर हो गए। इसे तालिका 1 से स्पष्ट किया गया है:

तालिका 1. विश्व निर्यात में प्रवृत्तियाँ (Trends in World Exports)

वर्ष (Year)	विश्व-निर्यात (World's Exports) (in billion U.S. dollars)	वर्ष (Year)	विश्व-निर्यात (World's Exports) (in billion U.S. dollars)
1950	55	2007	13,986
1960	113	2008	16,099
1970	280	2009	12,419
1980	1,846	2010	15,238
1990	3,311	2011	18,255
2000	6,143	2012	18,401

(Source: World Trade Report, 2013)

विश्व-निर्यातों के बढ़ने के मुख्य कारण विभिन्न देशों द्वारा टैरिफ व गैर-टैरिफ रुकावटों में कमी, बहुपक्षीय व्यापार, संचार और यातायात के साधनों का विकास, तेल की कीमतों में भारी वृद्धि, विश्व-व्यापी-मुद्रा-स्फीति (World wide inflation) आदि हैं।

(2) वस्तु-विश्व-व्यापार में शीर्ष निर्यातक (Top Exporters in Merchandising World Trade): वर्ष 2012 में वस्तु-विश्व-व्यापार में पहले पाँच शीर्ष निर्यातक देशों का हिस्सा, कुल विश्व निर्यात का 35 प्रतिशत है। ये पांच बड़े निर्यातक देश- चीन, अमेरिका, जर्मनी, जापान तथा नीदरलैंड हैं। विश्व निर्यातों में भारत का क्रम 19th है, और भारत का कुल विश्व निर्यात में हिस्सा मात्र 1.6 प्रतिशत है। विश्व का सबसे बड़ा निर्यातक देश चीन है। इसका विश्व के कुल निर्यातों में हिस्सा 11.1 प्रतिशत है। इस समय यू एस ए का विश्व के शीर्ष निर्यातकों में से दूसरा स्थान है। निर्यातों के मूल्य, विश्व-निर्यातों में प्रतिशत व विभिन्न देशों की रैंकिंग को तालिका 2 में दिखाया गया है:

तालिका 2. वस्तु-विश्व-निर्यात व्यापार - 2012 [World's Merchandise (Goods) Export Trade - 2012]

देश का नाम (Name of Country)	निर्यात राशि (Amount of Exports) (in billion U.S. dollar)	कुल विश्व निर्यात में प्रतिशत (% in Total World's Exports)	विश्व निर्यात में क्रम (Ranking in World Exports)
चीन	2,049	11.1	1
यू एस ए	1,546	8.4	2
जर्मनी	1,407	7.6	3
जापान	799	4.3	4
नीदरलैंड	656	3.6	5
भारत	294	1.6	19
सम्पूर्ण विश्व	**18,401**	**100**	–

(Source: UNCTAD Handbook of Statistics, 2013; World Trade Report, 2013)

(3) वस्तु-विश्व-व्यापार में शीर्ष आयातक (Top Importers in Merchandising-World-Trade): वर्ष 2012 में विश्व-व्यापार में सबसे बड़ा आयातक देश अमेरीका था। इसका विश्व के कुल आयातों में हिस्सा 12.6 प्रतिशत था। भारत का विश्व-आयातों में क्रम 10वा है और भारत का कुल विश्व आयात में हिस्सा 2.6 प्रतिशत है। विश्व के पांच बड़े आयातक देश- अमेरिका, चीन, जर्मनी, जापान और यू के. हैं। इन पांचों देशों का संयुक्त रूप से विश्व आयातों में हिस्सा 37.2 प्रतिशत है। आयातों की राशि, आयातों का विश्व-आयात में प्रतिशत और विभिन्न देशों के आयातों में क्रम को तालिका 3 में दर्शाया गया है।

तालिका 3. वस्तु-विश्व-आयात व्यापार - 2012 [World's Merchandise (Goods) Import Trade - 2012]

देश का नाम (Name of Country)	आयात राशि (Amount of Imports) (in billion U.S. dollars)	कुल विश्व आयात में प्रतिशत (Percentage in Total World's Imports)	क्रम (Ranking)
यू. एस. ए.	2,336	12.6	1
चीन	1,818	9.8	2
जर्मनी	1,167	6.3	3
जापान	886	4.8	4
यू.के.	690	3.7	5
भारत	490	2.6	10
विश्व	**18,601**	**100**	–

(Source: UNCTAD Handbook of Statistics, 2013; World Trade Report, 2013)

(4) सेवाओं में विश्व व्यापार (World-Trade in Services): सेवाएं एक अन्य ऐसा क्षेत्र है, जिसमें विश्व-व्यापार तेजी से बढ़ रहा है। सेवा क्षेत्र में पर्यटन, बैंकिंग, बीमा, दूरसंचार, सलाहकारी (Consultancy), विज्ञापन, सॉफ्टवेयर, मीडिया सेवाएं, बिज़ेनस आऊट सोर्सिंग (कॉल सेन्टर), सूचना तकनीकी सेवाएं, अनुसंधान व विकास, कानूनी सेवाएं, लेखांकन व अंकेक्षण सेवाएं, स्टोरेज़ सेवाएं, यातायात आदि शामिल किये जाते हैं। वर्ष 2012 में सेवा-क्षेत्र में विश्व का कुल निर्यात 4,350 बिलियन डॉलर रहा। सेवा क्षेत्र में सबसे बड़ा निर्यातक देश अमेरिका है। इसका अकेले ही सेवाओं के विश्व-निर्यात में 14.3 प्रतिशत हिस्सा है। सेवा-क्षेत्र के पहले पाच बड़े निर्यातक देश अमेरिका, यू०के०, जर्मनी, फ्रांस और चीन हैं। इन पाचों बड़े निर्यातकों का सेवाओं के विश्व-निर्यात में संयुक्त हिस्सा 35.8 प्रतिशत है। सेवाओं के निर्यात में भारत का स्थान 7वा है व कुल विश्व की सेवाओं के निर्यात में इसका हिस्सा 3.2 प्रतिशत है।

सेवा क्षेत्र में पहले पांच बड़े आयातक देश अमेरिका, जर्मनी, चीन, जापान और ब्रिटेन हैं। इनका विश्व की सेवाओं के आयात में संयुक्त हिस्सा 32.1 प्रतिशत है। सेवाओं के आयात में भारत का स्थान 7 वा है व विश्व के कुल आयात में भारत का हिस्सा 3.1 प्रतिशत है। सेवा क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा आयातक देश अमेरिका है। इसका कुल विश्व आयात में हिस्सा 9.9 प्रतिशत है। सेवाओं के विश्व व्यापार में शीर्ष निर्यातक व आयातक देशों को क्रमशः तालिका 4 व 5 में दर्शाया गया है।

तालिका 4. सेवाओं में विश्व-निर्यात – 2012 (World's Exports in Services – 2012)

देश का नाम (Name of Country)	निर्यात की राशि (Amount of Exports) (in billion U.S. dollars)	कुल विश्व निर्यात में प्रतिशत (% in Total World Exports)	क्रम (Ranking)
यू. एस. ए.	621	14.3	1
ब्रिटेन	280	6.4	2
जर्मनी	257	5.9	3
फ्रांस	211	4.8	4
चीन	190	4.4	5
भारत	141	3.2	7
विश्व	**4,350**	**100**	–

(Source: UNCTAD Handbook of Statistics, 2013; World Trade Report, 2013)

तालिका 5. सेवाओं में विश्व-आयात – 2012 (World's Imports in Services - 2012)

देश का नाम (Name of Country)	आयात की राशि (Amount of Imports) (in billion U.S. dollars)	कुल विश्व आयात में प्रतिशत (% in Total World Imports)	क्रम (Ranking)
यू. एस. ए.	411	9.9	1
जर्मनी	293	7.1	2
चीन	280	6.7	3
जापान	175	4.2	4
यू. के.	174	4.2	5
भारत	127	3.1	7
विश्व	**4,150**	**100**	–

(Source: UNCTAD Handbook of Statistics, 2013; World Trade Report, 2013)

(5) **विकासशील देशों के निर्यात** (Exports of Developing Countries): विकासशील देशों में विश्व-व्यापार के क्षेत्र में पाच बडे देश चीन, हागकाग, ताईवान, कोरिया, सिगापुर हैं। इन पाचों देशों का सभी विकासशील देशों के निर्यात में सयुक्त हिस्सा 50 प्रतिशत से अधिक है। अर्थात् सभी विकासशील देशो के कुल निर्यात में आधे से अधिक हिस्सा इन पाच विकासशील देशों का ही है। 1997 से 2012 तक की अवधि में विकासशील देशों के विदेशी व्यापार की वृद्धि दर विकसित देशो के विदेशी व्यापार वृद्धि दर से तेज रही है। वर्ष 2012 में विश्व निर्यातों में 2.8 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई, जबकि विकासशील देशों के निर्यातों में 4.9 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। अर्थात् विकासशील देशों के निर्यात अधिक गति से बढ रहे हैं। वर्ष 2012 में विकासशील देशों का कुल विश्व निर्यात में हिस्सा 49 प्रतिशत रहा।

(6) **विश्व-व्यापार की संरचना** (Composition of World Trade): विश्व-व्यापार में बहुत तरह की वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता है। इनमें से खाद्यान्न, कृषि क्षेत्र का कच्चा माल, ईंधन (fuel), धातु व अयस्क (Metals and Ores), वस्त्र, रासायनिक पदार्थ, मशीनरी, यातायात-संयंत्र, हीरे-जवाहरात, कम्प्यूटर-सॉफ्टवेयर, चमड़े का सामान आदि प्रमुख हैं। पहले अधिकतर विश्व व्यापार कृषि उत्पादों, ईंधन, अयस्कों, वस्त्रों आदि का होता था, लेकिन अब विश्व-व्यापार की सरचना में बदलाव आया है। अब विश्व-व्यापार में इन परंपरागत वस्तुओं के निर्यात के साथ-साथ बहुत सी अन्य वस्तुओं व सेवाओं का निर्यात होने लगा है। अब मशीनरी, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर, बैंकिंग, जहाजरानी, दूरसचार व पर्यटन आदि क्षेत्र में विश्व व्यापार तेजी से बढ़ रहा है।

(7) **विश्व-व्यापार में क्षेत्रीय समूहों का विकास** (Growth of Regional Blocs in World Trade): कुछ क्षेत्रीय-समूहों के विश्व-व्यापार के हिस्से में वृद्धि हुई है। विश्व-व्यापार में यूरोपीयन समुदाय (European Community - EC), उत्तर अमेरिका स्वतन्त्र व्यापार समझौता (North American Free Trade Agreement- NAFTA), यूरोपीयन स्वतन्त्र व्यापार एसोसियेशन (European Free Trade Association-EFTA), दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों की एसोसियेशन (Association of South-East-Asian-Nations: ASEAN), दक्षिण-एशियाई-क्षेत्रीय सहयोग सगठन: सार्क (South Asian Association for Regional Cooperation: SAARC), दक्षिणी एशियाई स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र (South Asian Free Trade Area: SAFTA) आदि के व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है। जनवरी 2014 के अत तक कुल 583 क्षेत्रीय व्यापारिक समझौतों (RTAs) को अधिसूचित किया गया, इनमें से 377 क्षेत्रीय व्यापारिक समझौते कार्यरत थे। इन क्षेत्रीय समूहों का उद्देश्य अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र-व्यापार को बढावा देना और विभिन्न देशों के आर्थिक सहयोग मे वृद्धि करना है।

(8) **विश्व-व्यापार में द्विपक्षीय व्यापार से बहुपक्षीय व्यापार की ओर बदलाव** (Shift from Bilateral Trade to Multilateral Trade): वर्ष 1994 तक अधिकतर विश्व-व्यापार द्विपक्षीय था। द्विपक्षीय व्यापार मे दो देश आपस में व्यापारिक समझौता करते है। विश्व-व्यापार सगठन के विकास से बहुपक्षीय व्यापार को बढावा मिला है। अब अधिकतर व्यापार द्विपक्षीय व्यापार-समझौतों के स्थान पर बहु-पक्षीय व्यापार समझौतों द्वारा किया जाता है। बहुपक्षीय व्यापार में बहुत से राष्ट्रों में व्यापार-समझौता एक साथ किया जाता है। वर्तमान में विश्व व्यापार सगठन में 159 सदस्य देश है। विश्व व्यापार संगठन के स्तर पर यदि कोई व्यापारिक समझौता होता है तो यह एक साथ 159 देशो पर लागू होता है। बहुपक्षीय व्यापारिक समझौतों से विश्व व्यापार को बढ़ावा मिला है।

(9) **प्रतिबन्धित व्यापार से स्वतंत्र व्यापार की ओर झुकाव** (Shift from Restricted Trade to Free Trade): पहले विश्व व्यापार पर बहुत से टैरिफ और गैर-टैरिफ प्रतिबन्ध लगाये गये थे। ये प्रतिबन्ध आयात कोटा (आयातक देश द्वारा आयात की कुल मात्रा के सबध में तय की गई अधिकतम सीमा), आयात-शुल्क, स्वैच्छिक-आयात-प्रतिबन्ध (Voluntary-Import-Restrictions), लाइसेंस-प्रथा, अनुदान, व्यापारिक-प्रतिबन्ध (Trade Prohibitions/bans) आदि हैं। परन्तु अब धीरे-धीरे ये प्रतिबध कम होते जा रहे है और विश्व व्यापार सगठन के निर्देशानुसार विश्व व्यापार की रुकावटों को कम किया जा रहा है, और टैरिफ व गैर-टैरिफ प्रतिबन्धो दोनो को ही हटाया जा रहा है। अन्य शब्दों में, विश्व-व्यापार में स्वतन्त्र-व्यापार में वृद्धि हो रही है। उदाहरण के लिये, जनवरी 2006 से दक्षिणी एशियाई स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र (South Asian Free Trade Area: SAFTA) के शुरू होने से दक्षिणी एशियाई देशों में विदेशी व्यापार पर टैरिफ कम हो गया है तथा वस्तुओं का स्वतन्त्र प्रवाह हो रहा है।

(10) **विश्व-व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की प्रवृत्तियाँ** (Trends of International Liquidity in World Trade): अन्तर्राष्ट्रीय तरलता से अभिप्राय अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिये विदेशी मुद्रा की उपलब्धता से है। पहले विश्व-व्यापार के भुगतान में केवल स्वर्ण (Gold) को ही प्रयोग किया जाता था। बाद में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा विशेष-आहरण अधिकार (Special Drawing Right) शुरू करने से, विश्व-व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि हुई। वर्तमान में कुछ मुख्य देशों की मुद्राएँ; जैसे- अमेरिका के डॉलर, यूरो, जापान के येन व ब्रिटेन के पौड - को विश्व-व्यापार में भुगतान के लिए प्रयोग किया जा रहा है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि हुई है और विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिला है।

(11) **विश्व-व्यापार में व्यापार-शर्तों का बदलता स्वरूप** (Changing Pattern of Terms of Trade in World-Trade): व्यापार की शर्तों का अभिप्राय उस दर से है, जिस पर एक देश की वस्तुओं का दूसरे देश की वस्तुओं के साथ बदलाव किया जाता है। यह एक देश के निर्यातों की क्रय क्षमता को आयातों के रूप में मापता है। यह एक देश की निर्यात-कीमतों और आयात-कीमतों के सम्बन्ध को प्रकट करता है। विश्व-व्यापार से एक देश को होने वाले लाभ, उस देश की व्यापार-शर्तों पर निर्भर करते हैं। यदि एक देश की व्यापार-शर्तें सकारात्मक हों, तो उसे विश्व-व्यापार के लाभों का अधिक हिस्सा प्राप्त होता है।

पहले विकासशील देशो की व्यापार शर्तें प्रतिकूल होती थीं। इससे उन्हें विश्व-व्यापार से अधिक लाभ नहीं मिलते थे। इन देशों के प्रतिकूल व्यापार-शर्तों के मुख्य कारण: अधिक लागत, पिछड़ी तकनीक, प्राथमिक उत्पादों का निर्यात, मोलभाव करने की कम क्षमता (Weak bargaining power), आयात-प्रतिस्थापन का अभाव आदि थे। परन्तु अब विकासशील देशो के आर्थिक विकास में सुधार आने से, इनके तकनीकी स्तर बढ़ने से, इनकी निर्भरता विकसित देशों पर कम होने से, इनकी मोल-भाव करने की क्षमता बढ़ गई है। इससे इनकी व्यापार शर्तों में सुधार आया है। अब विकासशील देशो की व्यापार-शर्तें हमेशा प्रतिकूल नहीं होती। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ विकसित देशों के साथ-साथ विकासशील देशों को भी मिलने लगे हैं।

(12) एशियाई देशों में बढ़ता व्यापार (Rising Trade in Asian Nations): एशियाई देश विश्व व्यापार में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। वर्ष 2011 में विश्व व्यापार में 36% योगदान एशियाई देशों का था। सकल घरेलू उत्पाद के PPP आधार पर लगाए गए अनुमान में, विश्व की चार बडी अर्थव्यवस्थाओं में से तीन देश एशिया में हैं। इस आधार पर चीन, भारत तथा जापान का विश्व में क्रमश: दूसरा, तीसरा व चौथा स्थान है।

(13) उपनिवेश देशों के विश्व-व्यापार में प्रवृत्तियाँ (Trends in World Trade of Colonised Countries): उपनिवेश के कारण बहुत से देश पहले केवल कच्चे माल का निर्यात करते थे, और तैयार माल का आयात करते थे। इनके शासक देश इन उपनिवेश देशो का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शोषण करते थे। ये शासक-देश उपनिवेश देश से कम कीमत पर कच्चा माल खरीदकर इन्हें बहुत अधिक कीमत पर तैयार माल बेचते थे। इन उपनिवेश देशों का अधिकतर व्यापार शासक देश के साथ ही होता था। उदाहरण के तौर पर स्वतन्त्रता से पहले, भारत से कच्चा माल इंग्लैण्ड को, और तैयार माल इग्लैण्ड से भारत को भेजा जाता था। उपनिवेश प्रथा खत्म होने के बाद इन उपनिवेश देशों में औद्योगिक-विकास हुआ और इन देशों के निर्यातों में वृद्धि हुई। अब ये उपनिवेशक देश बहुत से देशों से व्यापार कर रहे है और अब ये केवल कच्चे माल का ही निर्यात न करके तैयार माल का भी निर्यात करते हैं। अब विश्व-व्यापार से होने वाले लाभ का हिस्सा इन देशो को भी मिल रहा है।

■ 3. अंतर्राष्ट्रीय वित्त में प्रवृत्तियाँ (Trends in International Finance)

अतर्राष्ट्रीय व्यापार में विभिन्न देश, जिनकी मौद्रिक करेंसियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, सलग्न होते हैं। मौद्रिक करेंसियों की भिन्नता के कारण विभिन्न देशों में मुद्रा के विनिमय मे कठिनाई आती है। ऐसा सभव नहीं है कि प्रत्येक देश अपनी घरेलू मुद्रा को विश्व के अन्य सभी देशो की मुद्रा के रूप में परिभाषित करे। इस समस्या के कारण, प्रारभ में अतर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तु विनिमय पद्धति (Barter Trade System) अपनायी गयी। बाद में, स्वर्ण को विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद के वर्षों तथा बीसवी शताब्दी के प्रारभिक वर्षों में अधिकतर देशों ने स्वर्ण अधिमान (Gold Standard) को अपनाया। स्वर्ण अधिमान व्यवस्था में, अतर्राष्ट्रीय भुगतान ऐसी करेंसियो में किए जाते थे, जो प्रत्यक्ष रूप में या अप्रत्यक्ष रूप में स्वर्ण में परिवर्तनीय होती थीं। जो देश अतर्राष्ट्रीय भुगतानों मे इस व्यवस्था को अपनाते थे, वे गारटी देते थे कि उनकी कागज मुद्रा को कभी भी पूर्व निर्धारित दर पर सोने में परिवर्तित करवाया जा सकता है। स्वर्ण अधिमान व्यवस्था वर्ष 1871 से वर्ष 1914 तक प्रचलन में रही, परंतु पहले विश्व युद्ध की अवधि अर्थात् 1914 से 1918 के दौरान इसे समाप्त कर दिया गया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, बहुत से देशों की सरकारों ने मुद्रा पर नियत्रण लगा दिए तथा अपनी मुद्रा को स्वर्ण में परिवर्तित करने की गारंटी समाप्त कर दी। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद वर्ष 1918 मे लोचशील विनिमय दर व्यवस्था (Flexible Exchange Rate System) को अपनाया गया। यह व्यवस्था वर्ष 1926 तक चली। इस अवधि में बहुत से देशो को तीव्र मुद्रा स्फीति (Hyper Inflation) का सामना करना पड़ा। इस कारण बहुत से देशों ने अपने स्वार्थ के लिए ऐसे हथकडे अपनाए, जिससे विनिमय दर उनके अनुकूल रहे। इस समस्या के कारण वर्ष 1926 में स्वर्ण अधिमान को पुन: अपना लिया गया। वर्ष 1931 मे इग्लैड ने अपनी मुद्रा स्टर्लिंग को स्वर्ण में अपरिवर्तनीय (Inconvertible) घोषित कर दिया। इससे स्वर्ण अधिमान व्यवस्था का पूर्ण रूप से अत हो गया, क्योंकि स्वर्ण अधिमान की मूलभूत विशेषता अर्थात् कागजी मुद्रा को पूर्व निर्धारित दर पर सोने मे परिवर्तित करने को समाप्त कर दिया गया था। इग्लैड को देखते हुए अन्य कई देशों ने भी यही रास्ता अपनाया। इससे अतर्राष्ट्रीय व्यापार मे रिक्तता (Vacuum) आ गयी, क्योंकि अतर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिए कोई भी सर्वमान्य विनिमय माध्यम (Common medium of exchange) नही था। वर्ष 1929-1933 की समय अवधि में, जर्मनी से प्रारंभ हुई आर्थिक मदी सपूर्ण विश्व को अपनी चपेट मे ले लिया। इस आर्थिक मदी से पीड़ित होकर बहुत से देशों ने अपनी घरेलू अर्थव्यवस्थाओं को बचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर अत्यधिक टैरिफ व गैर-टैरिफ प्रतिबध लगा दिए। इससे अतर्राष्ट्रीय व्यापार को बहुत धक्का लगा। वर्ष 1939 में दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया। इसने भी विश्व व्यापार व वैश्विक आर्थिक स्थिति को बहुत कुप्रभावित किया।

जुलाई, 1944 में 44 देशों के प्रतिनिधियों ने अमेरिका में ब्रेटन वुड्स (Bretton Woods) के स्थान पर एक अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन मे यह निश्चित किया गया कि सभी देशों के आर्थिक विकास के लिए दो सस्थाएँ स्थापित की जाएँ: (i) अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा (ii) अतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक/विश्व बैंक। इनकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य अतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना, तथा स्वर्णमान अधिमान व्यवस्था के स्थान पर नयी अतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था स्थापित करना था। इस सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि अमेरिकन डॉलर पूर्ण रूप से स्वर्ण में परिवर्तनीय होगा तथा अन्य सदस्य देश अपनी घरेलू मुद्रा को अमेरिकन डॉलर के रूप में स्थायी रूप से परिभाषित करेंगे। यह भी निर्णय लिया गया कि सयुक्त राज्य अमेरिका स्वर्ण को रिजर्व के रूप में रखेगा तथा अन्य सदस्य देश अमेरिकन डॉलर को विदेशी मुद्रा भंडार (Foreign Exchange Reserve) के रूप में रखेंगे। अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने वर्ष 1945 से अपना कार्य शुरू किया। इसने स्थिर विनिमय दर व्यवस्था को अपनाया। यह व्यवस्था बहुत लबे समय तक चली। परंतु बाद में कुछ देशों ने अतर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिक लाभ अर्जित करने के लिए, अर्थात् अपने स्वार्थ के लिए, अपनी करेंसी का अवमूल्यन (devaluation) कर दिया। इससे बहुत से देशो का स्थिर विनिमय दर व्यवस्था मे विश्वास टूट गया। इसके अलावा सयुक्त राज्य अमेरिका को भी अपनी करेंसी को स्वर्ण में परिवर्तित करने मे कठिनाई हो रही थी, क्योंकि स्वर्ण के बाजार-मूल्य (Market Value) में अत्यधिक उतार-चढाव आ रहे थे तथा स्वर्ण के भडार भी सीमित मात्रा मे ही थे।

वर्ष 1969 में अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अतर्राष्ट्रीय तरलता को बढाने के लिए एक विशेष कागजी करेंसी चलायी, जिसे 'विशेष आहरण अधिकार' (Special Drawing Rights–SDRs) के नाम से जाना जाता है। इसे कागजी-स्वर्ण (Paper Gold) भी कहते हैं। वर्ष 1969 में SDR को एक अमेरिकन डॉलर के सोने के मूल्य के बराबर परिभाषित किया गया। अर्थात् एक SDR = 0.88867 ग्राम सोना या 1/35 औस सोना। वर्ष 1973 में SDR को सदस्य देशों की 16 सबसे अधिक प्रचलित मुद्राओं के आधार पर परिभाषित किया गया। बाद में इन देशों की सख्या 16 से घटा कर 5 कर दी गयी। इसमे अमेरिकन-डॉलर, ब्रिटिश पौड, फ्रेंच फ्रैंक, जर्मन का डियूच मार्क तथा जापान के येन को शामिल किया गया। वर्तमान में SDR को चार प्रचलित मुद्राओ – यूरो, अमेरिकन-डॉलर, ब्रिटिश-पौड तथा जापान के येन के साथ परिभाषित किया गया है। इससे अतर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप विश्व व्यापार को बढ़ावा मिला।

वर्ष 1973 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने स्थिर विनिमय दर व्यवस्था को समाप्त करके इसे लोचशील विनिमय दर व्यवस्था से प्रतिस्थापित कर दिया। इस व्यवस्था में विनिमय दर का निर्धारण माँग व पूर्ति की बाजारी शक्तियो द्वारा किया जाता है। अर्थात् किसी करेंसी की विश्व बाजार में माँग व पूर्ति उस करेंसी की विनिमय दर को निर्धारित करती है। केंद्रीय बैंकों को यह अधिकार दिया गया कि विनिमय दरों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए वे आवश्यक कदम उठा सकते है। लोचशील विनिमय दर व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों के आर्थिक सम्मेलन आयोजित किए गए। वर्ष 1982 मे मेक्सको मे आए ऋण सकट; थाइलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया, फिलिपाइन्स व कोरिया में आए मुद्रा सकट व बैंकों का डूबना (बद होना); वर्ष 2008-09 में अमेरिका से शुरू हुई मदी की स्थिति, जिसने वैश्विक आर्थिक सकट का रूप ले लिया; तथा वर्ष 2011-12 मे यूरोपीयन देशो में आए सार्वजनिक ऋण सकट ने वैश्विक वित्तीय व्यवस्था को चुनौतियाँ दी है। इन आर्थिक सकटो से वैश्विक वित्तीय व्यवस्था की कमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। संपूर्ण विश्व वैश्विक वित्तीय व्यवस्था में कुछ ठोस उपायों व सुधारों की आवश्यकता को अनुभव कर रहा है जिससे वैश्विक वित्तीय व्यवस्था को अधिक सुदृढ किया जा सके तथा विनिमय दर में अत्यधिक उतार-चढाव को नियत्रित किया जा सके। निकट भविष्य में वैश्विक वित्तीय व्यवस्था में बड़े परिवर्तन देखने को मिलेंगे। ऐसा अनुमान है कि जापान व चीन की मुद्राएँ विश्व में अधिक सुदृढ़ व शक्तिशाली हो जाएंगी।

अंतर्राष्ट्रीय वित्त के सघटकों में मुख्य प्रवृत्तियों की चर्चा निम्नलिखित है:

(1) वैश्विक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में प्रवृत्तियाँ (Trends in Global Foreign Direct Investment): विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का तात्पर्य विदेशी कंपनियों द्वारा दूसरे देशों में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियाँ बनाने और उनका प्रबध करने से है। इसके अतर्गत प्रबध करने के उद्देश्य से अंशों को खरीद कर अधिग्रहण (Acquisition) की गई कंपनी भी शामिल है। वर्ष 1990 से विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में काफी तेजी आई है। विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के आंकड़ों को तालिका 6 में दर्शाया गया है।

तालिका 6. विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की प्रवृत्तया (विलियन US डॉलर में)
(Trends in Global Foreign Direct Investment)

वर्ष (Year)	विश्व (World)	विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ (Developing Economies)
1990	2,081.8	524.5
2000	7,442.5	1,728.5
2005	11,524.9	2,713.6
2008	15,491.1	4,213.7
2009	17,950.4	5,060.1
2010	19,140.6	5,951.2
2011	15,244.2	6,844.0

(Source: UNCTAD Online Handbook of Statistics, 2012)

तालिका 5 से स्पष्ट है कि विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई है। FDI की मात्रा विकासशील देशों मे और भी तेजी से बढ़ी है। वर्ष 2008 में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में कमी का कारण वैश्विक वित्तीय सकट था। वर्ष 2010 में FDI की मात्रा में पुनः तेजी आई। वर्ष 2011 में विश्व की FDI में कमी के बावजूद, विकासशील देशों मे FDI की मात्रा बढ कर 6,844 बिलियन अमेरिकन डॉलर हो गई।

(2) पोर्टफोलियो निवेश में प्रवृत्तियाँ (Trends in Portfolio Investment): पोर्टफोलियो निवेश में विदेशी निवेशक, विदेशी कंपनियाँ या विदेशी संस्थागत निवेशक (Foreign Institutional Investors) अन्य देशों की कपनियों के अशों या ऋणपत्रों में निवेश करते हैं। इस तरह के निवेश मे विदेशी निवेशक इकाई का प्रबध अपने हाथों मे नहीं लेते बल्कि, उस इकाई का प्रबध एव नियंत्रण घरेलू देश पर ही छोड दिया जाता है। पोर्टफोलियो निवेश का प्रवाह प्रायः विकसित देशों से विकासशील देशों की ओर होता है। परंतु यह केवल अच्छे समय का ही साथी (Fair weather friend) है। अर्थात् जब मेजबान देश में आर्थिक स्थितिया अच्छी होती है तो पोर्टफोलियो निवेश के अंतर्प्रवाह में बहुत वृद्धि होती है। परंतु मेजबान देश मे आर्थिक दशाएं खराब होने पर विदेशी निवेशक अपनी निवेशित राशि को वापिस ले लेते है, जबकि उस समय मेजबान देश को विदेशी पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। प्रायः विदेशी संस्थागत निवेशक पोर्टफोलियो निवेश करते है। विकासशील देशों में पोर्टफोलियो निवेश की प्रवृत्तियों को तालिका 7 में दर्शाया गया है।

तालिका 7. पोर्टफोलियो निवेश में प्रवृत्तियाँ (विकासशील देशों में) (यू.एस.बिलियन डॉलर में)
(Trends in Portfolio Investment) (in developing nations) (in US billion Dollars)

वर्ष (Year)	2005	2006	2007	2008	2009	2010
पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investment)	154	268	394	(-)244	93	186

(Source: UNCTAD Online Handbook of Statistics, 2012)

तालिका 7 से स्पष्ट है कि वर्ष 2007 में विकासशील देशों मे पोर्टफोलियो निवेश अधिकतम थे। परंतु वर्ष 2008 में वैश्विक वित्तीय संकट के कारण पोर्टफोलियो निवेश नकारात्मक हो गये, क्योंकि विदेशी निवेशकों ने निवेश की गई राशि को वापस ले लिया था। अब पुनःपोर्टफोलियो निवेश के अंतर्प्रवाह में वृद्धि हो रही है।

(3) भुगतान शेष में प्रवृत्तियाँ (Trends in Balance of Payment): पहले विकसित देशों के भुगतान शेष की स्थिति अनुकूल (धनात्मक) होती थी, जबकि विकासशील देशो के भुगतान शेष की स्थिति प्रतिकूल (नकारात्मक) होती थी। परंतु पिछले कुछ वर्षों में, विकसित देशों से विकासशील देशों में अत्यधिक पूँजी प्रवाह के कारण, विकासशील देशों का भुगतान शेष धनात्मक तथा विकसित देशों का भुगतान शेष ऋणात्मक होने लगा है। वर्ष 1991 में विकासशील देशों का भुगतान शेष (−)80,947 मिलियन अमेरीकन डॉलर था। वर्ष 2000 में यह अनुकूल होकर 1,03,286 मिलियन अमेरिकन डॉलर हो गया। वर्ष 2011 में, इसमे और अधिक सुधार हुआ तथा यह 4,96,365 मिलियन अमेरिकन डॉलर हो गया। स्पष्ट है कि अब विकासशील देशो की भुगतान शेष की स्थिति में सुधार हो रहा है।

(4) विदेशी विनिमय भंडारों में प्रवृत्तियाँ (Trends in Foreign Exchange Reserves): विदेशी विनिमय भडार, अतर्राष्ट्रीय वित्त का महत्त्वपूर्ण संघटक है। यदि किसी देश के विनिमय भडारो मे वृद्धि होती है, तो यह अच्छी वित्तीय स्थिति की ओर संकेत है। ये भडार घरेलू या वैश्विक वित्तीय सकट आने पर सुरक्षा आवरण का कार्य करते है। यदि किसी देश की भुगतान शेष की स्थिति प्रतिकूल हो जाती है, तो उस देश का केंद्रीय बैंक (जिसके पास विदेशी विनिमय भडार होते है) आवश्यक मदों के आयात के लिए विदेशी मुद्रा प्रदान करता है। इसी तरह यदि किसी देश की विनिमय दर (Exchange Rate) में अत्यधिक उतार-चढाव आते है, तो केंद्रीय बैंक इन विदेशी विनिमय भडारो की सहायता से विनिमय दर में स्थिरता लाने के लिए उचित उपाय करता है। विदेशी विनिमय भडारो में प्रवृत्तियों को तालिका 8 मे दर्शाया गया है।

तालिका 8. विदेशी विनिमय भंडार (यू.एस.बिलियन डॉलर में)
(Foreign Exchange Reserves) (in U.S. Billion Dollars)

वर्ष (Year)	विश्व (World)	विकासशील देश (Developing Nations)
1991	1042.21	403.27
2000	2039.24	1058.88
2005	4444.18	2694.52
2010	9737.99	6783.24
2011	10748.32	7448.58

(Source: UNCTAD Online Handbook of Statistics, 2012)

पिछले कुछ वर्षों में विकासशील देशों के विदेशी विनिमय भंडारों में बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है। वर्ष 1991 में, विकासशील देशों के विदेशी मुद्रा कोष विश्व के कुल विदेशी मुद्रा कोषों का 38.69 प्रतिशत थे। वर्ष 2011 में ये बढकर 69.3 प्रतिशत हो गए। विश्व में सर्वाधिक विदेशी मुद्रा भडार वाले देश इस प्रकार है– चीन, जापान, रूस, स्विट्जरलैंड, ब्राज़ील, कोरिया व हागकांग। इस तरह विदेशी मुद्रा भडारों की मात्रा में विश्व में चीन का पहला स्थान है, जबकि भारत का स्थान आठवाँ है।

(5) बाहरी ऋणों में प्रवृत्तियाँ (Trends in External Borrowings): बाहरी ऋणों में विदेशी सरकारो, विदेशी बैंकों, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओं से ऋण तथा गैर-निवासियों की जमाएँ (Deposits of Non-Residents) शामिल है। पिछले कुछ वर्षों में विकासशील देशों के बाहरी ऋणों में बहुत वृद्धि हुई है। विकासशील देश विकासात्मक परियोजनाएँ व कार्यक्रम चलाने के लिए बहुत अधिक मात्रा में बाहरी ऋण लेते हैं। वर्ष 2011 में सर्वाधिक मात्रा में बाहरी ऋण लेने वाले देश इस प्रकार थे– चीन, रूस, ब्राज़ील, भारत, तुर्की, मैक्सिको, इंडोनेशिया। विकासशील देशो मे से सर्वाधिक बाहरी ऋण लेने वाले देशों के अदत्त ऋणों की मात्रा को तालिका 9 में दर्शाया गया है।

तालिका 9. वर्ष 2011 में विकासशील देशों के बाहरी ऋण (यू.एस. बिलियन डॉलर में)
[External Debt of Developing Nations in 2011 (in U.S. billion Dollars)]

स्थान (Rank)	देश (Country)	कुल बाहरी ऋण (Total External Debt)
1	China	685.42
2	Russia	542.98
3	Brazil	404.32
4	India	334.33
5	Turkey	307.01
6	Mexico	287.04

(Source: World Bank's International Debt Statistics, 2013)

(6) विदेशी विनिमय दर व्यवस्था में प्रवृत्तियाँ (Trends in Foreign Exchange Rate System): विनिमय द
उस दर को कहते हैं जिस पर किसी देश की करेंसी की एक इकाई के बदले अन्य देश की करेंसी की इकाइयों की संख्
प्राप्त की जाती है। यह विदेशी करेंसी की एक इकाई प्राप्त करने के लिए घरेलू करेंसी में चुकाई गई कीमत है। विश्व
विदेशी विनिमय दर व्यवस्था में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। प्रारंभ में, जब स्वर्ण अधिमान (Gol
Standard) व्यवस्था प्रचलित थी, तब प्रत्येक देश अपनी मुद्रा को सोने के रूप में परिभाषित करता था। वर्ष 1944
स्थिर विनिमय दर व्यवस्था अपनायी गयी। यह व्यवस्था वर्ष 1973 तक चली। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने वर्ष 1973
इसे लोचशील विनिमय दर व्यवस्था से प्रतिस्थापित किया। इसके अंतर्गत विनिमय दर का निर्धारण मांग व पूर्ति के
बाज़ारी शक्तियों द्वारा होता है। अर्थात् विश्व बाज़ार में किसी देश की मुद्रा की मांग व पूर्ति इसके विनिमय दर को
निर्धारित करती है। लोचशील विनिमय दर व्यवस्था आज भी प्रचलित है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण (परिचय)

[International Business Environment (Overview)]

■ 1. अर्थ तथा परिचय (Meaning and Introduction)

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण तेजी से बदल रहा है। सूचना तकनीक ने विश्व को संकुचित बना दिया है। आज के वैश्वीकरण के युग में कोई भी अर्थव्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। आजकल विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक निर्भरता तथा आर्थिक सहयोग बढ़ रहा है। आज हर प्रकार के व्यवसाय को चाहे वह संसार के किसी भी स्थान पर क्यों न हो, उसे बदलते अंतर्राष्ट्रीय वातावरण को ध्यान में रखना पड़ता है। इस प्रकार भारतीय आर्थिक वातावरण अंतर्राष्ट्रीय वातावरण से प्रभावित हो रहा है। अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण, घरेलू व्यावसायिक वातावरण व विदेशी व्यावसायिक वातावरण के पारस्परिक सबंध से उत्पन्न होता है। **अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यावसायिक वातावरण में आर्थिक वातावरण, राजनीतिक वातावरण, कानूनी वातावरण, सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण, तकनीकी वातावरण व अन्य तत्त्व शामिल हैं जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व वित्त को प्रभावित करते हैं।** इन सभी तत्त्वों में से आर्थिक तत्त्व सबसे महत्वपूर्ण हैं। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण विदेशी निवेश, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, आर्थिक स्थितियों, आर्थिक नीतियों आदि से संबंधित है।

आयात-निर्यात में लगे व्यवसायों के लिये अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण बहुत महत्वपूर्ण हैं। विदेशी बाजारों में मंदी या विदेशी बाजारों में संरक्षण से, उनके निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आयातों के उदारीकरण से कुछ उद्योगों को लाभ तथा कुछ को हानि हो सकती है। उदाहरण के तौर पर, इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग में बहुराष्ट्रीय कंपनियों; जैसे- L.G., सैमसंग, सोनी, आदि के आने से भारतीय घरेलू इकाइयों जैसे Videocon पर बुरा प्रभाव पड़ा है। बहुत से अन्य तत्त्व किसी देश के व्यापार व विकास प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं; जैसे- विश्व व्यापार संगठन समझौते, अंतर्राष्ट्रीय घोषणाएं, अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक तत्त्व, राजनीतिक तनाव, वैश्विक वित्तीय संकट, युद्ध आदि। उदाहरण के तौर पर, वैश्विक मंदी व यूरोक्षेत्रीय ऋण संकट ने विभिन्न देशों के उद्योगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। इसी तरह विश्व व्यापार केन्द्र पर हमला, यू. एस.- इराक युद्ध, बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद आदि ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और अंतर्राष्ट्रीय शांति को प्रभावित किया है। संचार की सुविधाओं में तेजी से हुआ विकास; जैसे-इन्टरनेट, दूरसंचार के उपकरण इत्यादि ने भी व्यवसाय को प्रभावित किया है। विभिन्न देशों में होने वाले फैशन शो, ब्यूटी कॉन्टेस्ट, अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्यक्रम, अंतर्राष्ट्रीय खेल आदि से एक देश की संस्कृति का प्रभाव दूसरे देशों में जाने लगा है। इससे कुछ व्यवसाय; जैसे-फैशन-डिज़ाइनिंग व्यवसाय, ड्रेस-डिज़ाइनिंग व्यवसाय पर प्रभाव पड़ा है। यातायात और टेक्नोलॉजी विकास के कारण विश्व छोटा होता नजर आ रहा है। आज के इस प्रतियोगी युग में विदेशी व्यापार से जुड़े व्यवसायी के लिए विदेशी भाषा सीखना व विदेशी मुद्रा की जानकारी आवश्यक हो गयी है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी पूंजी के प्रवाह, विदेशी तकनीक, विदेशी उद्यम, विदेशी वस्तुओं व सेवाओं, विदेशी ब्रान्ड व विदेशी मीडिया आदि से जुड़ा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का योगदान न केवल विकासशील अपितु विकसित देशों में भी बढ़ता जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि ये बहुराष्ट्रीय कंपनियां किस कुशलता से विभिन्न देशों के बदलते वातावरण के साथ अपने आपको ढालती है। उदाहरण के तौर पर, IBM, Coca-cola भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के रूप में कार्य कर रही हैं। INFOSYS व WIPRO अमेरिका में तथा बिरला उद्योग अफ्रीका में कार्यरत हैं। यदि ये

बहुराष्ट्रीय कपनिया अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण का विश्लेषण नहीं करती, तो इन्हे कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी अग्रलिखित विभिन्न प्रकार के वातावरणों में कार्य करती है:

(i) घरेलू वातावरण, (ii) विदेशी वातावरण, (iii) अंतर्राष्ट्रीय वातावरण।

(i) घरेलू वातावरण (Domestic Environment): इसका अभिप्राय उस देश के आर्थिक, राजनीतिक, कानूनी, तकनीकी, व सामाजिक-सास्कृतिक-वातावरण से है, जिस देश में MNC कार्य करती है (Environment of the country in which MNC operates)। मुख्य तौर पर MNC– विदेशी विनियोग के प्रति सरकार की नीति, उपभोक्ता-रुचि व प्राथमिकताये, घरेलू-प्रतियोगिता, कानूनी-व्यवस्था व MNC के प्रति लोगों के दृष्टिकोण से प्रभावित होती है।

(ii) विदेशी वातावरण (Foreign Environment): इसका अभिप्राय उस देश के वातावरण से है, जहां MNC का आधार है (Environment of the country to which MNC belongs, i.e. Environment of Parent Country) इसमें आधारभूत देश के राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी, तकनीकी वातावरण आदि शामिल है।

(iii) अंतर्राष्ट्रीय वातावरण (International Environment): यह वातावरण घरेलू वातावरण व विदेशी वातावरण के पारस्परिक सबध से बनता है। आज के वैश्वीकरण के युग में सभी देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हो रही है चाहे, वे विकसित है, या अल्पविकसित। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ सभी देशों को मिलना चाहिये, इस उद्देश्य के लिये तथा विदेशी व्यापार को नियमित करने के लिये बहुत से अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाये गये है; जैसे- I.M.F., World Bank, GATT, WTO, UNCTAD, आदि। ये संगठन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमन व विकास (Regulation and Growth) के लिये समय-समय पर निर्देश जारी करते रहते है इस तरह के अंतर्राष्ट्रीय संगठन, अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के मुख्य घटक हैं।

MNCs को प्रभावित करने वाला अंतर्राष्ट्रीय वातावरण

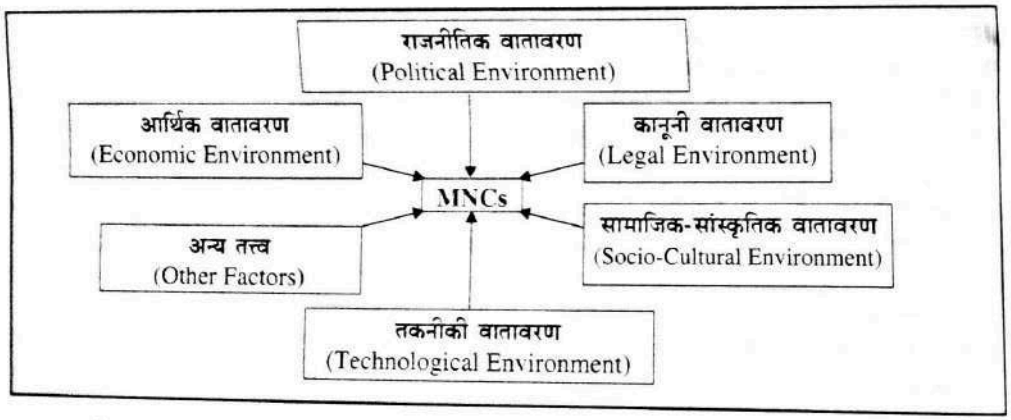

पहले, व्यावसायिक इकाई का क्षेत्र राष्ट्रीय स्तर तक सीमित होता था, लेकिन अब इनका स्तर अतर्राष्ट्रीय हो सकता है। एक ऐसी व्यावसायिक इकाई जिसने अपना कार्य विभिन्न देशों में फैला रखा है, उसे प्रत्येक देश के घरेलू वातावरण का अध्ययन करना पड़ता है। वातावरण का ध्यानपूर्वक विश्लेषण ही इकाई की सफलता का कारण बनता है। इन इकाइयों को विभिन्न अतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाये गये नियमों को भी मानना पड़ता है। उदाहरण के लिए, कोका कोला कम्पनी 150 देशों में कार्यरत है। इसे सफलता और विकास के लिए इन सभी देशो के वातावरण का विश्लेषण करना पड़ता है।

विकासशील देशों का व्यावसायिक वातावरण विकसित देशों के व्यावसायिक वातावरण से बहुत भिन्न है। विकसित देशों में लोगों की आय अधिक है, वहा राजनीतिक स्थिरता अधिक है, व्यवसाय में राजनीतिक हस्तक्षेप बहुत कम है, समाज में रुढ़िवादी रीति-रिवाज नहीं है, आधारभूत सरचना विकसित है। उत्पादन क्रियाओं में उच्च तकनीक का प्रयोग किया जाता है, अनुसधान व नवाचार पर अधिक खर्च किया जाता है। दूसरी तरफ विकासशील देशों में लोगों की आय कम है, राजनीतिक स्थिरता कम है, व्यवसाय में राजनीतिक हस्तक्षेप अत्यधिक है, समाज पुराने रीति-रिवाजों में जकड़ा हुआ है, उत्पादन क्रियाओं में पुरानी तकनीक का प्रयोग किया

जाता है तथा अधोसरचना अविकसित है। अत. बहुराष्ट्रीय कपनियों को विकसित व विकासशील देशों के लिए भिन्न-भिन्न व्यावसायिक रणनीतियाँ बनानी चाहिए; जैसे- यदि कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी अफ्रीका के देशों या दक्षिणी एशियाई देशो के लिए उत्पाद बनाती है, तो इसे कम कीमत के उत्पाद बनाने होंगे, परतु जब यही बहुराष्ट्रीय कपनी यूरोपियन देशों के लिए उत्पाद बनाती है, तो इसे बहुत ही अच्छी क्वालिटी के उत्पाद बनाने चाहिए, चाहे उन उत्पादों की लागत अधिक ही क्यों न हो।

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन की आवश्यकता
(Need for the Study of International Business Environment)

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के सभी तत्त्व किसी भी इकाई के वातावरण को प्रभावित करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ी व्यावसायिक इकाई की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इस बदलते हुए अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के अनुसार अपनी नीतियों को बदला जाए। अंतर्राष्ट्रीय वातावरण का प्रभाव विशेषकर ऐसी इकाइयों पर अधिक पडता है जो आयात-निर्यात के क्षेत्र में लगी है। अतर्राष्ट्रीय वातावरण के अध्ययन का महत्व निम्न कारणों से स्पष्ट होता है.

(1) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि (Increase in international trade)
(2) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बढ़ता योगदान (Increasing role of multinational corporations)
(3) विदेशी निवेश में वृद्धि (Increase in foreign investment)
(4) विभिन्न देशों में वस्तुओं का स्वतन्त्र प्रवाह, टैरिफ और गैर-टैरिफ रुकावटों में कमी।
(5) तकनीक का स्वतन्त्र प्रवाह (Free flow of technology)
(6) अंतर्राष्ट्रीय संगठन; जैसे- IMF, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन और अकटाड का बढ़ता योगदान।
(7) अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों में वृद्धि (Increase in international trade agreements)
(8) एक देश में आर्थिक, राजनीतिक, कानूनी, सामाजिक-सास्कृतिक, तकनीकी वातावरण का अन्य देशों के वातावरण पर प्रभाव।
(9) एक देश के आर्थिक संकट, व्यापार चक्रों, आतकवाद, युद्ध आदि का अन्य देशों पर प्रभाव।

■ 3. अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के घटक या प्रकार
(Components or Types of International Business Environment)

(1) आर्थिक वातावरण (2) राजनीतिक वातावरण (3) कानूनी वातावरण
(4) सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण (5) तकनीकी वातावरण (6) अन्य तत्त्व।

■ 3.1 आर्थिक वातावरण (Economic Environment)

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के एक घटक के रूप में, आर्थिक वातावरण मे विभिन्न आर्थिक घटकों; जैसे-आर्थिक दशाओं, आर्थिक नीतियों, आर्थिक व्यवस्था (Economic System), व्यापार-चक्र की अवस्था, विदेशी निवेश, अंतर्राष्ट्रीय सगठन (IMF, विश्व बैंक, WTO आदि), अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों आदि को शामिल किया जाता है। आर्थिक वातावरण, अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के अन्य सभी घटकों में से महत्वपूर्ण है। यह बहुत गतिशील होता है और विभिन्न देशों की सरकारी नीतियों व राजनीतिक दशाओं में आये बदलाव के साथ बदलता रहता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में लगी व्यावसायिक इकाई न केवल अपने घरेलू देश के आर्थिक वातावरण से ही प्रभावित होती है बल्कि साथ-साथ ऐसे देश के आर्थिक वातावरण से भी प्रभावित होती है जिसके साथ यह इकाई आयात या निर्यात कर रही है। इसके अलावा विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिये व इसका नियमन करने के लिये समय-समय पर विभिन्न नीतियाँ, नियम व निर्देश निर्धारित करते हैं। एक व्यापारिक इकाई को इन सभी नियमों व निर्देशों की भी जानकारी होना आवश्यक है। महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन इस प्रकार हैं- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund), विश्व बैंक, विश्व व्यापार सगठन, अंकटाड (UNCTAD) आदि। आजकल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न व्यापारिक समझौते किये जाते है। हाल के कुछ वर्षों में लगभग सभी विकासशील देशों में विदेशी पूंजी के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक हुआ है, अर्थात् अब ये देश विदेशी पूंजी को आकर्षित करने में लगे हैं। आजकल विकासशील देशों की बहुत-सी कम्पनियाँ अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान जैसे देशों के पूँजी बाजारों से धन एकत्रित कर रही हैं। आजकल विश्व-व्यापार तेजी से

बढ़ रहा है, यह विभिन्न देशों में सकारात्मक आर्थिक वातावरण का सूचक है। संक्षेप में, आर्थिक वातावरण में निम्न को शामिल किया जा सकता है:

(i) घरेलू देश का आर्थिक वातावरण

(ii) जिस देश के साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाना है, उस देश का आर्थिक वातावरण

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाये गये नियम

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौते

(v) विदेशी निवेश के प्रति दृष्टिकोण

(vi) व्यापार चक्र की अवस्था

(vii) विभिन्न देशों की आर्थिक नीतियाँ, आदि।

नोट: आर्थिक वातावरण पर विस्तृत चर्चा इसी अध्याय में आगे चलकर की गयी है।

■ 3.2 राजनीतिक वातावरण (Political Environment)

राजनीतिक वातावरण का व्यवसाय पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के संबंध में राजनीतिक वातावरण में निम्न शामिल है:

(i) विदेशी निवेश, कोटा, टैरिफ (सीमा शुल्क), MNCs की कार्यप्रणाली, मूल्य नियन्त्रण, उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण आदि के बारे में सरकार का राजनीतिक दृष्टिकोण (Political Ideology of Government)।

(ii) देश में राजनीतिक स्थिरता (Political Stability)।

MNC के संदर्भ में राजनैतिक वातावरण तीन तरह का हो सकता है:

(a) उस देश का राजनीतिक वातावरण जहां MNC कार्यरत है (Political Environment of the Country in which MNC Operates): प्राय: अल्पविकसित देश विदेशी कंपनियों को और विदेशी पूंजी निवेश को अविश्वास की नजर से देखते हैं। कई बार अल्पविकसित देश यह आरोप लगाते हैं कि ये विदेशी कंपनियाँ अधिक लाभ कमा रही हैं, करों की चोरी कर रही हैं, या लाभों का विदेशों में प्रत्यावर्तन (Repatriation) कर रही हैं, आदि। परन्तु अब बहुत से देशों ने विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिये बहुत से प्रोत्साहन व रियायतें देनी शुरू कर दी है।

(b) उस विदेशी देश का राजनीतिक वातावरण जहाँ MNC का आधार है (Political Environment of foreign Country to which MNC Belongs): उस देश का राजनीतिक वातावरण भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रभावित करता है जहाँ MNCs का आधार है। मूल देश की सरकार का MNCs के प्रति दृष्टिकोण भी MNCs को प्रभावित करता है।

(c) अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक वातावरण (International Political Environment): अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक वातावरण बहुत तेजी से बदल रहा है इसमें होने वाले बदलाव किसी देश की आर्थिक नीतियों को भी प्रभावित करते हैं; जैसे-USSR का विभाजन, अमेरिका-इराक युद्ध, विश्व व्यापार केंद्र पर हमला, मध्य-पूर्वी देश (Middle-east Nations) में राजनीतिक तनाव, विश्व व्यापार संगठन की बदलती नीतियों, आदि ने विभिन्न देशों के घरेलू वातावरण को प्रभावित किया है। इन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित किया है। कुछ प्रभावशाली विकसित देश; जैसे- USA, UK विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की नीतियों को प्रभावित करते हैं। संक्षेप में, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ राजनीतिक वातावरण को प्रभावित करती हैं।

■ 3.3 कानूनी वातावरण (Legal Environment)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के संदर्भ में, कानूनी वातावरण से अभिप्राय विभिन्न नियमों, नीतियों व कानूनों से है, जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों या विदेशी व्यापार को प्रभावित करते हैं। ये कानून उस देश की सरकार द्वारा बनाये जा सकते हैं, जहां MNC कार्यरत है या उस देश की सरकार द्वारा बनाये जा सकते हैं जहाँ MNC का आधार (Parent-country) है या विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाए जा सकते हैं। विदेशी व्यापार को घरेलू देश द्वारा बनाये नियमों से, दूसरे देशों द्वारा बनाये नियमों से तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाये गये नियमों से नियंत्रित किया जाता है। विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों; जैसे- WTO, UNCTAD, ASEAN, SAARC आदि द्वारा विदेशी व्यापार से संबंधित विभिन्न नियम बनाए गए हैं। इसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित विवादों को निपटाने के लिये कुछ अन्य महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संगठन; जैसे- इन्टरनेशनल कोर्ट, संयुक्त राष्ट्र संघ आदि द्वारा नियम बनाए गए हैं।

समय-समय पर विदेशी व्यापार को ऐच्छित दिशा में निर्देशित करने के लिए विभिन्न देशों के बीच व्यापारिक समझौते किए जाते हैं। ये समझौते कुछ देशों के मध्य, पड़ोसी देशों के साथ, विभिन्न विकासशील देशों के बीच या विकसित व विकासशील देशों के बीच हो सकते हैं। इन समझौतों में विदेशी व्यापार से संबंधित विभिन्न नियमों पर स्वीकृति या एकरूपता तय की जाती है, अर्थात व्यापार से सम्बन्धित ऐसी शर्तें जो सभी सदस्य देशों को मान्य हों। इन समझौतों का उद्देश्य विदेशी व्यापार को बढ़ाना व विदेशी व्यापार की रुकावटों को दूर करना है। सदस्य देशों में विदेशी व्यापार से जुड़ी सभी व्यावसायिक इकाइयों को इन नियमों का पालन करना पड़ता है। बहुत से विकासशील देशों की सरकारों ने विदेशी व्यापार/MNCs के ऋणात्मक प्रभाव से बचने के लिए व अपने घरेलू उद्योगों को इस ऋणात्मक प्रभाव से बचाने के लिए कुछ नियम बनाए हैं, जैसे- भारत में विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम (FEMA) भारत में कार्यरत MNCs को नियमित करता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बनाए गए उत्पादों की किस्म, पैकिंग, वातावरण के प्रदूषण, अनुचित व्यापार व्यवहारों (Unfair Trade Practices) को नियमित करने के लिये भी विभिन्न कानून बनाए गए हैं।

अत: कानूनी वातावरण में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नियमित करने के लिये विभिन्न देशों तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा बनाये गये नियमों को शामिल किया जाता है।

■ 3.4 सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण (Socio-Cultural Environment)

व्यवसाय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। व्यवसाय व समाज दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। संस्कृति समाज में रह रहे लोगों के सोचने व आपसी व्यवहार के ढंग को प्रभावित करती है। सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के तत्व, जैसे - शहरीकरण, पारिवारिक व्यवस्था, धर्म, शिक्षा, आदतें, प्राथमिकताएं, भाषा, रीति-रिवाज एवं प्रथाएँ, व्यावसायिक नीतिशास्त्र (Business Ethics), लोगों का विभिन्न व्यवस्थाओं के प्रति दृष्टिकोण आदि, व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। ये सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व विभिन्न देशों में अलग-अलग होते हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनिया विभिन्न देशों में व्यवसाय करती हैं। ये कम्पनिया विभिन्न संस्कृति के लोगों को अपने उत्पाद बेचती है। इन्हें सफलता प्राप्त करने के लिए विभिन्न देशों के सांस्कृतिक व सामाजिक तत्वों का अध्ययन करना पड़ता है, और इसके अनुसार ही अपने उत्पादन, विपणन व विज्ञापन कार्यक्रमों को समायोजित करना पड़ता है। इन्हें विभिन्न संस्कृति के लोगों के लिए उत्पाद में कुछ परिवर्तन करने पड़ते हैं; जैसे-उत्पाद का रंग, पैकिंग, डिजाइन आदि। इसी प्रकार इन्हें विभिन्न देशों के लिए अलग-अलग विज्ञापन कार्यक्रम बनाना पड़ता है और विभिन्न देशों के सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर विज्ञापन अपील व विज्ञापन नारे (Slogan) का चयन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, भारत में किसी टिकाऊ उत्पाद (Durable Product) के विज्ञापन के लिए यह अपील चुनी जा सकती है, कि विज्ञापनकर्ता का उत्पाद उपभोक्ता के जीवनसाथी की तरह उसका लम्बे समय तक साथ देगा। परन्तु यह अपील पश्चिमी देशों में सफल नहीं होगी क्योंकि वहां वैवाहिक संबंध दीर्घकाल तक नहीं चलते। इसी तरह जूस उत्पाद के विज्ञापन में, भारत में इसे शक्तिवर्द्धक पेय (Energizer-Drink) के रूप में विज्ञापित किया जाता है। जबकि अमेरिका में इसे नाश्ते (Breakfast-food) के रूप में विज्ञापित किया जाता है। जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कर्मचारियों को विकसित देशों से पिछड़े देशों में हस्तांतरित किया जाता है, तो उन्हें सांस्कृतिक-झटका (Cultural-Shock) लगता है, क्योंकि इन पिछड़े देशों का सांस्कृतिक वातावरण, विकसित देशों की तुलना में बहुत भिन्न होता है। इन कर्मचारियों को अपने आपको इस नये वातावरण में ढालना पड़ता है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को उन सभी देशों के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण का अध्ययन करना पड़ता है, जिन स्थानों पर ये व्यवसाय कर रही हैं। इस जानकारी के बाद ही ये कंपनियाँ अपने उत्पादों/रणनीतियों को विभिन्न देशों की संस्कृति के अनुसार बना सकती हैं।

■ 3.5 तकनीकी वातावरण (Technological Environment)

विज्ञान या अन्य व्यवस्थित ज्ञान को व्यावहारिक कार्यों के लिये प्रयोग करने को 'तकनीक' कहते हैं। इसके द्वारा व्यावहारिक कार्य सुव्यवस्थित ढंग से किये जाते हैं। पिछले 50 वर्षों में तकनीक का बहुत विकास हुआ है। तकनीक के विकास ने बहुत से लोगों के जीवन को बचाया है, मनुष्य के सुख-साधनों के लिए बिजली का निर्माण किया है, बहुत से नये उत्पादों को खोजा है, बहुत से कार्यों को मशीनों से सम्भव बनाया है, तथा मनुष्य के मानसिक कार्यों के लिए कम्प्यूटर को खोजा है। तकनीकी ज्ञान में विकास के कारण लोगों की

जीवन शैली में परिवर्तन आ गया है। आज का व्यक्ति जिन वस्तुओं का प्रयोग कर रहा है वह पहले उनका प्रयोग नहीं कर रहा था तकनीकी विकास द्वारा बने कुछ उत्पाद तो समाज के लिए आश्चर्यजनक है। बहुत से नये उत्पादों; जैसे- दूर संचार उत्पाद, यातायात सूचना-तकनीक, कम्प्यूटर, इन्टरनेट ने तो व्यवसाय के प्रबन्ध को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

तकनीकी ज्ञान मे शीघ्र परिवर्तन व्यावसायिक इकाइयों के लिए समस्या पैदा करते है। जो इकाइयाँ तकनीकी परिवर्तनों के साथ स्वय को नही ढाल पाती, वह व्यवसाय में ज्यादा देर तक नहीं टिक पाती। तेजी से बदलती टेक्नोलॉजी से प्लांट तथा उत्पाद बहुत शीघ्र ही अप्रचलित (Obsolete) हो जाते है। आज के युग में उत्पादों का जीवन काल बहुत ही छोटा है। इस कारण केवल वही व्यवसाय अपने व्यापार मे विकास कर सकता है जो लगातार, नवाचार और अनुसधान पर ध्यान दे। नवाचार तथा अनुसधान द्वारा एक व्यवसायी नये उत्पादो को खोज सकता है या अपने वर्तमान उत्पादों की क्वालिटी सुधार सकता है। इससे व्यावसायिक इकाई अपने बाजार हिस्से में वृद्धि कर सकती है तथा प्रतियोगिता का सामना आसानी से कर सकती है। जापान में तेजी से विकास का कारण वहाँ के उद्योग द्वारा लगातार नवाचार और अनुसधान पर जोर देना है। नये उत्पादों तथा उत्पादन के नये तरीकों की रक्षा पेटेन्ट तथा कॉपीराइट से की जा सकती है इस तरह की पेटेन्ट सुरक्षा से उन उद्योगों को बहुत लाभ होगा जिनमें अधिक नवाचार और अनुसधान होता है। तकनीक के आसान आयात से विकासशील देशों की औद्योगिक कार्यकुशलता में काफी सुधार आता है।

अत: व्यावसायिक इकाइयों को अंतर्राष्ट्रीय तकनीकी वातावरण में आये परिवर्तनों को विश्लेषित करते रहना चाहिए तथा नई तकनीक को शीघ्रता से अपना लेना चाहिए।

■ 3.6 अन्य तत्त्व (Other Factors)

कई बार एक देश में आया सकट विश्व के अन्य देशों को भी प्रभावित करता है। जैसे 1991 का खाड़ी युद्ध, इराक और अमेरिका के युद्ध। इससे विश्व में कच्चे तेल (Crude Oil) की कीमतो में तेजी आई और इसने पूरे विश्व को प्रभावित किया। इसी तरह अमेरिका के विश्व व्यापार सेंटर पर हुए हमले ने पूरे विश्व में अतर्राष्ट्रीय शान्ति को प्रभावित किया। इससे अतर्राष्ट्रीय व्यापार बुरी तरह से प्रभावित हुआ। इसी तरह थाईलैंड में मुद्रा सकट और बैंकों के फेल (Currency Crisis and Failure of Banks) होने से अन्य देश, जैसे- मलेशिया, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स और कोरिया भी प्रभावित हुए। सब-प्राइम सकट [प्राइम ऋण दरों (Prime Lending Rates) से कम ब्याज पर उदार ऋण देना] तथा अमेरिका में निवेश बैंको का दिवाला होने से, न केवल अमेरिका की अर्थव्यवस्था पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा, बल्कि इससे विश्व भर की अर्थव्यवस्था कुप्रभावित हुई। इस संकट ने वैश्विक वित्तीय संकट का रूप ले लिया। इसी तरह यूरोपियन देशो में आए सार्वजनिक ऋण संकट ने कई देशों की व्यावसायिक इकाइयों को कुप्रभावित किया। ग्रीक, पुर्तगाल, स्पेन, आयरलैंड और इटली इस सकट से अत्यधिक कुप्रभावित हुए। इन देशों की साख-रेटिंग (Credit-rating) बहुत गिर गयी। इन देशो की सरकारों को राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए ऋण लेने में बहुत कठिनाई हुई। इससे वैश्विक निवेशकों के विश्वास को बहुत धक्का लगा तथा विश्वभर में अनिश्चितता का माहौल बन गया। इससे विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की विकास दर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भी एक देश में आए संकट के प्रभाव से बचने के लिए समय पर अपनी नीतियों मे बदलाव लाना पड़ता है।

अत: यह स्पष्ट है कि अतर्राष्ट्रीय वातावरण के बहुत से तत्त्व व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में निरन्तर परिवर्तन आ रहा है। बदलते अतर्राष्ट्रीय वातावरण में व्यावसायिक इकाई को, वातावरण के अनुसार समय रहते, अपनी नीतियों में परिवर्तन कर लेना चाहिए।

■ 4. अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण (International Economic Environment)

अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के सभी घटकों में से आर्थिक वातावरण सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें निम्न शामिल है:

(a) घरेलू अर्थव्यवस्था का आर्थिक वातावरण (Economic Environment of Domestic Economy)

(b) व्यापार चक्र की दशा (Stage of Business Cycle)

(c) विदेशी निवेश (Foreign Investment)

(d) अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाएं, जैसे- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अंकटाड, विश्व व्यापार संगठन।

(e) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते– जी एस.पी., जी.एस.टी.पी., प्रति-व्यापार (Counter-Trade), क्षेत्रीय आर्थिक समूह।

■ 4.1 घरेलू अर्थव्यवस्था का आर्थिक वातावरण (Economic Environment of Domestic Economy)

आर्थिक वातावरण का अभिप्राय उन आर्थिक तत्वो से है, जिनका व्यवसाय के कार्य-सचालन पर प्रभाव पड़ता है; जैसे-आर्थिक-व्यवस्था, आर्थिक-नीति, अर्थव्यवस्था की प्रकृति, व्यापार-चक्र, आर्थिक-संसाधन, आय-स्तर, आय और धन का वितरण, इत्यादि। महत्वपूर्ण आर्थिक तत्त्व निम्नलिखित है:

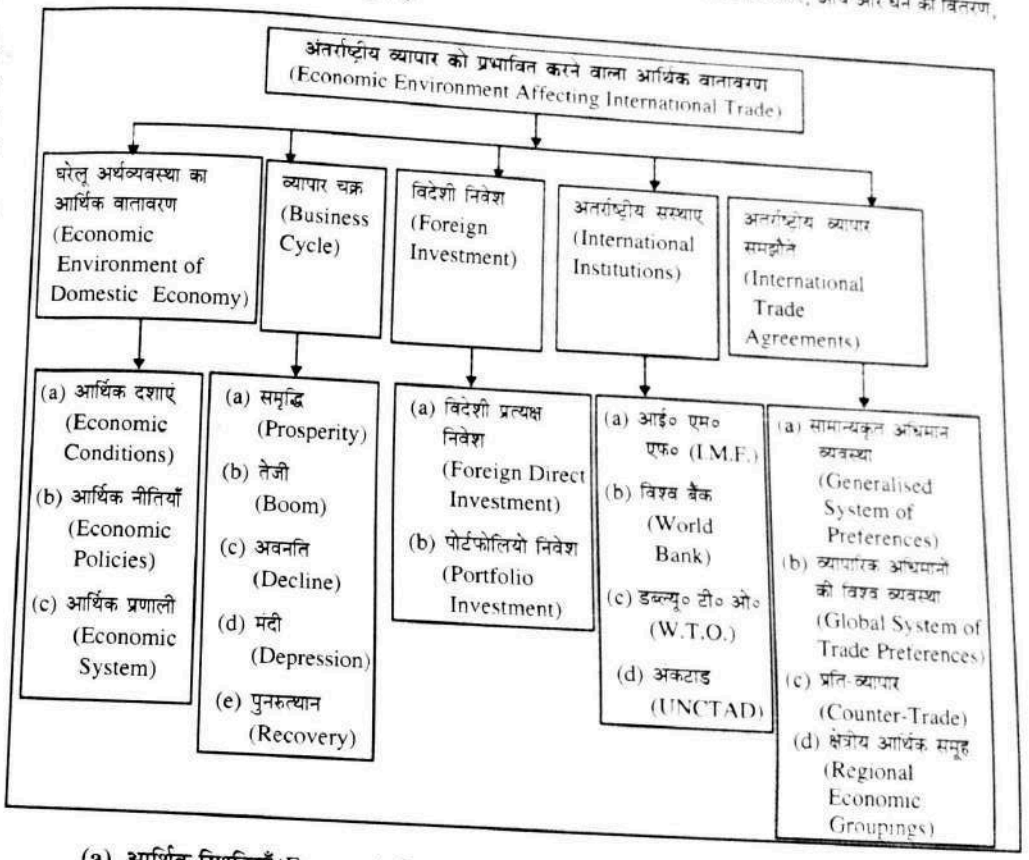

(a) आर्थिक स्थितियाँ (Economic Conditions): अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थितियाँ व्यवसाय को प्रभावित करती है। आर्थिक स्थितियों में आय स्तर, प्रति व्यक्ति आय, जनता की क्रय शक्ति, अर्थव्यवस्था में प्रचलित कीमत स्तर, पूंजी निर्माण की दर, औद्योगिक विकास की दर आदि को शामिल किया जाता है। आर्थिक स्थितियों का माग के स्तर पर, उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं की प्रकृति आदि पर प्रभाव पड़ता है।

(b) आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies): आर्थिक नीतियाँ सरकार द्वारा बनाई जाती है। इन नीतियों का व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता है। व्यवसाय को अपनी नीतियों का निर्माण करते समय सरकार की आर्थिक नीतियों को ध्यान में रखना पड़ता है। इन आर्थिक नीतियों में आये बदलाव का व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता है इसलिये बदलती हुई आर्थिक नीतियों के साथ व्यवसाय की नीतियों में बदलाव लाना पड़ता है। निम्न प्रमुख आर्थिक नीतियाँ व्यवसाय को प्रभावित करती है: (i) मौद्रिक नीति (ii) राजकोषीय नीति, (iii) निर्यात-आयात नीति, (iv) विदेशी निवेश नीति, (v) औद्योगिक नीति।

इन नीतियों के अलावा घरेलू सरकार, विदेशी कम्पनियों की क्रियाओं को नियमित करने के लिये विभिन्न प्रावधान बनाती है। विदेशी कम्पनियों को इन प्रावधानों का पालन करना होता है; जैसे- भारत सरकार ने विदेशी मुद्रा प्रबन्ध अधिनियम 1999 [Foreign Exchange Management Act (FEMA)], प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002, कम्पनी अधिनियम, 1956, कम्पनी अधिनियम 2013, आदि बनाये हैं जो विदेशी कम्पनियों की क्रियाओं को नियमित करते हैं।

(c) **आर्थिक व्यवस्था** (Economic System): विभिन्न देशों में अलग-अलग आर्थिक व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। किसी देश की अर्थव्यवस्था की आर्थिक व्यवस्था और उसमें आने वाले परिवर्तन उस अर्थव्यवस्था की व्यावसायिक इकाइयों को प्रभावित करते हैं। इतना ही नहीं, किसी एक देश की आर्थिक व्यवस्था में बदलाव का दूसरे देशों की व्यावसायिक इकाइयों पर भी प्रभाव पड़ता है। किसी देश की आर्थिक व्यवस्था निम्न में से कोई हो सकती है।

(i) पूंजीवाद (Capitalism): इसमें निजी क्षेत्र पर जोर दिया जाता है।

(ii) समाजवाद (Socialism): इसमें सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर दिया जाता है।

(iii) मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy): इसमें निजी व सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों पर जोर दिया जाता है।

आजकल समाजवाद से पूंजीवाद की ओर झुकाव बढ़ रहा है। इसलिये अर्थव्यवस्था में निजीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र: विनिवेश (Disinvestment) बढ़ रहा है। इसका अर्थव्यवस्था की विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों पर प्रभाव पड़ता है

■ 4.2 व्यापारिक चक्र की अवस्था (Stage of Business Cycle)

व्यापारिक चक्र की निम्न दशाएँ होती हैं:

(i) समृद्धि (Prosperity) (ii) तेजी (Boom) (iii) अवनति (Decline) (iv) मंदी (Depression) (v) पुनरुत्थान (Recovery)।

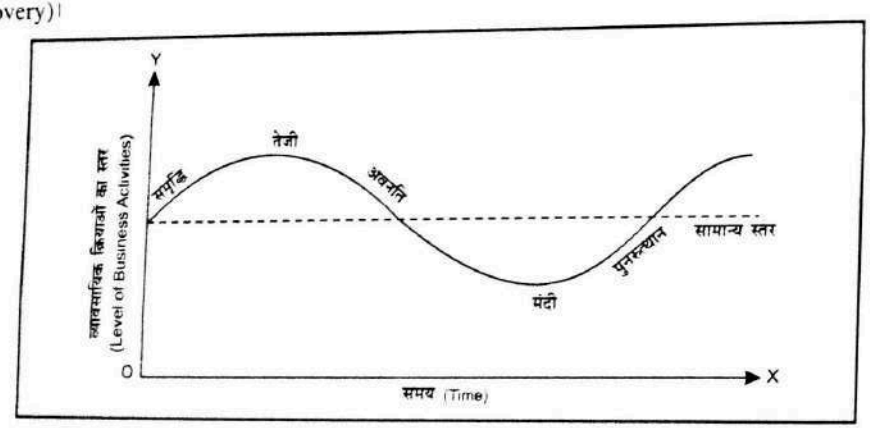

व्यापार चक्र की अवस्था किसी भी उद्यम के कार्य व लाभ को प्रभावित करती है। यदि अर्थव्यवस्था में तेजी (Boom) की स्थिति पाई जाती है, तो इससे माग बढ़ती है और व्यावसायिक इकाई की बिक्री बढ़ती है। इसी तरह मंदी (Depression) की स्थिति में माग में कमी आती है, और व्यावसायिक इकाई पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। अब वैश्वीकरण के कारण, एक देश में समृद्धि या तेजी की अवस्था, दूसरे देश को भी प्रभावित करती है। अब विश्व मंदी की अवस्था से धीरे-धीरे बाहर आ रहा है। पिछले कुछ वर्षों में कीमतों में गिरावट आयी है। न केवल कम्प्यूटर के, बल्कि विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक मदों, संचार के उपकरण, कार, वस्त्र, आदि की कीमतों में गिरावट आयी है। स्विट्जरलैण्ड, स्वीडन, चीन, हांगकांग, सिंगापुर, ब्राजील, अमेरिका आदि देशों में कीमतों में गिरावट आयी है। मंदी की स्थिति के कारण, बहुत से देश सकल घरेलू उत्पाद की लक्षित वृद्धि दर को प्राप्त करने में असफल रहे हैं। इस समय, बहुत से देश मांग की कमी, तथा अतिरिक्त उत्पादन क्षमता के कारण, अति-उत्पादन (Problem of Surplus Production) की समस्या का सामना कर रहे हैं। विभिन्न देश मंदी की दशा से छुटकारा पाने के लिये प्रयास कर रहे हैं। उदाहरण के लिये, भारतीय सरकार ने निर्माणी व सेवा क्षेत्र को

बहुत-सी रियायतें दी हैं। चीन ने भी कीमतों में और गिरावट को रोकने के लिये कीमत-नियन्त्रण किया है, ताकि मंदी की स्थिति से निपटा जा सके। वर्ष 2008-09 में आई वैश्विक मंदी के कारण पूरी विश्व अर्थव्यवस्था में माग का स्तर कम हो गया। यह मंदी 80 वर्ष पूर्व आई 1929 की महामंदी के बाद सबसे बुरी मंदी थी। वर्ष 2009-10 में, विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाएँ धीरे-धीरे मंदी के प्रभाव से बाहर आ रही थी। IMF द्वारा जारी एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2010-11 में विश्व उत्पादन में वृद्धि हुई। वर्ष 2011-12 में जब वैश्विक अर्थव्यवस्था आर्थिक मंदी से बाहर निकल रही थी तब यूरोक्षेत्रीय सार्वजनिक ऋण संकट की समस्या आ गयी। इससे वैश्विक निवेशकों के लिए अनिश्चितता का माहौल बन गया। इससे विश्व के विभिन्न देश कुप्रभावित हुए एवं मंदी की स्थिति उत्पन्न हो गई। वर्ष 2013-14 में वैश्विक अर्थव्यवस्था मंदी के प्रभाव से धीरे-धीरे बाहर आ रही है।

■ 4.3 विदेशी निवेश (Foreign Investment)

विदेशी निवेश का अभिप्राय 'एक राष्ट्र द्वारा किसी दूसरे राष्ट्र में किये गये निवेश' से है। यह निवेश सरकार द्वारा या निजी क्षेत्र द्वारा किया जा सकता है। आजकल विश्व के अधिकांश भाग में विदेशी निवेश के स्वतन्त्र प्रवाह से विदेशी निवेश का महत्व और भी बढ़ गया है। विदेशी निवेश निम्न दो प्रकार का होता है.

(1) **विदेशी प्रत्यक्ष निवेश** [Foreign Direct Investment (FDI)]: विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अभिप्राय विदेशी कम्पनियों द्वारा किसी अन्य देश (मेजबान देश) में पूर्ण स्वामित्व वाली कम्पनियाँ बनाने और उनका प्रबन्ध करने से है। इसके अंतर्गत प्रबन्ध करने के उद्देश्य से अंशों को खरीद कर अधिग्रहण (Acquire) की गई कम्पनी भी शामिल है। इस तरह के निवेश में उद्यम का पूरा जोखिम विदेशी निवेशक ही उठाता है और विदेशी निवेशक ही उद्यम के पूरे लाभ या हानि के लिए जिम्मेवार होता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का एक अन्य रूप विदेशी सहयोग है। विदेशी सहयोग में विदेशी और घरेलू उद्यमी मिलकर संयुक्त उद्यम (Joint venture) स्थापित करते हैं।

(2) **पोर्टफोलियो निवेश** (Portfolio Investment): इस तरह के निवेश में विदेशी निवेशक, विदेशी कम्पनियाँ या विदेशी संस्थागत निवेशक (Foreign Institutional Investors) किसी अन्य देश की कम्पनियों के अंशों या ऋणपत्रों में निवेश करते हैं। इस तरह के निवेश में विदेशी निवेशक इकाई का प्रबन्ध अपने हाथों में नहीं लेते बल्कि उस इकाई का प्रबन्ध एवं नियत्रण घरेलू देश पर ही छोड़ दिया जाता है। यदि यह निवेश ऋणपत्रों में किया जाए तो विदेशी निवेशक को एक निश्चित ब्याज मिलता है और यदि यह निवेश अंशों में किया जाए तो निश्चित लाभांश की कोई गारण्टी नहीं होती। इस प्रकार के निवेश में निवेशकर्ता कोई जोखिम नहीं उठाता तथा न ही प्रबन्ध में भाग लेता है।

■ 4.4 अंतर्राष्ट्रीय संगठन/संस्थाएं (International Organisations/Institutions)

वर्ष 1930 तक अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में, किसी न किसी रूप में स्वर्णमान (Gold Standard) प्रचलित था। इस व्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में स्वर्ण मुद्रा (Gold Currency) या ऐसी मुद्रा जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वर्ण में परिवर्तनशील हो, उसका प्रयोग किया जाता था। स्वर्णमान की कमियों के कारण इसे 1930 में अधिकतर देशों द्वारा बन्द कर दिया गया। स्वर्णमान के बन्द होने से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में रिक्तता आ गई। अधिकतर देशों ने यह अनुभव किया कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान के लिए उन्हें ऐसी संस्था की आवश्यकता है जो विभिन्न देशों की मुद्रा में विनिमय दर निर्धारित करे। ऐसे में, 1944 में यह निर्णय लिया गया कि सभी देशों के आर्थिक विकास के लिए दो संस्थाएं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) व विश्व बैंक की स्थापना की जाये। 1945 में IMF तथा विश्व बैंक की स्थापना की गयी। इसके कुछ वर्षों के बाद ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए 1947 में सीमा शुल्क और व्यापार पर सामान्य समझौते (General Agreements on Tariffs and Trade – GATT) की शुरुआत की गई। इस समझौते का मुख्य उद्देश्य सीमा शुल्क कम करके स्वतंत्र बाजार को बढ़ावा देना था। 1995 में गैट के स्थान पर विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की गई। अल्पविकसित देशों में व्यापार और विकास को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1964 में संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन (UNCTAD) की स्थापना की गई। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में निम्न मुख्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन कार्य कर रहे हैं:

- **(1) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund – IMF)**

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना 27 दिसम्बर, 1945 को हुई। IMF की स्थापना USA में ब्रेटन वुड्स सम्मेलन (Bretton Woods Conference) में हुई। इसकी स्थापना विश्व व्यापार के सन्तुलित विकास, अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग तथा सदस्य देशों के भुगतान शेष की अस्थायी असन्तुलन की समस्या को सुलझाने के उद्देश्य से की गई। मुद्रा कोष के सदस्य दो प्रकार के

होते है: (1) **मौलिक सदस्य** (Original Members) तथा (2) **साधारण सदस्य** (Ordinary Members)। वे सब देश जि... प्रतिनिधियों ने ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में भाग लिया था, कोष के मौलिक सदस्य कहलाते है। जो सदस्य दिसम्बर 1945 के पश्चात् स... उन्हें साधारण सदस्य कहा जाता है। 1945 में फड के 44 देश सदस्य थे। अब इसके सदस्यों की सख्या बढ़कर 188 हो गयी है।

● **(2) विश्व बैंक (World Bank)**

विश्व बैंक का उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध के फलस्वरूप नष्ट होने वाली अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण तथा अल्पविकसित दे... का आर्थिक विकास के लिये पूजी की व्यवस्था करना था। इस बैंक ने जून 1945 से अपना कार्य आरम्भ किया। विश्व बैंक का उद्दे... विभिन्न देशों को विकासात्मक कार्यों के लिए वित्त उपलब्ध करवाना तथा अतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि करना है। कोई भी देश जो मुद्रा को... का सदस्य है वह विश्व बैंक का भी सदस्य स्वत: ही बन जाता है। जिन देशों ने 31 दिसम्बर, 1945 को अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष... सदस्यता स्वीकार कर ली थी, वे सभी विश्व बैंक के मूल सदस्य (Founder Member) माने जाते हैं। इस समय विश्व बैंक के 1... देश सदस्य है। कोई भी देश विश्व बैंक को सूचना देकर इसकी सदस्यता त्याग सकता है। यदि कोई देश विश्व बैंक के नियमों का पा... नही करता तो उसे इसकी सदस्यता से हटाया जा सकता है।

● **(3) विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation)**

वर्ष 1947 में प्रशुल्क एवम् व्यापार सबधी सामान्य करार (गैट - GATT) शुरू किया गया। 1994 में उरुग्वे अधिवेशन... 124 गैट सदस्य देशो ने यह समझौता किया कि विदेशी व्यापार को बढावा देने के लिये टैरिफ् में कमी की जाये तथा गैर-टैरिफ बाध... को दूर किया जाये। इस समझौते में यह तय किया गया कि गैट के स्थान पर एक नया सगठन बनाया जाये। इस समझौत... परिणामस्वरूप गैट का स्थान विश्व व्यापार सगठन ने ले लिया। विश्व व्यापार सगठन ने 1 जनवरी, 1995 से अपना कार्य शुरू कि... यह एक अतर्राष्ट्रीय संगठन है, जो बहुपक्षीय व्यापार (बहुत देशो के मध्य व्यापार) को तथा स्वतन्त्र विश्व-व्यापार को बढ़ावा देत... इसके द्वारा टैरिफ-बाधाओ में कमी व निर्यात-प्रतिबधों की समाप्ति पर जोर दिया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य स्वतन्त्र विश्व-व्याप... निवेश को स्वतन्त्र प्रवाह, वस्तुओं व सेवाओं का सदस्य देशों के मध्य स्वतन्त्र व्यापार तथा बौद्धिक सपत्ति को पेटेन्ट द्वारा सुरक्षित क... है। अतर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष व विश्व बैंक के अलावा विश्व व्यापार सगठन भी एक बहुत महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संगठन है। इस स... विश्व व्यापार सगठन के 159 सदस्य देश हैं।

● **(4) संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन (अंकटाड)**

[United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD)]

विकासशील देशों के अतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए और आर्थिक विकास को तेज करने के लिए 1964 में अंक... की स्थापना सयुक्त राष्ट्र सघ (U.N.O.) द्वारा की गई। अब तक अंकटाड के 13 सम्मेलन हो चुके हैं। अंकटाड के मुख्य उद्देश्य... (i) विकासशील देशों के आर्थिक विकास में वृद्धि, (ii) विकासशील देशों के निर्यात में बढ़ोतरी, (iii) विकासशील देशों... विकास के लिए अधिक वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाना, (iv) अति-अल्पविकसित देशों के विकास के लिए विशेष कार्यक्रम चलाना।

■ 4.5 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते (International Trade Agreements)

समय-समय पर विदेशी व्यापार को ऐच्छित दिशा में निर्देशित करने के लिये विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापारिक समझौते किये ज... हैं। ये समझौते कुछ पड़ोसी देशों के मध्य, विभिन्न विकासशील देशों के मध्य या विकासशील व विकसित देशों के मध्य हो सकते हैं... समझौतों में विदेशी व्यापार से सबधित शर्तें तय की जाती हैं जो सभी सदस्य देशों को मान्य हो। इन समझौतों का उद्देश्य विदेशी व्य... को बढ़ाना व विदेशी व्यापार की रुकावटों को दूर करना है। मुख्य अतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते निम्नलिखित हैं:

(i) सामान्यकृत अधिमान व्यवस्था (Generalised System of Preferences — GSP): यह विकसित विकासशील देशो के मध्य व्यापारिक समझौता है। इसके द्वारा विकसित देश विकासशील देशों को विदेशी व्यापार विभिन्न टैरिफ व गैट-टैरिफ-रियायतें प्रदान करते है।

(ii) व्यापारिक अधिमानों की विश्व व्यवस्था (Global System of Trade Preferences — GSTP): यह विकासशील देशों के मध्य किया गया व्यापारिक-समझौता है। इसके द्वारा विकासशील देश अन्य विकासशील देशों विदेशी व्यापार पर टैरिफ व गैर-टैरिफ-रियायतें प्रदान करते है। GSTP के सदस्य देशों के मध्य व्यापार को दक्षिण-दक्षि... व्यापार (South-South Trade) भी कहते है।

(iii) प्रति-व्यापार समझौता (Counter-Trade Agreement): प्रति व्यापार ऐसा अनुबध है जिसमें निर्यात करने के लिए उसी मूल्य का आयात करना होता है। यह समझौता दो राष्ट्रों के बीच होता है जिसमें एक देश, दूसरे देश से इस शर्त पर आयात करता है कि दूसरा देश भी एक निश्चित समयावधि के अतर्गत पहले देश से बराबर मूल्य की वस्तुओं का आयात करेगा। इस तरह के अतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती और देश के भुगतान शेष पर कोई भार नही पड़ता। यह एक तरह का वस्तु विनिमय व्यापार (Barter Trade) है।

(iv) क्षेत्रीय आर्थिक समूह/क्षेत्रीय व्यापारिक समझौते (Regional Economic Groups/Regional Trade Agreements): क्षेत्रीय आर्थिक समूह एक तरह की आर्थिक एकीकरण व्यवस्था है जिसमें सदस्य देशों के साथ व्यापार के लिए उदार नियम बनाए जाते है। ये समझौते विकसित देशों के मध्य, विकासशील देशों के मध्य तथा विकसित व विकासशील देशों के मध्य हो सकते है। क्षेत्रीय आर्थिक समूहों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है: यूरोपियन यूनियन (EU), नाफटा (NAFTA), एसियन (ASEAN), सार्क (SAARC), एफ्टा (EFTA), ब्रिक्स (BRICS) आदि। वर्तमान में कुल विश्व व्यापार का एक तिहाई से भी अधिक व्यापार क्षेत्रीय व्यापारिक समझौतों द्वारा किया जाता है। वर्ष 2005 में इन समझौतों की सख्या 211 थी। जनवरी, 2014 के अत तक अधिसूचित (Notified) क्षेत्रीय व्यापारिक समझौतों की सख्या बढ़कर 583 हो गई, जिनमें से लगभग 377 समझौते क्रियाशील है। इन समझौतो का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय सदस्य देशों में आर्थिक सहयोग व व्यापार को बढ़ावा देना है।

● **निष्कर्ष (Conclusion)**

विभिन्न देशों के राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी, तकनीकी, सामाजिक-सास्कृतिक वातावरण तथा अतर्राष्ट्रीय समझौते, पूरे विश्व को प्रभावित करते है। कुछ अतर्राष्ट्रीय तत्त्व; जैसे- युद्ध, राजनीतिक तनाव, आतकवाद ने अतर्राष्ट्रीय शान्ति, व्यापार और विकास पर बुरा प्रभाव डाला है। सचार की सुविधाओं में हुआ तेजी से विकास, जैसे- इन्टरनेट, दूरसचार, विभिन्न देशों मे होने वाले फैशन शो, ब्यूटी कॉन्टेस्ट, अतर्राष्ट्रीय सास्कृतिक कार्यक्रम आदि से एक देश की सस्कृति का प्रभाव दूसरे देशों में जाने लगा है। यातायात के विकास से, MNC की बढ़ती भूमिका से, वैश्वीकरण से और अतर्राष्ट्रीय व्यापार के बढ़ने से पूरा विश्व छोटा होता प्रतीत हो रहा है। इन सभी कारणों से अतर्राष्ट्रीय व्यापार में, बदलते अतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन का महत्व बढ़ता जा रहा है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. **अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण से आप क्या समझते है? इसके अध्ययन की आवश्यकता की व्याख्या करें।**
   What do you mean by international business environment? Explain the need for studying international environment.
2. **अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण से आप क्या समझते हैं? अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के विभिन्न घटकों की व्याख्या करें।**
   What do you mean by international economic environment? Explain various components/constituents of international economic environment. (M.D.U. 2012)
3. **अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न घटकों की व्याख्या करें।**
   Explain various components of international business environment.
4. **व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक वातावरण पर टिप्पणी लिखें।**
   Write a note on international trading environment of business.
5. **अंतर्राष्ट्रीय वातावरण बहुराष्ट्रीय निगमों को कैसे प्रभावित करता है? व्याख्या करें।**
   Explain how international environment affects multinational corporations.

■ II. लघु उत्तर रूपी प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. **अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण से आपका क्या अभिप्राय है?**
   What do you mean by international business environment?
2. **बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रभावित करने वाले अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के विभिन्न संघटकों का नाम दें।**
   Name various components of international environment affecting MNCs.

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के ढंग/प्रारूप
(Modes of International Business)

■ 1. परिचय व अर्थ (Introduction and Meaning)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय मे प्रवेश करने के विभिन्न ढग हो सकते है। उपयुक्त ढग का चयन एक बहुत ही व्यूहरचनात्मक निर्णय है। क्योंकि इस निर्णय के दीर्घकालीन प्रभाव होते है। एक ओर तो कपनी स्वदेश मे सपूर्ण निर्माणी क्रियाएँ करके उत्पादो को विदेशो मे निर्यात कर सकती है। दूसरी तरफ, वैश्विक कपनी विदेशो मे निर्माणी क्रियाएँ करके उत्पादो को वही बेच सकती है। इन दो ढगो के बीच भी अनेक विकल्प है, जिनके द्वारा विदेशी बाजार मे प्रवेश किया जा सकता है। कोई भी देश अन्य देश की कपनी को अपनी सीमाओं मे प्रवेश नही करने देता, जब तक कि उसे स्वयं इससे कुछ लाभ प्राप्त न हो। इसके अलावा प्रवेश का एक ही ढग प्रत्येक विदेशी बाजार मे प्रवेश के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। वैश्विक कपनी को विभिन्न विदेशी बाजारो मे प्रवेश के लिए विभिन्न ढग अपनाने पडते है। अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के मुख्य ढग है: व्यापार रूट, अनुबधीय प्रवेश रूट, निवेश रूट। व्यापार रूट मे उत्पादो को अन्य देशो मे निर्यात करके विदेशी बाजार में प्रवेश लिया जाता है। अनुबधीय प्रवेश रूट में अमूर्त सपत्तियों (Intangible Assets); जैसे- पेटेन्ट, कॉपीराइट, टेक्नोलॉजी आदि का अन्य देशों में निर्यात किया जाता है। निवेश रूट मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश द्वारा विदेशो में सहायक कपनियाँ स्थापित की जाती हैं। विलयन व अधिग्रहण द्वारा विदेशों में व्यवसाय का प्रसार किया जाता है। अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के उचित प्रारूप का चयन विभिन्न घटकों पर निर्भर करता है; जैसे-कंपनी के पास उपलब्ध ससाधन, मेजबान देश अर्थात् जिस देश मे व्यवसाय फैलाया जाना है, वहाँ का घरेलू व्यावसायिक वातावरण, जोखिम स्तर, निवेश स्तर, मेजबान देश में उत्पादन के घटको की लागत (Factor Cost) आदि। विदेशी बाजार में प्रवेश के ढंग का चयन बहुत ही व्यूहरचनात्मक निर्णय है। प्रत्येक ढग प्रत्येक स्थिति में उपयुक्त नही होता। निवेश प्रारूप में अतिरिक्त पूँजी निवेश की जरूरत होती है। इसमें विदेशी बाजार पर पूर्ण नियंत्रण होता है, परतु इसमे जोखम स्तर बहुत अधिक होता है। दूसरी तरफ, व्यापार प्रारूप में अतिरिक्त पूँजी निवेश की आवश्यकता नही होती, इसमें जोखम स्तर कम होता है परतु इसमें विदेशी बाजार पर नियंत्रण कम होता है। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश के प्रत्येक प्रारूप के अपने गुण व दोष होते हैं। प्रवेश प्रारूप के चयन से पहले इसे प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों का गहन अध्ययन किया जाना चाहिए।

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के प्रवेश प्रारूप के चयन को प्रभावित करने वाले घटक
(Factors Affecting Selection of Entry Mode of International Business)

(1) **निगमित उद्देश्य** (Corporate Objectives): मूल कंपनी के उद्देश्य प्रवेश प्रारूप को प्रभावित करते हैं। यदि वैश्विक कंपनी उत्पादन क्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहती है तो इसे व्यापार रूट अपनाना चाहिए। यदि वैश्विक कपनी विदेशों में उपलब्ध सस्ते व बेहतर श्रम, अच्छी क्वालिटी के कच्चे माल, सस्ते कच्चे माल आदि का लाभ उठाना चाहती है, तो विदेशों में उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करना, अर्थात् निवेश रूट अपनाना बेहतर होगा। यदि विदेशी कंपनी के पास निवेश योग्य कोष (Investible Funds) अधिक हैं तो निवेश रूट को अपनाया जाएगा। यदि वैश्विक कंपनी के पास निवेश योग्य कोष कम हैं, तो व्यापार रूट अपनाया जाएगा।

(2) **मूल कंपनी के पास संसाधनों की उपलब्धता** (Availability of Resources with Parent Company): यदि वैश्विक कंपनी के पास विविध संसाधन; जैसे-वित्तीय संसाधन, भौतिक व मानवीय संसाधन, प्रबंध कौशल,

संस्थागत व ब्राड छवि अच्छी है, तकनीकी व अनुसधान विकास योग्यताएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, तो वैश्विक कपनी निवेश रूट अपना सकती है। परतु यदि इन संसाधनों का अभाव है तो व्यापार रूट बेहतर होगा।

(3) **मेजबान देश में वातावरणीय घटक** (Environmental Factors in the Host Nation): मेजबान देश अर्थात् जिस देश में व्यवसाय का प्रसार किया जाना है, वहाँ के व्यावसायिक वातावरणीय घटक भी प्रवेश ढंग को प्रभावित करते है। ये वातावरणीय घटक— राजनीतिक वातावरण, सास्कृतिक वातावरण, वैधानिक व नियमन वातावरण, आर्थिक वातावरण आदि हो सकते हैं। बाजार का आकार, आय स्तर, शिक्षा स्तर, लोगों की क्रय क्षमता, जीवन-स्तर आदि प्रवेश प्रारूप के चयन को बहुत प्रभावित करते है। इसी प्रकार मेजबान देश में भौतिक अधोसंरचना, बैंकिंग व बीमा संबधी सुविधाएँ, पोर्ट सुविधाएँ आदि भी प्रवेश प्रारूप को प्रभावित करती हैं। यदि मेजबान देश का व्यावसायिक वातावरण अच्छा है, तो निवेश रूट बेहतर होगा। मेजबान देश में बाजार का आकार विशाल होने पर निवेश रूट बहुत उपयुक्त होगा। परतु यदि मेजबान देश में बाजार का आकार छोटा है, तो व्यापार रूट उपयुक्त होगा। बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कपनियाँ चीन और भारत में प्रवेश के लिए निवेश प्रारूप को अपना रही है, क्योंकि यहाँ जनसख्या आकार अधिक होने के कारण माँग अधिक है। सरकार की नीतियाँ भी विदेशी निवेश को आकर्षित करती है। यदि किसी मेजबान देश में सरकार ने किसी विशेष उद्योग पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर प्रतिबध लगा रखा है तो उस उद्योग में निवेश रूट को नहीं अपनाया जा सकता। यहाँ व्यापार रूट ही अपनाना पड़ेगा।

(4) **उत्पादन घटकों की लागत** (Cost of Factors of Production): यदि मेजबान देश में उत्पादन के घटकों की लागत कम है, जैसे कि विकासशील देशों में श्रम लागत कम है तो बहुराष्ट्रीय कपनियाँ सस्ती श्रम लागत का लाभ उठाने के लिए वहाँ निवेश रूट अपनाकर उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करती है। इसी प्रकार यदि मेजबान देश में उच्च क्वालिटी का कच्चा माल कम लागत पर उपलब्ध है तो बहुराष्ट्रीय कपनियाँ ऐसे देशों में निवेश रूट अपना कर उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करती है। फिर यहाँ से उत्पाद मेजबान देश में बेचे जाते है तथा अन्य देशों में भी यहीं से उत्पाद निर्यात किए जाते है।

(5) **मेजबान देश में अधोसंरचना की उपलब्धता** (Availability of Infrastructure in Host Nation): यदि मेजबान देश में अधोसरचना संबधी सुविधाएँ, जैसे- सड़कें, रेलवे, समुद्री बदरगाहें, बैंक, वेयरहाऊस, विपणन मध्यस्थ आदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो निवेश रूट को प्राथमिकता दी जाती है; जैसे-बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कपनियों ने निवेश रूट अपना कर अपना उत्पादन आधार चीन में स्थापित किया है। क्योंकि वहाँ उच्च क्वालिटी की अधोसरचना सुविधाएं उपलब्ध हैं। यदि मेजबान देश में अधोसरचना सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नहीं हैं, तो निवेश रूट के स्थान पर अप्रत्यक्ष निर्यात रूट अपनाना होगा। इसमें विदेशी कपनी मेजबान देश के अंतिम उपभोक्ताओं को उत्पाद न बेच कर, वहाँ के विपणन मध्यस्थों को उत्पाद निर्यात करती है।

(6) **जोखिम का स्तर** (Level of Risk): यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के सभी प्रारूपों में जोखिम है, परतु फिर भी व्यापार रूट में जोखिम की मात्रा कम है, जबकि निवेश रूट में जोखिम की मात्रा अत्यधिक है। व्यापार रूट में भी प्रत्यक्ष निर्यातों में जोखिम की मात्रा अप्रत्यक्ष निर्यातों की तुलना में अधिक है। यदि मूल कंपनी की जोखिम वहन क्षमता अधिक है तब ही इसे निवेश रूट को अपनाना चाहिए।

3. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश के प्रारूप/ढंग/विधियाँ
(Modes/Dimensions of Entering into International Business)

अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश के विभिन्न प्रारूप निम्नलिखित हो सकते है:

(i) व्यापार प्रारूप (Trade Mode)

(ii) अनुबधीय प्रवेश प्रारूप (Contractual Entry Mode)

(iii) निवेश प्रारूप (Investment Mode)

इन प्रारूपों की चर्चा निम्नलिखित है:

■ 3.1 व्यापार प्रारूप (Trade Mode)

इसमें प्रत्यक्ष निर्यात, अप्रत्यक्ष निर्यात व प्रति-व्यापार शामिल है।

(1) **प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष निर्यात** (Direct and Indirect Export): प्रत्यक्ष निर्यात में विदेशी कपनी अपने एजेंटों के माध्यम से मेजबान देश में अंतिम उपभोक्ताओं (End Users) को सीधे (Directly) उत्पाद निर्यात करती है। निर्यातक स्वय निर्यात-व्यापार से जुड़े जोखिम का वहन करता है। औद्योगिक उत्पादों व बहुत महगे उत्पादों का निर्यात प्रत्यक्ष रूप से ही किया जाता है। अप्रत्यक्ष निर्यात में उत्पाद अंतिम उपभोक्ताओं को नहीं बल्कि मेजबान देश के विपणन मध्यस्थों को बेचा जाता है। ये विपणन मध्यस्थ निर्यात से जुड़े जोखिम का वहन करते है। कई बार ये उत्पाद निर्यात प्रबध कंपनी (Export Management Company) को बेच दिए जाते हैं। यदि ये निर्यात प्रबध कपनी कमीशन आधार पर कार्य करती है अर्थात् एजेंट की तरह उत्पाद बेचती है तो इसे प्रत्यक्ष निर्यात मे शामिल किया जाता है। परतु यदि यह कमीशन आधार पर कार्य न करके अपने ही नाम से विदेशी बाजार में उत्पाद बेचती है, जोखिम का वहन करती है, लाभ या हानि का वहन करती है अर्थात् स्वतंत्र रूप से कार्य करती है, न कि निर्यातक के एजेंट के रूप में, तो ऐसे व्यापार व्यवहार को अप्रत्यक्ष निर्यात में शामिल किया जाता है।

(2) **प्रति-व्यापार** (Counter Trade): प्रति-व्यापार ऐसा अनुबध है जिसमे निर्यात करने के लिए उसी मूल्य का आयात करना होता है। वह समझौता दो राष्ट्रों के बीच होता है जिसमें एक देश, दूसरे देश से इस शर्त पर आयात करता है कि दूसरा देश भी पहले देश से बराबर मूल्य की वस्तुओं का आयात करे। इस तरह के अतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती और देश के भुगतान शेष पर कोई भार नही पड़ता। यह एक तरह का वस्तु विनिमय व्यापार (Barter Trade) है। प्राचीन काल में विभिन्न देशों के बीच इसी तरह का व्यापार होता था, क्योंकि इसमे मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। समय के साथ मुद्रा का विकास हुआ और मुद्रा को विभिन्न व्यवहारों के विनिमय मे स्वीकार किया जाने लगा। मुद्रा के विकास से प्रति-व्यापार में और भी लोचशीलता आ गई। अब दो देशों के अतर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं का विनिमय एक ही समय पर होना अनिवार्य नही रहा। इससे प्रति-व्यापार का विकास हुआ। अब एक देश आयात करते समय, दूसरे देश पर एक निश्चित समय अवधि में उतने ही मूल्य की वस्तुओं को आयात करने की शर्त लगाता है। अतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रति-व्यापार आज भी प्रचलित है। बहुत से देश आपस मे प्रति-व्यापार समझौते करके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रति-व्यापार उन दशाओं में बहुत उपयोगी है जब देश के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा न हो।

● प्रति-व्यापार के प्रकार (Types of Counter Trade)

(i) **वस्तु विनिमय** (Barter Trade): यह प्रति-व्यापार का सबसे सरल प्रारूप है। इसमें दो देशों के मध्य, बिना नकद भुगतान के उत्पाद/सेवाओं का प्रत्यक्ष विनिमय होता है। यह एक ही समय में या एक निश्चित समय अवधि के अंदर दो अलग-अलग समय पर हो सकता है। कई बार एक देश को ऐसे उत्पाद भी आयात करने पड़ते हैं, जिनका आयातक देश के लिए विशेष महत्व नहीं होता। इसके अलावा, यदि इन दो विनिमय व्यवहारों में समय-अतराल अधिक है तो निर्यातक देश को हानि होती है क्योंकि इसे निर्यात के बदले प्रतिफल कुछ समय के बाद मिलेगा। अर्थात् निर्यातक देश आयातक देश को कुछ समय के लिए वित्तीय सहायता दे रहा है।

(ii) **प्रति-क्रय** (Counter Purchase): इसमें व्यावसायिक इकाई यह समझौता करती है कि यह जिस देश में अपना उत्पाद बेचेगी, उससे कुछ विशेष उत्पाद खरीदेगी। मान लो, एक अमेरिकन कपनी भारत में अपना उत्पाद बेचती है। भारत को इस कंपनी को अमेरिकन डॉलर के रूप में इसका भुगतान करना था, परंतु अमेरिकन कपनी इस भुगतान को नकद लेने के स्थान पर यह समझौता करती है कि यह निर्धारित समय में भारत से टैक्सटाइल खरीदेगी। इन दोनों व्यवहारों में मुद्रा का लेन-देन केवल लेखा-पुस्तकों में ही होता है। वास्तव में मुद्रा का आदान-प्रदान नहीं होता।

(iii) **ऑफ सेट** (Off Set): ऑफ सेट समझौते में उत्पाद निर्यात करने वाली इकाई इस बात पर सहमति करती है कि उत्पाद का निर्यात मूल्य नकद में न लेकर यह इसके बदले में निर्यात मूल्य के बराबर निर्धारित समय में कोई उत्पाद आयात करेगी। ऑफ सेट समझौता प्रति-क्रय समझौता ही है। अंतर केवल इतना है कि प्रति-क्रय में विशेष उत्पाद (Specific Goods) ही आयात किया जाता है, जबकि ऑफ सेट में उतने ही मूल्य का कोई अन्य उत्पाद भी आयात किया जा सकता है। अतः यह समझौता प्रति-क्रय समझौते की तुलना में अधिक लोचशील है।

(iv) **प्रतिफल** (Compensation): इस समझौते को क्रय-वापसी (Buy-Back) समझौता भी कहते हैं। इस समझौते में एक देश की व्यावसायिक इकाई अन्य देश में फैक्टरी स्थापित करने के लिए पूँजी या टेक्नोलॉजी या दोनों प्रदान करती है। इसके बदले में यह उस फैक्टरी के उत्पादन का एक निर्धारित प्रतिशत एक निश्चित समय अवधि में प्रतिफल के रूप में लेती है।

(v) **स्विच ट्रेडिंग** (Switch Trading): यह एक तरह का प्रति-क्रय समझौता है। इसमें निर्यातक को निर्यात के प्रतिफल के रूप में कुछ प्रति-क्रय क्रेडिट (Counter Purchase Credits) मिलते हैं। इसे निर्यातकर्ता किसी तृतीय पार्टी को हस्तांतरित कर सकता है। अर्थात् यदि निर्यातकर्ता स्वयं उत्पाद क्रय नहीं करना चाहता तो क्रेडिट का यह अधिकार वह किसी अन्य तृतीय पार्टी को या ट्रेडिंग हाउस को बेच सकता है। जैसे-मान लो भारत डेनमार्क को सॉफ्टवेयर निर्यात करता है तथा इसके प्रतिफल के रूप में इसे कुछ प्रति क्रय क्रेडिट मिलते हैं। इससे भारत एक निर्धारित मूल्य के डेनमार्क उत्पाद एक निर्धारित समय में क्रय कर सकता है। अब यदि भारत को डेनमार्क से उत्पाद आयात करने की आवश्यकता नहीं है तो भारत इस क्रेडिट को किसी ट्रेडिंग हाउस को बेच सकता है, जो डेनमार्क से उत्पाद खरीदना चाहता है। प्रायः ट्रेडिंग हाउस ये क्रेडिट कम कीमत (Discount) पर खरीदते हैं।

(vi) **चुकता लेन-देन समझौता** (Clearing Agreement): इस समझौते में निर्यातक व आयातक दोनों देशों के केंद्रीय बैंकों में चुकता लेन-देन खाता खोलते हैं। निर्यात व आयात बिना मुद्रा के आदान-प्रदान से होता है। निर्यातक को आयातक से सीधे कोई भुगतान नहीं मिलता। बल्कि उसे अपने देश के केंद्रीय बैंक से अपनी घरेलू मुद्रा में भुगतान प्राप्त होता है। दूसरी तरफ, आयातक आयात के लिए भुगतान निर्यातक को सीधे न करके अपने देश के केंद्रीय बैंक को अपने देश की मुद्रा में करता है। दोनों देशों के केंद्रीय बैंक चुकता लेन-देन गृह (Clearing House) के रूप में कार्य करते हैं।

■ 3.2 अनुबंधीय प्रवेश प्रारूप (Contractual Entry Mode)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश का यह प्रारूप अमूर्त संपत्तियों; जैसे-पेटेन्ट, टेक्नोलॉजी, प्रबंधकीय विशेषज्ञता (Managerial Expertise), कॉपीराइट आदि के निवेश के लिए किया जाता है। जब मूल कंपनी ने अनुसंधान व नवाचार से कोई नयी टेक्नोलॉजी या अन्य अमूर्त संपत्ति विकसित की है, तो यह कंपनी अपनी इसी नवाचारी टेक्नोलॉजी या अमूर्त संपत्ति के अनुसंधान संबंधी व्यय पूरे करने के लिए तथा इस पर लाभ अर्जित करने के लिए इस टेक्नोलॉजी को विदेश में बेच सकती है। इस प्रवेश प्रारूप को तकनीकी सहयोग (Technological Collaboration) भी कहते हैं। जो कंपनी टेक्नोलॉजी प्रदान करती है, वह इसके प्रतिफल के रूप में एकमुश्त राशि प्राप्त करती है या नियमित रूप से विक्रय पर रॉयल्टी प्राप्त करती है। यह समझौता एक निश्चित समय अवधि के लिए व किसी निर्धारित भौगोलिक क्षेत्र के लिए ही होता है। यह प्रारूप तब अपनाया जाता है जब विदेशी कंपनी मेजबान देश में अधिक पूँजी निवेश नहीं करना चाहती। इस प्रारूप में केवल तकनीकी कौशल ही निवेश किया जाता है, परंतु इसमें टेक्नोलॉजी रहस्यों को गुप्त नहीं रखा जा सकता। मेजबान देश में टेक्नोलॉजी का दुरुपयोग संभव है। तकनीकी सहयोग के विभिन्न प्रारूप—लाइसेंसिंग, फ्रेंचाइज़िंग, प्रबंधकीय अनुबंध, टर्नकी परियोजनाएँ आदि हैं।

(1) **लाइसेंसिंग व फ्रेंचाइज़िंग** (Licensing and Franchising): लाइसेंसिंग के अंतर्गत एक देश की व्यावसायिक इकाई दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई को अपनी बौद्धिक संपदा (Intellectual Property); जैसे- पेटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट आदि को प्रयोग करने का अधिकार किसी अन्य देश की व्यावसायिक इकाई को प्रदान करती है। लाइसेंस प्राप्त करने वाली व्यावसायिक इकाई (Licensee) लाइसेंस धारक व्यावसायिक इकाई (Licensor) को एक निश्चित समय-अवधि के लिए रॉयल्टी या फीस देती है। अधिकतर देशों में रॉयल्टी की यह दर विक्रय के 5 प्रतिशत से 8 प्रतिशत के मध्य होती है। लाइसेंसिंग समझौते से लाइसेंस धारक अपनी बौद्धिक संपदा का अधिकतम प्रयोग करके लाभ कमा सकता है। इसी तरह लाइसेंस प्राप्तकर्ता भी रॉयल्टी का भुगतान करके आधुनिकतम टेक्नोलॉजी का प्रयोग करके लाभान्वित हो सकता है। **फ्रेंचाइज़िंग** के अंतर्गत एक देश की व्यावसायिक इकाई (फ्रेंचाइज़र) किसी दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई (फ्रेंचाइज़ी - Franchisee) को विधिवत ढंग से व्यवसाय करने का अधिकार प्रदान करती है। इसमें फ्रेंचाइज़ी फ्रेंचाइज़र के ब्राड नाम से उत्पाद व सेवाएं बेच सकता है। कई बार फ्रेंचाइज़र कुछ मुख्य उपकरण व कलपुर्जे फ्रेंचाइज़ी को उपलब्ध करवाता है। कुछ दशाओं में फ्रेंचाइज़र दूसरे देश में डीलरों की नियुक्ति करता है। उदाहरण के लिए, सॉफ्ट ड्रिंक निर्माता, जैसे- पेप्सी, कोका कोला अपने उत्पाद का सिरप (Syrup) दूसरे देशों में फ्रेंचाइज़ी को उपलब्ध करवाते हैं। फ्रेंचाइज़र इकाई का अपना बोटलिंग प्लाट (Bottling Plant) होता है जहाँ वे इस सिरप से स्वयं सॉफ्ट ड्रिंक बनाकर बोतलों में पैक करके फ्रेंचाइज़र के ब्राड नाम से इसे बेचते हैं।

(2) **प्रबंधकीय समझौता** (Management Contracting): इस समझौते के अंतर्गत विदेशी कंपनी किसी अन्य देश में अपनी प्रबंधकीय एजेंसियाँ (Management Agencies) स्थापित करती है। इन प्रबंधकीय एजेंसियों की सहायता से यह अन्य देशों की व्यावसायिक इकाइयों में बिना अपनी पूँजी निवेश किए, इन्हें प्रबंधित करती है। अर्थात् इस समझौते में केवल प्रबंधकीय जानकारी ही उपलब्ध करवाई जाती है। इस सेवा के बदले विदेशी कंपनी घरेलू कंपनी से लाभ का कुछ प्रतिशत या एकमुश्त राशि फीस के रूप में लेती है।

(3) **टर्नकी परियोजनाएँ** (Turnkey Projects): इस समझौते में एक देश की व्यावसायिक इकाई किसी दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई के लिए पूर्ण प्लांट का निर्माण करने का समझौता करती है। जो व्यावसायिक इकाई प्लांट का निर्माण करती है, उसे लाइसेंसर (Licensor) कहते हैं। जिस व्यावसायिक इकाई को पूर्ण निर्मित प्लांट मिलना है उसे लाइसेंसधारी (Licensee) कहते हैं। जब परियोजना की प्रारंभिक अवस्था, कार्यात्मक अवस्था (Operational Stage) की तुलना में अधिक जटिल होती है तो ऐसी परिस्थिति में टर्नकी परियोजना समझौते किए जाते हैं। इन समझौतों में लाइसेंसर के पास प्लांट निर्माण संबंधी तकनीकी कौशल, ज्ञान तथा अनुभव होता है। इस सेवा के लिए लाइसेंसर या तो एकमुश्त राशि के रूप में या कुल परियोजना लागत का निर्धारित प्रतिशत प्रतिफल के रूप में लेता है। जब नयी परियोजना को शुरू करने के लिए लाइसेंसधारी के पास अनुभव व मुख्य तकनीक की कमी होती है तो यह समझौता लाइसेंसधारी के लिए भी लाभकारी होता है। इस परियोजना से लाइसेंसधारी विश्वस्तरीय आधुनिक डिजाइनों का लाभ उठा सकता है। लेकिन तकनीकी ज्ञान के अभाव के कारण लाइसेंसधारी की भविष्य में भी लाइसेंसर पर निर्भरता बनी रहती है।

■ 3.3 निवेश प्रारूप (Investment Mode)

इस प्रारूप में मेजबान देश में पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी (Wholly Owned Subsidiary) या आंशिक स्वामित्व वाली सहायक कंपनी स्थापित की जाती है। यह मेजबान देश में विद्यमान कंपनी के साथ विलयन या अधिग्रहण द्वारा भी स्थापित की जा सकती है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश की इस विधि का चयन तब किया जाता है जब मूल कंपनी के पास विशाल मात्रा में निवेश योग्य पूँजी है, प्रबंधकीय विशिष्टता है, जोखिम वहन क्षमता है। मेजबान देश में व्यावसायिक वातावरण अनुकूल है, बाजार आकार बहुत विशाल है, भौतिक अधोसंरचना सुविकसित है, सरकार का विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह के प्रति दृष्टिकोण अनुकूल है, सांस्कृतिक वातावरण अच्छा है, उत्पादन के घटक पर्याप्त मात्रा में व कम लागत पर उपलब्ध हैं। निवेश प्रारूप के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:

(1) **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश** (Foreign Direct Investment): विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का तात्पर्य विदेशी कंपनियों द्वारा भारत में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियाँ बनाने और उनका प्रबंध करने से है। इसके अंतर्गत प्रबंध करने के उद्देश्य से अंशों को खरीद कर ली गई कंपनी भी शामिल है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मुख्य विशेषता मेजबान देश में कंपनियों को अपने प्रबंध में लेना या मेजबान देश में प्रबंध के उद्देश्य से पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियाँ बनाना है। इस तरह के निवेश में उद्यम का पूरा जोखिम विदेशी निवेशक ही उठाता है और विदेशी निवेशक ही उद्यम के पूरे लाभ या हानि के लिये जिम्मेवार होता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का एक अन्य रूप विदेशी सहयोग (Foreign Collaboration) है। विदेशी सहयोग में विदेशी और घरेलू उद्यमी मिलकर संयुक्त उद्यम (Joint Venture) स्थापित करते हैं। यह विदेशी सहयोग वित्तीय सहयोग या तकनीकी सहयोग हो सकता है।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश समांतर (Horizontal) या लंबवत (Vertical) दिशा में हो सकती है। समांतर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में मूल कंपनी उसी के जैसे उत्पाद बनाने वाली कंपनी विदेश में स्थापित करती है; जैसे-यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी मूल देश में ऑटोमोबाइल बनाती है तथा अब यह विदेश में भी ऑटोमोबाइल बनाने के लिए सहायक कंपनी स्थापित करती है। लंबवत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में मूल कंपनी विदेश में आगतों या कल-पुर्जों/उपकरणों के पूर्तिकर्ता से सहयोग समझौता करती है। ऐसे सहयोग समझौते को पीछे की दिशा में लंबवत सहयोग समझौता (Backward Vertical Collaboration) कहते हैं। आगे की ओर लंबवत प्रत्यक्ष विदेशी सहयोग (Forward Vertical Collaboration) में मूल कंपनी विदेश में विपणन इकाइयों के साथ सहयोग समझौता करती है। इसमें उत्पादन क्रियाएँ तो मूल देश में ही की जाती हैं परंतु विपणन कार्य मेजबान देश में स्थित विपणन इकाई द्वारा किए जाते है।

(2) **विलयन एवं अधिग्रहण** (Mergers and Acquisitions): प्रवेश के इस प्रारूप में विदेशी कंपनी अन्य देश में विद्यमान व्यावसायिक इकाई के साथ विलयन या अधिग्रहण का समझौता करती है। यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से भिन्न है क्योंकि उसमें मेजबान देश में एक नयी कंपनी की स्थापना की जाती है। जबकि विलयन व अधिग्रहण में मूल कंपनी मेजबान देश में पहले से स्थापित व्यावसायिक इकाई के साथ गठबंधन का समझौता करती है। विलयन या अधिग्रहण समांतर (Horizontal), लंबवत (Vertical) या संमिश्र/पिंड (Conglomerate) हो सकता है। **समांतर विलयन** में एक जैसी व्यावसायिक क्रियाएँ करने वाली, एक जैसे उत्पाद बनाने वाली व्यावसायिक इकाइयाँ आपस में विलयन करती हैं; जैसे-ऑटोमोबाइल बनाने वाली एक इकाई अन्य ऑटोमोबाइल निर्माणी इकाई से मिलकर विलयन समझौता करती है। समांतर विलयन से उत्पादन के बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती है, प्रतिस्पर्धा में कमी आती है। स्थायी व्ययों में बचतें होती है, टेक्नोलॉजी व प्रबंध कौशल का बेहतर उपयोग हो पाता है। आगतों को अधिक मात्रा में इकट्ठा क्रय करने पर उन पर छूट (Discount) मिल जाती है। इससे उत्पादन लागत में कमी आती है। **लम्बवत विलयन** व अधिग्रहण में व्यावसायिक इकाई आगतों व कलपुर्जों के पूर्तिकर्ताओं से या विपणन इकाई से विलयन करती है। ऐसे विलयन से आगतों व कलपुर्जों की पूर्ति में अनिश्चितता समाप्त हो जाती है तथा विपणन क्रियाओं पर भी बेहतर नियंत्रण रहता है। **कांग्लोमेरेट/संमिश्र विलयन** (Conglomerate Merger) में विभिन्न तरह के उत्पाद बनाने वाली इकाइयाँ आपस में विलयन कर लेती हैं। इससे ये इकाइयाँ विविधीकरण (Diversification) द्वारा व्यावसायिक जोखिम को कम करती है। इससे विश्व में इस व्यावसायिक इकाई की छवि में सुधार आता है।

*[विलयन व अधिग्रहण, एकीकरण (Amalgamation) के रूप में या संविलयन (Absorption) के रूप में हो सकता है। **एकीकरण** का आशय दो या दो से अधिक कंपनियाँ, जो कि एक जैसे व्यवसाय में लगी हुई हों, के द्वारा आपस में मिलकर एक नई कंपनी बनाना है। यह नई कंपनी एकीकरण में शामिल होने वाली सब कंपनियों का व्यवसाय क्रय कर लेती है। एकीकरण की दो विशेषताएँ हैं– (i) विद्यमान कंपनियों का समापन तथा (ii) विद्यमान कंपनियों के व्यवसाय का क्रय करने के लिए एक नई कंपनी की स्थापना। इस प्रकार एकीकरण में विद्यमान कंपनियाँ विक्रेता (Vendor) होती हैं तथा नई कंपनी क्रेता (Purchaser) होती है। उदाहरण के लिए 'A Ltd.' तथा 'B Ltd.' दो कपनियाँ सिले-सिलाए वस्त्र में व्यापार करती हैं। यदि ये दोनों कंपनियाँ आपस में मिलकर एक होना चाहें तो इन दोनों का समापन हो जाएगा और इन्हें क्रय करने के लिए एक नई 'C Ltd.' बना ली जाएगी। **संविलयन** का आशय किसी सुदृढ़ विद्यमान कंपनी के द्वारा किसी अन्य कंपनी के व्यवसाय को क्रय करने से है। संविलयन की विशेषताएँ हैं: (i) कोई नई कंपनी स्थापित नहीं होती है, (ii) अवशोषित कंपनी (Absorbed Compoany) का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और अवशोषक कंपनी (Absorbing Company) का अस्तित्व बना रहता है। संविलयन में अवशोषित कंपनी विक्रेता होती है जबकि अवशोषक कंपनी क्रेता होती है।]*

(3) **व्यूहरचनात्मक गठबंधन** (Strategic Alliance): यह गठबंधन दो व्यावसायिक इकाइयों के मध्य किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है; जैसे-नवाचारी टेक्नोलॉजी के विकास के लिए साझी अनुसंधान व विकास इकाई स्थापित करना, साझे प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा दोनों व्यावसायिक इकाइयों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना, दोनों व्यावसायिक इकाइयों के ग्राहकों को विक्रय उपरांत सेवाएँ उपलब्ध करवाने के लिए साझा उपभोक्ता सेवा केंद्र (Common Customer Service Centre) स्थापित करना आदि। कई बार विदेशी बाजार में प्रवेश लेने के लिए व्यूहरचनात्मक गठबंधन किया जाता है। इसमें एक देश की व्यावसायिक इकाई अन्य देश की व्यावसायिक इकाई से यह गठबंधन करती है कि वह उसके बाजार क्षेत्र में प्रवेश करेगी। इस गठबंधन में दोनों इकाइयाँ अपने अस्तित्व को बनाए रखती हैं, एक दूसरे की क्रियाओं में कोई दखलअंदाजी नहीं करती, स्वामित्व में कोई हस्तांतरण नहीं होता। इसमें मेजबान देश में कोई सहायक कंपनी स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती। इस गठबंधन को रद्द करना बहुत ही सरल है क्योंकि इसमें न तो स्वामित्व का हस्तांतरण होता है और न ही कोई नयी विदेशी सहायक कंपनी की स्थापना की जाती है। यह किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है जिससे दोनों साझेदारों को लाभ होता है।

■ 4. व्यापार प्रारूप व निवेश प्रारूप की तुलना
(Comparison of Trade Mode and Investment Mode)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश लेने के दो मुख्य ढंग व्यापार ढंग व निवेश ढंग है। इन दोनों ढंगों के सापेक्षिक गुण व दोष हैं, परंतु प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्रारूप को अग्रलिखित कारणों से व्यापार प्रारूप की तुलना में अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

- **निवेश रूट के व्यापार रूट की तुलना में गुण (Advantages of Investment Route over Trade Route)**

(1) **टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं की समाप्ति** (Overcoming Tariff and Non-tariff Barriers): जब व्यापार रूट द्वारा विदेशी बाजार में प्रवेश लिया जाता है तो उसमें टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं का सामना करना पड़ता है; जैसे-आयात कर, आयात कोटा, आयात लाइसेंस, आदि। परंतु जब प्रत्यक्ष विदेशी निवेश रूट में मेजबान देश में सहायक कंपनी स्थापित करके उत्पादन कार्य मेजबान देश में किए जाते है, तो टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ स्वतः ही समाप्त हो जाती है। कुछ देशों में आयात कर की दर बहुत अधिक होती है। ऐसे में व्यापार प्रारूप बिल्कुल भी उचित नहीं है, क्योंकि आयातित उत्पादों की कीमत बहुत ज्यादा हो जाती है, जिस कारण आयातित उत्पाद मेजबान देश के घरेलू उत्पादों से प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में निवेश ढंग बहुत उपयुक्त है।

(2) **सस्ते स्थानीय संसाधनों के लाभ** (Benefits of Cheap Local Resources): प्रत्यक्ष विदेशी निवेश रूट से मेजबान देश के सस्ते उत्पादक घटकों (Cheap Factor Cost) का लाभ उठाया जा सकता है। प्रायः विकसित देशों में स्थापित बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, विकासशील व अल्पविकसित देशों में उपलब्ध सस्ते कच्चे माल व सस्ती श्रम लागत का लाभ उठाने के लिए वहाँ उत्पादन-आधार स्थापित करती है। परंतु यदि व्यापार रूट से विदेशी बाजार में प्रवेश लिया जाता है, तो मेजबान देश के सस्ते स्थानीय संसाधनों का लाभ उठाना संभव नहीं होता है। बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, विशेषकर सूचना तकनीकी क्षेत्र में संलग्न कंपनियाँ भारत में अपना उत्पादन आधार स्थापित कर रही है ताकि भारत में कम वेतन पर उपलब्ध कुशल मानव संसाधनों (इंजीनियरों) से उत्पादन लागत को कम किया जा सके।

(3) **परिवहन लागत में कमी** (Saving in Transportation Cost): व्यापार रूट से विदेशी बाजार में प्रवेश लेने पर तैयार माल को विदेशी बाजार तक ले जाने में परिवहन लागत देनी पड़ती है। विदेशी बाजार में दूरी अधिक होने के कारण परिवहन लागत बहुत अधिक होती है; जैसे- जहाज भाड़ा लागत, रास्ते में बीमा-व्यय, परिवहन में समय की व्यर्थता आदि। परंतु निवेश रूट अपना कर परिवहन व्ययों को न्यूनतम किया जा सकता है। यदि मेजबान देश में उच्च क्वालिटी का कच्चा माल उपलब्ध है तो उत्पादन-आधार मेजबान देश में स्थापित करना बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है। इससे मेजबान देश में उपलब्ध कच्चे माल का प्रयोग करके तैयार माल को मेजबान देश में बेचा जाता है। इससे कच्चे माल व तैयार माल दोनों के ही परिवहन व्यय न्यूनतम हो जाते है। इससे तैयार माल के वितरण-व्यय भी न्यूनतम हो जाते हैं क्योंकि मेजबान देश में निर्मित तैयार माल को उसी देश में ही बेचा जाता है।

(4) **पोलीसेंट्रिक दृष्टिकोण के लाभ** (Benefits of Polycentric Approach): निवेश रूट अपनाकर विभिन्न विदेशी बाजारों में वहाँ की स्थानीय आवश्यकताओं, पसंद, रुचि, प्राथमिकताओं, क्रय क्षमता आदि को ध्यान में रखकर विभेदात्मक उत्पाद (Differentiated Product) बनाकर विभिन्न राष्ट्रीय बाजारों में उपभोक्ता संतुष्टि स्तर को बढ़ाया जा सकता है। निवेश रूट में विभिन्न विदेशी बाजारों में अलग-अलग उत्पादन केंद्र स्थापित किए जा सकते है। विभिन्न देशों में स्थापित सहायक इकाइयाँ स्थानीय कर्मचारियों की नियुक्ति करती है। स्थानीय कर्मचारी स्थानीय बाजार

...दशाओं, पसंद, स्वाद, रुचि, प्राथमिकता, क्रेता-व्यवहार, विपणन मध्यस्थ व्यवहार आदि से भली-भाँति परिचित हो... विपणन रणनीतियाँ अपना कर ग्राहक संतुष्टि स्तर... है अतः विभिन्न विदेशी बाजारों के लिए उचित विभेदात्मक विपणन रणनीतियाँ अपना कर ग्राहक संतुष्टि स्तर को बढ़ाया जा सकता है, जैसे-ऑटोमोबाइल कंपनी टोयोटा ने निवेश रूट अपना कर विभिन्न देशों में अपने उत्पादन केंद्र स्थापित किए हैं, ताकि स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार के ऑटोमोबाइल बनाए जा सकें। संपूर्ण विश्व में एक ही उत्पादन केंद्र से उत्पाद बेचने से वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करना बहुत मुश्किल हो जाता है। बढ़ती वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सफलतापूर्वक सामना करने हेतु यह आवश्यक है कि पोलीसेन्ट्रिक दृष्टिकोण अपना कर विभिन्न देशों में निवेश रूट अपना कर उत्पादन केंद्र व विपणन केंद्र स्थापित किए जाएँ, जो स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन व विपणन कार्यक्रम चलाएँ। पोलीसेन्ट्रिक दृष्टिकोण निवेश रूट से, जबकि एथनोसेंट्रिक दृष्टिकोण व्यापार रूट से बेहतर ढंग से चलाया जा सकता है।

(5) जोखिम विविधीकरण (Risk Diversification): निवेश प्रारूप में उत्पादन केंद्र विश्व के विभिन्न देशों में स्थापित किए जाते हैं इससे देश संबंधी जोखिम व राजनीतिक जोखिम विभिन्न देशों में बट जाता है। जबकि व्यापार रूट में उत्पादन केंद्र केवल मूल देश में ही आधारित होता है। अतः मूल देश में कोई प्राकृतिक आपदा आने पर उत्पादन केंद्र व व्यावसायिक इकाई पर बहुत कुप्रभाव पड़ता है। अतः जोखिम विविधीकरण के लिए निवेश प्रारूप अधिक बेहतर है।

(6) राजनीतिक संबंधों में सुदृढ़ता (Strengthens Political Ties): निवेश प्रारूप में मूल देश व मेजबान देश के मध्य राजनीतिक संबंधों में सुदृढ़ता आती है। मेजबान देश में सहायक इकाई स्थापित करने से वहाँ विदेशी निवेश के अन्तर्प्रवाह में वृद्धि होती है, रोजगार सृजन होता है। विदेशी निवेश के अन्तर्प्रवाह से विदेशी मुद्रा के अंतर्प्रवाह में भी वृद्धि होती है। इससे इसकी भुगतान शेष स्थिति में सुधार आता है। दूसरी ओर, व्यापार रूट में मेजबान देश मूल देश के उत्पाद का आयात करता है, इससे विदेशी मुद्रा का बाहरी प्रवाह बढ़ता है, इससे भुगतान शेष की स्थिति पर कुप्रभाव पड़ता है। व्यापार रूट में मेजबान देश में रोजगार सृजन भी नहीं होता। अतः मेजबान देश भी विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह अर्थात् निवेश प्रारूप को बढ़ावा देता है। अतः निवेश प्रारूप से मूल देश व मेजबान देश में राजनीतिक संबंध सुदृढ़ होते हैं।

(7) दीर्घकालीन प्रवेश (Long-term Entry): यदि वैश्विक इकाई मेजबान देश में दीर्घकाल के लिए प्रवेश लेना चाहती है, तो निवेश प्रारूप अधिक उपयुक्त है। क्योंकि व्यापार प्रारूप में टैरिफ व गैर-टैरिफ नीतियाँ दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रहतीं। टैरिफ व गैर-टैरिफ नीतियों में प्रतिकूल परिवर्तन व्यापार रूट को कुप्रभावित करता है।

● **निवेश रूट की सीमाएँ (Limitations of Investment Route)**

(i) प्रायः विकसित देश की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विकासशील या अल्पविकसित देशों में अपनी सहायक कंपनियाँ स्थापित करती हैं जिससे वहाँ की सस्ती श्रम लागत का लाभ उठाया जा सके। प्रारंभ में तो मेजबान देश की सरकार इन विदेशी कंपनियों को बहुत प्रोत्साहन देती है, क्योंकि इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों से मेजबान देश भी लाभावित होता है। परंतु जब मेजबान देश की अपनी अर्थव्यवस्था विकसित होने लगती है, तो मेजबान देश की सरकार का इन **विदेशी कंपनियों के प्रति दृष्टिकोण सख्त** व नकारात्मक होने लगता है। इन पर बहुत से प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं। मेजबान देश की सरकार इन्हें समय-समय पर विस्तृत सूचनाएँ व जानकारी देने को कहती है। (ii) कई बार मेजबान देश की **स्थानीय जनता** व सामाजिक संगठन भी इन **विदेशी कंपनियों के विरुद्ध आवाज** उठाने लगते हैं। इससे इनके व्यावसायिक कार्यों में बाधा उत्पन्न होने लगती है। इससे मेजबान देश में सहायक कंपनी की स्थिति बहुत खराब हो जाती है। (iii) सहायक कंपनी **मेजबान देश में रोजगार सृजन करती है, न कि मूल देश** में। इससे मेजबान देश में आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है। वहाँ उत्पादन क्रियाओं, रोजगार सृजन, निर्यात आदि को बढ़ावा मिलता है, भुगतान शेष स्थिति में सुधार होता है। जबकि व्यापार रूट में उत्पादन क्रियाएँ मूल देश में होती हैं रोजगार अवसर भी मूल देश में ही बढ़ते हैं। निर्यात भी मूल देश के ही बढ़ते हैं।

● **व्यापार रूट के निवेश रूट की तुलना में गुण (Advantages of Trade Route over Investment Route)**

निम्न कारणों से व्यापार रूट को निवेश रूट की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है:

(1) बड़े पैमाने की बचतें (Economies of Scale): व्यापार रूट में उत्पादन क्रियाएँ मूल देश में केंद्रित रहती हैं। वहाँ से अतिरिक्त उत्पादन को अन्य देशों में निर्यात किया जाता है। अतः मूल देश में उत्पादन बहुत ही बड़े स्तर पर किया जाता है। इससे बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती है, उत्पादन लागत में कमी आती है, श्रम विभाजन (Division of Labour) व विशिष्टीकरण के लाभ (Benefits of Specialisation) प्राप्त होते हैं। कई बार ये लाभ इतने अधिक होते हैं कि टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं के अतिरिक्त बोझ (Additional burden) व परिवहन लागत के अतिरिक्त व्यय को भी पीछे छोड़ देते हैं। अतः यदि बड़े पैमाने की बचतें, व्यापार रूट की रुकावटों (टैरिफ, गैर-टैरिफ बाधाओं व परिवहन लागत) से अधिक है तो व्यापार रूट निवेश रूट से अधिक बेहतर होगा।

(2) कम संसाधनों की आवश्यकता (Need Lesser Resources): व्यापार रूट में निवेश रूट की तुलना में कम संसाधनों, विशेषकर कम पूँजी की आवश्यकता होती है। उत्पादन क्रियाएँ केवल मूल देश में ही केंद्रित होती है। अतः कम पूँजी निवेश, कम प्रबंध कौशल की आवश्यकता होती है, समन्वय स्थापित करने में अधिक मुश्किल नहीं आती। अतः यदि वैश्विक इकाई के पास संसाधन कम मात्रा में उपलब्ध है तो व्यापार-रूट निवेश-रूट से अधिक बेहतर है।

(3) सर्वव्यापी उत्पादों के लिए उपयुक्त (Suitable for Universal Products): कुछ उत्पाद सर्वव्यापी होते है, अर्थात् संपूर्ण वैश्विक बाजार में लगभग एक जैसा उत्पाद बेचा जाता है, जैसे-केलकुलेटर (Calculator), घड़ियाँ, प्रिंटर आदि। ऐसे सर्वव्यापी उत्पादों को एक ही उत्पादन केंद्र पर निर्मित किया जा सकता है। अर्थात् एथनोसेंट्रिक उत्पादन दृष्टिकोण अपना कर एक ही उत्पादन केंद्र पर उत्पाद बनाकर, इन्हें अन्य देशों में निर्यात किया जा सकता है। इसके अलावा, जब उत्पाद बहुत भारी नहीं (Not bulky) है, तब भी उत्पादन क्रियाओं को केंद्रित किया जा सकता है। क्योंकि कम भारी उत्पादों में परिवहन लागत अधिक नहीं होती। औद्योगिक उत्पादों व अन्य उत्पादों, जिनकी माँग कम होती है; जैसे-एयरक्राफ्ट, हेलीकॉप्टर, समुद्री जहाज, महंगे सुरक्षा उपकरण (Defence Equipments), आदि की दशा में भी उत्पादन क्रियाओं को केंद्रित किया जाता है। यहाँ व्यापार रूट अपना कर इन उत्पादों को एक ही उत्पादन केंद्र से निर्यात किया जाता है। ऐसे उत्पादों की दशा में विभिन्न देशों में निवेश रूट लाभप्रद नहीं होगा, क्योंकि इन उत्पादों की माँग कम होने के कारण विभिन्न स्थानों पर उत्पादन केंद्र स्थापित करना व्यावहारिक नहीं होगा।

(4) मेजबान देश में अनिश्चित व्यावसायिक वातावरण (Unpredictable Business Environment in Host Nation): यदि मेजबान देश का व्यावसायिक वातावरण विभिन्न कारणों; जैसे-राजनीतिक अस्थिरता, कानूनी व्यवस्था का कमजोर होना, सांप्रदायिक दंगे, अस्थिर सरकारी नीतियों आदि के परिणामस्वरूप अनिश्चित है, तथा इसका पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन है, तो ऐसी स्थिति में निवेश रूट का अपनाना उपयुक्त नहीं है। इसके अलावा यदि वैश्विक कंपनी मेजबान देश के सांस्कृतिक वातावरण से भली-भाँति परिचित नहीं है, तो निवेश रूट अपनाना अनुपयुक्त होगा।

(5) अल्पकाल हेतु प्रवेश (Entry for Short Period): यदि वैश्विक इकाई मेजबान देश में अल्पकाल के लिए ही प्रवेश करना चाहती है, तो व्यापार रूट को अपनाया जाता है; जैसे-यदि मूल देश की अर्थव्यवस्था में आर्थिक मंदी का वातावरण है, अतः अल्पकाल के लिए घरेलू देश के अतिरिक्त उत्पादन को अन्य देशों में बेचा जाना है तो व्यापार रूट बेहतर होगा।

(6) बंद करने में सरलता (Easy Exit): व्यापार रूट को बंद करना बहुत सरल है क्योंकि इसमें मेजबान देश में कोई उत्पादन इकाई स्थापित नहीं की जाती। जब भी वैश्विक कंपनी मेजबान देश से व्यावसायिक संबंध समाप्त करना चाहती है, तो इसमें कोई कठिनाई नहीं आती। जबकि निवेश प्रारूप में मेजबान देश से व्यावसायिक संबंध समाप्त करने के लिए वहाँ स्थापित सहायक कंपनी का समापन करना पड़ता है, जो बहुत ही जटिल प्रक्रिया है।

(7) टेक्नोलॉजी पर नियंत्रण (Control over Technology): व्यापार रूट में टेक्नोलॉजी संबंधी रहस्य गुप्त रहते हैं। मेजबान देश में इनका दुरुपयोग संभव नहीं होता, क्योंकि उत्पादन क्रियाएँ मूल देश में ही केंद्रित होती है। मूल कंपनी का नवाचारी टेक्नोलॉजी पर नियंत्रण बेहतर होता है, परंतु निवेश प्रारूप में उत्पादन क्रियाएँ मेजबान देश में स्थापित सहायक कंपनी में की जाती हैं। जिससे टेक्नोलॉजी संबंधी रहस्य गुप्त नहीं रहते। इनका मेजबान देश में दुरुपयोग होना संभव होता है।

(8) रोजगार सृजन (Employment Generation): व्यापार रूट में उत्पादन क्रियाएँ मूल देश में केंद्रित होती हैं। इस मूल देश में रोजगार सृजन को बढ़ावा मिलता है। जबकि निवेश रूट में उत्पादन क्रियाएँ मेजबान देश में की जाती है इससे रोजगार सृजन भी मेजबान देश में ही होता है। अतः यदि मूल देश में बेरोजगारी की समस्या है, तो व्यापार रूट मूल देश के लिए बेहतर होगा।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि व्यापार रूट व निवेश रूट दोनों के ही सापेक्षिक गुण व दोष हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में दोनों प्रारूप ही प्रचलित हैं। वर्तमान स्थिति में, वैश्वीकरण व उदारीकरण की विचारधारा बहुत प्रचलित हो रही है, जिस कारण टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ बहुत कम होती जा रही हैं। अतः ऐसी स्थिति में व्यापार रूट का भी बहुत महत्व है। इसके साथ-साथ उदारीकरण व वैश्वीकरण की बढ़ती प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए अधिकतर देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त किया जा रहा है। विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह को बढ़ावा देने के लिए उन्हें मेजबान देशों में बहुत से प्रोत्साहन दिए जा रहे हैं। अतः बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अन्य देशों में उपलब्ध उच्च क्वालिटी के कच्चे माल व सस्ती श्रम लागत से लाभांवित होने के लिए वहाँ निवेश रूट अपना कर सहायक कंपनियाँ स्थापित कर रही हैं; जैसे-विकसित देशों की कंपनियाँ चीन व भारत में उपलब्ध सस्ते श्रम से आकर्षित होकर निवेश रूट अपना कर यहाँ सहायक कंपनियाँ स्थापित कर रही हैं।

व्यापार रूट व निवेश रूट के अलावा विदेशी व्यवसाय में प्रवेश के अन्य प्रारूप केवल विशेष उद्देश्य के लिए ही किए जाते हैं जैसे-तकनीकी सहयोग केवल उसी दशा में किया जाता है, जब एक देश की व्यावसायिक इकाई केवल टेक्नोलॉजी का ही अन्य देश में निवेश करना चाहती है। इस दशा में मूल कंपनी अपनी नवाचारी टेक्नोलॉजी अन्य देश में उपलब्ध करवा कर तकनीकी फीस, रॉयल्टी कमाती है। व्यूहरचनात्मक गठबंधन भी एक विशेष उद्देश्य के लिए ही होता है। इस तरह अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश के सर्वाधिक प्रचलित प्रारूप दो ही हैं और वे हैं—निवेश प्रारूप व व्यापार प्रारूप।

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण में जोखिम

(Risk in International Business Environment)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण विभिन्न आंतरिक व बाहरी घटकों से प्रभावित होता है। ये घटक स्थिर नहीं होते, बल्कि इनमें निरंतर परिवर्तन आता रहता है। इन बदलते घटकों के साथ व्यवसाय को कई अवसर प्राप्त होते है तथा कई अनिश्चितताओं व चुनौतियों का सामना भी करना पड़ता है। व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यवसाय के प्रबंधक इन बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपनी नीतियों, योजनाओं व कार्यक्रमों को शीघ्रता से बदल दें ताकि प्राप्त अवसरों का लाभ उठाया जा सके तथा जोखिम के कुप्रभाव को न्यूनतम किया जा सके। प्रभावकारी जोखिम-प्रबंध द्वारा व्यवसाय के जोखिम का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है तथा इसके अनुसार व्यवसाय को ढाला जा सकता है जिससे व्यवसाय के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता मिल सके।

■ 1. व्यावसायिक जोखिम का अर्थ (Meaning of Business Risk)

व्यावसायिक जोखिम का अर्थ अनिश्चितताओं के कारण व्यवसाय में अपर्याप्त लाभ अथवा हानि की संभावना से है। व्यावसायिक जोखिम विभिन्न प्रकार के होते हैं तथा ये अनेक घटकों द्वारा प्रभावित होते हैं। व्यावसायिक वातावरण के घटकों में प्रतिकूल परिवर्तनों के कारण व्यवसाय में जोखिम उत्पन्न होता है। इससे व्यवसाय के उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है। व्यावसायिक जोखिम के विभिन्न प्रारूप हो सकते हैं। जैसे-तकनीकी विकास के कारण वर्तमान प्लांट अप्रचलित हो सकते हैं। इसी तरह सरकार द्वारा आर्थिक नीति में किए गए अकस्मात परिवर्तन के कारण व्यावसायिक इकाई को चुनौती का सामना करना पड़ सकता है; जैसे-किसी उत्पाद विशेष पर प्रतिबंध, उत्पाद पर कर की दरों में वृद्धि, उत्पाद पर अनुदान (सब्सिडी) या छूट में कमी, उदार आयात आदि उत्पाद की बिक्री पर कुप्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार बाजार में सुदृढ़ प्रतियोगी इकाई का प्रवेश, बाहरी आक्रमण, राजनीतिक अस्थिरता, कर्मचारियों द्वारा हड़ताल, घरेलू या वैश्विक अर्थव्यवस्था में मंदी आदि से व्यावसायिक जोखिम उत्पन्न होते हैं। इस तरह व्यावसायिक जोखिम से व्यवसाय में हानि की संभावना बनी रहती है। व्यवसाय में हानि की संभावना को ही जोखिम कहते हैं। जोखिम को हानि कहना गलत होगा क्योंकि जोखिम हानि नहीं, बल्कि हानि की संभावना होता है।

■ 2. व्यावसायिक जोखिम की परिभाषाएँ (Definitions of Business Risk)

(i) **कीथ डेविस** के अनुसार, **''व्यावसायिक जोखिम शब्द का प्रयोग, अंकेक्षकों व प्रबंधकों द्वारा, अनिश्चित वातावरण के संस्था के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में पड़ने वाले संभावित दुष्प्रभाव से है।''** (Business risk is a concept used by auditors and managers to express concern about the probable material effects of an uncertain environment on achieving established objectives. **–Keith Davis**)

(ii) **आर्थर एम. वैमर** के अनुसार, **''व्यावसायिक जोखिम का तात्पर्य व्यावसायिक वातावरण के आंतरिक या बाहरी घटकों मे आए ऐसे प्रतिकूल परिवर्तन से है, जो व्यावसायिक उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करते है।''** (Business risk can be defined as any unfavourable change in internal or external component of business environment which may pose threat in achieving business objectives. **–Arthur M. Weimer**)

(iii) **बेयर्ड ओ. वीलर** के अनुसार, **''व्यावसायिक जोखिम का तात्पर्य किसी व्यावसायिक उपक्रम के प्रत्याशित परिणामों की प्राप्ति में अनिश्चितता से है।''** (Business risk refers to uncertainty associated with the expected outcomes for a business venture. **–Bayard O. Wheeler**)

(iv) **दर्शम व पायर्स** के अनुसार, **''व्यावसायिक जोखिम का तात्पर्य व्यावसायिक इकाई द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त न कर सकने की संभावना से है।''** (Business risk refers to the possibility that a business unit will not be able to accomplish its established goals. **–Dursham and Pierce**)

(v) **पीटर एफ.ड्रकर** के अनुसार, **''व्यावसायिक जोखिम का तात्पर्य विभिन्न आंतरिक व बाहरी घटकों के परिणामस्वरूप व्यवसाय द्वारा अनुमानित लाभों को प्राप्त करने में अनिश्चितता की मात्रा से है।''** (Business risk is the degree of uncertainty in realising expected future returns of the business resulting from various internal and extrogenous factors. **–Peter F. Drucker**)

(vi) **सी.ओ.हार्डे** के अनुसार, **''लागत, हानि या क्षति के संबंध में अनिश्चितता को जोखिम कहते है।''** (Risk may be defined as uncertainty in regard to cost, loss or damage. **–C.O. Hardy**)

संक्षेप में, किसी भी व्यवसाय में जोखिम को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता। परन्तु उपयुक्त जोखिम प्रबंध रणनीति द्वारा इसके कुप्रभाव को कम किया जा सकता है तथा इससे प्रतिस्पर्धात्मक लाभ भी प्राप्त हो सकते है। अतः प्रत्येक व्यावसायिक इकाई को उचित समय पर सभावित जोखिम की प्रकृति व इसके कारणों को समझ कर उचित रणनीति द्वारा इसके ऋणात्मक प्रभाव को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

■ 3. व्यावसायिक इकाइयों में जोखिमों के प्रकार (Types of Risks in Business Units)

व्यावसायिक जोखिम विभिन्न प्रकृति व विभिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकते है। इसके मुख्य प्रकार निम्नलिखित है

- **(1) आंतरिक जोखिम (Internal Risk)**

व्यावसायिक उपक्रम में अकस्मात व अप्रत्याशित घटनाओं के परिणामस्वरूप आंतरिक जोखिम उत्पन्न होते है। आंतरिक जोखिम के मुख्य प्रकार इस तरह है: हड़ताल या तालाबंदी का होना, वित्तीय संकट, व्यावसायिक इकाई की संपत्ति नष्ट होना, जैसे-आग लगने से, चोरी, दुर्घटना आदि होने से व्यावसायिक संपत्ति की हानि, व्यवसाय की मशीनरी या उपकरण अचानक खराब हो जाना, कर्मचारियों या अफसरों द्वारा की गयी जालसाजी, मुख्य कर्मचारियों द्वारा दिया गया इस्तीफा आदि।

- **(2) कार्यात्मक/व्यष्टि या सूक्ष्म स्तरीय जोखिम (Operating/Micro-Level Risk)**

व्यवसाय के सूक्ष्म/कार्यकारी वातावरण में अकस्मात परिवर्तन के कारण कार्यकारी जोखिम उत्पन्न होते है। इसके मुख्य प्रकार निम्नलिखित है:

(i) **आगतों की पूर्ति में बाधा** (Disruption in Supply of Inputs): एक ही पूर्तिकर्ता पर निर्भरता के कारण या ट्रांसपोर्टरों द्वारा अचानक हड़ताल के कारण विभिन्न आगतो जैसे-कच्चा माल, ईंधन, उपकरणों, कलपुर्जों आदि की पूर्ति में बाधा आ सकती है। इसी तरह किसी प्राकृतिक आपदा जैसे-बाढ़, भूकम्प आदि के घटित होने से भी आगतो की पूर्ति में बाधा उत्पन्न हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया में रुकावट आ जाती है।

(ii) **प्रतिस्पर्धा में वृद्धि** (Increase in Competition): किसी बड़ी प्रतियोगी इकाई का प्रवेश भी व्यावसायिक जोखिम का कारण बन सकता है। सरकार द्वारा अपनायी गयी उदार वैश्वीकरण नीति के परिणामस्वरूप किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी का प्रवेश घरेलू इकाइयों के लिए जोखिम उत्पन्न कर सकता है। इससे बाजार का बड़ा हिस्सा इन बहुराष्ट्रीय इकाइयों की ओर आकर्षित हो जाता है। इससे कई छोटी व्यावसायिक इकाइयाँ तो बंद ही हो जाती हैं। इसी तरह यदि लघु औद्योगिक इकाइयों के लिए आरक्षित मदों को बड़ी औद्योगिक इकाइयों के लिए खोल दिया जाता है, तो बड़ी औद्योगिक इकाइयों का प्रवेश लघु इकाइयों के लिए घातक सिद्ध होता है। उदाहरण के लिए संगठित परचून विक्रेता (Organised Retailer);

जैसे-रिलायंस फ्रेश, बिग-बाजार, मोर, इजी-डे, स्पेन्सर, वी०-मार्ट आदि के प्रवेश से लघु असंगठित परचून विक्रेताओं (Small Unorganised Retailers) पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है।

(iii) **उपभोक्ताओं की रुचि, स्वाद, प्राथमिकताओं आदि में परिवर्तन** (Change in Likings, Tastes Preferences of Consumers): आज के युग में उपभोक्ता बाजार का केंद्रीय बिंदु है। यदि उपभोक्ताओं की रुचि व प्राथमिकताओं में अचानक परिवर्तन आ जाता है, तो इससे हमारे उत्पाद की माँग में तीव्र कमी आ सकती है। यदि व्यावसायिक इकाई ने केंद्रित बाजार विभक्तीकरण रणनीति (Concentrated Market Segmentation Strategy) को अपना रखा है अर्थात् व्यावसायिक इकाई केवल एक विशेष बाजार-खंड के लिए ही उत्पाद बनाती है तो उस एकल बाजार-खंड के उपभोक्ताओं की रुचि में परिवर्तन व्यावसायिक इकाई के लिए भयंकर चुनौती उत्पन्न कर सकता है।

(iv) **बाजार मध्यस्थों से संबंधित समस्या** (Problem with Market Intermediaries): बाजार मध्यस्थों में विपणन एजेन्सियाँ, निर्यात प्रबंध कंपनियाँ, वित्तीय मध्यस्थ, भौतिक मध्यस्थ आदि शामिल हैं। यदि व्यावसायिक इकाई व बाजार मध्यस्थों के बीच कोई समस्या उत्पन्न हो जाती है, तो वे व्यावसायिक इकाई के लिए काम करना बंद कर देते हैं व प्रतियोगी इकाइयों के लिए काम करने लग जाते हैं। इससे व्यावसायिक इकाई के कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है।

(v) **जन सामान्य की नाराजगी** (Public Resentment): यदि किसी कारणवश स्थानीय जनता हमारे उत्पाद से असंतुष्ट हो जाती है तो वे लोग हमारे उत्पाद की बुराई करने लग जाते हैं। जनता का यह रोष विभिन्न कारणों जैसे- हमारे उत्पाद द्वारा वातावरण प्रदूषण, लेबोरेट्री रिपोर्ट में हमारे उत्पाद के उपभोक्ता के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभाव या रोशनी पड़ने आदि के परिणामस्वरूप हो सकता है। यदि जनता में हमारे उत्पाद के प्रति रोष लंबे समय तक रहे, तो हमारी व्यावसायिक इकाई बंद भी हो सकती है।

● **(3) सामान्य वातावरण संबंधी जोखिम/समष्टि स्तरीय जोखिम**
(General Environment Risk/Macro-Level Risk)

व्यवसाय के समष्टि वातावरण के विभिन्न सघटकों में अकस्मात परिवर्तन के परिणामस्वरूप यह जोखिम उत्पन्न होता है। इसके मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:

(i) **आर्थिक जोखिम** (Economic Risk): यह जोखिम आर्थिक दशाओं, सरकारी नीतियों, आर्थिक अधिनियमों आदि में परिवर्तन आने से उत्पन्न होता है। कर दरों में वृद्धि, अनुदानों या रियायतों में कमी, नए अधिनियमों व प्रावधानों के पारित होने आदि से व्यवसाय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। आर्थिक स्थितियाँ जैसे-मंदी, पूँजी निर्माण की धीमी गति, सरकारी बजट में बड़ा घाटा, मुद्रा फैलाव की तेज दर, अवमूल्यन, कमजोर वित्तीय संस्थाएँ आदि व्यावसायिक इकाई के विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

(ii) **राजनीतिक जोखिम** (Political Risk): यह जोखिम मुख्यतया राजनीतिक अस्थिरता के कारण उत्पन्न होता है। राजनीतिक अस्थिरता के कारण सरकारी नीतियों, सरकार के दृष्टिकोण, अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों, केंद्र-राज्य-संबंध आदि में असंभावित परिवर्तन आते रहते हैं। इससे व्यावसायिक इकाइयों के लिए अनिश्चितता बनी रहती है। इसके अलावा अफसरशाही, रिश्वतखोरी, नियमों की अधिकता, पारदर्शिता का अभाव, धीमी न्यायिक प्रक्रिया आदि भी व्यवसाय में बाधा उत्पन्न करते हैं। राजनीतिक जोखिम विदेशी पूँजी के अंतरप्रवाह को भी कुप्रभावित करता है। विदेशी निवेशक ऐसे देशों में निवेश करना पसंद नहीं करते, जिनमें आतंकवादी हमले, साम्प्रदायिक दंगे, सरकारी नीतियों में अत्यधिक परिवर्तन व सत्ता में अत्यधिक परिवर्तन आदि होते रहते हैं।

(iii) **तकनीकी जोखिम** (Technological Risk): यह जोखिम प्रौद्योगिकीकरण में तीव्र परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। तीव्र तकनीकी विकास से वर्तमान मशीनें अप्रचलित हो जाती हैं। जैसे-यदि नयी तकनीक से उच्च क्वालिटी के उत्पाद और वह भी कम कीमत पर बनाए जा सकते हैं तो इससे परंपरागत तकनीक का प्रयोग करने वाले व्यावसायिक इकाइयाँ अपना बाजार अंश खो सकती हैं। क्योंकि उनके उत्पादों की लागत अधिक तथा क्वालिटी निम्न होती है।

(iv) **प्राकृतिक जोखिम** (Natural Risk): यह जोखिम अनिश्चित प्राकृतिक आपदाओं के कारण उत्पन्न होता है। इन प्राकृतिक आपदाओं जैसे-बाढ़, सूखा, भूकम्प, सुनामी, भू-फिसलन (Land-slides), समुद्री तूफान, बादलों का फटना, हिमस्खलन (Avalanche), बिजली गिरना, आदि पर व्यावसायिक इकाइयों का कोई नियंत्रण नहीं होता। इनसे व्यावसायिक इकाइयाँ कुछ समय के लिए बंद भी हो जाती हैं।

(v) **वैश्विक जोखिम** (Global Risk): यह जोखिम वैश्विक बाजार में परिवर्तन, अंतर्राष्ट्रीय समझौतों, अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटकों, अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संकट आदि के कारण उत्पन्न होता है। बढ़ते वैश्वीकरण व विभिन्न देशों में व्यावसायिक इकाइयों की बढ़ती परस्पर-निर्भरता के कारण वैश्विक जोखिम का प्रभाव अत्यधिक गंभीर हो जाता है; जैसे-वर्ष 2008-09 में अमेरिका में आयी वित्तीय मंदी तथा वर्ष 2011-12 व 2012-13 में आए यूरोपियन ऋण संकट ने विश्वभर की व्यावसायिक इकाइयों को कुप्रभावित किया।

(vi) **सामाजिक व सांस्कृतिक जोखिम** (Social and Cultural Risk): सामाजिक व सांस्कृतिक घटकों में परिवर्तनों के कारण भी व्यवसाय का जोखिम बढ़ता है। इसमें जन-सामान्य के दृष्टिकोण, आदतों, प्राथमिकताओं, रीति-रिवाजों, जीवन-शैली, विश्वास, सोच आदि में परिवर्तन शामिल है। बढ़ते वैश्वीकरण व शहरीकरण के कारण विभिन्न देशों व शहरों के लोगों के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ रहा है, इससे सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन आते हैं। यद्यपि इन घटकों में परिवर्तन बहुत धीमी गति से आते हैं तथापि ये व्यावसायिक इकाइयों को प्रभावित करते हैं।

■ 4. देशीय जोखिम व राजनीतिक जोखिम (Country Risk and Political Risk)

बड़ी व्यावसायिक इकाइयाँ अपने घरेलू देश के देशीय व राजनीतिक जोखिम विश्लेषण के अलावा उन दूसरे देशों के देशीय व राजनीतिक जोखिम का भी निरंतर विश्लेषण करती हैं, जिनमें वे निवेश करती हैं या निवेश करने की योजना बना रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विभिन्न देशों के देशीय जोखिम व राजनीतिक जोखिम का निरंतर विश्लेषण करती रहती हैं ताकि वे यह निर्धारित कर सकें कि किस देश में निवेश सर्वाधिक लाभप्रद रहेगा। देशीय-जोखिम अधिक व्यापक शब्द है, जिसमें आर्थिक जोखिम व राजनीतिक जोखिम भी शामिल हैं। देशीय जोखिम व्यवसाय को प्रायः समष्टि स्तर (Macro-level) पर प्रभावित करता है, अर्थात् यह देश की सभी व्यावसायिक इकाइयों को या देश में किसी विशेष उद्योग की सभी व्यावसायिक इकाइयों को प्रभावित करता है। राजनीतिक जोखिम समष्टि स्तर पर या व्यष्टि/सूक्ष्म स्तर (Micro-level) पर हो सकता है। सूक्ष्म स्तरीय राजनीतिक जोखिम किसी विशेष परियोजना से संबंधित होता है। अर्थात् यह किसी विशेष क्षेत्र में किसी विशेष व्यावसायिक इकाई को ही प्रभावित करता है। समष्टि स्तरीय राजनीतिक जोखिम सामान्य प्रकृति का होता है। यह किसी बड़े क्षेत्र की सभी व्यावसायिक इकाइयों को या बड़े क्षेत्र में किसी विशेष उद्योग की सभी व्यावसायिक इकाइयों को प्रभावित करता है।

■ 4.1 देशीय जोखिम (Country Risk)

देशीय जोखिम का तात्पर्य विश्व के अन्य देशों के किसी विशेष देश के प्रति सोच-विचार/दृष्टिकोण से है। यह सोच घरेलू संस्थाओं/निवासियों की सोच से भिन्न भी हो सकती है। यह जोखिम प्रायः समष्टि स्तर पर होता है। यह किसी देश में निवेश से संबंधित जोखिम को दर्शाता है। यह जोखिम उस देश की व्यावसायिक इकाइयों की लाभदायकता और संपत्ति के मूल्यों को कुप्रभावित करता है। इसमें राजनीतिक जोखिम के अलावा आर्थिक व वित्तीय जोखिम भी शामिल हैं। यह निम्न कारणों से उत्पन्न होता है:

(i) देश में फैले आतंकवादी हमले, दंगे-फसाद, गृह युद्ध।

(ii) राजनीतिक अस्थिरता।

(iii) चारों ओर फैला भ्रष्टाचार।

(iv) अफसरशाही से संबंधित बाधाएँ; जैसे-अनावश्यक कागजी कार्यवाही, नियमों की अधिकता, लालफीताशाही, पारदर्शिता का अभाव आदि।

(v) आर्थिक नीतियों में बदलाव।

(vi) खराब औद्योगिक संबंध।

(xii) करों की दरों में वृद्धि।

(xiii) मजदूर श्रम कानून व कामचोरी की प्रवृत्ति।

(ix) सरकारी बजट में बड़ा घाटा।

(x) मुद्रा फैलाव की अधिक दर।

(xi) अवमूल्यन, सख्त मुद्रा नियंत्रण।

(xii) कमजोर वित्तीय व विपणन संस्थाएँ।

(xiii) धीमी न्यायिक व्यवस्था।

(xiv) पड़ोसी देशों से खराब संबंध।

(xv) कमजोर आधारभूत संरचना, जैसे ऊर्जा की कमी, कुशल परिवहन, कानून व न्यायिक व्यवस्था का अभाव।

(xvi) खराब मौसम, जैसे अत्यधिक गर्मी या ठंड, प्रतिकूल भौगोलिक दशाएँ इत्यादि।

उपर्युक्त घटकों को ध्यान में रखते हुए कुछ अंतर्राष्ट्रीय क्रेडिट रेटिंग एजेंसियाँ विभिन्न देशों के देशीय जोखिम का अनुमान लगाती है। विदेशी निवेशक विदेशों में निवेश करते समय इन अनुमानित आँकड़ों को ध्यान में रखते है। किसी भी देश की सरकार को ऐसा प्रयत्न करने चाहिए जिससे देशीय जोखिम को कम किया जा सके ताकि विदेशी निवेश आकर्षित हो तथा देश के आर्थिक विकास को बढ़ावा मिले।

■ 4.2 राजनीतिक जोखिम (Political Risk)

सरकार की राजनीतिक नीतियों के परिणामस्वरूप व्यावसायिक इकाइयों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। प्राय राजनीतिक अस्थिरता के कारण सरकार की नीतियों, विचारधारा, अन्य राष्ट्रों से संबंधों, केंद्र राज्य संबंधों आदि में परिवर्तन आता रहता है, जैसे अफसरशाही से संबंधित बाधाएँ, अत्यधिक कानूनी प्रावधान जिससे उनका सही अर्थ जानना कठिन हो जाए, पारदर्शिता का अभाव, भ्रष्टाचार, धीमी न्यायिक प्रक्रिया आदि। ये सभी राजनीतिक जोखिम में शामिल है। राजनीतिक जोखिम विदेशी निवेश के अंतरप्रवाह में बहुत बड़ी बाधा है। विदेशी निवेशक ऐसे देश में निवेश करना पसंद नहीं करते जिनमें अस्थिर सत्ताधारी सरकार के कारण सरकार की नीतियों में निरंतर परिवर्तन आता रहता है, जिससे व्यावसायिक इकाइयों के लिए अनिश्चितता बनी रहती है। राजनीतिक जोखिम मुख्यतया दो प्रकार का होता है:

(1) समष्टि स्तरीय राजनीतिक जोखिम (Macro-Level Political Risk): **यह बड़े भौगोलिक क्षेत्र में** सभी व्यावसायिक इकाइयों को या बड़े क्षेत्र में किसी विशेष उद्योग की सभी व्यावसायिक इकाइयों को प्रभावित करता है। यह निम्न घटकों के कारण उत्पन्न हो सकता है:

(a) राजनीतिक अस्थिरता (Political Instability): कुछ देशों में निरंतर राजनीतिक परिवर्तन आते रहते है, जिससे देश की आर्थिक नीतियों, सरकार के दृष्टिकोण, विदेशी उपक्रमों के प्रति सोच, पड़ोसी राष्ट्रों से संबंधों आदि में निरंतर परिवर्तन आते रहते है। इससे व्यावसायिक इकाइयों के लिए अनिश्चितता का वातावरण बना रहता है। वे अनिश्चित नीतियों के कारण दीर्घकालीन निवेश योजनाएँ नहीं बना सकतीं।

(b) अफसरशाही संबंधी बाधाएँ (Bureaucratic Hurdles): नियमों व प्रावधानों की अधिकता, लालफीताशाही, पारदर्शिता का अभाव, अत्यधिक कानूनी औपचारिकताएँ आदि निवेशकों के विश्वास को कम करती है।

(c) सर्वव्यापी भ्रष्टाचार (Widespread Corruption): नियमों व प्रतिबंधों की अधिकता व राजनीतिक संकल्प (Political Will) का अभाव भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते है। व्यावसायिक इकाइयों को बिना कारण के सरकारी अफसरों व नेताओं को रिश्वत देनी पड़ती है। ऐसे में विदेशी निवेशक इस देश में पूँजी निवेश करने में हिचकिचाते हैं।

(d) कमजोर कानून व न्यायिक व्यवस्था (Poor Law and Order Situation): यदि किसी देश में आतंकवादी हमले, साम्प्रदायिक दंगे, विदेशी आक्रमण, गृह युद्ध, सेना द्वारा जबरन सत्ता पर कब्जा (Coups) आदि होते रहते है तो व्यावसायिक इकाइयाँ उस देश में निवेश करने से घबराती है।

(e) अन्य घटक (Other Factors)

(i) धीमी न्यायिक प्रक्रिया

(ii) अवमूल्यन व अत्यधिक मुद्रा नियंत्रण

(iii) किसी राष्ट्र द्वारा ऋण वापसी में त्रुटि

(iv) अधिनियमों के लागूकरण में त्रुटियाँ/कमियाँ

(v) राष्ट्रीयकरण का निरंतर भय

(2) सूक्ष्म स्तरीय राजनीतिक जोखिम (Micro-Level Political Risk): यह जोखिम किसी विशेष परियोजना से संबंधित होता है। यह जोखिम किसी विशेष उद्योग को या किसी विशेष व्यावसायिक इकाई को या किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में सभी औद्योगिक इकाइयों को प्रभावित करता है। यह जोखिम, जन सामान्य का किसी विशेष व्यावसायिक परियोजना के प्रति रोष या किसी राजनीतिक पार्टी के विरोध के कारण हो सकता है। जैसे पश्चिम बंगाल में नैनो कार परियोजना के प्रति रोष या किसी राजनीतिक पार्टी के विरोध के कारण हो सकता है। जैसे पश्चिम बंगाल में नैनो कार परियोजना का वहाँ की सामान्य जनता व स्थानीय राजनीतिक पार्टी द्वारा सख्त विरोध किया गया था। जिससे पश्चिम बंगाल में नैनो कार बनाने वाली निर्माणी इकाई बंद हो गयी तथा इसे बंगाल की जगह गुजरात में लगाया गया।

विदेशी निवेशकों के वैश्विक निवेश निर्णयों को प्रभावित करने में देशीय जोखिम व राजनीतिक जोखिम महत्त्वपूर्ण तत्व है। देशीय व राजनीतिक जोखिम को संपूर्णतया (In absolute terms) नहीं मापा जा सकता। लेकिन विभिन्न संभावित निवेश स्थानों में देशीय व राजनीतिक जोखिम का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। घरेलू निवेशकों व विदेशी निवेशकों का देशीय तथा राजनीतिक जोखिम के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग हो सकता है। भारत के संदर्भ में जोखिम का अभिप्राय, "विश्व के अन्य देशों का भारत में निवेश करने संबंधी, उनके दृष्टिकोण से है।" विश्व बैंक ने विश्व व्यावसायिक वातावरण सर्वेक्षण (World Business Environment Survey) में यह पाया कि भारत के देशीय व राजनीतिक जोखिम के मुख्य तत्व: भ्रष्टाचार, अफसरशाही बाधाएँ, कमजोर अधोसंरचना, सामाजिक व राजनीतिक तनाव आदि है।

■ 5. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम के कारण/तत्त्व/संघटक

(Causes/Factors Affecting/Components of Risk in International Business)

घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम अधिक होता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में, एक व्यावसायिक इकाई अन्य देशों में कार्य करती है। इन अन्य देशों में मूल देश की तुलना में सांस्कृतिक आयाम जैसे भाषा, रिवाज, फैशन, कार्यशैली, सोच, आदर्शवाद, मूल्य-व्यवस्था (Value-System) आदि में काफी अंतर हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से संबंधित सरकारी नीतियाँ, जैसे टैरिफ नीति, विदेशी निवेश नीति, कराधान नीति आदि में विभिन्न देशों में अत्यधिक अंतर पाया जाता है। इसके अलावा, मेजबान देश के निवासियों व सामाजिक संगठनों का विदेशी उपक्रमों के प्रति दृष्टिकोण ठीक नहीं होता। वे उन्हें घरेलू अर्थव्यवस्था में जबरदस्ती घुसे हुए उपक्रम मानते है। अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण का विश्लेषण घरेलू व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन की तुलना में कहीं अधिक जटिल है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम के मुख्य कारण/संघटक निम्नलिखित है:

(1) सांस्कृतिक विभिन्नताएँ (Cultural Diversities): विभिन्न देशों के सांस्कृतिक चरों, जैसे भाषा, सोच-विचार, रीति-रिवाज, कार्यशैली, धर्म, मूल्य प्रणाली आदि में बहुत विभिन्नता होती है। अत: विभिन्न देशों में सांस्कृतिक आयामों का अध्ययन बहुत जटिल हो जाता है। इसके अलावा किसी एक देश के अंदर भी विभिन्न उप-संस्कृतियाँ (Sub-cultures) पाई जाती हैं। अत: राष्ट्रीय आधार पर संस्कृति का विश्लेषण (Country to Country Cultural Analysis) बहुत मुश्किल हो जाता है। विभिन्न देशों व एक ही देश के भीतर भी सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण उपभोक्ताओं का क्रय-व्यवहार एक समान नहीं होता। यदि अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई मेजबान देशों के

सांस्कृतिक वातावरण के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करने में त्रुटि करती है, तो इसे अत्यधिक जोखिम का सामना करना पड सकता है। यहाँ तक कि इसे बद करने की नौबत भी आ सकती है।

(2) **राजनीतिक अस्थिरता** (Political Instability): कुछ देशों में अत्यधिक राजनीतिक बदलाव आते रहते है। इससे आर्थिक नीतियों, सरकार के विदेशी उपक्रमों के प्रति दृष्टिकोण व सोच में निरतर परिवर्तन आता रहता है। अत: वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों को मेजबान देशों में राजनीतिक अस्थिरता के जोखिम का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक अस्थिरता के कारण व्यावसायिक इकाइयाँ दीर्घकालीन व्यावसायिक योजनाएँ नहीं बना सकतीं।

(3) **लंबी भौगोलिक दूरी** (Long Geographical Distances): वैश्विक कंपनियों की सहायक कंपनियाँ कई देशों में होती है। कुछ बडी बहुराष्ट्रीय कपनियाँ 150 से भी अधिक देशों में अपने उत्पाद बेचती हैं। मूल कंपनी व सहायक कपनियों के मध्य अत्यधिक भौगोलिक दूरी के कारण इनके मध्य समन्वय की समस्या आती है। इससे वैश्विक व्यावसायिक इकाई का जोखिम बढ़ जाता है।

(4) **प्रशासनिक बाधाएँ** (Bureaucratic Hurdles): अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में अत्यधिक प्रशासनिक रुकावटों का सामना करना पड़ता है। जैसे- लालफीताशाही, पारदर्शिता का अभाव, अत्यधिक कागजी कार्यवाही आदि। विभिन्न मेजबान देशों में प्रशासनिक औपचारिकताएँ बहुत जटिल हो सकती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सरकारी विभागों से मंजूरी लेने के लिए कई बार बहुत बड़ी राशि में रिश्वत भी देनी पडती है।

(5) **तकनीकी चोरी** (Technological Piracy): अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में मूल कंपनी मेजबान देश में स्थापित सहायक कपनियों को नवाचारी टेक्नोलॉजी, पेटेंट, कॉपीराइट, आदि हस्तातरित करती है, परंतु ऐसा संभव है कि इन नवाचारी तकनीकी कुशलताओं का मेजबान देश में दुरुपयोग किया जाए। कई मेजबान देशों में पेटेंट अधिनियम, कॉपीराइट अधिनियम अधिक सख्त नहीं होते, जिसके परिणामस्वरूप इनकी चोरी हो जाती है।

(6) **विनिमय दर में उतार-चढ़ाव** (Fluctuations in Exchange Rate): अतर्राष्ट्रीय बाजार में विनिमय दरों में कभी भी उतार-चढ़ाव आ सकता है। यदि इसमें प्रतिकूल परिवर्तन होता है, तो इससे अतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों पर नकारात्मक प्रभाव हो सकता है। यदि मेजबान देश की घरेलू करेंसी के मूल्य में गिरावट (Depreciation in Domestic Currency of Host Nation) आती है, तो इससे मूल कपनी के लाभों में कमी आ जाती है।

(7) **सरकारी नीतियों में प्रतिकूल परिवर्तन** (Unfavourable Change in Government Policies): मूल देश या मेजबान देश की सरकारी नीतियों में कभी भी प्रतिकूल परिवर्तन हो सकता है; जैसे- टैरिफ नीति, आयात/निर्यात कोटा, कराधान नीति, विदेशी निवेश नीति में प्रतिकूल परिवर्तन बहुराष्ट्रीय कंपनी के लाभों को कुप्रभावित करते हैं। इन कंपनियों को हमेशा सरकारी नीतियों में प्रतिकूल परिवर्तन के जोखिम का सामना करना पड़ता है, जिस कारण ये दीर्घकालीन योजनाएँ नहीं बना सकतीं।

(8) **राजनीतिक संबंधों में प्रतिकूल परिवर्तन** (Unfavourable Change in Political Relations): यदि किसी कारणवश मूल देश व मेजबान देश के मध्य राजनीतिक संबध खराब हो जाते हैं तो इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई का राजनीतिक जोखिम बहुत अधिक बढ़ जाता है। इन दोनों देशों में शत्रुता बढ़ने पर सहायक कंपनी को बंद करने की नौबत भी आ सकती है।

(9) **कार्गो जोखिम** (Cargo Risk): कार्गो जोखिम का तात्पर्य उत्पादों को निर्यातक से आयातक तक भेजने में परिवहन सबधी जोखिम से है। विदेशी व्यापार में प्राय: समुद्री परिवहन द्वारा माल निर्यातक से आयातक तक भेजा जाता है, क्योंकि इससे परिवहन लागत कम आती है। कार्गो जोखिम रास्ते में चोरी, रिसाव (Leakage), समुद्री तूफान, हवा-तूफान (Wind storm), जहाज दुर्घटना, आदि के कारण हो सकता है। कई बार सामान ले जा रहे समुद्री जहाज को ही समुद्री लुटेरे अगवाह (Hijack) कर लेते हैं; जैसे- सोमाली लुटेरों द्वारा समुद्री जहाज को अगवाह करने की खबर प्राय: सुनने को मिलती है।

(10) **साख जोखिम** (Credit Risk): निर्यातकों व आयातकों के मध्य अधिक भौगोलिक दूरी के कारण आयातकों की साख-क्षमता (Credit-worthiness) का विश्लेषण करना बहुत मुश्किल हो जाता है। अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में घरेलू व्यवसाय की तुलना में साख जोखिम की मात्रा अधिक होती है।

(11) **विदेशी बाजार स्थिति में परिवर्तन** (Change in Foreign Market Situation): विभिन्न कारणों से विदेशी बाजार स्थिति में परिवर्तन हो सकता है; जैसे- मेजबान देश में किसी अन्य बहुराष्ट्रीय कपनी द्वारा प्रवेश या मेजबान देश में किसी घरेलू कंपनी द्वारा बाजार का बड़ा अश ले लेना आदि। इससे अतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई का जोखिम बढ़ जाता है।

(12) **मेजबान देश में जनता का नकारात्मक दृष्टिकोण** (Negative Public Attitude in Host Nation): जब कोई विदेशी कपनी किसी मेजबान देश में व्यवसाय करती है, तो प्राय: मेजबान देश के लोग इसे जबरदस्ती घुसी (Intruder) विदेशी व्यावसायिक इकाई मानते है। यदि विदेशी व्यावसायिक इकाइयों के निष्पादन में कोई छोटी-सी त्रुटि भी हो जाती है तो इसे मेजबान देश की जनता की कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ता है। वहाँ की जनता इनके उत्पादों का बहिष्कार करने लगती है। इनके विरुद्ध सार्वजनिक प्रदर्शन भी किए जाते है।

■ 6. व्यावसायिक जोखिम का प्रबंध/जोखिम प्रबंध प्रक्रिया
(Managing Business Risk/Risk Management Process)

व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न संघटक गतिशील है। इन सघटकों में प्रतिकूल परिवर्तन होने पर व्यवसाय को चुनौती का सामना करना पड़ता है। किसी भी व्यवसाय में जोखिम को पूर्णतया समाप्त नही किया जा सकता। परतु उपयुक्त जोखिम प्रबध रणनीति द्वारा इसके बुरे प्रभाव को न्यूनतम किया जा सकता है। अत: प्रत्येक व्यावसायिक इकाई को जोखिम के कारणों व प्रकृति को पहचानना चाहिए तथा उपयुक्त रणनीति व प्रति-उपायों द्वारा जोखिम के कुप्रभाव को कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। जोखिम प्रबध के अतर्गत व्यावसायिक जोखिम की पहचान की जाती है, उपयुक्त रणनीति, नीतियाँ व योजनाएँ बनायी जाती है तथा उचित उपाय किए जाते है ताकि व्यावसायिक जोखिम का सामना सुचारू रूप से किया जा सके। जोखिम प्रबध प्रक्रिया मे निम्न चरण शामिल है:

(1) **जोखिम को पहचानना** (Identifying the Risk): जोखिम प्रबध का पहला चरण जोखिम की पहचान करना है। इसके अंतर्गत जोखिम की प्रकृति की पहचान की जाती है, अर्थात् यह पहचाना जाता है कि जोखिम राजनीतिक है तकनीकी है या आर्थिक आदि है तथा यह जोखिम सूक्ष्म-स्तरीय है या समष्टि-स्तरीय है।

(2) **विभिन्न जोखिमों के संभावित प्रभावों को पहचानना** (Identifying the Possible Effects of Various Risks): विभिन्न जोखिमों की प्रकृति पहचानने के बाद इनके सभावित प्रभावों की पहचान की जाती है। कुछ जोखिमों के प्रभाव अन्य जोखिमों की तुलना में अधिक गभीर होते हैं। अत: यह निर्धारित किया जाता है कि किस जोखिम के प्रबध पर अधिक व पहले ध्यान दिया जाना चाहिए। अधिक गभीर जोखिम के प्रबध पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। इससे जोखिम प्रबंध के लिए व्यावसायिक इकाई के साधनों का सर्वोत्तम उपयोग हो पाता है।

(3) **उपयुक्त रणनीतियाँ बनाना** (Designing Appropriate Strategies): इस चरण में उपयुक्त रणनीतियाँ, योजनाएँ, नीतियाँ, कार्यविधियाँ, उपाय आदि तैयार किए जाते है ताकि जोखिम के प्रभाव को न्यूनतम किया जा सके। इसमें जोखिम का सामना करने के लिए उचित प्रति-उपाय किए जाते है। इस तरह जोखिम का सामना करने की प्रतिक्रिया को समझ लेने से वास्तविक जोखिम आने पर इसका प्रभावपूर्ण ढग से निवारण किया जा सकता है।

(4) **जोखिम प्रबंध प्रक्रिया के प्रभाव का मूल्यांकन करना** (Monitoring the Effectiveness of Risk Management Process): इस चरण में अपनायी गयी प्रति-योजनाओं, रणनीतियों, नीतियों, उपायों आदि का मूल्यांकन किया जाता है। इस चरण में जोखिम के वास्तविक प्रभावों की अनुमानित प्रभावों से तुलना की जाती है। इससे व्यावसायिक प्रबंधकों को जोखिम-प्रबध-प्रक्रिया की कमियों का पता चलता है। इन कमियों को दूर करके भविष्य में जोखिम-प्रबंध-प्रक्रिया को और अधिक प्रभावकारी बनाया जा सकता है।

■ 7. जोखिम प्रबंध के लाभ (Benefits of Risk Management)

(1) इससे उचित योजनाएँ, नीतियाँ व रणनीतियाँ बनाने में सहायता मिलती है।

(2) इससे जोखिम से होने वाली हानि को न्यूनतम किया जा सकता है।

(3) इससे व्यवसाय के गभीर सकट को टाला जा सकता है तथा व्यवसाय के अस्तित्व को दीर्घकाल तक बनाने में सहायता मिलती है।

(4) इससे व्यवसाय के उद्देश्यों की प्राप्ति की सभावना बढ़ती है।

(5) जोखिम प्रबध में प्राथमिकता निर्धारित करके व्यवसाय की पूँजी व अन्य साधनों का उचित प्रयोग व आवटन हो पाता है।

(6) प्रभावकारी जोखिम प्रबध से व्यावसायिक इकाई के विक्रय व लाभों में वृद्धि की जा सकती है।

(7) इससे प्रतिस्पर्धा का सामना करने में तथा बाजार-अश बनाए रखने में सहायता मिलती है।

■ 8. वातावरणीय जोखिम को मापने की विधियाँ (Methods of Measuring Environmental Risk)

अतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न व्यावसायिक इकाइयाँ, व्यावसायिक इकाइयों के फैलाव हेतु देशो का चयन करने से पहले व्यावसायिक वातावरण के जोखिम का अनुमान लगाती है। वातावरणीय जोखिम को मापने की मुख्य विधियाँ निम्नलिखित है:

(1) व्यूहरचनात्मक विषय विश्लेषण विधि (Strategic Issue Analysis Method): इस विधि में बाहरी वातावरण के विभिन्न सघटकों जैसे- आर्थिक, राजनीतिक, वैधानिक, जनाकिकीय, तकनीकी सघटकों आदि का सुव्यवस्थित विश्लेषण करने के लिए जाँच सूची बनाई जाती है। व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न सघटकों के महत्वपूर्ण विषयों पर निगरानी रखी जाती है। इससे वातावरणीय सघटकों की वर्तमान स्थिति तथा भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का अनुमान मिलता है। व्यूहरचनात्मक विषय विश्लेषण के परिणामो की सहायता से एक ही देश के वातावरण का विभिन्न समय अवधियों में तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इसी तरह एक ही समय बिदु पर विभिन्न देशों के वातावरणीय तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(2) विशेषज्ञों की राय/प्रश्नावली तकनीक (Structured Expert Opinion/Questionnaire Technique): इस विधि में व्यावसायिक वातावरण के जोखिम का अनुमान लगाने के लिए प्रश्नावली तैयार की जाती है। यह प्रश्नावली विशेषज्ञो को दी जाती है, ताकि वे विभिन्न वातावरणीय सघटकों के जोखिम के बारे में अपने विचार व राय दे सकें। प्रश्नावली के प्रत्येक प्रश्न को पूर्व निर्धारित आधार के अनुसार अंक दिए जाते हैं। कुल अकों के आधार पर जोखिम का अनुमान लगाया जाता है। अधिक अंक जोखिम की अधिक मात्रा की ओर संकेत करते हैं।

(3) भारित रेटिंग प्रणाली (Weighted Rating System): इस विधि में वातावरण के विभिन्न घटकों जैसे- आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, तकनीकी घटकों के आधार पर देशीय जोखिम की रेटिंग की जाती है। प्रत्येक वातावरणीय घटक को पूर्व निर्धारित आधार के अनुसार जोखिम की सभावना संबधी अंक दिए जाते हैं। इसके पश्चात् कुल वातावरणीय जोखिम में इन घटकों के सापेक्षिक महत्व के अनुसार प्रत्येक घटक को भार दिए जाते हैं। वातावरणीय घटकों को दिए गए अकों को उनके भार से गुणा करके कुल भारित मूल्य निकाला जाता है। इसके पश्चात् इन भारित मूल्यों का जोड़ निकाला जाता है। भारित मूल्यो का अधिक जोड़ अधिक जोखिम को दर्शाता है। स्टैंडर्ड तथा पूअर (Standard and Poors) जो एक विख्यात अतर्राष्ट्रीय क्रेडिट रेटिंग एजेंसी है, विभिन्न देशों का जोखिम मूल्याकन इस भारित विधि के आधार पर ही करती है। यह एजेंसी जोखिम के भारित मूल्यों के आधार पर विभिन्न देशों को श्रेणीबद्ध करती है। इससे अधिक जोखिम वाले व कम जोखिम वाले देशों का पता लगाया जाता है।

(4) इकोनोमेट्रिक तकनीकें (Econometric Techniques): इन तकनीकों के अतर्गत गणितीय तथा साख्यिकीय मॉडलों का प्रयोग करके विभिन्न वातावरणीय तत्वों के मध्य सबंध स्थापित किए जाते हैं। इन वातावरणीय घटकों को प्रभावित करने वाले सभी सभावित जोखिम तत्वों का समीकरण तैयार किया जाता है। इस विधि में प्राय: बहुगुणी प्रतीपगमन तथा कालश्रेणी विश्लेषण (Multiple Regression and Time Series Analysis) का प्रयोग किया जाता है। कप्यूटर तथा साख्यिकीय सॉफ्टवेयरो के विकास से इकोनोमेट्रिक तकनीकों का प्रयोग बढ़ रहा है।

(5) जोखिम प्रीमियम (Risk Premium): जोखिम प्रीमियम से अभिप्राय 'सभावित प्रत्याय दर के जोखिम रहित ब्याज दर पर आधिक्य' से है। केंद्रीय बैंक/सरकार द्वारा जारी प्रतिभूतियों पर दिए जाने वाले ब्याज-दर को जोखिम रहित ब्याज दर कहा जाता है। अधिक जोखिम प्रीमियम, जोखिम की अधिक मात्रा को दर्शाता है। विभिन्न देशों के जोखिम की तुलना करने के लिए इन देशों के जोखिम प्रीमियम की तुलना की जा सकती है।

(6) जोखिम बेंचमार्किंग (Risk Benchmarking): इस विधि में एक स्वस्थ अर्थव्यवस्था में पाए जाने वाले वातावरणीय जोखिम को प्रमाप के रूप में 'बेंचमार्क' की तरह प्रयोग किया जाता है। विभिन्न देशों के वातावरणीय जोखिम का मूल्यांकन करके, उनकी इस निर्धारित बेंचमार्क जोखिम स्तर से तुलना की जाती है। विभिन्न देशों में बेंचमार्क से अधिक जोखिम की मात्रा के आधार पर देशीय जोखिम का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यह अतर जितना अधिक होगा, जोखिम भी उतना ही अधिक माना जाएगा।

(7) साख गुणवत्ता विधि (Credit Worthiness Method): इस विधि में विभिन्न देशों के जोखिम का मूल्याकन उनकी साख गुणवत्ता के आधार पर किया जाता है। देश की साख गुणवत्ता का अनुमान विभिन्न तत्वों जैसे- प्रति व्यक्ति आय, विदेशी ऋणों की मात्रा, विदेशी मुद्रा के भडार, ऋण सेवा अनुपात आदि के आधार पर लगाया जाता है। इन तत्वों के अनुकूल होने पर साख गुणवत्ता अधिक मानी जाती है। साख गुणवत्ता अधिक होने पर जोखिम की मात्रा कम मानी जाती है। जैसे- प्रति व्यक्ति आय का अधिक होना, बाहरी ऋणों का कम होना, विदेशी मुद्रा के अधिक भडार होना, ऋण सेवा अनुपात का अधिक होना, आदि अच्छी साख गुणवत्ता की ओर संकेत करते है। विभिन्न देशों की साख गुणवत्ता की तुलना से इन देशों के सापेक्षिक जोखिम का पता लगाया जा सकता है।

■ 9. अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक जोखिम को नियंत्रित करने की विधियाँ (Methods of Handling International Business Risk)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में आने वाले जोखिमों व चुनौतियों की प्रकृति व कारणो का अध्ययन करके व उचित जोखिम प्रबध रणनीति अपना कर कुछ व्यावसायिक जोखिमों के प्रभाव को कम किया जा सकता है। व्यावसायिक जोखिम को नियंत्रित करने की विभिन्न विधियाँ निम्नलिखित हैं:

(1) विस्तृत देश मूल्यांकन (Detailed Country Evaluation): व्यावसायिक इकाई को किसी देश में प्रवेश लेने से पहले वहाँ के देशीय जोखिम व राजनीतिक जोखिम से भली-भाति परिचित हो जाना चाहिए। उस देश के व्यावसायिक वातावरण, प्रतिस्पर्धा स्तर तथा वैधानिक वातावरण का गहन अध्ययन किया जाना चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में विनिमय दर में हुए उतार-चढ़ाव का भी गहन विश्लेषण किया जाना चाहिए। उस देश में अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से जुड़े अवसरों व चुनौतियों की जानकारी के लिए सलाहकारी सेवा विशेषज्ञों की सेवाएँ ले लेनी चाहिए। विदेशी बाजार में प्रवेश लेने से पहले वहाँ के व्यावसायिक वातावरण के **विभिन्न संघटकों**; जैसे-आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, तकनीकी वातावरण का **गहराई से विश्लेषण** किया जाना चाहिए। इसके लिए मूल्याकन मैट्रिक्स (Evaluation Matrix) की सहायता से विस्तृत विश्लेषण किया जाना चाहिए।

(2) जोखिम विविधीकरण (Risk Diversification): देश संबधी जोखिम कम करने के लिए वैश्विक व्यावसायिक इकाई को अपना व्यवसाय **कई देशों में फैलाना** चाहिए। इसे किसी एक ही देश पर निर्भर नहीं करना चाहिए। इससे यदि किसी एक देश में व्यवसाय असफल हो जाता है तो इस हानि को अन्य देश में लाभ से पूरा किया जा सकता है। इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई को विभिन्न उत्पादों या विभिन्न उत्पाद-रेखाओं (Product-lines) में व्यवसाय करना चाहिए। अर्थात् इसका उत्पाद संमिश्र (Product- Mix) बहुत व्यापक होना चाहिए। इससे व्यावसायिक जोखिम का विविधीकरण हो जाता है।

(3) मेजबान देश का स्थानीय व्यावसायिक इकाइयों से व्यूहरचनात्मक गठबंधन (Strategic Alliance with Local Business Units of Host Nations): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से जुड़ी अनिश्चितता व जोखिम को कम करने हेतु मेजबान देश की विद्यमान व्यावसायिक इकाई से व्यूहरचनात्मक गठबधन किया जा सकता है। यह गठबधन सयुक्त उपक्रम, विलयन या अधिग्रहण (Joint Venture, Merger or Acquisition) के रूप में हो सकता है। स्थानीय व्यावसायिक इकाई से व्यावसायिक समझौता करने से स्थानीय बाजार का ज्ञान प्राप्त करने में तथा स्थानीय लोकप्रियता प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इसके अलावा राजनीतिक जोखिम कम करने के लिए मेजबान देश के साथ **संयुक्त उपक्रम समझौता** (Joint Venture Agreement) किया जाना चाहिए। इससे मेजबान देश की सरकार के वैश्विक व्यावसायिक इकाई के प्रति दृष्टिकोण में अनुकूल परिवर्तन आता है। इससे मूल देश में लाभ, रॉयल्टी, पूँजी पर ब्याज, तकनीकी फीस आदि भेजने (Repatriation) में कठिनाई नहीं आती; सरकार द्वारा व्यावसायिक इकाई की संपत्ति जब्त करने का भय भी कम हो जाता है तथा करेंसी परिवर्तन करवाने में भी समस्या नहीं आती।

(4) प्रवेश के उपयुक्त प्रारूप का चयन करना (Select Suitable Mode of Entry): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के विभिन्न प्रारूपों में से उपयुक्त प्रारूप का चयन किया जाना चाहिए। प्रारंभिक अवस्था में व्यापार रूट (विदेशों में व्यावसायिक प्रवेश हेतु निर्यात रूट) तथा बाद की अवस्था में निवेश रूट (विदेशों में सहायक कपनी स्थापित करना) अपनाना चाहिए। सपूर्ण निवेश एक ही देश में नहीं किया जाना चाहिए।

(5) सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करना (Meeting Social Responsibility): विदेशी कपनी मेजबान देश में अपने **सामाजिक उत्तरदायित्व** को पूरा करके व व्यावसायिक नीतिशास्त्रों (Business Ethics) **का पालन** करके मेजबान देश की जनता द्वारा विरोध के जोखिम को कम कर सकती है। विदेशी कपनी को मेजबान देश में कमाए गए लाभों का कुछ निश्चित प्रतिशत स्थानीय क्षेत्रीय विकास, पर्यावरण-प्रदूषण-नियंत्रण, कर्मचारियों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रमों, आदि पर खर्च करना चाहिए।

(6) अंतर्राष्ट्रीय बीमा पॉलिसी लेना (Taking International Insurance Policy): कुछ देशीय जोखिमों का बीमा करवाया जा सकता है; जैसे- आतकवादी जोखिम, जहाजरानी माल जोखिम, प्राकृतिक आपदाओं– भूचाल, बाढ़, सूनामी, चक्रवात/समुद्री तूफान आदि के कारण हानि संबधी जोखिम, आग लगने, चोरी, डकैती के कारण हानि सबधी जोखिम आदि की बीमा पॉलिसी ली जा सकती है। इसके लिए किसी अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक बीमा कंपनी से व्यापक बीमा पॉलिसी ली जा सकती है। बीमा-पॉलिसी की विभिन्न शर्तों (Clauses) का विस्तृत विश्लेषण किया जाना चाहिए ताकि हानि की पूर्ण क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सके।

(7) व्यावसायिक वातावरण में अचानक परिवर्तन आने पर संयम बनाए रखना (Be Patient in case of Sudden Change in Environment): यदि व्यावसायिक वातावरण में अचानक कोई प्रतिकूल परिवर्तन आ गया है, तो एक दम से व्यवसाय को बंद करने का निर्णय नहीं लेना चाहिए। बल्कि इस चुनौती का सामना करने के लिए उचित रणनीति बनाई जानी चाहिए। एक बार व्यवसाय बंद करने के बाद, उसे पुन: शुरू करना बहुत मुश्किल होता है। अत: व्यवसाय को बनाए रखने के लिए उपयुक्त कदम उठाए जाने चाहिए।

(8) हेजिंग (Hedging): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में व्यापार व्यवहार आगामी व्यापार अनुबंध (Forward Trading) के रूप में होते है। हेजिंग के द्वारा आगामी व्यापार अनुबधों में कीमतों के उतार-चढ़ाव के जोखिम को कम किया जा सकता है हेजिंग के अतर्गत विपरीत प्रकृति के दो अनुबध (एक अनुबंध क्रय का तथा दूसरा अनुबध विक्रय का) एक साथ किए जाते है। इससे कीमतों में बदलाव के जोखिम को न्यूनतम किया जा सकता है। इसके अंतर्गत आगामी विनिमय अनुबंध (Forward Exchange Contract), क्रय अवसर (Call Option), विक्रय अवसर (Put Option), मुद्रा भविष्य (Currency Future), स्वैप अनुबध (Swap Contract), विदेशी मुद्रा में ऋण, आदि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

(9) प्रौद्योगिकी अनुसंधान व विकास (Technological Research and Development): वैश्विक स्तर पर प्रौद्योगिकी विकास बहुत ही तीव्र गति से होते है। यदि वैश्विक व्यावसायिक इकाई निरंतर प्रौद्योगिकी अनुसंधान व विकास कार्यों में संलग्न नहीं होती, तो इसे प्रौद्योगिकी अप्रचलन (Technological Obsolescence) के जोखिम का भय निरंतर बना रहता है। अत: इस जोखिम का सामना करने के लिए वैश्विक व्यावसायिक इकाई को नियमित तौर पर अनुसंधान, नवाचार व विकासात्मक क्रियाओं में संलग्न रहना चाहिए।

(10) मेजबान देश के कर्मचारियों को विदेशी सहायक कंपनियों में नियुक्त करना (Appointing Employees of Host Nations in Foreign Subsidiaries): यदि वैश्विक व्यावसायिक इकाई को मेजबान देश के सास्कृतिक वातावरण के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं है तो सास्कृतिक जोखिम को कम करने के लिए मेजबान देश के व्यक्तियों को सहायक कपनी में नियुक्त किया जाना चाहिए। ये स्थानीय कर्मचारी वहाँ की सस्कृति, भाषा, पसद, प्राथमिकता, फैशन, कार्यशैली आदि के बारे में बेहतर जानकारी रखते है।

(11) विनिमय दर में उतार-चढ़ाव संबंधी जोखिम का निवारण (Avoiding Risk of Fluctuations in Exchange Rate): विदेशी मुद्रा की विनिमय दर स्थिर नहीं रहती, यह विभिन्न कारणों, जैसे-विदेशी मुद्रा की माँग व पूर्ति में परिवर्तन, सट्टेबाजी, व्यापार-चक्र की अवस्था आदि के कारण बदलती रहती है। यदि विनिमय दर में प्रतिकूल बदलाव आते हैं, तो इससे निर्यातक का लाभ मार्जन (Profit Margin) कम हो जाता है। विदेशी विनिमय दर के जोखिम को कम करने के लिए उत्पाद की कीमत को निर्यातक देश की करेंसी में व्यक्त (Quote) किया जाना चाहिए। इसे विदेशी विनिमय दर के उतार-चढ़ाव से बचाव के लिए उपयुक्त **बीमा-पॉलिसी** लेकर भी कम किया जा सकता है।

(12) क्रेडिट स्क्रीनिंग (Credit Screening): क्रेडिट स्क्रीनिंग व ग्राहकों की वित्तीय स्थिति के विश्लेषण द्वारा डूबत ऋण की हानि को कम किया जा सकता है। इसके अलावा उधार विक्रय की राशि की वसूली में विलब नहीं किया जाना चाहिए। निर्यात साख जोखिम कम करने के लिए **आयातक के बैंक से साख-पत्र** (Letter of Credit) लिया जाना चाहिए।

(13) विपणन अनुसंधान व सुव्यवस्थित पूर्वानुमान (Market Research and Scientific Forecasting): वैश्विक व्यावसायिक इकाई को मेजबान देश की बाजार दशाओं को समझने के लिए निरतर विपणन अनुसधान व सुव्यवस्थित पूर्वानुमान करते रहना चाहिए। इससे वैश्विक व्यावसायिक इकाई को व्यावसायिक जोखिम का पूर्वानुमान हो जाएगा। अत: वैश्विक व्यावसायिक इकाई उचित समय पर व्यूहरचनात्मक योजनाएँ व रणनीतियाँ बनाकर व्यावसायिक जोखिम का सफलतापूर्वक सामना कर सकती है।

(14) प्रभावकारी स्कंध प्रबंध (Effective Inventory Management): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की दशा में स्कध प्रबध अधिक जटिल व जोखिमपूर्ण होता है क्योंकि पूर्तिकर्ता, डीलर, ग्राहक, उत्पादन इकाई एक ही देश में केंद्रित न होकर विभिन्न देशों में विशाल भौगोलिक क्षेत्र में फैले होते हैं। प्रभावकारी स्कंध प्रबध द्वारा वैश्विक व्यावसायिक इकाई स्टॉक खत्म होने संबधी जोखिम को कम कर सकती है। इससे धीमी गति से बिकने वाले स्टॉक में निवेश को भी कम किया जा सकता है। इसके अलावा स्टॉक अप्रचलन या फैशन से बाहर होने सबधी जोखिम को भी उचित स्टॉक नियत्रण द्वारा कम किया जा सकता है। इससे स्कंध रख-रखाव लागत (Inventory Carrying cost) में भी कमी आती है।

(15) अन्य उपाय (Other Measures):

(i) प्रभावकारी पैकिंग से टूट-फूट, खराब होने, तरल पदार्थों के टपकने/रिसने (Leakage) आदि से होने वाले नुकसान के जोखिम को कम किया जा सकता है।

(ii) कार्यस्थल पर सुरक्षित वातावरण प्रदान कर फैक्टरी में होने वाले दुर्घटना सबधी नुकसान को कम किया जा सकता है।

(iii) उचित सुरक्षा प्रबंधों द्वारा चोरी, डाके के जोखिम को कम किया जा सकता है।

(iv) अग्नि नियंत्रण उपकरणों द्वारा आग लगने से होने वाली हानि के जोखिम को कम किया जा सकता है।

(v) कीट-मार दवाइयों द्वारा कीड़ों से होने वाले नुकसान के जोखिम को कम किया जा सकता है।

(vi) कर्मचारियों से अच्छे संबध स्थापित करके व प्रबन्ध में उनकी भागीदारी द्वारा हड़ताल, तालाबंदी, श्रम आवर्तन (Labour Turnover) आदि के जोखिम को कम किया जा सकता है।

(vii) अंशों व ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमन का अभिगोपन करवा कर (Underwriting of Public Issu कंपनी अंशों व ऋणपत्रों के अल्प-अभिदान (Under-Subscription) के जोखिम को कम कर सकती है।

(viii) जोखिमपूर्ण परियोजना को कम जोखिम वाली परियोजना से प्रतिस्थापित करके जोखिम कम किया जा सकता है

(ix) अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में भ्रष्टाचार की समस्या के समाधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार-विरोधी अधिनि (Anti-corruption Act) बनाया जाना चाहिए। इसके लिए विभिन्न देशों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्म प्रयास करने चाहिएं।

■ 10. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम के मूल्यांकन में कठिनाइयाँ
(Difficulties in Measuring Risk in International Business)

(1) **बहुत जटिल** (Very Complex): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में देशीय जोखिम व राजनीतिक जोखिम को मापना ब जटिल कार्य है। विभिन्न राष्ट्रों का देशीय व राजनीतिक जोखिम बहुत से घटकों से प्रभावित होता है। विभिन्न देशं भिन्न-भिन्न वातावरणीय घटक एक-दूसरे घटकों को भी परस्पर प्रभावित करते हैं। इन बहुमुखी घटकों के अंतर्रा व्यवसाय पर प्रभाव को मापना बहुत ही जटिल कार्य है।

(2) **विश्वसनीय व सही सूचनाओं की अपर्याप्त उपलब्धता** (Insufficient Availability of Reliable a Correct Information): वैश्विक कंपनियों का बाजार-क्षेत्र बहुत से देशों में फैला होता है। इन देशों में भौगोलि दूरी बहुत अधिक होती है। इन वैश्विक कंपनियों का बाजार बहुत बड़े क्षेत्र में होने के कारण व्यावसायिक जोखिम प्रभावित करने वाले घटकों के बारे में प्राथमिक जानकारी प्राप्त करना बहुत मुश्किल हो जाता है। प्राथमिक आँकड़ों अभाव में, जोखिम मूल्यांकन के लिए द्वितीयक प्रकाशित आँकड़ों पर निर्भर होना पड़ता है। प्रकाशित आँकड़ों की एक बड़ी कमी यह है कि ये उचित समय पर उपलब्ध नहीं होते, अर्थात् जब तक द्वितीयक आँकड़े प्रकाशित रूप में आते तब तक ये पुराने हो चुके होते हैं। इसके अलावा, द्वितीयक आँकड़ों की विश्वसनीयता कम होती है। व्यावसायिक इ की आवश्यकताओं के अनुरूप आँकड़े द्वितीयक स्रोतों से मिलना भी बहुत मुश्किल है। अतः विश्वसनीय व स आँकड़ों के अभाव में व्यावसायिक जोखिम का मूल्यांकन बहुत कठिन हो जाता है।

(3) **प्रमापित तकनीकों का अभाव** (Lack of Standardised Techniques): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखि मूल्यांकन की तकनीकें विश्व स्तर पर प्रमापित नहीं हैं। विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न तकनीकें प्रचलन में हैं। इस अलावा, जोखिम मूल्यांकन तकनीकों की कुछ अपनी सीमाएँ व कमियाँ हैं; जैसे-विभिन्न वातावरणीय घटकों को विभि देशों में भिन्न-भिन्न भार (Weight) दिए जाते हैं। इससे जोखिम मापन में पक्षपात की संभावना बनी रहती है

(4) **विशेषज्ञों की कमी** (Lack of Experts): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम मूल्यांकन की विधियाँ बहुत ही जटि होती हैं। इन जटिल विधियों के प्रयोग के लिए पेशेवर विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन विशेषज्ञों अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के व्यष्टि व समष्टि (Micro and Macro) संघटकों तथा जोखिम मूल्यांकन विभिन्न तकनीकों के बारे में पूरी समझ होनी चाहिए। परंतु कुशल अनुभवी विशेषज्ञों का मिलना बहुत मुश्किल है विशेषज्ञों की उपलब्धता न होने से जोखिम के मूल्यांकन का कार्य गलत हो जाता है।

(5) **अनिश्चित व अनियंत्रणीय** (Uncertain and Uncontrollable): अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न संघटक अनिश्चित व अनियंत्रणीय होते हैं। वैश्विक स्थिति में बहुत तेजी से बदलाव आते हैं। विभिन्न देशों क्रेडिट-रेटिंग एक समान नहीं रहती; जैसे-यूरोपियन देश जो वैसे तो बहुत विकसित देश हैं, परंतु वर्तमान में यह सार्वजनिक ऋण संकट/यूरोक्षेत्रीय ऋण संकट (Sovereign Debt Crisis/Eurozone Debt Crisis) की समस्य बहुत गंभीर होती जा रही है। इसी तरह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जो वैसे तो बहुत विकसित देश है, परंतु वर्ष 2008-09 इसे आर्थिक मंदी का सामना करना पड़ा। विभिन्न देशों के राजनीतिक, आर्थिक व वैधानिक वातावरण में निरंतर परिवर्त

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के उद्देश्य
(Motives for International Business)

■ 1. भूमिका एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

बहुत-सी व्यावसायिक इकाइयों का कार्यक्षेत्र विश्वभर में फैल रहा है। अब संपूर्ण विश्व एक वैश्विक गाँव बन गया है। ऐसे बहुत से बहुराष्ट्रीय निगम (MNCs) हैं, जिनकी शुरूआत एक छोटे-से राष्ट्र में हुयी, लेकिन व्यावसायिक क्रियाओं के अंतर्राष्ट्रीयकरण के कारण इन बहुराष्ट्रीय निगमों का कार्यक्षेत्र विश्व के बहुत-से देशों में फैल गया। आज विश्व की लगभग सभी बड़ी कंपनियाँ बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त करने के लिए, स्थापित उत्पादन क्षमता के सर्वोत्तम प्रयोग के लिए तथा बाजार क्षमता व उपलब्ध संसाधनों के बेहतर उपयोग के लिए अपनी व्यावसायिक क्रियाओं को विश्वभर में फैला रही हैं। इससे इन इकाइयों को विविधीकरण के लाभ प्राप्त हो रहे हैं तथा इनका व्यावसायिक जोखिम भी कम हो रहा है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के फलस्वरूप **अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन** तथा **विशिष्टीकरण** संभव होता है। इसके फलस्वरूप संसार के सभी देशों को लाभ प्राप्त होता है। तुलनात्मक लागत पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के कारण विशिष्टीकरण और श्रम विभाजन के फलस्वरूप व्यवसाय करने वाले सभी देशों को जो लाभ प्राप्त होता है उसे अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से लाभ कहा जाता है। **मिल, मार्शल, सैम्युल्सन, केम्प** (Kemp) और **हैवरलर** आदि अर्थशास्त्रियों ने कहा है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्मिलित देश विशिष्टीकरण के आधार पर उत्पादन एवं विनिमय करके अपने आर्थिक लाभ को अधिकतम करते हैं। **हार्न** तथा **गोमेज** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेने वाले सभी पक्षों को लाभ होता है तथा किसी का बुरा नहीं होता।"** अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से अनेक आर्थिक लाभ होते हैं, जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं: (i) अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के कारण अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन संभव होता है। इसके फलस्वरूप विश्व के साधनों का अनुकूलतम वितरण होता है जिससे उनका कुशलतम प्रयोग किया जा सकता है। (ii) इसके फलस्वरूप विश्व के कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। (iii) अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से व्यावसायिक इकाई को बड़ा बाजार मिलता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी आती है। (iv) अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के कारण प्रत्येक देश उपभोग की विभिन्न वस्तुओं को अधिक मात्रा में प्राप्त कर सकता है। (v) प्रत्येक देश के कल्याण में वृद्धि होती है तथा विश्व की समृद्धि बढ़ती है।

(i) **सोडरस्टन** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सम्मिलित होने के कारण समूची विश्व अर्थव्यवस्था या किसी एक देश के कल्याण में होने वाली वृद्धि को अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से लाभ कहा जाता है।"** (Gains from international business means the increase in welfare to the world economy as a whole or to an individual country as a result of engaging in international business. – **Sodersten**)

(ii) **आधुनिक अर्थशास्त्र के शब्दकोश** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के फलस्वरूप होने वाले आधिक्य उत्पादन को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ कहा जाता है। इस लाभ का व्यापार में भाग लेने वाले देशों में वस्तुओं के विनिमय संबंधी परस्पर समझौते के अनुसार बंटवारा हो जाता है।"** (The surplus production arising out of international division of labour represents gains from trade and it is distributed among trading partners according to agreed rates of exchange for goods. –**Dictionary of Modern Economics**)

(iii) **आर०एफ० हैरोड** के शब्दों में, **"एक देश को विदेशी व्यापार से लाभ उस समय प्राप्त होता है जब उस देश के व्यापारियों को यह मालूम होता है कि विदेशों में कीमत-अनुपात उनके देश में प्रचलित कीमत-अनुपात की तुलना में बहुत अधिक मिलता है। ऐसे समय में जो वस्तुएं उन्हें सस्ती प्रतीत होती हैं, वे उन्हें खरीदते हैं तथा जो**

महंगी मालूम होती है, उन्हें बेचते है। इस प्रकार इन कीमतों में जितना अधिक अंतर होता है उतना ही व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त होगा।" (A country gains by foreign trade if and when the traders find that there exists abroad, a ratio of prices very different from that to which they are accustomed at home. They buy what to them seem cheap and sell at what to them seem good prices. The bigger the gap between these two, the greater will be the gain from trade. – R.F. Harrod)

अतएव अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के उद्देश्य से अभिप्राय उस लाभ की मात्रा से है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सम्मिलित होने वाले विभिन्न देश, विशिष्टीकरण और श्रम विभाजन के कारण प्राप्त करते है। इन लाभों के फलस्वरूप ही विभिन्न देश अपने संसाधनों का कुशलतम उपयोग करके अपने देश के उत्पादन को अधिकतम करते है, बाजार का विस्तार करते है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि करते है।

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार/व्यवसाय के लाभ के स्रोत

(Sources of Gains from International Trade/Business)

(1) श्रम विभाजन (Division of Labour): रिकार्डो के अनुसार **तुलनात्मक लागत** सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि समस्त के विभिन्न देश उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनमें उनके तुलनात्मक लाभ अधिक तथा तुलनात्मक हानि कम है तो सभी देशों को व्यापार से लाभ होगा। अतएव व्यापार के लाभ का एक मुख्य स्रोत, तुलनात्मक लागत के आधार पर किया गया श्रम विभाजन है।

(2) अंतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण (International Specialisation): तुलनात्मक लागत के लाभ पर आधारित विशिष्टीकरण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ का मुख्य स्रोत है। इसके फलस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन करना संभव होता है। बड़े पैमाने के उत्पादन के फलस्वरूप आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती है। ये बचतें व्यापार से लाभ को जन्म देती है।

(3) बाजार का व्यापक विस्तार (Wide Extent of Market): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से व्यावसायिक इकाइयों के बाजार का आकार बहुत बढ़ जाता है। बाजार के व्यापक विस्तार के फलस्वरूप उत्पादन का पैमाना बढ़ता है। इसके कारण श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते है। इसके फलस्वरूप उत्पादन लागत तथा वस्तु की कीमत कम हो जाती है।

■ 3. व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य/लाभकारी प्रभाव

(Motives/Beneficial-Effects of Internationalisation of Business)

(1) बाजार के आकार में वृद्धि (Expansion in the Size of Market): व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण से विकसित व विकासशील देशों के बाजार आकार में वृद्धि होती है। विकसित देशों का औद्योगिक उत्पादन आवश्यकता से अधिक होता है। कुछ अल्पविकसित देशों में प्राथमिक उत्पादों, जैसे चाय, कॉफी, जूट, कपास, टैक्सटाइल, मसालों आदि का उत्पादन अधिक होता है। व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण से अधिक्य उत्पादन को अन्य देशों में बेचा जा सकता है। वैश्वीकरण से बाजार राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल गए है, जो व्यावसायिक इकाइयाँ एक अकेले देश की बजाए विभिन्न देशों में अपने उत्पाद बेचती है, उनकी विक्रय क्षमता तुलनात्मक रूप से अधिक होती है। बहुत-सी बड़ी कंपनियों का मूल देश छोटा है। अतः घरेलू देश में इनके उत्पादों की माँग अधिक नहीं होती। ये अपने उत्पादों को विभिन्न देशों के बाजारों में बेचकर अपने विक्रय को बढ़ाती है। फाक्सवागन (जर्मनी), टोयोटा (जापान), नोकिया (फिनलैंड), एरिक्सन (स्वीडन), आई०बी०एम० (यू०एस०ए०), सोनी (जापान), सैमसंग (दक्षिणी कोरिया), लोरियल (फ्रांस), नैस्ले (स्विट्जरलैंड), आदि कंपनियों ने विदेशी बाजारों में उत्पाद बेचकर अपने बाजार का फैलाव किया है।

(2) संसाधनों का अधिग्रहण (Acquiring Resources): बहुत सी व्यावसायिक इकाइयाँ अपने व्यवसाय को अन्य देशों में फैलाती है, ताकि अन्य देशों में उपलब्ध संसाधनों, जैसे सामग्री, कुशल श्रम, उपकरणों, अनुसंधान व विकास सुविधाओं आदि से लाभान्वित हो सके। ऐसा हो सकता है कि व्यावसायिक इकाई के मूल देश में इन संसाधनों की दुर्लभता

हो, जबकि अन्य देशों में ये संसाधन अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध हों। जैसे विकसित देशों में श्रम लागत बहुत अधिक है जबकि अल्पविकसित देशों में श्रम लागत बहुत कम होती है। अतः अल्पविकसित देशों की सस्ती श्रम लागत से लाभान्वित होने के लिए विकसित देशों की व्यावसायिक इकाइयाँ अपने व्यवसाय का इन अल्पविकसित देशों में फैलाव करती है।

(3) जोखिम को कम करना (Minimising Risk): यदि व्यवसाय का फैलाव केवल एक ही देश में है तो इस व्यवसाय को अधिक जोखिम का सामना करना पड़ता है, जैसे बाजार में मंदी, कानून व्यवस्था संबंधी समस्या, प्राकृतिक आपदा आदि संबंधी जोखिम, राजनैतिक अस्थिरता, सरकारी नीति में परिवर्तन [illegible] संबंधी जोखिम आदि। इन व्यावसायिक जोखिम को कम करने के लिए व्यवसाय का फैलाव विभिन्न देशों में किया जाता है, ताकि यदि किसी एक देश में माँग कम हो जाती है, तो अन्य देशों के बाजारों में [illegible] इस व्यावसायिक जोखिम को कम किया जा सके।

(4) बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त करना (To Avail Economies of Large Scale): जब व्यवसाय को अन्य देशों में फैलाया जाता है, तो इसमें उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है, इससे बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती है, जैसे कच्चे माल व उपकरणों की थोक में खरीद करने से प्रति इकाई आगतों की लागत कम पड़ती है, श्रम विभाजन व श्रम विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते है, स्थायी व्ययों का बेहतर उपयोग संभव हो जाता है, इससे व्यावसायिक इकाई की प्रति इकाई उत्पादन लागत कम होती है तथा प्रतिस्पर्धात्मक सुदृढ़ता में वृद्धि होती है।

(5) घरेलू बाजार रुकावटें (Domestic Market Constraints): ऐसा संभव है कि घरेलू बाजार का आकार बहुत छोटा है या घरेलू बाजार में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा है। ऐसी स्थिति में व्यावसायिक इकाई का अंतर्राष्ट्रीयकरण करने से इच्छित वृद्धि दर को प्राप्त किया जा सकता है। बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मूल देश यद्यपि बहुत ही छोटा देश था, तथापि व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण के कारण ये कंपनियाँ बहुत विशाल कंपनियाँ बन सकीं, जैसे नैस्ले का मूल देश स्विट्जरलैंड, नोकिया का फिनलैंड, सोनी का मूल देश जापान था। इन कंपनियों का मूल देश बहुत छोटा था, परन्तु अपने व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण के द्वारा ये कंपनियाँ विशाल कंपनियाँ बन सकीं।

(6) प्राकृतिक संसाधनों के पूर्ण प्रयोग में सहायक (Helps to Exploit Natural Resources): कुछ देशों के पास प्राकृतिक संसाधनों की भरमार है। ये प्राकृतिक संसाधन इनकी घरेलू आवश्यकताओं से कहीं अधिक है। ये देश इन प्राकृतिक संसाधनों का निर्यात करके विदेशी मुद्रा कमा सकते है, जैसे अरब देशों के पास तेल संसाधनों की भरमार है, वे देश आधिक्य तेल (Surplus oil) को अन्य देशों को निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित करते है। यदि विदेशी व्यापार न होता, तो इन देशों के ये आधिक्य प्राकृतिक संसाधन व्यर्थ हो जाते। निर्यात के बिना इनका पूर्ण उपयोग संभव नहीं था।

(7) उभरती अर्थव्यवस्थाओं की विकास क्षमताओं का लाभ उठाना (To Avail the Benefits of Growth Potential in the Emerging Economies): विकासशील देशों में जनसंख्या अत्यधिक होने के कारण इनमें [illegible] उत्पादों की माँग अत्यधिक होती है। इसके अलावा इन उभरती अर्थव्यवस्थाओं में आय व जीवन स्तर के बढ़ने से और अधिक उत्पादों की माँग करते है। अतः इन विकासशील देशों में व्यवसाय के विकास की अधिक संभावनाएँ होती है। उभरती अर्थव्यवस्थाओं की विकास क्षमताओं का लाभ उठाने के लिए बड़ी व्यावसायिक इकाइयाँ अपने व्यवसाय का फैलाव इन विकासशील व उभरती अर्थव्यवस्थाओं में करती है।

(8) एकाधिकारिक स्थिति से लाभान्वित होने के लिए (To Take Advantage of Monopoly Power): कुछ व्यावसायिक इकाइयों की कुछ उत्पादन घटकों में एकाधिकारिक स्थिति होती है, जैसे आधुनिक टेक्नोलॉजी, पेटेन्ट अधिकार, मुख्य आगत, आदि। ये व्यावसायिक इकाइयाँ उत्पादन घटकों की एकाधिकारिक शक्ति के लाभ को अधिकतम करने के लिए अपने व्यवसाय को अन्य देशों में फैलाती है।

(9) सरकार द्वारा प्रोत्साहन (Incentives by Government): कुछ देशों में सरकार घरेलू इकाइयों को विभिन्न प्रोत्साहन देती है, ताकि वे अपने व्यवसाय को अन्य देशों में भी फैलाएँ, जैसे सरकार निर्यात बढ़ाने के लिए व्यावसायिक इकाइयों को रियायती ऋण, कर रियायतें, अनुदान आदि देती है। व्यावसायिक इकाइयाँ इन रियायतों का लाभ उठाने के लिए व्यवसाय का अंतर्राष्ट्रीयकरण करती है।

महंगी मालूम होती हैं, उन्हें बेचते हैं। इस प्रकार इन कीमतों में जितना अधिक अंतर होता है उतना ही व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त होगा।" (A country gains by foreign trade if and when the traders find that there exists abroad, a ratio of prices very different from that to which they are accustomed at home. They buy what to them seem cheap and sell at what to them seem good prices. The bigger the gap between these two, the greater will be the gain from trade. – R.F. Harrod)

अतएव अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के उद्देश्य से अभिप्राय उस लाभ की मात्रा से है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सम्मिलित होने वाले विभिन्न देश, विशिष्टीकरण और श्रम विभाजन के कारण प्राप्त करते है। इन लाभों के फलस्वरूप ही विभिन्न देश अपने संसाधनों का कुशलतम उपयोग करके अपने देश के उत्पादन को अधिकतम करते हैं, बाजार का विस्तार करते है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि करते है।

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार/व्यवसाय के लाभ के स्रोत

(Sources of Gains from International Trade/Business)

(1) **श्रम विभाजन** (Division of Labour): रिकार्डो के अनुसार **तुलनात्मक लागत** सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि संसार के विभिन्न देश उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनमें उनके तुलनात्मक लाभ अधिक तथा तुलनात्मक हानि कम हैं तो सभी देशों को व्यापार से लाभ होगा। अतएव व्यापार के लाभ का एक मुख्य स्रोत, तुलनात्मक लागत के आधार पर किया गया श्रम विभाजन है।

(2) **अंतर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण** (International Specialisation): तुलनात्मक लागत के लाभ पर आधारित विशिष्टीकरण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ का मुख्य स्रोत है। इसके फलस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन करना संभव होता है। बड़े पैमाने के उत्पादन के फलस्वरूप आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। ये बचतें व्यापार से लाभ को जन्म देती है।

(3) **बाजार का व्यापक विस्तार** (Wide Extent of Market): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से व्यावसायिक इकाइयों के बाजार का आकार बहुत बढ़ जाता है। बाजार के व्यापक विस्तार के फलस्वरूप उत्पादन का पैमाना बढ़ता है। इसके कारण श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं। इसके फलस्वरूप उत्पादन लागत तथा वस्तु की कीमत कम हो जाती है।

■ 3. व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य/लाभकारी प्रभाव

(Motives/Beneficial-Effects of Internationalisation of Business)

(1) **बाजार के आकार में वृद्धि** (Expansion in the Size of Market): व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण से विकसित व विकासशील देशो के बाजार आकार में वृद्धि होती है। विकसित देशों का औद्योगिक उत्पादन आवश्यकता से अधिक होता है। कुछ अल्पविकसित देशों में प्राथमिक उत्पादों; जैसे-चाय, कॉफी, जूट, कपास, टैक्सटाइल, मसालों आदि का उत्पादन अधिक होता है। व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण से आधिक्य उत्पादन को अन्य देशों में बेचा जा सकता है। वैश्वीकरण से बाजार राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल गए हैं। जो व्यावसायिक इकाइयाँ एक अकेले देश की बजाय विभिन्न देशों में अपने उत्पाद बेचती हैं, उनकी विक्रय क्षमता तुलनात्मक रूप से अधिक होती है। बहुत-सी बड़ी कंपनियों का मूल देश छोटा है। अतः घरेलू देश में इनके उत्पादों की माँग अधिक नहीं होती। ये अपने उत्पादों को विभिन्न देशों के बाजारों में बेचकर अपने विक्रय को बढ़ाती हैं। फोक्सवेगन (जर्मनी), टोयोटा (जापान), नोकिया (फिनलैंड), एरिक्सन (स्वीडन), आई०बी०एम० (यू०एस०ए०), सोनी (जापान), सैमसंग (दक्षिणी कोरिया), लोरियल (फ्रांस), नैसले (स्विट्जरलैंड), आदि कंपनियों ने विदेशी बाजारों में उत्पाद बेचकर अपने बाजार का फैलाव किया है।

(2) **संसाधनों का अधिग्रहण** (Acquiring Resources): बहुत-सी व्यावसायिक इकाइयाँ अपने व्यवसाय को अन्य देशों में फैलाती हैं, ताकि अन्य देशों में उपलब्ध संसाधनों; जैसे-आगतों, कुशल श्रम, उपकरणों, अनुसंधान व विकास सुविधाओं आदि से लाभान्वित हो सकें। ऐसा हो सकता है कि व्यावसायिक इकाई के मूल देश में इन संसाधनों की दुर्लभता हो, जबकि अन्य देशों में ये संसाधन अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध हों; जैसे-विकसित देशों में श्रम लागत बहुत अधिक है, जबकि अल्पविकसित देशों में श्रम लागत बहुत कम होती है। अतः अल्पविकसित देशों की सस्ती श्रम लागत से लाभान्वित होने के लिए विकसित देशों की व्यावसायिक इकाइयाँ अपने व्यवसाय को इन अल्पविकसित देशों में फैला लेती हैं।

(3) **जोखिम को कम करना** (Minimising Risk): यदि व्यवसाय का फैलाव केवल एक ही देश में है, तो इस व्यवसाय को अधिक जोखिम का सामना करना पड़ता है; जैसे-बाजार में मंदी, कानून-व्यवस्था संबंधी समस्या, प्राकृतिक आपदा आदि संबंधी जोखिम, राजनीतिक अस्थिरता, सरकारी नीति में प्रतिकूल परिवर्तन संबंधी जोखिम, आदि। अतः व्यावसायिक जोखिम को कम करने के लिए व्यवसाय का फैलाव विभिन्न देशों में किया जाता है। ताकि यदि किसी एक देश में माँग कम हो जाती है, तो अन्य देशों के बाजारों में पर्याप्त माँग द्वारा व्यावसायिक जोखिम को कम किया जा सके।

(4) **बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त करना** (To Avail Economies of Large Scale): जब व्यवसाय को अन्य देशों में फैलाया जाता है, तो इससे उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। इससे बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती है, जैसे-कच्चे माल व उपकरणों की थोक में खरीद करने से प्रति इकाई आगतों की लागत कम पड़ती है, श्रम विभाजन व श्रम विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं। स्थायी व्ययों का बेहतर उपयोग संभव हो पाता है, इससे व्यावसायिक इकाई की प्रति इकाई उत्पादन लागत कम होती है तथा प्रतिस्पर्धात्मक सुदृढ़ता में वृद्धि होती है।

(5) **घरेलू बाजार रुकावटें** (Domestic Market Constraints): ऐसा संभव है कि घरेलू बाजार का आकार बहुत छोटा है या घरेलू बाजार में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा है। ऐसी स्थिति में व्यावसायिक इकाई का अंतर्राष्ट्रीयकरण करने से उच्च वृद्धि दर को प्राप्त किया जा सकता है। बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मूल देश यद्यपि बहुत ही छोटा देश था, तथापि व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण के कारण ये कंपनियाँ बहुत विशाल कंपनियाँ बन सकीं, जैसे-नैसले का मूल देश स्विट्जरलैंड, नोकिया का फिनलैंड, सोनी का मूल देश जापान था। इन कंपनियों का मूल देश बहुत छोटा था, परंतु अपने व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण के द्वारा ये कंपनियाँ विशाल कंपनियाँ बन सकीं।

(6) **प्राकृतिक संसाधनों के पूर्ण प्रयोग में सहायक** (Helps to Exploit Natural Resources): कुछ देशों के पास प्राकृतिक संसाधनों की भरमार है। ये प्राकृतिक संसाधन उनकी घरेलू आवश्यकताओं से कहीं अधिक है। ये देश इन प्राकृतिक संसाधनों को निर्यात करके विदेशी मुद्रा कमा सकते है; जैसे- अरब देशों के पास तेल-संसाधनों की भरमार है, ये देश आधिक्य तेल (Surplus-oil) को अन्य देशों को निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित करते है। यदि विदेशी व्यापार न होता, तो इन देशों के ये आधिक्य प्राकृतिक संसाधन व्यर्थ हो जाते। निर्यात के बिना इनका पूर्ण प्रयोग संभव नहीं था।

(7) **उभरती अर्थव्यवस्थाओं की विकास क्षमताओं का लाभ उठाना** (To Avail the Benefits of Growth Potential in the Emerging Economies): विकासशील देशों में जनसंख्या अत्यधिक होने के कारण उपभोक्ता उत्पादों की माँग अत्यधिक होती है। इसके अलावा इन उभरती अर्थव्यवस्थाओं में आय व जीवन स्तर के बढ़ने से लोग अधिक उत्पादों की माँग करते हैं। अतः इन विकासशील देशों में व्यवसाय के विकास की अधिक संभावनाएँ होती हैं। उभरती अर्थव्यवस्थाओं की विकास क्षमताओं का लाभ उठाने के लिए बड़ी व्यावसायिक इकाइयाँ अपने व्यवसाय का फैलाव इन विकासशील व उभरती अर्थव्यवस्थाओं में करती है।

(8) **एकाधिकारिक स्थिति से लाभान्वित होने के लिए** (To Take Advantage of Monopoly Power): कुछ व्यावसायिक इकाइयों की कुछ उत्पादन घटकों में एकाधिकारिक स्थिति होती है, जैसे-आधुनिक टेक्नोलॉजी, पेटेन्ट अधिकार, मुख्य आगत, आदि। ये व्यावसायिक इकाइयाँ उत्पादन घटकों की एकाधिकारिक शक्ति के लाभ को अधिकतम करने के लिए अपने व्यवसाय को अन्य देशों में फैलाती है।

(9) **सरकार द्वारा प्रोत्साहन** (Incentives by Government): कुछ देशों में सरकार घरेलू इकाइयों को विभिन्न प्रोत्साहन देती है, ताकि वे अपने व्यवसाय को अन्य देशों में भी फैलाएँ; जैसे-सरकार निर्यात बढ़ाने के लिए व्यावसायिक इकाइयों को रियायती ऋण, कर रियायतें, अनुदान आदि देती है। व्यावसायिक इकाइयाँ इन रियायतों का लाभ उठाने के लिए व्यवसाय का अंतर्राष्ट्रीयकरण करती है।

(Synthetic Goods) का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप प्राथमिक पदार्थों के निर्यात से अल्पविकसित देशों को होने वाली आय निरन्तर कम होती जा रही है।

(3) **राशिपातन** (Dumping): यदि कोई देश अपने उत्पाद को दूसरे देश में कम कीमत पर बेचता है, जिसका उद्देश्य दूसरे देश के घरेलू उद्योगों को नुकसान पहुँचाना है, तो उसे राशिपातन कहा जाता है। विकसित देशों के राशिपातन व्यवहार से अल्पविकसित देशों को नुकसान होता है।

(4) **बचत पर बुरा प्रभाव** (Bad Effect on Savings): आयातित उत्पादों के अधिक उपभोग से लोगों का खर्च बढ़ता है। खर्च के बढ़ने से बचत में कमी आती है। बचत कम होने से पूँजी निर्माण में कमी आती है। लोग उत्पादक संपत्तियों में निवेश न करके व्यर्थ उपभोग पर अधिक खर्च करते है। इससे अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण में कमी आती है।

(5) **अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव** (International Demonstration Effect): विदेशी व्यवसाय का अल्पविकसित देशों पर पड़ने वाला प्रदर्शन प्रभाव उनके विकास के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के कारण अल्पविकसित देशों के लोगों में भी विदेशों में निर्मित विलासिता तथा दिखावट की वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार इन देशों के लोग अपनी बढ़ी हुई आय का अधिक भाग विदेशी उपभोग वस्तुओं को खरीदने में खर्च कर देते है। यदि सरकार इन वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाती भी है तो लोग **काले बाजार** (स्मगलिंग की गई वस्तुओं के बाजार) में इन वस्तुओं को खरीदने लगते हैं। इससे देश में स्मगलिंग और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। इसका इन देशों की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(6) **व्यापार की शर्तों में गिरावट** (Deterioration in Terms of Trade): किसी देश के आयात और निर्यात में जिस दर पर विनिमय होता है उसे व्यापार की शर्तें कहते है। निर्धन देशों की व्यापार की शर्तें के काफी समय तक **प्रतिकूल** (Unfavourable) रहने के कारण उनकी आय का काफी भाग धनी देशों में जाता रहता है। इसका अल्पविकसित देशों के विकास पर काफी बुरा प्रभाव पड़ता है। इस तरह व्यापार की शर्तें विकसित देशों के लाभ की रहती है तथा अल्पविकसित देशों को हानि उठानी पड़ती है।

(7) **घरेलू रोजगार पर बुरा प्रभाव** (Bad Effect on Domestic Employment): जब कोई देश कुछ ही उत्पादों का निर्माण करता है, और बाकी उत्पादों का आयात करता है, तो इससे रोजगार के अवसरों में कमी आती है। जो उत्पाद अब आयात किये जा रहे है, उनके घरेलू उत्पादन में संलग्न व्यक्ति बेकार हो जाते है। इसके अलावा विदेशी उपक्रम पूंजी प्रधान तकनीक का प्रयोग करते है। इससे भी रोजगार के कम अवसर उत्पन्न होते है। इस तरह अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से घरेलू-रोजगार पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(8) **घरेलू अर्थव्यवस्था में उत्पादों की कमी** (Deficiency of Goods in Domestic Economy): अधिक निर्यात करने से घरेलू बाजार में उस उत्पाद की पूर्ति कम हो जाती है। पूर्ति के कम होने से घरेलू बाजार में उस उत्पाद की कीमतों में बहुत वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के तौर पर, वर्ष 1996-97 में भारत ने अरब देशों को बहुत अधिक मात्रा में प्याजों का निर्यात किया। इससे इस वर्ष में प्याजों की कीमत साधारण कीमत ₹ 9 प्रति किलो से बढ़कर ₹ 80 प्रति किलो तक पहुंच गई।

(9) **भुगतान शेष की समस्या** (Problem of Balance of Payments): मेजबान देश में स्थापित सहायक कंपनी को रॉयल्टी, तकनीकी फीस, लाभ, पूँजी पर ब्याज आदि के रूप में मूल कंपनी को भुगतान विदेशी मुद्रा में करना पड़ता है। दीर्घकाल में यह भुगतान (Repatriated Amount) निवेश की गई पूँजी से कहीं अधिक होता है। इससे मेजबान देश से विदेशी विनिमय का बाहरी प्रवाह बहुत बढ़ जाता है। इसके अलावा मेजबान देश को मूल देश से पूँजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों (Capital Goods and Intermediate Goods) का भी आयात करना पड़ता है क्योंकि घरेलू पूँजी उत्पाद व मध्यवर्ती उत्पाद विदेशी टेक्नोलॉजी से मेल नहीं खाते। इससे भी विदेशी विनिमय के बाहरी प्रवाह में वृद्धि होती है। इससे भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(10) **घरेलू अर्थव्यवस्था में छवि को सुधारने के लिए** (To Improve Image in the Domestic Economy): कोई व्यावसायिक इकाई अपने व्यवसाय को अन्य देशों में फैलाती है, तो इससे व्यावसायिक इकाई की घरेलू अर्थव्यवस्था में छवि में सुधार होता है। ऐसा विशेष रूप से तब होता है, जब व्यावसायिक इकाई का मूल देश विकासशील या अल्पविकसित देश होता है। अतः व्यावसायिक इकाइयाँ अपनी घरेलू छवि में सुधार करने के लिए भी व्यवसाय का अंतर्राष्ट्रीयकरण करती है।

(11) **स्वस्थ प्रतिस्पर्धा** (Healthy Competition): विदेशी व्यवसाय देश में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को जन्म देता है। इसके फलस्वरूप उत्पादन की कुशलता में वृद्धि होती है। वस्तुओं की लागतें कम होती है तथा समस्त जनता को लाभ प्राप्त होता है। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के कारण अकुशल घरेलू निर्माता देश की जनता का शोषण नहीं कर सकते। विदेशी निर्माताओं से प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए घरेलू निर्माता अपनी कार्यकुशलता में सुधार लाते है। इसका आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(12) **तुलनात्मक लाभ** (Comparative Advantage): विदेशी व्यापार द्वारा विभिन्न देश अपने साधनों का उपयुक्त उपयोग कर सकते है। प्रत्येक देश उसी उत्पाद को बनाता है, जिसके निर्माण में वह तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम है। इस उत्पाद को बनाकर उसका निर्यात भी करता है। दूसरी तरफ, यह देश ऐसे उत्पाद को स्वयं नहीं बनाता, जिसके निर्माण में यह अधिक सक्षम नहीं है। अपितु ऐसे उत्पाद को उन देशों से आयात करता है जिनकी इस उत्पाद के निर्माण में अधिक निपुणता व कुशलता है। अन्य शब्दों में, विदेशी व्यापार के कारण प्रत्येक देश अपनी जरूरत के सभी उत्पादों को स्वयं नहीं बनाता, बल्कि उन्हीं उत्पादों को बनाता है जिसमें इसका विशिष्टीकरण है। इससे विशिष्टीकरण के लाभ, जैसे उत्पादन की कम लागत, कम कीमतें, उत्पाद की अच्छी क्वालिटी, आदि प्राप्त होते है। इसी तरह कुछ सेवाओं की दर में भी, कुछ देशों में तुलनात्मक लागत कम आती है, जैसे- भारत में मेडिकल सेवा विकसित देशों की तुलना में सस्ती है। इसका लाभ बहुत से देशों के लोग उठा रहे है। अतः विदेशी व्यापार द्वारा साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग होता है।

दूर संचार, परिवहन व सूचना तकनीकी सुविधाओं के तीव्र विकास से भी व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण को बढ़ावा मिला है। अब पूर्तिकर्ताओं, संभावित ग्राहकों, विपणन मध्यस्थों को संपर्क करना, प्रदर्शनियों में जाना, आदि पहले की तुलना में अधिक सुलभ हो गया है। विकासशील देशों में सांस्कृतिक आधुनिकीकरण से भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बढ़ावा मिला है।

■ 4. व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीयकरण के हानिकारक प्रभाव

(Harmful Effects of Internationalisation of Business)

कई प्रमुख अर्थशास्त्रियों का यह विचार है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की गति धीमी हुई है। **नर्कसे** का यह विचार है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से कुछ देशों के आर्थिक विकास को शायद कुछ लाभ पहुचा हो। परन्तु **अधिकतर अल्पविकसित देशो के आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाधक सिद्ध हुआ है।** अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए विदेशी व्यापार के निम्नलिखित प्रभाव हानिकारक सिद्ध हुए हैं:

(1) **असंतुलित विकास** (Lopsided Development): विदेशी व्यवसाय के कारण अल्पविकसित देशों में दोहरी **अर्थव्यवस्था** उत्पन्न हो गई है। इसका अभिप्राय यह है कि इन देशों के कुछ थोड़े से भाग में जहाँ निर्यात वस्तुओं के उद्योग व विदेशी उपक्रम स्थापित हुए हैं, विकास हुआ है। परंतु देश का अधिकतर भाग निर्धन और पिछड़ा हुआ रह गया है। इस प्रकार देश में क्षेत्रीय असमानता बढ़ी है।

(2) **लाभ की सीमित सम्भावना** (Limited Possibility of Gain): अल्पविकसित देशों को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाली लाभ की सम्भावनाएं भी बहुत सीमित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अल्पविकसित देश मुख्य रूप से **प्राथमिक पदार्थों** (Primary Products) का निर्यात करते हैं। परंतु उनके निर्यातों को निम्नलिखित कारणों से हानि उठानी पड़ रही है: (i) विकसित देशों में अधिकतर कृषि उत्पादों की माँग की **आय लोच** (Income Elasticity) कम है, अर्थात् आय में वृद्धि होने से कृषि उत्पादों की माग में कम अनुपात में वृद्धि होती है। (ii) कई विकसित देश कृषि पदार्थों के आयात के संबंध में संरक्षण की नीति अपना रहे हैं। (iii) कृषि पदार्थों के स्थान पर कृत्रिम वस्तुएं

(10) घरेलू औद्योगिक इकाइयों पर कुप्रभाव (Setback to Domestic Industries): विकासशील देशों व अल्पविकसित देशों में स्थापित विदेशी कंपनियाँ मेजबान देश की घरेलू औद्योगिक इकाइयों को कुप्रभावित करती हैं। ये घरेलू इकाइयाँ विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियों की उच्च टेक्नोलॉजी, प्रबंधकीय श्रेष्ठता, विश्व-व्यापी ब्राड-छवि, सुदृढ़ वित्तीय आधार, आदि से प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पाती। इसके अलावा विकासशील व अल्पविकसित देशों के लोग विदेशी ब्रांडों को खरीदना बड़े गर्व की बात मानते हैं। इससे घरेलू इकाइयों को हानि होती है। कई बार बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मेजबान देश की घरेलू कंपनियों को अधिग्रहण करके मेजबान देश में एकाधिकार वाली स्थिति उत्पन्न करके प्रतिस्पर्धा को बहुत कम कर देती हैं, जैसे-भारत में हिंदुस्तान यूनीलीवर (जो विदेशी कंपनी यूनीलीवर की सहायक कंपनी है) ने बहुत-सी भारतीय घरेलू कंपनियों का अधिग्रहण कर लिया है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में भी, सस्ते आयातित उत्पाद घरेलू उद्योगों को कुप्रभावित करते हैं, जैसे-चीन से आयातित खिलौनों ने भारत की खिलौना उत्पादक इकाइयों को कुप्रभावित किया है।

(11) विदेशों पर निर्भरता में वृद्धि (Increase in Foreign Dependence): विदेशी निवेश के कारण विदेशों पर निर्भरता में वृद्धि होती है। विदेशों से जो मशीनें, कच्चा माल, तकनीक आदि आयात की जाती हैं, उनके कलपुर्जों, तकनीकी विशेषज्ञों, आदि के लिये उन्हीं देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। अर्थात् विदेशी तकनीक के रख-रखाव के लिए भी विदेशों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(12) अनिश्चितता (Uncertainty): विदेशी पूँजी के संबंध में सदैव अनिश्चितता बनी रही है। यह कभी भी विदेशों को वापस जा सकती है। विदेशी पूँजी कभी भी किसी अर्थव्यवस्था का स्थायी अंग नहीं बन सकती। आपत्तिकाल में जब विदेशी पूँजी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, इसकी उपलब्धता बहुत कम हो जाती है। वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान में विदेशी संस्थागत निवेशक पोर्टफोलियो निवेश को वापिस ले जाते हैं। इससे घरेलू अर्थव्यवस्था में पूँजी की कमी हो जाती है, शेयरों की कीमतों में गिरावट आ जाती है, जिससे शेयर बाजार में संकट आ जाता है। इसके अलावा इससे घरेलू करेंसी के बाहरी मूल्य में कमी आ जाती है, क्योंकि विदेशी संस्थागत निवेशक अपनी पूँजी को अपने मूल देश में वापिस ले जाते हैं, जिससे विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जाती है। वर्ष 2008-09 में ऐसी स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था में तथा विश्व की अधिकतर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में आई। इस तरह पोर्टफोलियो निवेश केवल अच्छे समय का साथी (Fair Weather Friend) है तथा बहुत अनिश्चित है।

(13) घरेलू तकनीक के विकास में बाधा (Hindrance in the Development of Domestic Technology): विदेशी पूँजी के साथ-साथ विदेशी तकनीक भी आयात की जाती है। इसका घरेलू तकनीक तथा अनुसंधानों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब हम कोई तकनीक विदेशों से आयात कर लेते हैं तो उस तकनीक का घरेलू उत्पादन, अनुसंधान व विकास छोड़ देते हैं। इससे स्वदेशी आधुनिक तकनीक का विकास नहीं हो पाता। इससे मेजबान देशों के उद्योग विदेशों पर निर्भर हो जाते हैं।

(14) सरकार को राजस्व की हानि (Loss of Revenue to Government): यदि विदेशी कंपनी मेजबान देश में प्रवेश हेतु व्यापार रूट के स्थान पर निवेश रूट अपनाती है, तो इससे मेजबान देश की सरकार को टैरिफ के रूप में प्राप्त होने वाले राजस्व की हानि होती है, क्योंकि मेजबान देश में आयात पर टैरिफ (आयात-कर) लगाया जाता है। आयात-कर से बचने के लिए विदेशी कंपनियाँ मेजबान देश में उत्पाद निर्यात न करके वहाँ सहायक कंपनियाँ स्थापित करती हैं। इसे टैरिफ-जंपिंग (Tariff Jumping) विदेशी निवेश कहते हैं, इससे मेजबान देश की सरकार को हानि होती है। इसके अलावा, मेजबान देश की सरकार करों से अपनी आय बढ़ाने के लिए कंपनियों व निगमों के लाभ पर निगम कर लगाती है। MNCs निगम कर से बचने के लिये कीमत अंतरण (Transfer Pricing) की विधि अपना कर अपने लाभ में कमी कर लेती हैं। इस विधि के अनुसार वे विदेशों में स्थित अपनी अन्य सहायक कंपनियों से ऊँची कीमत पर मध्यवर्ती वस्तुएँ खरीदकर अपने स्थानीय लाभ को कम कर लेती हैं। ये निगम आयात के बिलों का अधिक मूल्यांकन (Over Invoicing) तथा निर्यात का कम मूल्यांकन (Under Invoicing) करके अपनी वास्तविक आय को छुपा लेती हैं। इससे करों की चोरी होती है। इससे भी मेजबान देश की सरकार को राजस्व की हानि होती है।

(15) भ्रष्टाचार में वृद्धि (Increase in Corruption): आयात व निर्यात संबंधी कार्यविधियाँ बहुत जटिल होती हैं। इसके लिये सरकारी अधिकारियों से विभिन्न अनुमोदन (Approvals), लाइसेंस, कोटा आदि लेने पड़ते हैं। प्रायः आयातकों, निर्यातकों व विदेशी निवेशकों को सरकारी अधिकारियों से ये आवश्यक अनुमोदन लेने के लिये उन्हें रिश्वत देनी पड़ती है। इससे रिश्वतखोरी को बढ़ावा मिलता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन से यह पता चलता है कि विदेशी व्यवसाय विशिष्टीकरण को बढ़ावा देता है, इससे साधनों का उपयुक्त उपयोग होता है, यह एकाधिकार-प्रवृत्तियों को रोकता है, अल्पविकसित देशों के औद्योगिक विकास में सहायक होता है, देश में उन उत्पादों को उपलब्ध करवाता है जो वहाँ नहीं बनाये जा रहे तथा घरेलू उत्पादों के लिये विस्तृत बाजार उपलब्ध करवाता है, आदि। लेकिन इन सबके बावजूद, यह भी पाया गया है कि विकसित देश अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से अधिक लाभान्वित होते हैं। विकसित देश, विकासशील देशों से अपनी सुविधाओं के अनुसार ही व्यापार करते हैं। विकसित देश अति अल्पविकसित व विकासशील देशों के साथ व्यवसाय करते हुए मनमानी व्यापार शर्तें रखते हैं। अल्पविकसित देशों के लिये अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के लाभों को बढ़ाया जा सकता है, यदि ये अल्पविकसित देश आपस में एक दूसरे से अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय को बढ़ावा दें। इस दिशा में विश्व भर में कई प्रयास किये गये हैं, जैसे- G-77 (77 अल्पविकसित देशों का समूह), अंकटाड, नयी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक-व्यवस्था, क्षेत्रीय-समूह; जैसे- SAARC, ASEAN आदि का गठन। इन सब प्रयासों से अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का महत्त्व बढ़ेगा तथा अल्पविकसित देश भी अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय द्वारा अपने आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकेंगे।

■ 5. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ को प्रभावित करने वाले तत्त्व

(Factors Affecting Gains from International Trade)

(1) लागत अनुपातों में अंतर (Difference in Cost Ratios): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाला लाभ व्यापार करने वाले देशों के तुलनात्मक लागत अनुपातों के अंतर पर निर्भर करता है। विभिन्न देशों में लागत अनुपातों में अंतर कई कारणों से हो सकते हैं, जैसे-उत्पादन घटकों की लागत में अंतर, टेक्नोलॉजी में अंतर, कर दरों में अंतर, अधोसंरचना संबंधी सुविधाओं की उपलब्धता, आदि। दो देशों में लागत के अनुपात में जितना अधिक अंतर होगा, व्यापार से लाभ भी उतना ही अधिक होगा।

(2) व्यापार की शर्तें (Terms of Trade): व्यापार की शर्तें भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभों को प्रभावित करती हैं। व्यापार की शर्तों से अभिप्राय उस दर से है जिसके अनुसार एक देश की वस्तुओं का दूसरे देश की वस्तुओं से विनिमय होता है। व्यापार की शर्तें निर्यात कीमतों तथा आयात कीमतों में संबंध व्यक्त करती हैं। देश के व्यापार की शर्तों में सुधार होने का अर्थ है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल होने पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ में कमी होती है।

(3) माँग व पारस्परिक माँग की प्रकृति (Nature of Demand and Reciprocal Demand): व्यापार की शर्तें माँग व पारस्परिक माँग की लोच पर भी निर्भर करती हैं। यदि देश के आयात की माँग बेलोच (Inelastic) है तो वह देश आयातों के लिए अधिक कीमत देने को भी तैयार होगा। ऐसी दशा में व्यापार की शर्तें आयातक देश के प्रतिकूल तथा निर्यातक देश के अनुकूल होंगी। दूसरी तरफ, यदि किसी देश में आयात की माँग की लोच अधिक (More Elastic Demand) है तो वह देश आयात के लिए अधिक कीमत देने को तैयार नहीं होगा। अतः व्यापार की शर्तें आयातक देश के अनुकूल तथा निर्यातक देश के प्रतिकूल होंगी। व्यापार की शर्तें अनुकूल होने पर किसी देश को विदेशी व्यापार से अधिक लाभ होता है, जबकि व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होने पर उस देश को विदेशी व्यापार से कम लाभ होता है। अतः जिस देश के उत्पादों की अन्य देशों में माँग अधिक है तथा जिसकी अन्य देशों के उत्पादों के लिए माँग (Reciprocal Demand) कम है, उस देश को विदेशी व्यापार से अधिक लाभ होता है।

(4) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए सुविधाएं (Facilities for International Trade): व्यापार से लाभ पर, व्यापार के लिये उपलब्ध सुविधाओं का भी प्रभाव पड़ता है। यदि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की सुविधायें अधिक हैं; जैसे- बंदरगाहों की सुविधाएँ पर्याप्त है, प्रशासनिक बाधाएं कम है, आयात-निर्यात का तरीका व प्रक्रिया सरल है तो वस्तुओं की बिक्री में

कोई कठिनाई नही होगी तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ में वृद्धि होगी। कुशल विक्रय कला के कारण भी व्यापार से लाभ बढ़ते हैं।

(5) **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा** (Volume of International Trade): व्यापार से लाभ पर व्यापार की मात्रा का भी प्रभाव पड़ता है। विदेशी व्यापार की मात्रा जितनी अधिक होगी, व्यापार से लाभ भी उतना ही अधिक होगा। **मिल** (Mill) के अनुसार यदि कोई देश किसी ऐसी वस्तु का अधिक मात्रा में उत्पादन करता है जिसकी विदेशों में अधिक माँग है तथा केवल उसका ही निर्यात करके वह अपने समस्त आयातों की व्यवस्था कर सकता है तो व्यापार से उसे अधिक लाभ होंगे।

(6) **परिवहन लागत** (Transportation Cost): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाला लाभ परिवहन लागत से भी प्रभावित होता है। परिवहन लागत में कमी होने पर विदेशी व्यापार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और साथ ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाला लाभ भी अधिक हो जाता है। इसके विपरीत, परिवहन लागत बढ़ जाने पर विदेशी व्यापार का क्षेत्र सीमित हो जाता है और विदेशी व्यापार से मिलने वाला लाभ भी कम हो जाता है।

(7) **विनिमय-दर में उतार-चढ़ाव** (Fluctuations in Exchange Rate): अब संपूर्ण विश्व में लोचशील विनिमय दर प्रणाली प्रचलित है। इस व्यवस्था में विभिन्न घरेलू व वैश्विक घटकों के कारण विनिमय दर में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। मूल देश व मेजबान देश के मध्य विनिमय दर में अनुकूल परिवर्तन होने से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों में वृद्धि होती है तथा प्रतिकूल परिवर्तन होने पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ कम हो जाते हैं।

(8) **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधाएँ** (Barriers to International Trade): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के रास्ते में विभिन्न रुकावटें हो सकती हैं; जैसे-आयात कर, आयात कोटा, आयात लाइसेंस आदि। यदि ये रुकावटें कम हैं, तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ अधिक होंगे। टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ अधिक होने पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ कम हो जाता है।

संक्षेप में, प्रत्येक देश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास करता रहता है। यह लाभ मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संलग्न देशों में लागत अनुपातों में अंतर, श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण का परिणाम है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का संगठनात्मक ढाँचा

(Organisational Structure of International Business)

■ 1. परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

जब भी दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी कार्य को कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर करते हैं तब विभिन्न क्रियाओं को बाँटने की और उन सभी क्रियाओं में समन्वय बनाने की आवश्यकता होती है। संगठन की उत्पत्ति इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए हुई। संगठन कार्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी कार्य को करने के लिए विभिन्न क्रियाओं को निर्धारित किया जाता है, उन्हें विभिन्न समूहों में बाँट दिया जाता है और यह तय किया जाता है कि विभिन्न कर्मचारियों के क्या-क्या अधिकार एवं दायित्व होंगे तथा कौन किसके अधीनस्थ होगा और कौन किसका अधीनस्थ। सभी कर्मचारियों के मध्य सम्बंधों की व्याख्या करके संस्था के उद्देश्यों को कुशलतापूर्वक पूरा करने का प्रयास किया जाता है। व्यावसायिक इकाई के अच्छे प्रबंध के लिए उपयुक्त संगठनात्मक ढाँचा बनाया जाना अति अनिवार्य है।

संगठनात्मक संरचना डिजाइन एक ऐसा संरचनात्मक ढाँचा है, जिसमें संस्था में कार्य कर रहे कर्मचारियों के मध्य औपचारिक अधिकारों व दायित्वों को परिभाषित किया जाता है। इसके अंतर्गत संस्था में कार्यरत सभी व्यक्तियों के मध्य औपचारिक सम्बंधों को स्थापन की जाते है। इसमें संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के लिए अनेक पदों का निर्माण किया जाता है। ये पद संस्था में कर्मचारियों को सौंपे जाते है। इन पदों/व्यक्तियों के मध्य सम्बंध परिभाषित किए जाते हैं। अर्थात यह निर्धारित किया जाता है कि कौन किसका वरिष्ठ (Senior) होगा और कौन किसका अधीनस्थ (Subordinate)। क्योंकि प्रत्येक संस्था के कार्य की प्रकृति एवं आकार भिन्न-भिन्न होते है, अतः संस्था की इन विशेषताओं के अनुरूप ही संगठनात्मक संरचना का प्रारूप निर्धारित किया जाता है अतः संगठनात्मक संरचना के अनेक प्रारूप हो सकते है। इसके अलावा बदलती परिस्थितियों के अनुसार संगठनात्मक ढाँचे में परिवर्तन होते रहते है। अन्य शब्दों में संगठनात्मक संरचना का कोई एक ऐसा प्रमापित प्रारूप (Standard Form) नहीं होता जो सभी व्यावसायिक इकाइयों में अपनाया जा सके।

- **संगठनात्मक संरचना की परिभाषाएँ (Definitions of Organisational Structure)**

संगठनात्मक संरचना की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित है:

(1) **जॉन डी॰ डेनियल के अनुसार, "संगठनात्मक ढाँचा कंपनी के अंदर विभिन्न कार्यों की ऐसी औपचारिक व्यवस्था है जिसमें भूमिकाओं तथा उत्तरदायित्वों को निर्धारित किया जाता है।"** (Organisational structure is the formal arrangement of jobs within a business unit that specifies roles and relationship. —**John D. Daniels**)

(2) **हर्ले के अनुसार, "संगठन ढाँचे, एक संस्था में विभिन्न पदों एवं उन पदों पर काम करने वाले व्यक्तियों के मध्य संबंधों के स्वरूप होते हैं।"** (Organisational structure is the pattern of relationship among the various positions in a firm and among the various people occupying the positions. —**Hurley**)

(3) **विलियम एच॰ न्यूमैन के अनुसार, "संगठनात्मक संरचना एक उपक्रम की समस्त संगठनात्मक व्यवस्था से व्यवहार करती है।"** (Organisational structure deals with the overall organisational arrangement in an enterprise. —**William H. Newman**)

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि संगठन संरचना के अंतर्गत एक संस्था में पदों को निश्चित किया जाता है और उनके मध्य सबंधों की व्याख्या की जाती है। इस प्रक्रिया में अधिकारों व उत्तरदायित्वों को विभिन्न पदों के मध्य वितरित कर दिया जाता है।

घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की दशा में संगठनात्मक संरचना बहुत अधिक जटिल होती है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय बहुत विशाल भौगोलिक क्षेत्र में फैला होता है, इसमें कर्मचारियों व उत्पादों की संख्या बहुत अधिक होती है, इसके अलावा ये उत्पाद भी विभिन्न तरह के होते है। विभिन्न देशों में व्यावसायिक वातावरण में भी बहुत विभिन्नता होती है। इन कारणों से वैश्विक व्यावसायिक इकाई की संगठनात्मक संरचना बहुत जटिल हो जाती है। संगठनात्मक संरचना में विभिन्न कार्यों को उपकार्यों में विभाजित किया जाता है। इन उपकार्यों को विभिन्न पदों का नाम देकर विभिन्न कर्मचारियों को सौंप दिया जाता है। पदों को कर्मचारियों को सौंपते समय उनकी विशिष्टता का क्षेत्र, ज्ञान, अनुभव आदि को ध्यान में रखा जाता है ताकि 'उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति' सुनिश्चित किया जा सके। विभिन्न पदों के बीच निर्देशों, सूचनाओं व प्रतिक्रियाओं के स्वतंत्र प्रवाह के लिए संबंध स्थापित किए जाते है (Linkages are Developed)। संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संगठन के विभिन्न पदों के कार्यों में समन्वय स्थापित किया जाता है ताकि सभी कर्मचारी एक ही दिशा में कार्य करें। इसके लिए संगठन के विभिन्न पदों में सूचनाओं के स्वतंत्र प्रवाह को बढ़ावा दिया जाता है। विभिन्न पदों में सहकारिता व समन्वय को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रयास किए जाते है, समय-समय पर विभिन्न पदाधिकारियों की सभाएँ आयोजित की जाती है। ताकि इनमें झगड़े व गलतफहमी की कोई संभावना न रहे। संगठनात्मक डिजाईनिंग में 'आदेश की एकता व निर्देश की एकता' सिद्धांत (Unity of Command and Unity of Direction), सूचनाओं के स्वतंत्र प्रवाह, क्रियाओं के व्यर्थ दोहरेपन पर रोक आदि को ध्यान में रखा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में कुछ कर्मचारी उत्प्रवासी होते है, जबकि कुछ कर्मचारी मेजबान देश से ही होते है। उनमें सांस्कृतिक विभिन्नताएँ पाई जाती है। अतः इनमें अनुरूपता (Harmonization) लाने की आवश्यकता होती है। एक संगठनात्मक संरचना की सुव्यवस्थित ढंग से डिजाईनिंग करना इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होता है।

संगठनात्मक संरचना को संगठनात्मक डिजाइन या संगठनात्मक आर्किटेक्चर (Architecture) भी कहते है। इसमें मुख्यतः निम्न शामिल हैं:

(1) **संगठन का उप-इकाइयों में औपचारिक विभाजन या अनुप्रस्थ/समानांतर वर्गीकरण** [Formal Division of the Organisation into Sub-units (Horizontal Differentiation)]: इसे संगठनात्मक संरचना डिजाइन भी कहते है। अनुप्रस्थ/समानांतर वर्गीकरण में वैश्विक व्यावसायिक इकाई को किसी आधार पर उप-इकाइयों में विभाजित किया जाता है। यह उप-विभाजन उत्पाद, क्षेत्र, कार्यों के आधार पर या इनके संयुक्त आधार पर हो सकता है।

(2) **संगठनात्मक संरचना में निर्णय लेने संबंधी उत्तरदायित्व सौंपना या लंबवत् वर्गीकरण** [Assigning Decision Making Responsibilities within the Organisational Structure (Vertical Differentiation)]: इसका तात्पर्य संगठनात्मक संरचना में निर्णय लेने के अधिकार व उत्तरदायित्व के संदर्भ में केंद्रीयकरण या विकेंद्रीयकरण की मात्रा से है। जब निर्णय लेने का अधिकार व उत्तरदायित्व केंद्रित होते है तो इसे केंद्रीयकरण (Centralisation) कहते है। जब यह उच्च अधिकारियों के पास ही केंद्रित न होकर निम्न स्तर तक फैले होते है तो इसे विकेंद्रीयकरण (Decentralization) कहते है।

विभिन्न उप-इकाइयों में सहकारिता व समन्वय स्थापित करने के लिए एकीकरण व्यवस्था (Integration Mechanism) स्थापित की जाती है।

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संगठनात्मक संरचना को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Organisational Structure in International Business)

घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संगठनात्मक संरचना अधिक जटिल होती है। वैश्विक व्यवसाय में व्यावसायिक क्रियाएँ बहुत विशाल क्षेत्र में फैली होती है। वैश्विक व्यावसायिक इकाई विभिन्न तरह की उत्पाद-रेखाओं में व्यवसाय करती है तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का आकार बहुत ही विशाल होता है। ऐसी स्थिति में संगठन के विभिन्न पदों में अधिकारों व उत्तरदायित्वों को

स्पष्ट रूप से परिभाषित करना अति अनिवार्य होता है। विभिन्न सहायक कंपनियों में समन्वय स्थापित करने हेतु एकीकरण व्यवस्था (Integration Mechanism) की बहुत आवश्यकता होती है ताकि संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संगठनात्मक संरचना को प्रभावित करने वाले मुख्य घटक निम्नलिखित हैं:

(1) वैश्विक इकाई का आकार (Size of Global Unit): यदि वैश्विक व्यावसायिक इकाई कुछ ही देशों में फैली हुई है तो केंद्रीयकृत संगठनात्मक संरचना को अपनाया जा सकता है जिसमें निर्णय लेने संबंधी अधिकार केवल उच्च अधिकारियों को ही होते हैं। परंतु यदि वैश्विक इकाई का व्यवसाय बहुत अधिक देशों में फैला हुआ है तो केंद्रीयकृत संगठनात्मक संरचना उपयुक्त नहीं होगी। यहाँ विकेंद्रीयकृत संगठनात्मक संरचना उचित होगी, जिसमें विभिन्न सहायक कंपनियों के विभिन्न उच्च अधिकारियों को निर्णय लेने संबंधी अधिकार दिए जाते हैं। जैसे-जैसे वैश्विक इकाई का आकार बढ़ता है, वैसे-वैसे व्यावसायिक इकाई का संगठनात्मक ढाँचा और अधिक जटिल होता चला जाता है।

(2) प्रबंधोन्मुखी (Management Orientation): वैश्विक कंपनी के व्यावसायिक प्रबंध के संदर्भ में, एथनोसैंट्रिक प्रबंध दृष्टिकोण या पोलीसैंट्रिक प्रबंध दृष्टिकोण अपना सकती है। एथनोसैंट्रिक दृष्टिकोण में मूल कंपनी रणनात्मक निर्णय लेने का अधिकार व नियंत्रण अपने पास रखती है। पोलीसैंट्रिक प्रबंध दृष्टिकोण में रणनात्मक निर्णयों संबंधी अधिकार उत्तरदायित्व व नियंत्रण का सहायक कंपनियों को विकेंद्रीयकरण किया जाता है। एथनोसैंट्रिक प्रबंध दृष्टिकोण में मूल देश में अपनाई गई रणनीतियाँ व नीतियाँ मेजबान देश में भी अपनायी जाती हैं। जबकि पोलीसैंट्रिक प्रबंध दृष्टिकोण में विभिन्न देशों में स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न रणनीतियाँ व नीतियाँ अपनाई जाती है।

(3) कर्मचारियों की संख्या (Number of Employees): व्यावसायिक इकाई में कर्मचारियों की संख्या बढ़ने से संगठनात्मक संरचना और अधिक जटिल हो जाती है। इसमें सुपरिभाषित अधिकारों व उत्तरदायित्वों की आवश्यकता होती है। इसमें स्पष्ट रूप से निर्धारित रणनीतियों, नीतियों, कार्यविधियों, पद्धतियों, नियमों व प्रावधानों की आवश्यकता होती है। इससे संगठनात्मक संरचना अधिक औपचारिक हो जाती है। दूसरी ओर, यदि कर्मचारियों की संख्या कम है तो संगठनात्मक संरचना सरल होगी।

(4) विभेदीकरण/विभागीकरण की मात्रा (Degree of Differentiation): यदि व्यावसायिक इकाई में विभेदीकरण की मात्रा अधिक है तो एकीकरण की आवश्यकता अधिक होती है। यहाँ विभेदीकरण का आशय विभागीकरण से है अर्थात् व्यावसायिक इकाई में कितने कार्यात्मक विभाग हैं; जैसे- उत्पादन विभाग, विपणन विभाग, वित्त विभाग, क्रय विभाग आदि। ये सभी विभाग अपने-अपने विभाग संबंधी उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं। जैसे- उत्पादन विभाग का मुख्य उद्देश्य उत्पादन लागत को कम करना है। वित्त विभाग का उद्देश्य कम लागत पर पूंजी का प्रबंध करना, अंशधारियों के धन को अधिकतम (Wealth Maximisation) करना आदि है। इसी तरह विपणन विभाग का उद्देश्य विक्रय को बढ़ाना, विक्रय व्ययों को कम करना, उपभोक्ता संतुष्टि को बढ़ाना आदि है। इस तरह अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक संगठन के विभिन्न विभाग अपने-अपने विभागीय उद्देश्यों की प्राप्ति में पृथक-पृथक रूप से संलग्न रहते हैं। विभिन्न विभागों के स्वतंत्र रूप से कार्य करने से उनमें एकीकरण की आवश्यकता अनुभव होती है, ताकि निगमित उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। जहाँ विभागीकरण/विभेदीकरण की मात्रा अधिक होती है, वहाँ एकीकरण (Integration) की आवश्यकता भी बहुत अधिक होती है। ऐसी स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई को ऐसी संगठनात्मक संरचना को अपनाना चाहिए जो विभिन्न विभागों में सहयोग, सहभागिता व एकीकरण को बढ़ावा दे ताकि संपूर्ण वैश्विक व्यावसायिक इकाई एक एकीकृत व्यावसायिक इकाई के रूप में कार्य करे।

(5) वातावरणीय अनिश्चितता (Environmental Uncertainty): यदि वैश्विक व्यावसायिक इकाई का व्यावसायिक वातावरण बहुत अनिश्चित है, अस्थायी (Unstable) है, इसके संघटकों का पूर्वानुमान लगाना कठिन है तो ऐसी स्थिति में संगठन में नियमों में कम कठोरता (Less Regidity) होनी चाहिए, निर्णय लेने संबंधी अधिकारों व उत्तरदायित्वों का विकेंद्रीयकरण किया जाना चाहिए ताकि सहायक कंपनियाँ बदलते वातावरणीय घटकों के अनुरूप तुरंत निर्णय ले सकें। दूसरी ओर, यदि व्यवसाय के वातावरणीय घटक स्थिर (Stable) हैं, निश्चित हैं, उनका पूर्वानुमान लगाना आसान है तो निर्णय लेने संबंधी शक्ति का केंद्रीयकरण किया जाता है। ऐसी स्थिति में सुपरिभाषित नियम, कार्यशैली, कार्यपद्धतियाँ होती हैं, इसमें कठोरता अधिक व लोचशीलता कम होती है तथा संगठनात्मक संरचना केंद्रीयकृत होती है।

(6) स्थानीय अनुरूपता व वैश्विक एकीकरण की आवश्यकता (Need for Local Responsiveness and Global Integration): स्थानीय अनुरूपता का तात्पर्य विभिन्न देशों की स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार रणनीतियों व नीतियों को समायोजित करना है। यहाँ पोलीसैंट्रिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है तथा मूल देश अपने मुख्य तकनीकी व प्रबंधकीय कौशल को विभिन्न मेजबान देशों में सहायक कंपनियों को हस्तांतरित करता है। इस दृष्टिकोण में विकेंद्रीयकरण पर आधारित संगठनात्मक संरचना डिजाइन की जाती है। दूसरी ओर, वैश्विक एकीकरण दृष्टिकोण एथनोसैंट्रिक दृष्टिकोण पर आधारित होता है। इस दृष्टिकोण में केंद्रीयकृत संगठनात्मक संरचना को अपनाया जाता है तथा मूल देश में अपनाई गई रणनीतियों, नीतियों, कार्यपद्धतियों को विभिन्न मेजबान देशों में सहायक कंपनियों में भी अपनाया जाता है। स्थानीय अनुरूपता व वैश्विक एकीकरण की आवश्यकता के आधार पर वैश्विक व्यावसायिक इकाई की संगठनात्मक संरचना निम्न प्रकार की हो सकती है:

(i) बहु-घरेलू रणनीति पर आधारित संगठनात्मक संरचना (Organisational Structure based on Multi-domestic Strategy): बहु-घरेलू रणनीति में वैश्विक एकीकरण की आवश्यकता कम होती है, जबकि स्थानीय अनुरूपता की आवश्यकता अधिक होती है। इस रणनीति में वैश्विक व्यावसायिक इकाई विकेंद्रीयकृत संगठनात्मक संरचना को अपनाती है जिसमें मूल कंपनी अपने मुख्य तकनीकी व प्रबंध कौशल को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप सहायक इकाई को हस्तांतरित करती है। परंतु इसमें विभेदीकरण (Differentiation) बढ़ जाता है। मूल कंपनी व सहायक कंपनियों में एकीकरण का अभाव हो जाता है। परंतु इसके बावजूद भी गैर-सर्वव्यापी (Non-universal) उत्पादों में व्यवसाय करने वाली वैश्विक इकाइयाँ संगठनात्मक संरचना के इस प्रारूप को अपनाती है। यहाँ गैर सर्वव्यापी उत्पादों का तात्पर्य ऐसे उत्पादों से है, जो विभिन्न राष्ट्रीय बाजारों में विभिन्न प्रारूपों (forms) में प्रयोग किए जाते है।

(ii) वैश्विक रणनीति पर आधारित संगठनात्मक संरचना (Organisatonal Structure based on Global Strategy): वैश्विक रणनीति में वैश्विक एकीकरण की आवश्यकता अधिक होती है जबकि स्थानीय अनुरूपता की आवश्यकता कम होती है। ऐसी रणनीति में संगठनात्मक संरचना एथनोसैंट्रिक दृष्टिकोण पर आधारित होती है, जिसमें व्यूहरचनात्मक निर्णय लेने संबंधी अधिकार मूल कंपनी के पास केंद्रित होते हैं। इसमें मुख्य तकनीकी व प्रबंध कौशल को मूल कंपनी के पास ही रखा जाता है। प्रमापित उत्पादों (Standardized Products) को कुछ स्थानों पर ही बनाया जाता है और इन कुछ स्थानों से इन्हें विश्वभर में बेचा जाता है। इस संगठनात्मक संरचना में औपचारिक एकीकरण की अधिक आवश्यकता नहीं होती क्योंकि इस संरचना में स्वतः ही एकीकरण (In-built-integration) हो जाता है।

Strategies for Organisational Structure

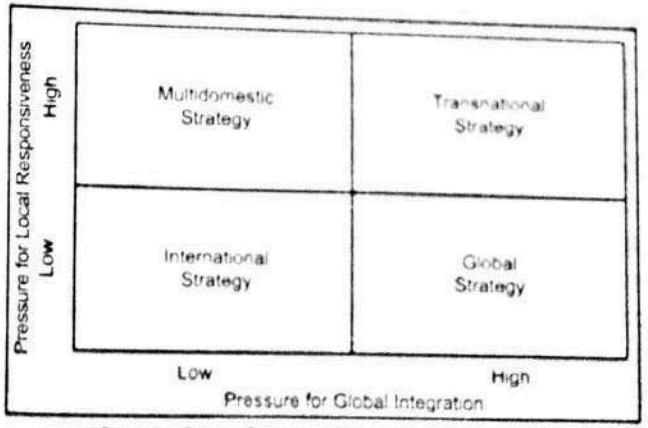

(Given by Gareth R. Jones, Organisational Theory, Pearsons)

(iii) **अंतर्राष्ट्रीय रणनीति पर आधारित संगठनात्मक संरचना** (Organisational Structure based on International Strategy): इस रणनीति में स्थानीय अनुरूपता व निर्णय लेने का अधिकार मूल कंपनी अपने पास रखती है जबकि कार्यात्मक अधिकार (Operating Authority) सहायक कंपनियों को हस्तांतरित कर दिए जाते है। कुछ मुख्य तकनीकी व प्रबंधकीय कौशल को सहायक कंपनियों को हस्तांतरित कर दिया जाता है, जबकि कुछ मुख्य तकनीकी व प्रबंधकीय कौशल को मूल कंपनी अपने पास रखती है। वैश्विक फूड चेन स्टोर (Food Chain Stores); जैसे- मैक्डोनाल्ड, डोमिनोज इस रणनीति को अपनाते है।

(iv) **ट्रांसनेशनल रणनीति पर आधारित संगठनात्मक संरचना** (Organisational Structure based on Transnational Strategy): ट्रांसनेशनल रणनीति में दोनों ही जरूरतें- वैश्विक एकीकरण व स्थानीय अनुरूपता की जरूरतें अत्याधिक होती है। इसमें केंद्रीयकरण व विकेंद्रीयकरण के मध्य संतुलन स्थापित किया जाता है। इसमें मिश्रित संगठनात्मक संरचना अपनायी जाती है। प्राय: उत्पादन क्रियाओं को कुछ स्थानों पर ही केंद्रित किया जाता है। अनुसंधान व विकास को मूल कंपनी अपने पास रखती है, जबकि विपणन क्रियाओं को विकेंद्रीयकृत किया जाता है।

(7) **टेक्नोलॉजी** (Technology): टेक्नोलॉजी का तात्पर्य कार्यपद्धति, उत्पादन के तरीकों व उन मानवीय योग्यताओं से है जिनके द्वारा आगतों को निर्मित उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है तथा निर्मित उत्पादों को अंतिम उपभोक्ता को बेचा जाता है। किसी संगठन की टेक्नोलॉजी इस बात को प्रभावित करती है कि निर्णय किस तरह लिए जाते हैं तथा कार्य कैसे निष्पादित किए जाते हैं। संगठनात्मक संरचना के संदर्भ में टेक्नोलॉजी को नित्यकर्म टेक्नोलॉजी (Routine Technology) व गैर-नित्यकर्म टेक्नोलॉजी (Non-Routine Technology) में वर्गीकृत किया जा सकता है। नित्यकर्म टेक्नोलॉजी की दशा में कार्य पद्धतियों, नियमों व प्रावधानों को स्पष्ट रूप से परिभाषित व प्रमापित किया जाता है। इस स्थिति में निर्णय प्रमापित होते हैं तथा नीति निर्माण का अधिकार केंद्रित होता है। कर्मचारियों को निर्धारित पद्धति व क्रम से काम करना होता है और उन्हें यह पद्धति व क्रम पहले से बता दिया जाता है। उन्हें यह बता दिया जाता है कि कर्मचारियों से क्या आशाएँ हैं, उन्हें अपना काम कैसे पूरा करना है, किस स्थिति में क्या निर्णय लेने हैं। दूसरी ओर गैर-नित्यकर्म टेक्नोलॉजी में कार्य पद्धतियाँ, नियम, कार्य करने के क्रम, निर्णय आदि स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं होते और न ही पूर्ण रूप से प्रमापित होते हैं। निर्णय लेने संबंधी अधिकार विकेंद्रीयकृत होते हैं ताकि कर्मचारी वातावरणीय घटकों में आए अकस्मात परिवर्तन के अनुसार निर्णय ले सकें, कार्यपद्धति को बदल सकें, अर्थात् यह व्यवस्था लोचशील होती है।

(8) **उत्पादों की संख्या एवं प्रकृति** (Nature and Number of Products): उत्पादों की संख्या व प्रकृति भी संगठन की संरचना को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जैसे- यदि वैश्विक इकाई की उत्पाद रेखाएँ (Product Lines) विभिन्न व अत्यधिक हैं, तो यह अपने संगठन का उत्पादों की प्रकृति के आधार पर समांतर वर्गीकरण (Horizontal Classification) कर सकती है; जैसे- फिलिप्स, जो एक वैश्विक इकाई है, ने अपने उत्पादों का चार रेखाओं में वर्गीकरण किया है- लाइटिंग, उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स, औद्योगिक इलेक्ट्रॉनिक्स व मेडिकल उपकरण। ये उत्पाद रेखाएं स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। इन उत्पादों की सर्वव्यापी मांग होती है तथा इन्हें विश्वभर में बेचा जाता है। उत्पाद रेखाओं की संख्या जितनी अधिक होगी, संगठनात्मक संरचना का अनुप्रस्थीय आकार (Horizontal Size) उतना ही चौड़ा होगा। जिन वैश्विक कंपनियों की उत्पाद-रेखाएं बहुत अधिक होती हैं वे अपने संगठन की अनुप्रस्थीय संगठनात्मक संरचना (Horizontal Organisational Structure) को उत्पाद आधार पर डिज़ाइन करती है। जैसे- यूनीलीवर के बहुत अधिक उत्पाद हैं। अत: इसकी संगठनात्मक संरचना बहुत विशाल है। दूसरी ओर जिन वैश्विक कंपनियों के उत्पादों की संख्या कम है, उनके संगठन का आकार तुलनात्मक रूप से छोटा है। इसके अलावा नित्य जीवन में प्रयोग होने वाले उपभोक्ता उत्पादों की दशा में बड़े आकार के संगठनों की आवश्यकता होती है क्योंकि ये उत्पाद बार-बार खरीदे जाते है और इनके क्रेताओं और डीलरों की संख्या भी बहुत अधिक होती है। दूसरी तरफ, औद्योगिक उत्पादों की दशा में संगठनात्मक संरचना तुलनात्मक रूप से कम जटिल होती है क्योंकि इनके ग्राहकों व डीलरों की संख्या तुलनात्मक रूप से कम होती है।

(9) **कार्यात्मक क्षेत्रों की प्रकृति** (Nature of Functional Areas): संगठन की समांतर/अनुप्रस्थ संरचना (Horizontal Structure) प्रबंध के विभिन्न कार्य क्षेत्रों की प्रकृति से भी प्रभावित होती है। प्रबंध के मुख्य कार्य क्षेत्र हैं- उत्पादन क्रियाएँ, विपणन क्रियाएँ, वित्त, क्रय आदि। जब कार्यों की प्रकृति भेदभावहीन (Undifferentiated) है तथा उत्पादों की निर्माण पद्धति, व विपणन क्रियाएँ एक जैसी है तो कार्यों के आधार पर संगठनात्मक संरचना की जाती है। इससे वैश्विक इकाई बड़े पैमाने की बचतों को अधिकतम कर सकती है क्योंकि प्रबंध के कार्यों को बड़े पैमाने पर किया जाता है। एक समान प्रकृति के कार्यों को एक डिविजन में वर्गीकृत किया जाता है। इस डिविजन को एक पृथक अधिकारी को सौंप दिया जाता है। ये कार्यात्मक अधिकारी (Functional Heads) विश्वस्तर पर अपने कार्य क्षेत्र के लिए उत्तरदायी होंगे, जैसे- उत्पादन अधिकारी सभी तरह के उत्पादों की निर्माणी क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होगा, विपणन अधिकारी विश्वभर स्तर पर सभी उत्पादों की विपणन क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होगा।

(10) **वैश्वीकरण की अवस्था/मात्रा** (Stage/Degree of Globalisation): यदि वैश्विक व्यावसायिक इकाई वैश्वीकरण की प्रारंभिक अवस्था में है तो व्यावसायिक इकाई केवल अतिरिक्त उत्पादन का अन्य देशों को निर्यात करती है। यदि यह निर्यात किसी निर्यात गृह की सहायता से किया जाता है तो अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई की संगठनात्मक संरचना बहुत सरल होती है परंतु यदि वैश्विक व्यावसायिक इकाई वैश्वीकरण की अग्रिम अवस्था में है तो यह विभिन्न देशों में अपनी सहायक कंपनियाँ स्थापित करती है। इस दशा में संगठनात्मक संरचना जटिल होती है।

■ 3. वैश्विक व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत/आदर्श वैश्विक व्यावसायिक संगठन की अनिवार्यताएँ (Principles of Global Business Organisation/Pre-requisites of an Ideal Global Business Organisation)

प्रत्येक उपक्रम में प्रबंध की सफलता उसके कुशल संगठन पर निर्भर करती है और वैश्विक व्यावसायिक संगठन को कुशल एवं प्रभावी बनाने के लिए कुछ आधारभूत एवं सर्वमान्य सिद्धांतों का पालन किया जाना आवश्यक है। **टेलर** (Taylor), **फेयोल** (Fayol) तथा **उर्विक** (Urwick) ने अपने-अपने अनुभवों के आधार पर आदर्श एवं अच्छे संगठन के अनेक सिद्धांत दिए है। ये सिद्धांत वैश्विक व्यावसायिक संगठन पर भी लागू होते हैं। मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित है:

(1) **उद्देश्यों की एकरूपता का सिद्धांत** (Principle of Unity of Objectives): वैश्विक व्यावसायिक संगठन की सफलता का मापदण्ड उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। अत: वैश्विक व्यावसायिक संगठन के उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिभाषित किए जाने चाहिए ताकि संगठन का प्रत्येक कर्मचारी इन उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सके। यहाँ उद्देश्यों की एकरूपता का अभिप्राय यह है कि यद्यपि संगठन के सभी पदों के अलग-अलग उद्देश्य हो सकते है लेकिन वे किसी न किसी रूप में संगठन के मुख्य उद्देश्य के साथ जुड़े होने चाहिए। इससे संगठन के सभी विभाग, संगठन के मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समन्वित प्रयास करते हैं।

(2) **विशिष्टीकरण का सिद्धांत** (Principle of Specialisation): इस सिद्धांत के अनुसार व्यावसायिक संगठन की स्थापना इस प्रकार की जानी चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति को उसके ज्ञान, अनुभव एवं रुचि के अनुसार कार्य सौंपा जा सके। इस प्रकार कार्य का बँटवारा करने से प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र का विशेषज्ञ बन जाता है। इससे संस्था की बिक्री में वृद्धि होती है तथा लागतों में कमी आती है।

(3) **समन्वय का सिद्धांत** (Principle of Coordination): विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना वैश्विक व्यावसायिक संगठन का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। संगठन के अंतर्गत स्थापित सभी विभाग एक दूसरे पर निर्भर होते है। यदि एक विभाग के कार्य में रुकावट आ जाए तो पूरा संगठन ही कुप्रभावित हो जाएगा; जैसे- क्रय-विभाग द्वारा कच्चा माल खरीदने में लापरवाही करने से उत्पादन विभाग का कार्य बंद हो जाएगा, जिसके फलस्वरूप विक्रय विभाग ग्राहकों को माल की पूर्ति नहीं कर सकेगा। अत: वैश्विक व्यावसायिक संगठन को सफल बनाने के लिए संस्था के सभी विभागों में समन्वय स्थापित किया जाना जरूरी है।

(4) अधिकार एवं उत्तरदायित्व में समानता का सिद्धांत (Principle of Parity of Authority and Responsibility): इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जितना दायित्व सौंपा जाता है उसे उस दायित्व को पूरा करने के लिए उतने ही अधिकार भी दिए जाने चाहिए। किसी भी दशा में अधिकार दायित्व से अधिक अथवा दायित्व अधिकार से अधिक नहीं होने चाहिए।

(5) उत्तरदायित्व की पूर्णता का सिद्धांत (Principle of Absoluteness of Responsibility): एक अधिकारी अपने अधीनस्थों को कार्य करने के लिए अधिकार सौंप सकता है लेकिन ऐसा करने से वह अपने उत्तरदायित्व से नहीं बच सकता। अंतिम उत्तरदायित्व अधिकारी का ही होगा यद्यपि अधीनस्थ अपने अधिकारी के प्रति हमेशा उत्तरदायी रहता है।

(6) अपवाद का सिद्धांत (Principle of Exception): इस सिद्धांत के अनुसार उच्च अधिकारियों को अपने पास केवल महत्वपूर्ण कार्यों के संबंध में निर्णय लेने के अधिकार ही रखने चाहिए और शेष दैनिक कार्यों अथवा समस्याओं के संबंध में निर्णय लेने के अधिकार अधीनस्थों को सौंप देने चाहिए। ऐसा करने से उच्च अधिकारियों का समय कम महत्वपूर्ण कार्यों में व्यर्थ नहीं होगा और इस प्रकार बचे हुए समय में वे कुछ रचनात्मक कार्य कर सकेंगे।

(7) नियंत्रण के विस्तार का सिद्धांत (Principle of Span of Control): नियंत्रण के विस्तार का अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिस पर एक अधिकारी प्रभावपूर्ण नियंत्रण रख सके। यह कार्य की प्रकृति पर निर्भर करता है कि एक अधिकारी कितने अधीनस्थों पर नियंत्रण रख सकता है। प्रायः एक अधिकारी 5-6 अधीनस्थों पर ही प्रभावपूर्ण नियंत्रण रख सकता है। अतः व्यावसायिक संगठन में कोई भी अधिकारी ऐसा नहीं होना चाहिए जिसके पास अधीनस्थों की संख्या बहुत कम अथवा बहुत अधिक हो।

(8) लोचशीलता का सिद्धांत (Principle of Flexibility): व्यवसाय के आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण में लगातार परिवर्तन होते रहते है। इन सभी परिवर्तनों का संगठन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः संगठनात्मक ढाँचा ऐसा होना चाहिए जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके।

(9) पूर्ण स्पष्टता का सिद्धांत (Principle of Full Clarity): वैश्विक व्यावसायिक संगठन में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वैश्विक व्यावसायिक संगठन के उद्देश्य, उसके कार्य, अधिकार एवं दायित्वों के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए अपने-अपने कार्य का निष्पादन ठीक प्रकार से कर सके।

(10) आदेश की एकता का सिद्धान्त (Principle of Unity of Command): इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्मचारी को एक समय में एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए। यदि किसी कर्मचारी को आदेश देने वाले एक से अधिक अधिकारी होंगे तो वह यह नहीं समझ पाएगा कि किसकी बात को प्राथमिकता दे और परिणामस्वरूप उसकी कार्यकुशलता कम हो जायेगी।

(11) निरंतरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity): संगठन ऐसा होना चाहिए जहाँ कार्य संचालन में किसी तरह की कोई रुकावट पैदा न हो। उदाहरणार्थ, व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि यदि किसी कारणवश कोई व्यक्ति संस्था छोड़कर चला जाए तो दूसरा व्यक्ति उसका स्थान आसानी से ले सके।

(12) सोपानिक सिद्धान्त (Scalar Principle): इस सिद्धांत के अनुसार व्यावसायिक संगठन में काम करने वाले सभी व्यक्ति ऊपर से नीचे तक एक क्रम अथवा शृंखला में एक-दूसरे से बँधे होने चाहिए। इससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि कौन किसका अधिकारी है और कौन किसका अधीनस्थ। सोपानिक शृंखला द्वारा आपसी संबंध स्पष्ट हो जाने पर संदेशवाहन प्रभावपूर्ण हो जाता है।

(13) सहभागिता का सिद्धान्त (Principle of Participation): सहभागिता का अभिप्राय व्यावसायिक संगठन में लिए जाने वाले निर्णयों में सभी संबंधित व्यक्तियों को भागीदार बनाने से है। ऐसा करने से निर्णयों को लागू करने में कठिनाई नहीं आती और अधिकारी एवं अधीनस्थों में मधुर संबंध स्थापित होते है।

उपरोक्त सभी सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर स्थापित किया गया वैश्विक व्यावसायिक संगठन एक आदर्श संगठन होगा।

■ 4. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संगठनात्मक संरचना के प्रकार (Types of Organisational Structure in International Business)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संगठनात्मक संरचना विभिन्न प्रकार से डिज़ाइन की जा सकती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विभिन्न आधारों जैसे- उत्पाद आधार, भौगोलिक क्षेत्र आधार, प्रबंध के कार्य क्षेत्रों, ग्राहकों आदि के आधार पर संगठनात्मक संरचना डिज़ाइन कर सकती है। संगठनात्मक संरचना के मुख्य प्रकारों की चर्चा निम्नलिखित है:

(1) अंतर्राष्ट्रीय डिविज़न संरचना (International Divisional Structure): अंतर्राष्ट्रीय डिविज़न संरचना में सभी अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक क्रियाओं का अर्थात विदेशों में स्थापित सभी सहायक कंपनियों के निष्पादन व नियंत्रण की ज़िम्मेदारी अंतर्राष्ट्रीय डिविज़न को दे दी जाती है। संगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप अंतर्राष्ट्रीयकरण की प्रारंभिक अवस्था में अपनाया जाता है। जब बहुराष्ट्रीय उपक्रम को अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय को कम समझ होती है, तब संगठनात्मक संरचना के इस प्रारूप को अपनाया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय डिविज़न में उनका विशेषज्ञ, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का विशिष्ट ज्ञान व अनुभव होता है, को नियुक्त किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय डिविज़न में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय संबंधी सभी क्रियाओं की ज़िम्मेदारी एक ही व्यक्ति (अंतर्राष्ट्रीय डिविज़न के मुख्य अधिकारी) को सौंप दी जाती है। अतः इसमें नियंत्रण व समन्वय स्थापित करने की समस्या नहीं आती है। इसमें अलग से एकीकरण व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रारूप में व्यावसायिक इकाई अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरण में आए किसी परिवर्तन के अनुरूप रणनीतियाँ व नीतियाँ शीघ्रता से समायोजित कर सकती है। लेकिन संगठन की इस संरचना में विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त नहीं किए जा सकते क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय संबंधी सभी कार्य एक ही डिविज़न को सौंप जाते है। इसके अलावा जब अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का पैमाना बढ़ जाता है तो संगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप उपयुक्त नहीं होता।

International Division Based Organisational Structure

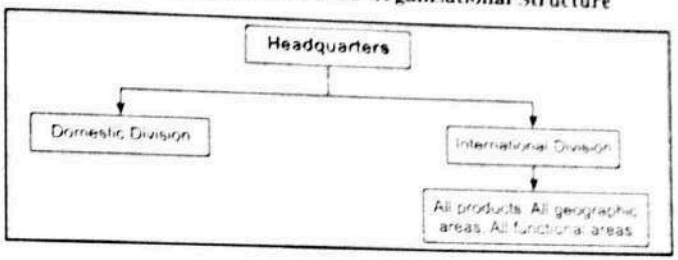

(2) वैश्विक कार्यात्मक संरचना (Global Functional Structure): संगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप प्रबंध के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों जैसे- उत्पादन, विपणन, वित्त, क्रय आदि के आधार पर डिज़ाइन किया जाता है। प्रत्येक कार्यात्मक क्षेत्र के लिए एक डिविज़न बनाया जाता है। यह डिविज़न विश्वस्तर पर उस कार्य के लिए ज़िम्मेवार होता है, जैसे- उत्पादन डिविज़न वैश्विक व्यावसायिक इकाई की सभी उत्पादन संबंधी क्रियाओं के लिए ज़िम्मेवार होगा चाहे ये उत्पादन क्रियाएँ मूल कंपनी के लिए हों या सहायक कंपनियों के लिए। संगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप तब अपनाया जाता है जब वैश्विक इकाई द्वारा निर्मित सभी उत्पाद एक जैसी टेक्नोलॉजी पर आधारित होते है, उनकी निर्माण विधि व तकनीकें एक जैसी होती है। उत्पाद-समिश्र में अधिक भिन्नता नहीं है तथा संपूर्ण विश्व में लगभग एक जैसे उत्पाद बेचे जाते है। इस संरचना में मूल कंपनी के अधिकारियों व सहायक कंपनी के अधिकारियों में मतभेद व झगड़े की समस्या न्यूनतम आती है क्योंकि प्रत्येक कार्यात्मक क्षेत्र में मुख्य अधिकारी को विश्व स्तर पर अधिकार व दायित्व सौंप दिए जाते है। इससे कार्यात्मक अधिकारियों की अंतर्राष्ट्रीय-उन्मुखता (International Orientation) में वृद्धि होती है। परंतु यदि वैश्विक इकाई विभिन्न तरह के उत्पादों में व्यवसाय करती है, तथा विश्व के विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न तरह के उत्पादों की माँग की जाती है, जिनकी उत्पादन प्रक्रिया, विपणन प्रक्रिया व कार्य पद्धति एक जैसे नहीं है, तो संगठनात्मक संरचना का यह आधार उपयुक्त नहीं है।

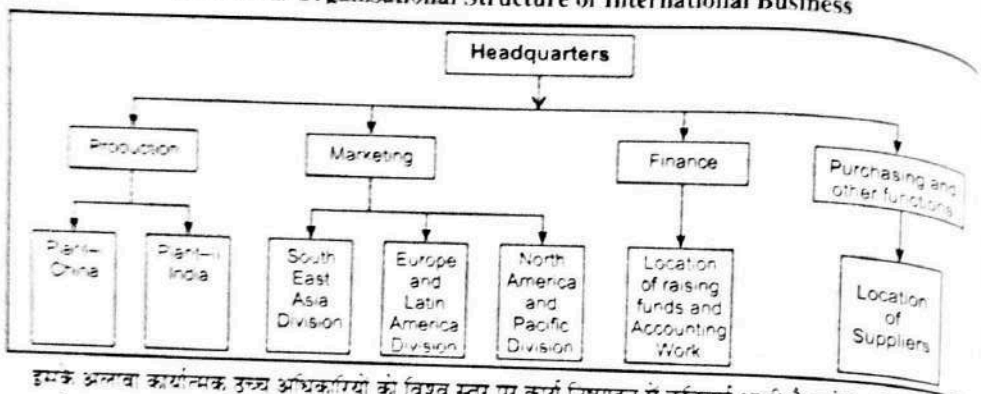

इसके अलावा कार्यात्मक उच्च अधिकारियों को विश्व स्तर पर कार्य निष्पादन में कठिनाई आती है क्योंकि विभिन्न देशों कार्य पद्धति व कार्य शैली भिन्न-भिन्न होती है। विभिन्न देशों में वैधानिक वातावरण, लेखाकन पद्धति संचार-व्यवहार, विपणन-व्यवहार, सांस्कृतिक आयामों आदि में बहुत विभिन्नता होती है। अत: एक ही कार्यात्मक अधिकारी के लिए विश्व स्तर पर कार्य निष्पादन बहुत कठिन होता है। उदाहरण के तौर पर विभिन्न देशों में लेखाकन पद्धतियों में बहुत विभिन्नता है। अत: लेखाकन विभाग को विभिन्न देशों की व्यावसायिक इकाइयों के लेखाकन में बहुत मुश्किल आती है। इसके अलावा कार्यात्मक आधार पर डिजाइन की गई संगठनात्मक सरचना में विभिन्न कार्यात्मक विभागों में समन्वय स्थापित करने में भी बहुत कठिनाई आती है। क्योंकि सभी कार्यात्मक अधिकारी स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं।

(3) वैश्विक उत्पाद संरचना (Global Product Structure): सगठनात्मक सरचना के इस प्रारूप में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई की विभिन्न क्रियाओं को विभिन्न उत्पादों या उत्पाद-समूहों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। प्रत्येक उत्पाद-समूह के अधिकारी को विश्व स्तर पर उस उत्पाद-समूह सबंधी सभी अधिकार व दायित्व सौंप दिए जाते हैं। प्रत्येक उत्पाद-डिविज़न को एक पृथक लाभ केंद्र (Separate Profit Centre) माना जाता है। प्रत्येक उत्पाद-डिविज़न अपने उत्पाद सबंधी सभी कार्यों जैसे- उत्पादन, वित्त, लेखाकन, विपणन आदि के निष्पादन का प्रबंधित करता है। जो वैश्विक कपनियाँ बहुत अधिक उत्पादों में व्यवसाय करती हैं उनके लिए संगठनात्मक सरचना का यह आधार बहुत उपयुक्त है। इसमें प्रत्येक उत्पाद-रेखा को एक डिविज़न माना जाता है। ऐसा हो सकता है कि विभिन्न उत्पाद-रेखाओं के उत्पादन के लिए विभिन्न स्थान उपयुक्त हों। किसी एक स्थान पर एक उत्पाद-रेखा का कच्चा माल सस्ता व उच्च क्वालिटी का मिलता हो, जबकि किसी अन्य उत्पाद के लिए कोई अन्य स्थान ज्यादा उपयुक्त हो।

Product Based Organisational Structure of International Business

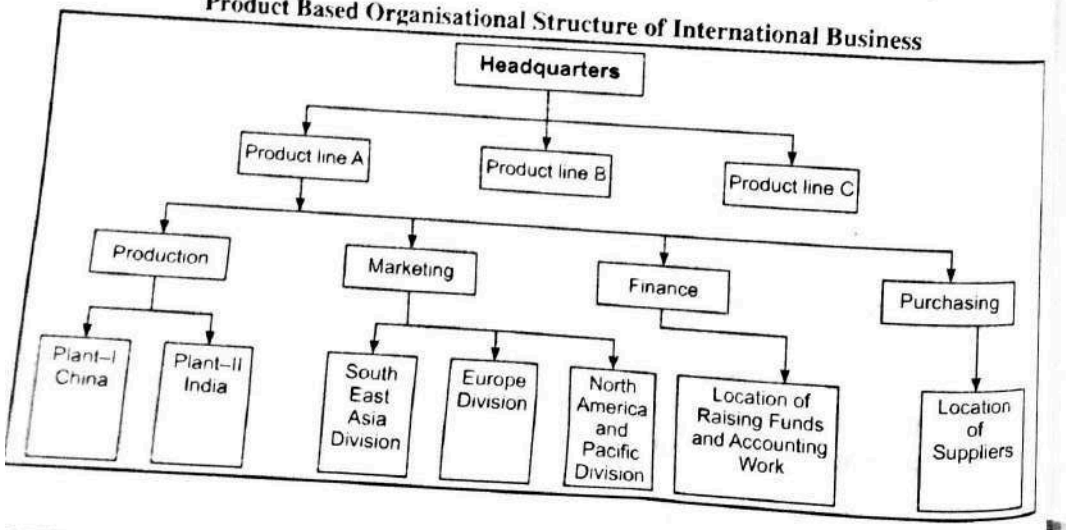

- **गुण (Merits)**
  - (i) उत्पाद के आधार पर सगठनात्मक सरचना में विभिन्न उत्पादों के निर्माण केंद्र विभिन्न सर्वोत्तम स्थानों पर स्थापित किए जा सकते हैं। इससे उत्पादन लागत कम करने में सहायता मिलती है।
  - (ii) इस तरह की सगठनात्मक सरचना में एक नयी उत्पाद-रेखा को शामिल करना या एक उत्पाद-रेखा को समाप्त करना तुलनात्मक रूप से सरल होता है।
  - (iii) इस सरचना से विशिष्टता को भी बढ़ावा मिलता है। जो प्रबंधक एक उत्पाद-रेखा को प्रबंधित करता है वह एक ही उत्पाद डिविज़न में काम करने से इस उत्पाद-रेखा में विशिष्टता प्राप्त कर लेता है।
- **दोष (Demerits)**
  - (i) परन्तु इस तरह की सरचना में विभिन्न उत्पाद डिविज़नों में कुछ व्यावसायिक कार्यों का दोहरापन (Duplication of some functions) होता है, जिससे लागत में व्यर्थ ही वृद्धि होती है। प्रत्येक उत्पाद रेखा के लिए सभी व्यावसायिक कार्य जैसे- विपणन, वित्त, लेखाकन, वितरण, मानव संसाधन प्रबंध आदि पृथक पृथक तौर पर किए जाते हैं। इससे प्रशासन लागत बढ़ जाती है।
  - (ii) इसके अलावा इस सरचना में विभिन्न उत्पाद-समूहों में समन्वय का अभाव होता है। विभिन्न उत्पाद डिविज़न, जो यद्यपि एक ही देश में कार्य कर रहे होते है, परन्तु उनमें परस्पर संचार नहीं होता।
  - (iii) इसके अलावा ऐसे प्रबंधक ढूँढना बहुत ही मुश्किल है जिन्हें विश्वस्तर पर उत्पाद-रेखा का विशिष्ट ज्ञान हो।
  - (iv) विभिन्न उत्पाद डिविजनों की विभिन्न कार्यात्मक इकाइयाँ यद्यपि एक ही देश में कार्य कर रही होती है, परन्तु वे मूल देश के मुख्यालय में विभिन्न उत्पाद-समूहों के उच्च अधिकारियों को रिपोर्ट देती है व उनसे निर्देश प्राप्त करती है। इससे व्यर्थता में वृद्धि होती है।

(4) भौगोलिक क्षेत्र संरचना (Geographic Area Structure): सगठनात्मक सरचना के इस प्रारूप में सगठन सरचना को विश्व में भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। यह वर्गीकरण देश, देशों के समूह, महाद्वीप के आधार पर हो सकता है। भौगोलिक क्षेत्रीय-अधिकारी अपने भौगोलिक क्षेत्र में सभी उत्पादों, सभी कार्यात्मक क्षेत्रों व सभी उत्पादों के लिए उत्तरदायी होते है। प्रत्येक भौगोलिक डिविज़न अपने आप में स्वतंत्र इकाई के रूप में कार्य करने के लिए अधिकृत होती है।

- **गुण (Merits)**
  - (i) इससे स्थानीय अनुरूपता में सहायता मिलती है। इसमें प्रत्येक भौगोलिक डिविज़न स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप रणनीतियाँ व नीतियाँ बना सकती है।
  - (ii) भौगोलिक क्षेत्रीय अधिकारियों को अपने भौगोलिक क्षेत्र के ग्राहकों की पसंद, रुचि, व्यवहार, प्राथमिकता, प्रतिस्पर्धा-स्तर, डीलरों, कर्मचारियों के व्यवहार आदि के बारे में विस्तृत जानकारी होती है।
- **दोष (Demerits)**
  - (i) संगठनात्मक सरचना के इस प्रारूप में मूल कपनी सभी भौगोलिक क्षेत्रों में मुख्य टेक्नोलॉजी व प्रबंध कौशल (Core competence) को हस्तांतरित करती है, जो अपने आप में बहुत जटिल व मुश्किल कार्य है। विभिन्न देशों में मुख्य टेक्नोलॉजी/नवाचारी-प्रक्रिया के दुरुपयोग/चोरी की अधिक संभावना होती है।
  - (ii) इस सरचना में उत्पादन लागत में बहुत वृद्धि होती है। क्योंकि प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में प्रत्येक उत्पाद पृथक रूप से बनाया जाता है। इससे बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं होता। इससे उत्पादन लागत में वृद्धि होती है। प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में सभी कार्यात्मक क्रियाएँ पृथक-पृथक रूप में करने से क्रियाओं के दोहरेपन में वृद्धि होती है। इससे व्यर्थ में ही व्यय बढ़ जाते हैं।
  - (iii) इससे विभिन्न भौगोलिक डिविजनों में प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है।

(iv) विभिन्न भौगोलिक डिविजनें यद्यपि एक ही वैश्विक इकाई की उप-इकाइयां होती है, परन्तु परस्पर प्रतिस्पर्धा ये अलग-अलग छोटी इकाइयाँ बन कर रह जाती हैं। इन विभिन्न उप-इकाइयों में समन्वय स्थापित करने में समस्या आती है।

Geographic Area Based Organisational Structure of International Business

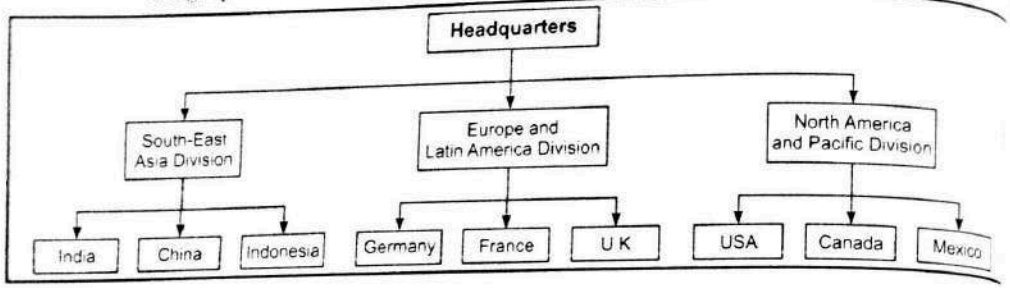

यदि लागत में कमी करना बहुत जरूरी है तो संगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप उचित नहीं है। परंतु यदि स्थानीय अनुरूपता (Local Responsiveness) बहुत ही आवश्यक है तो संगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप पोलीसैंट्रिक दृष्टिकोण पर आधारित होने के कारण बहुत उपयुक्त है। वैश्विक फूड श्रंखला स्टोर प्रायः इसी प्रारूप को अपना कर विभिन्न देशों में स्थानीय स्वादों, भोजन, आदतों के अनुसार उत्पाद-सम्मिश्र बनाते हैं। कैडबरी (Cadbury) की सगठनात्मक सरचना इसी आधार पर डिज़ाइन किया गया है।

(5) वैश्विक उपभोक्ता संरचना (Global Customer Structure): संगठनात्मक संरचना के इस प्रारूप में व्यावसायिक क्रियाओं को विभिन्न उपभोक्ताओं की प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। उपभोक्ता विभिन्न प्रकृति के हो सकते हैं; जैसे- औद्योगिक उपभोक्ता, फुटकर उपभोक्ता, सरकारी उपभोक्ता आदि। यदि इन उपभोक्ताओं में अंतर बहुत महत्वपूर्ण है, इनकी प्राथमिकताएँ, आवश्यकताएँ, क्रय-व्यवहार, पसंद, रुचि, क्रय-पद्धति भिन्न-भिन्न है तो सगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप बहुत उपयुक्त है।

- **गुण (Merit)**

इसमें व्यावसायिक इकाई विभिन्न उपभोक्ता-खण्डों को अधिक प्रभावकारी ढंग से उत्पाद व सेवाएँ प्रदान कर सकती है।

- **दोष (Demerits)**

(i) संगठन सरचना के इस प्रारूप में एक ही भौगोलिक क्षेत्र में उपभोक्ता-समूहों के लिए एक ही तरह के व्यावसायिक कार्यों को पृथक-पृथक रूप में किया जाता है। इससे क्रियाओं का दोहरापन होता है। इससे लागतों में व्यर्थ ही वृद्धि होती है।

(ii) इस प्रारूप में विभिन्न डिविज़नों में समन्वय स्थापित करने में समस्या आती है।

(iii) यदि विभिन्न उपभोक्ता-समूहों में अंतर अधिक महत्वपूर्ण नहीं है तो संगठनात्मक संरचना का यह प्रारूप अधिक उपयुक्त है।

Customer based Organisational Structure of International Business

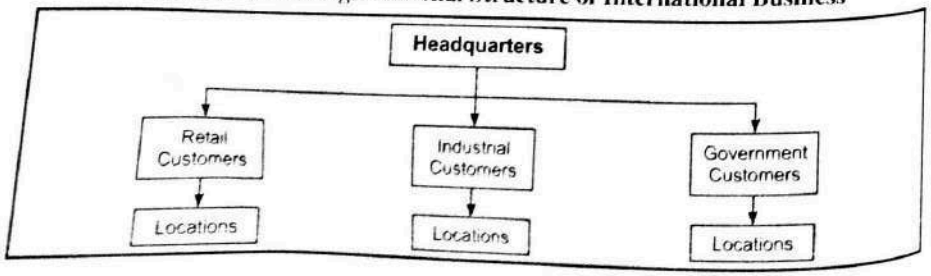

उत्पाद पर आधारित सरचना व भौगोलिक क्षेत्र पर आधारित सरचना के अपने-अपने गुण व दोष है। भौगोलिक क्षेत्र पर आधारित सरचना में स्थानीय अनुरूपता में सहायता मिलती है परन्तु इसमें बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त नहीं होती, तथा इसमें विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में मुख्य तकनीकी कौशल को हस्तान्तरित करने में समस्या आती है। उत्पाद पर आधारित सगठनात्मक सरचना में बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती है, तथा मुख्य तकनीकी कौशल हस्तान्तरित करने संबंधी समस्या भी नहीं आती, परन्तु स्थानीय अनुरूपता का अभाव होता है। इन दोनों तरह की सरचनाओं के दोषों के निवारण के लिए बहुत-सी वैश्विक कपनियाँ मिश्रित या मैट्रिक्स सगठन सरचना को अपनाती है।

(6) मिश्रित संगठनात्मक संरचना (Mixed/Hybrid Organisational Structure): इस प्रारूप में एक से अधिक आधार पर सगठनात्मक सरचना डिज़ाइन की जाती है। ये भौगोलिक क्षेत्र व उत्पाद के आधार पर या भौगोलिक क्षेत्र व कार्यों के आधार पर हो सकती है। जब मिश्रित सगठनात्मक सरचना भौगोलिक क्षेत्र व उत्पाद के आधार पर डिज़ाइन की गई हो तब ऐसे भौगोलिक क्षेत्र जिनमें विशेष प्रयत्नों की जरूरत है, उन्हें छोड़कर एक उत्पाद रेखा को अन्य सभी भौगोलिक क्षेत्रों में चलाया जाता है। ऐसे भौगोलिक क्षेत्र जिनमें विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता होती है, उनके लिए स्थानीय आवश्यकताओं; जैसे- पसद, स्वाद, प्राथमिकता, फैशन आदि के अनुरूप उत्पाद बनाए जाते है।

- **गुण (Merits)**

(i) इसमें वैश्विक व्यावसायिक इकाई एक से अधिक सगठनात्मक सरचनाओं का लाभ उठा सकती है।

(ii) बहुत विशाल वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों की दशा में यह सगठनात्मक ढाचा बहुत उचित है।

- **दोष (Demerits)**

(i) सगठनात्मक सरचना का यह प्रारूप बहुत जटिल है।

(ii) इसमें प्रशासनिक लागत बहुत बढ़ जाती है।

Mixed Organisational Structure of International Business

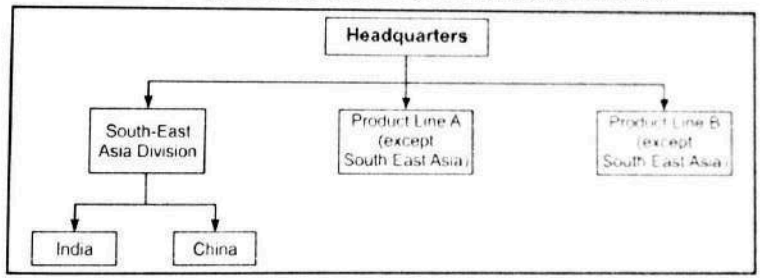

(7) वैश्विक मैट्रिक्स संरचना (Global Matrix Organisational Structure): सगठनात्मक सरचना के इस प्रारूप में दो संगठनात्मक सरचनाओं को एक-दूसरे के ऊपर स्थापित/अध्यारोपित (Super-impose) किया जाता है। जैसे उत्पाद के आधार पर बनाई गई सगठनात्मक सरचना को क्षेत्रीय आधार पर बनाई गई सगठनात्मक सरचना पर या कार्यात्मक आधार पर बनाई गई सगठनात्मक सरचना पर स्थापित/अध्यारोपित करना। इस प्रारूप में सहायक कपनी एक से अधिक समूह को रिपोर्ट देती है। जैसे यदि कार्यात्मक आधार पर बनाई गई सगठनात्मक सरचना को उत्पाद आधार पर बनाई गई सरचना पर स्थापित किया जाए, तो सहायक कपनियों के अधिकारियों को कार्यात्मक उच्च अधिकारियों तथा उत्पाद उच्च अधिकारियों दोनों को ही रिपोर्ट देनी होगी तथा दोनों के ही आदेशों का पालना करना होगा। सरचना के इस प्रारूप में सगठन के अदर सूचनाओं का प्रवाह तो बेहतर होता है लेकिन प्रबध के मुख्य सिद्धात 'आदेश की एकता' (Unity of Command) का उल्लघन होता है। यूनीलीवर कपनी ने सगठनात्मक सरचना के इस प्रारूप को अपनाया है। यूनीलीवर ने विपणन का उत्तरदायित्व विभिन्न देशो में स्थापित सहायक कपनियों को दिया है, जबकि उत्पाद सबधी क्रियाओं का उत्तरदायित्व उत्पाद डिविजन को दिया है।

- **गुण (Merits)**
  - (i) इस प्रारूप में विभिन्न विभागीय अधिकारियों के मध्य सूचनाओं का प्रवाह/संचार सुचारू रूप से होता रहता है।
  - (ii) यह प्रारूप बहुत विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए बहुत उपयुक्त है।
  - (iii) संगठनात्मक संरचना के इस प्रारूप में मिश्रित संरचना के सभी लाभ प्राप्त होते हैं।
- **दोष (Demerits)**
  - (i) इस संरचना में दो विभागीय अधिकारियों के मध्य झगड़े की समस्या आ जाती है तो विभागीय अधिकारियों के अहम् संघर्ष (Ego Clash) के कारण विवाद हो जाता है। इससे संगठन के कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है।
  - (ii) इस संरचना में 'निर्देश की एकता' व 'आदेश की एकता' सिद्धांतों का उल्लंघन होता है। विभिन्न विभागीय अ को विरोधाभासी (Contradictory) निर्देश मिलते हैं। इससे वे उलझन में फंस जाते हैं। उन्हें ये समझ में आता कि वे किसके निर्देशों को प्राथमिकता दें।
  - (iii) इस संरचना में संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति न होने पर उच्च अधिकारी एक-दूसरे को दोषी ठहराते है

Global Matrix Structure
(Super-imposing Product Structure on Area Structure)

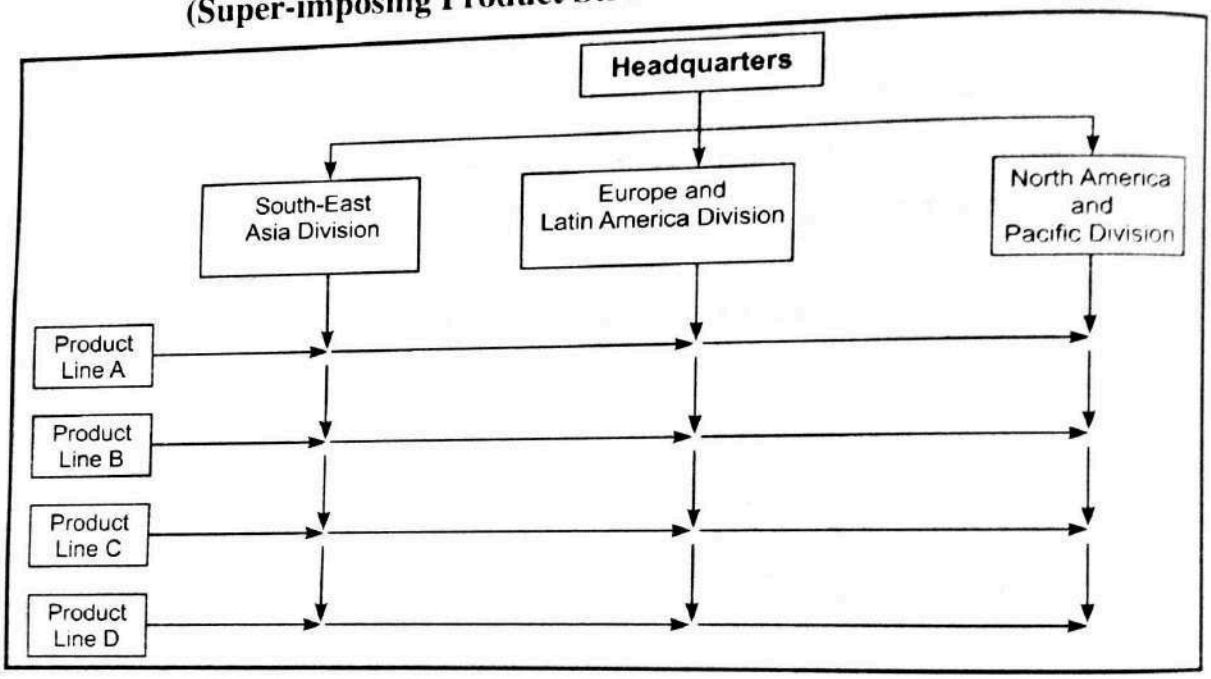

Global Matrix Structure
(Super-imposing Product Structure on Global Functional Structure)

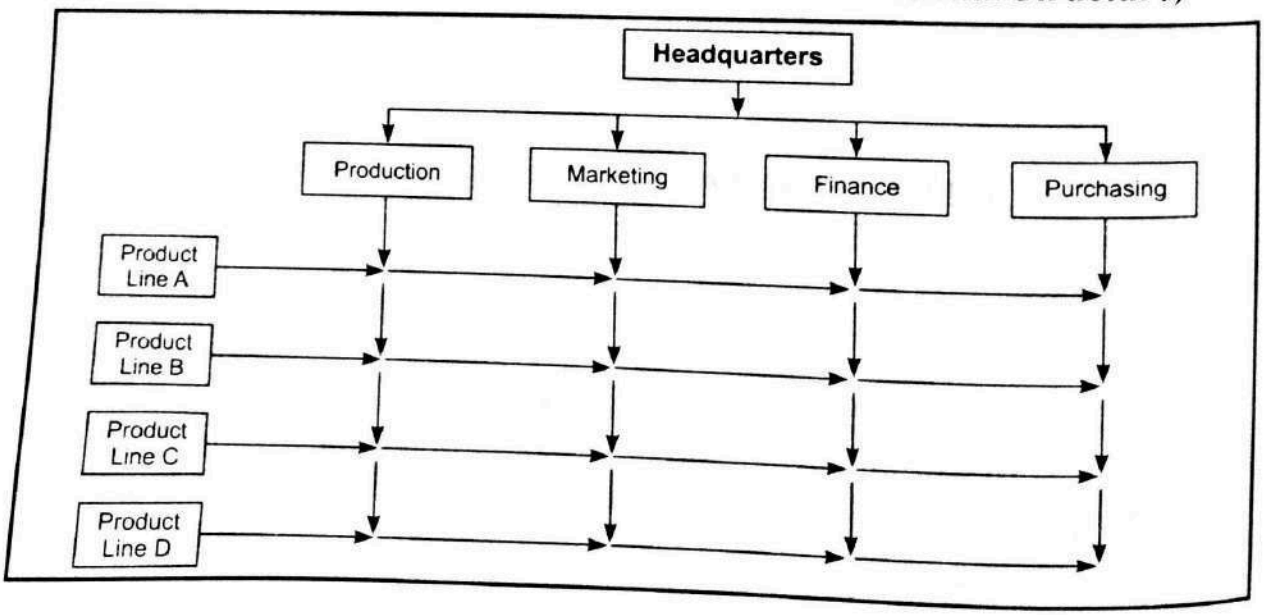

वैश्विक मैट्रिक्स संरचना के दोषों के समाधान के लिए विभिन्न डिविज़नों में टीम-भावना जागृत करने के लिए उन्हें व्यक्तिगत प्रोत्साहनों के साथ-साथ सामूहिक प्रोत्साहन भी दिए जाने चाहिएं। इससे विभिन्न डिविज़नों में कार्यरत कर्मचारियों के कार्यों में एकरूपता आएगी तथा वे परस्पर संघर्ष भुलाकर टीम-भावना से कार्य करेंगे तथा संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एकजुट हो जाएंगे। सामूहिक प्रोत्साहनों के साथ-साथ व्यक्तिगत प्रोत्साहन भी दिए जाने चाहिएं; जैसे- प्रति इकाई उत्पादन लागत कम करने पर उत्पादन-विभाग के अधिकारियों व कर्मचारियों को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। संगठनात्मक संरचना का यह रूप बड़े स्तर की वैश्विक इकाइयों के लिए उपयुक्त है।

संगठनात्मक संरचना का कोई भी आधार अपने आप में संपूर्ण नहीं है। प्रत्येक प्रारूप के सापेक्षिक गुण व दोष हैं। अत: एक अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई को विभिन्न आयामों को ध्यान में रख कर उचित संगठनात्मक संरचना का चयन करना चाहिए, जो उसके व्यवसाय की प्रकृति के अनुरूप हो। अधिकतर वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ मिश्रित संगठनात्मक संरचना को अपनाती हैं।

विश्व व्यापार संगठन एवं विश्व व्यापारिक व्यवस्था
(World Trade Organisation and World Trading System)

■ विश्व व्यापारिक व्यवस्था (World Trading System)

विश्व व्यापार बहुत तीव्र गति से बढ़ रहा है। विश्व व्यापार की विकास दर विश्व उत्पादन की विकास दर से अधिक है। पहले विश्व व्यापार द्विपक्षीय व्यापार समझौतों द्वारा किया जाता था, अर्थात् व्यापार समझौता दो विदेशी राष्ट्रों के मध्य होता था। परंतु अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं; जैसे-गैट, विश्व व्यापार संगठन आदि के उभरने से अब द्विपक्षीय व्यापार समझौतों के स्थान पर बहुपक्षीय व्यापार समझौतों द्वारा विदेशी व्यापार किया जाता है। इन समझौतों के कारण विश्व के विभिन्न देश एक दूसरे के बहुत निकट आ गए हैं। इससे इन राष्ट्रों की परस्पर निर्भरता बढ़ गयी है। वर्ष 2013 में 159 देश विश्व व्यापार संगठन के सदस्य थे। WTO के मंच पर किए गए व्यापारिक समझौते बहुपक्षीय समझौते होते हैं तथा ये एक ही साथ 159 देशों पर लागू होते हैं।

विश्व व्यापार का स्वरूप भी अब प्रतिबंधित व्यापार से स्वतंत्र व्यापार में परिवर्तित हो रहा है। प्रतिबंधित व्यापार में विभिन्न टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ; जैसे- टैरिफ की ऊँची दर, आयात व निर्यात कोटा (परिमाणात्मक प्रतिबंध), आयात लाइसेंसिंग, आदि लगाई जाती हैं। परंतु स्वतंत्र व्यापार में विभिन्न टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को हटा दिया जाता है। विश्व व्यापार संगठन सदस्य देशों में टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ हटा कर स्वतंत्र व्यापार को बढ़ावा देता है। WTO का मुख्य उद्देश्य विश्व व्यापार के रास्ते में प्रतिबंधों को हटाकर उत्पादों व सेवाओं के बहुपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देना है।

पहले विश्व व्यापार मुख्यतया भौतिक वस्तुओं (Merchandise Goods) में ही होता था। परंतु WTO ने वस्तुओं व सेवाओं दोनों में ही विश्व व्यापार को बढ़ावा दिया है। अब सेवाओं में व्यापार बहुत तेजी से बढ़ रहा है। विभिन्न सेवाओं; जैसे- पर्यटन, बैंकिंग, बीमा, दूरसंचार, सूचना तकनीकी आधारित सेवाओं (Information Technology Enabled Services), सलाहकारी (Consultancy) सेवाओं, मीडिया सेवाओं, सॉफ्टवेयर, विज्ञापन सेवाओं आदि में विश्वस्तरीय व्यापार बहुत प्रचलित है।

पहले, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय मुख्यतया व्यापार रूट (निर्यात) से होता था, परंतु अब WTO के व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (Trade Related Investment Measures – TRIMs) समझौतों से अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में निवेश माध्यम को भी बढ़ावा मिल रहा है। अब विश्व के बहुत से देशों ने विदेशी निवेश के प्रवाह पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया है। अब बहुत से क्षेत्रों में 100 प्रतिशत विदेशी समता भागीदारी की अनुमति दे दी गई है। अब बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा लाभांश, ब्याज, रॉयल्टी की मूल देश को वापसी (Repatriation) पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी व्यावसायिक इकाइयाँ विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में फैलाने का अवसर मिला है।

विश्व व्यापार संगठन
(WORLD TRADE ORGANISATION – WTO)

विश्व व्यापार संगठन का निर्माण स्वतन्त्र विश्व व्यापार को बढ़ावा देने के लिए किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य वस्तुओं व सेवाओं के बहुराष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना है। यह स्वतंत्र विश्व व्यापार के लिए टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं के उन्मूलन पर जोर देता है। यहाँ टैरिफ बाधा का तात्पर्य आयात कर से है तथा गैर-टैरिफ बाधाओं का अभिप्राय आयात कोटा, आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबंध,

आयात-लाइसेंस आदि से है। गैट के आठवें दौर में, ... विश्व व्यापार संगठन' कहा गया। इस दौर को **उरुग्वे-दौर** (Uruguay Round) के नाम से भी जाना जाता है। इस नए संगठन को विश्व-व्यापार-संगठन ने गैट का स्थान ले लिया है। विश्व व्यापार संगठन का निर्माण 1 जनवरी, 1995 को किया गया।

■ 1. विश्व व्यापार संगठन का अर्थ एवं स्थापना (Meaning and Establishment of WTO)

1 जनवरी, 1995 को 124 देश विश्व व्यापार संगठन के सदस्य थे। मई, 2013 में यह संख्या बढ़कर 159 हो गई। इसके अतिरिक्त 24 अन्य देश WTO की सदस्यता प्राप्त करने की प्रक्रिया में है। इस संगठन में कुछ क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया गया है, जैसे सेवाओं का व्यापार, विदेशी निवेश को प्रोत्साहन, पेटेन्टों को संरक्षण, विश्व-व्यापार से संबंधित विवादों का निवारण, टैरिफ में कमी आदि। WTO के समझौतों से विश्व व्यापार में वृद्धि होगी। विकासशील देशों को अधिक विदेशी निवेश व तकनीकी सहायता प्राप्त होगी तथा उनके आर्थिक विकास में वृद्धि होगी। **WTO संसार के विभिन्न देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करने तथा सीमा शुल्क के बन्धनों को कम करने के लिए किया गया, आवश्यक सिद्धान्तों तथा नियमों से संबंधित बहुपक्षीय समझौता है। यह एक बहुपक्षीय सन्धि है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित एवं इसके नियमों का निर्धारण करती है।** यह एक नई विश्व व्यापार प्रणाली है। 15 दिसम्बर, 1993 को गैट समझौते की **बातचीत** के आठवें दौर (जिसे उरुग्वे दौर भी कहते हैं) की वार्ता पर सदस्य देशों ने सहमति व्यक्त की। इस दौर की वार्ता में यह निर्णय लिया गया कि 1 जनवरी, 1995 से गैट के स्थान पर विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना की जाए। आठवें दौर के समझौते में 28 समझौते शामिल हैं जिन पर सम्मिलित होने वाले सभी देशों ने हस्ताक्षर किए हैं। विश्व व्यापार संगठन, गैट के स्थान पर नया नाम लेने वाला, विश्व मान्यता प्राप्त एक व्यापार संगठन है। इसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सख्ती से लागू करने का अधिकार प्राप्त है। अब WTO विश्व बैंक तथा IMF के साथ मिलकर, विश्व व्यापार नीति को काफी मात्रा में प्रभावित करेगा। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में यह एक बहुत ही सुदृढ़ संगठन है। एक अनुमान के अनुसार, वर्ष 2015 तक WTO समझौतों से विश्व आय में 2,800 बिलियन डॉलर की वृद्धि होगी।

WTO के अब तक नौ मंत्रीस्तरीय सम्मेलन हो चुके हैं। WTO का पहला मंत्रीस्तरीय सम्मेलन 1996 में सिंगापुर में हुआ था। WTO की नौवीं बैठक बाली में दिसम्बर 2013 में संपन्न हुई। इस नौवीं बैठक में विश्व व्यापार संगठन के 159 सदस्य देशों ने हिस्सा लिया। इस मंत्रीस्तरीय बैठक का मुख्य विचार बिंदु 'बहुपक्षीय व्यापार व अति अल्प विकसित देशों के विकास को बढ़ावा देना तथा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना' था। WTO के विभिन्न मंत्रीस्तरीय सम्मेलनों का विवरण इस प्रकार है:

मंत्रीस्तरीय सम्मेलन (Ministerial Meet)	वर्ष (Year)	स्थान (Place)
पहला	1996	सिंगापुर
दूसरा	1998	जेनेवा
तीसरा	1999	सिएटल
चौथा	2001	दोहा
पाँचवां	2003	कैनकन
छठा	2005	हांगकांग
सातवाँ	2009	जेनेवा
आठवाँ	2011	जेनेवा
नौवीं	2013	बाली (इंडोनेशिया)

■ 2. विश्व व्यापार संगठन की विशेषताएं (Features of WTO)

(1) यह एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है, जो बहुपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कार्य करता है।

(2) इसे गैट (GATT) के स्थान पर बनाया गया है।

(3) यह स्वतन्त्र अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देता है। यह टैरिफ व गैर-टैरिफ जैसी बाधाओं को खत्म करने पर जोर देता है।

(4) इसका वैधानिक अस्तित्व है। इसके कुछ नियम व प्रावधान है। इन नियमों व प्रावधानों के द्वारा यह सदस्य देशों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की बाधाओं को कम करता है। ये नियम सदस्य देशों द्वारा आपसी सहमति से बनाये जाते हैं।

(5) WTO के सदस्य देशों द्वारा किये गए समझौते सभी सदस्य देशों पर लागू होते है। यदि कोई सदस्य देश उन समझौतों का पालन नहीं करता, तो उसकी शिकायत विवाद निपटारा समिति (Dispute Settlement Body) को की जा सकती है।

(6) इसके अंतर्गत वस्तु व्यापार, सेवा-व्यापार, बौद्धिक सम्पत्ति-अधिकारों का संरक्षण, विदेशी निवेश आदि शामिल है।

(7) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और विश्व बैंक (World Bank) की तरह, WTO पर केवल विकसित देशों का ही नियन्त्रण नहीं है। WTO विकसित देशों के एजेन्ट की भांति कार्य नहीं करता।

(8) WTO में सभी सदस्य देशों को एक-समान वोटिंग अधिकार दिये गए है, इसमें एक देश को एक वोट देने का अधिकार होता है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक में सदस्य देशों को भारित-वोटिंग-अधिकार (Weighted Voting Right) दिये जाते हैं। भारित वोटिंग में सदस्य देशों की वोट का मूल्य उसकी पूंजी के आधार पर तय किया जाता है।

(9) WTO का एक बड़ा सचिवालय है, और इसका संगठनात्मक ढांचा (Organisational Structure) बहुत विशाल है।

■ 3. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य (Objectives of WTO)

(1) WTO का प्राथमिक उद्देश्य नए विश्व व्यापार समझौते (New World Trade Agreement) को लागू करना है।

(2) बहुपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देना। बहुत से देशों के बीच किये गए व्यापार को बहुपक्षीय व्यापार कहा जाता है।

(3) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में टैरिफ और गैर-टैरिफ रुकावटों को दूर करके स्वतन्त्र व्यापार को बढ़ावा देना।

(4) विश्व व्यापार को इस तरह से बढ़ावा देना है कि प्रत्येक सदस्य देश उससे लाभान्वित हो।

(5) यह आश्वस्त करना कि अल्पविकसित देश भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार से लाभान्वित हों।

(6) खुली विश्व व्यापार प्रणाली की सभी रुकावटों को दूर करना तथा विश्व व्यापार को आर्थिक विकास के लिए प्रयोग करना।

(7) उपभोक्ताओं को लाभान्वित करने के लिए सभी देशों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना।

(8) विश्व में रोज़गार के स्तर को बढ़ाने के लिए उत्पादन के स्तर तथा उत्पादकता को बढ़ाना।

(9) संसार के संसाधनों का अधिकतम मात्रा में विस्तार करना तथा उनका अनुकूलतम प्रयोग करना।

(10) विश्व की जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार लाना और सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक विकास की गति को तेज करना।

(11) अति-गरीब राष्ट्रों (Poorest Nations) के विकास के लिए विशेष प्रयास करना।

■ 4. विश्व व्यापार संगठन के कार्य (Functions of WTO)

(1) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में टैरिफ और गैर-टैरिफ रुकावटों को कम करने के लिए नियम बनाना।

(2) विश्व व्यापार संगठन के समझौतों को पूरा करने के लिए इन्हें लागू करना और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रशासन करना।

(3) विश्व व्यापार नीति निर्माण में समन्वय लाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक को सहयोग देना।

(4) विवाद-निपटारा-समिति की सहायता से सदस्य देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करना।

(5) सदस्य देशों की आर्थिक नीतियों व व्यापार सम्बन्धी नीतियों का पुनरावलोकन (Review) करना।

(6) सदस्य देशों को विदेशी व्यापार, राजकोषीय नीति के प्रबन्ध के लिए आवश्यक तकनीकी सलाह और मार्ग-दर्शन देना।

(7) व्यापार-उदारीकरण (Trade Liberalisation) के लिए कार्य करना।

■ 5. विश्व व्यापार संगठन का संगठनात्मक ढाचा (Organisational Structure of WTO)

विश्व व्यापार संगठन एक स्थायी व्यापार संगठन है, जिसका अपना सचिवालय तथा विशाल संगठनात्मक ढाचा है। WTO का मुख्यालय जेनेवा (स्विट्जरलैंड) में है। WTO के संगठनात्मक ढाचे की अध्यक्षता मन्त्रीस्तरीय सम्मेलन (Ministerial Conference) करता है। इसकी प्रत्येक 2 वर्षों में एक बार सभा होती है। मन्त्रीस्तरीय सम्मेलन के नीचे जनरल काउंसिल कार्य करती है। यह काउंसिल WTO का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह मन्त्रीस्तरीय सम्मेलन की देखरेख में कार्य करती है। यह काउंसिल विवाद निपटारा समिति तथा सदस्य देशों की व्यापारिक नीतियों के पुनरावलोकन का कार्य भी करती है। जनरल काउंसिल के नीचे बहुत-सी काउंसिलें/कार्यकारी समूह कार्य करते है। ये काउंसिलें इस प्रकार है - उत्पाद व्यापार सबधी काउंसिल, ट्रिप्स सबधी काउंसिल, सेवाओं में व्यापार की काउंसिल, ट्रिम्स सबधी काउंसिल, व्यापार सौदा समितिया (Trade Negotiation Committees) व अन्य कार्यकारी समूह। WTO का संगठनात्मक ढाचा निम्न चार्ट में दिखाया गया है:

WTO का संगठनात्मक ढांचा (Organisational Structure of WTO)

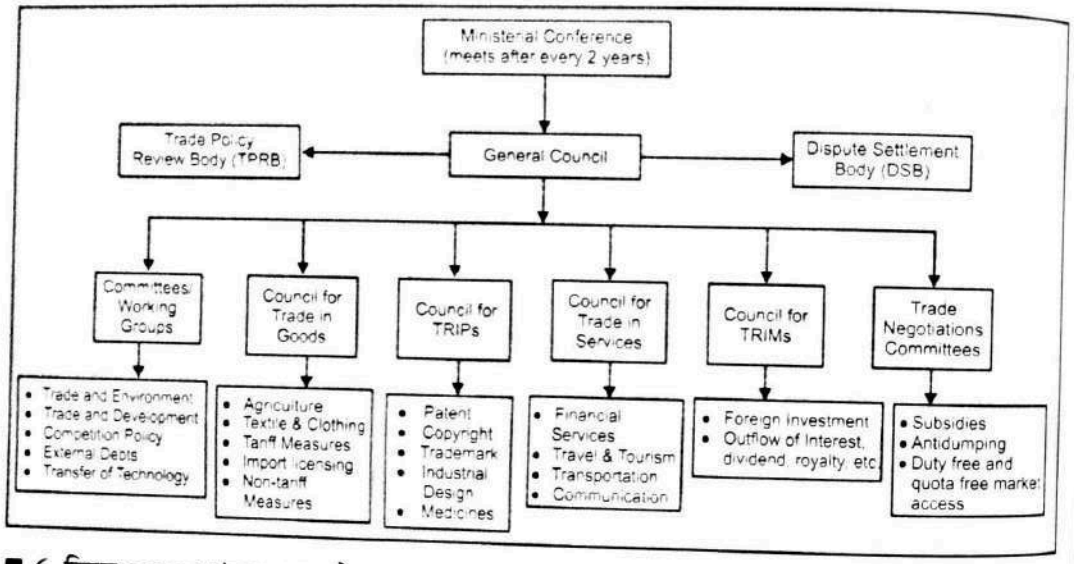

■ 6. विश्व व्यापार संगठन का क्षेत्र (Scope of WTO)

GATT के अंतर्गत मुख्यत: वस्तुओं के व्यापार पर ही जोर दिया गया था, इसमें सेवाओं के व्यापार पर अधिक बल नहीं दिया गया था। जबकि WTO में सेवा व्यापार को बढ़ावा देने के लिए काफी ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसके मुख्य क्षेत्र निम्न हैं:

(i) उत्पाद से संबंधित व्यापार (Trade in Goods)

(ii) व्यापार से संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights – TRIPs)

(iii) व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (Trade Related Investment Measures – TRIMs)

(iv) सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता (General Agreement on Trade in Services – GATS)

गैट की तुलना में WTO के पास समझौते को सख्ती से लागू करने की विस्तृत शक्ति है। WTO के प्रमुख समझौते अग्रलिखित हैं:

■ 7. विश्व व्यापार संगठन - कुछ समझौते
(World Trade Organisation - Some Agreements/Code)

■ 7.1 कृषि व्यापार (Trade in Agriculture)

WTO ने कृषि से संबंधित निम्न प्रावधान बनाए है:

(1) घरेलू अनुदानों में कटौती करना (Reduction in Domestic Subsidies): विश्व व्यापार संगठन ने कृषि क्षेत्र को दिये जाने वाले अनुदानों को कम करने के लिए, सदस्य देशों से अपील की। कृषि अनुदान दो प्रकार के होते है:

(i) **कृषि-आगतों** (Agriculture-inputs) जैसे बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयों आदि पर दिये जाने वाले अनुदान।

(ii) **कृषि-उत्पादों** (Agriculture-outputs) पर दिये गए अनुदान। इसके अंतर्गत समर्थन मूल्य (Support-price) को निर्धारित किया जाता है। समर्थन मूल्य का अर्थ कृषि फसलों के लिए सरकार द्वारा न्यूनतम गारंटेड कीमत (Minimum Guaranteed Price) देने से है। यह मूल्य किसानों के हित को ध्यान में रख कर निर्धारित किया जाता है।

WTO समझौतों के अनुसार घरेलू बाजार में दिए जा रहे इन दोनों तरह के अनुदानों को कम किया जाना है। लेकिन विकासशील देश फसल के बाजार मूल्य के 10 प्रतिशत तक अनुदान दे सकते है।

(2) निर्यात-अनुदानों में कमी (Reduction in Export-Subsidies): कुछ देशों में कृषि-उत्पादों के निर्यात को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा निर्यात अनुदान दिये जा रहे है। WTO-समझौतों के अनुसार इन निर्यात-अनुदानों को धीरे-धीरे कम करना है। वर्ष 2001 में हुए दोहा समझौते (Doha-Agreement) के अनुसार, WTO ने सभी सदस्य देशों को यह निर्देश दिया कि सभी तरह के निर्यात-अनुदानों को समाप्त कर दिया जाए। वर्ष 2005 में WTO के मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में यह तय किया गया, कि वर्ष 2013 तक कृषि क्षेत्र के निर्यात अनुदानों को समाप्त कर दिया जायेगा।

(3) बाजार-पहुँच में सुधार (Improvement in Market Access): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बाजार-पहुच में सुधार लाने के लिए WTO ने निम्न सुझाव दिए:

(i) कृषि-उत्पादों के आयात पर टैरिफ में कटौती (Reduction in Tariff on Agricultural Products): WTO ने विभिन्न कृषि उत्पादों के आयात पर टैरिफ आयात करों की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी है। सदस्य देश इस सीमा से कम टैरिफ तो लगा सकते है, लेकिन अधिक नहीं।

(ii) गैर-टैरिफ बाधाओं (Non-Tariff Barriers) को समाप्त करना अर्थात् विदेशी व्यापार में आने वाली रुकावटों जैसे आयात-निर्यात कोटा, आयात लाइसेंसिंग आदि को समाप्त करना।

(iii) विकासशील व अति-अल्प-विकसित देशों को टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को समाप्त करने के प्रावधान में कुछ रियायतें दी गयी हैं। भुगतान शेष प्रतिकूल होने पर ये देश खाद्यान्नों के आयात पर टैरिफ व गैर-टैरिफ प्रतिबंध लगा सकते हैं।

(4) सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (Public Distribution System – PDS): निर्धन लोगों को खाद्यान्न-सुरक्षा के लिए उन्हें सार्वजनिक वितरण-प्रणाली के अंतर्गत सरकार द्वारा कम कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध करवाये जाते है। इस व्यवस्था के अंतर्गत सरकार खाद्यान्नों पर अनुदान देकर, खाद्यान्नों को बाजार-मूल्य से कम कीमत पर उपलब्ध करवाती है। WTO समझौतों के अनुसार, विकसित देश इस व्यवस्था के अंतर्गत दिए गए अनुदान को समाप्त कर देंगे। लेकिन विकासशील देश यह अनुदान दे सकते हैं।

■ 7.2 कपड़ा क्षेत्र में व्यापार (Trade in Textile and Clothing Sector)

पिछले बहुत से वर्षों से कपड़ा क्षेत्र में व्यापार के सम्बन्ध मे बहु-फाइबर व्यवस्था (Multi-Fibre Arrangement-MFA) प्रचलित थी। इस व्यवस्था में कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबध (Quantitative Restrictions) लगाये जाते है। बहु-फाइबर व्यवस्था में विकसित देशों ने कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबन्ध लगाये हुए थे। इससे अल्पविकसित देश कपड़े का निर्यात नही कर पा रहे थे। WTO समझौते में कपड़ा क्षेत्र में व्यापार से सबधित निम्न नियम बनाए गए:

(1) MFA को हटाना (Elimination of Multi Fibre Arrangement –MFA): WTO समझौते से कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबन्धों को लगाए जाने की प्रणाली यानि बहु-फाइबर व्यवस्था (MFA) को समाप्त कर दिया गया। इस समझौते मे यह तय किया गया कि अगले दस वर्षों में (1995 से 2004 तक की अवधि में) कपड़े के आयात पर लगे सभी तरह के आयात कोटा व परिमाणात्मक प्रतिबन्ध समाप्त कर दिए जाएगे। अर्थात् 1 जनवरी, 2005 से कपड़े के व्यापार से सभी परिमाणात्मक प्रतिबन्ध समाप्त हो गए हैं।

(2) कपड़े के व्यापार पर आयात करों में कटौती (Reduction in Tariff on Textiles and Clothing): कपड़ा-उत्पाद के आयात पर लगे टैरिफ को निम्न तरह से कम किया गया:

(i) 1 जनवरी, 1995 तक 16 प्रतिशत आयात को टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

(ii) 1 जनवरी, 1998 तक अगले 17 प्रतिशत आयात को टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

(iii) 1 जनवरी, 2002 तक अगले 18 प्रतिशत आयात को टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

(iv) शेष 49 प्रतिशत आयात को 1 जनवरी, 2005 तक टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

इस तरह कपड़े के आयात पर लगे टैरिफ को 1 जनवरी, 2005 तक पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया है। इससे कपड़ा निर्यातक देशों, जैसे- भारत, चीन, कोरिया आदि को फायदा हुआ है।

(3) सुरक्षात्मक उपाय (Safeguard Mechanism): विकासशील देशों के हित की सुरक्षा के लिए WTO समझौते में सुरक्षात्मक प्रावधान बनाये गए है। इनके अतर्गत विकासशील देश कपड़े के आयात पर अधिकतम तीन वर्षों तक गैर-टैरिफ प्रतिबन्ध लगा सकते है। लेकिन ऐसी छूट तभी दी जायेगी जब आयातों के कारण विकासशील देश के घरेलू उद्योग को नुकसान होने का भय हो।

■ 7.3 व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा के अधिकार

(Trade Related Intellectual Property Rights – TRIPs)

ट्रिप्स (TRIPs) '**व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार पेटेंट** की व्यवस्था करती है। ट्रिप्स के अंतर्गत पेटेन्ट का स्वामी निश्चत अवधि के लिए पेटेन्ट को अपने नाम पर पजीकृत करवा लेता है। जो भी व्यक्ति इस पेटेन्ट को प्रयोग करना चाहे, उसे पेटेन्ट के स्वामी को रॉयल्टी का भुगतान करना होगा। अल्पविकसित देशों को पेटेन्ट व्यवस्था अपनाने के लिए WTO की स्थापना से दस वर्ष का समय दिया गया। पेटेंट व्यवस्था को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि किन वस्तुओं को पेटेंट कराया जा सकता है। इस विषय मे स्थिति यह है कि केवल उसका पेटेंट कराया जा सकता है जो नया हो, जिसमें आविष्कार की क्रिया शामिल हो और जिसका औद्योगिक इस्तेमाल किया जा सकता हो। लेकिन पौधो का पेटेन्ट नहीं हो सकता। WTO प्रस्तावों में पौध-प्रजनकों (Plant-breeders) के हित को सुरक्षित रखने के लिए 'स्वे जेनेरिस (Sui-Generis) व्यवस्था' अपनाने को कहा गया। इस व्यवस्था मे पौध प्रजनको को ही नये पौधो की व्यापारिक बिक्री (Commercial-Sale) का अधिकार होगा। इसके अंतर्गत किसानों को अपनी तैयार फसल मे से अगली बुवाई के लिए बीज रखने की अनुमति दी गयी है। अर्थात् किसान एक बार पेटेंट-बीजों को खरीद कर, अपनी उपज मे से अगली बुवाई के लिए बीज रख सकता है। इस तरह किसानो को अगली बुवाई मे प्रयोग किए गए बीजों पर कोई रॉयल्टी नही देनी होगी, लेकिन किसान फालतू बीजों को किसी ब्राड नाम के अतर्गत बेच नही पायेंगे। बीजों व पौध की व्यापारिक-बिक्री की अनुमति केवल पौध प्रजनको (Plant-breeders) को ही दी गई है। इस व्यवस्था को 'Plant-Breeders Right' भी कहा जाता है। सरक्षित

पौध का प्रयोग करने के लिए किसान इस पौध के सरक्षक को रॉयल्टी का भुगतान करेंगे। ट्रिप्स के अनुसार पेटेन्टो की अवधि निम्न तरह से निर्धारित की गई है:

(i) सामान्य पेटेन्ट - 20 वर्ष (ii) कॉपीराइट - 50 वर्ष
(iii) ट्रेड-मार्क - 7 वर्ष (iv) औद्योगिक-डिजाइन - 10 वर्ष
(v) दवाइयां - 10 वर्ष

सार्वजनिक हित के लिए कुछ बौद्धिक सम्पत्तियों, जैसे- जीवन रक्षक दवाइयों को पेटेंट के प्रावधानों मे मुक्त रखा गया है।

■ 7.4 व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (Trade Related Investment Measures – TRIMs)

व्यापार से संबधित निवेश उपाय के अनुसार विदेशी निवेश पर सभी प्रकार के प्रतिबध हटा देने होंगे। प्रत्येक सदस्य देश को विदेशी निवेशकर्ताओं को वे सभी सुविधाएं देनी होंगी जो वे घरेलू निवेशकर्ताओं को दे रहे है। WTO समझौतों के अनुसार विदेशी पूजी के निवेश को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है। इससे विकासशील देशों में औद्योगिकीकरण प्रोत्साहित होगा, उन्नति और विकास की गति तीव्र होगी और भुगतान सन्तुलन की समस्या के समाधान में सहायता मिलेगी। ट्रिम्स की मुख्य विशेषताए निम्न है: (i) विदेशी निवेशकों को घरेलू निवेशकों के समान सुविधाएं व व्यवहार प्रदान करना। (ii) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा अर्जित लाभाश, ब्याज, रॉयल्टी को मूलभूत देशों में भेजने पर लगे प्रतिबन्ध हटाना। (iii) कुछ दशाओं में विदेशी निवेशकों को 100 प्रतिशत समता अशों मे भागीदारी की अनुमति देना। (iv) विदेशी-कम्पनियों को किसी भी क्षेत्र या स्थान में निवेश करने की अनुमति देना।

संक्षेप में, WTO में TRIMs के प्रावधान विदेशी निवेशकों को विश्व में किसी भी आर्थिक क्रिया में निवेश करने के अवसर देते हैं। समझौता यह आश्वासन देता है कि सभी इकाइयां चाहें देशी हो या विदेशी, के साथ बिना भेदभाव के व्यवहार किया जाएगा।

■ 7.5 सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता

(General Agreement on Trade in Services –GATS)

WTO में सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौते - GATS के अधीन सेवाओं के विदेशी व्यापार मे भी प्रतिबन्ध हटाने का समझौता किया गया है। GATS के अनुसार सेवा क्षेत्र जैसे बैंकिग, बीमा, सचार, यातायात, पर्यटन आदि के सम्बन्ध मे उदारवादी नीति अपनाई गयी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सेवाओं के क्षेत्र में छूट देनी होगी और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना होगा जैसा इन क्षेत्रों की स्वदेशी संस्थाओं के साथ किया जाता है। आजकल सेवा क्षेत्र का महत्त्व बहुत अधिक बढ गया है। उत्पादक क्रियाओं मे 60 प्रतिशत से अधिक भाग सेवा क्षेत्र का है। GATS में केवल उन्हीं सेवाओं को मुक्त व्यापार करने के लिए चुना गया है जिनके लिए उच्च किस्म की तकनीक की आवश्यकता है, जैसे बैंकिग, शिपिंग, यातायात, बीमा, टेलीकम्यूनिकेशन्स, सूचना तकनीकी सेवाए, बिजनेस आऊट-सोर्सिंग (कॉल सेन्टर), मीडिया सेवाए, अनुसधान एव विकास, कानूनी सेवाएँ, आदि। विदेशी कम्पनियो को इन सेवाओं को प्रदान करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाएगी। अत: अब WTO के सेवाओं के व्यापार के समझौते के बाद विदेशी सेवाओं और घरेलू सेवाओं के बीच कोई अंतर नहीं किया जाएगा। कोई भी देश विदेशी सेवाओं के अतरप्रवाह पर रोक नही लगाएगा। इससे विकासशील देशो में अधिक विदेशी सेवाएं उपलब्ध हो सकेंगी और विकासशील देशों को विदेशी सेवाओ के उच्च तकनीकी ज्ञान का लाभ प्राप्त होगा।

■ 7.6 विवाद निपटारा (Dispute Settlement)

WTO की विवाद निपटारा कार्यविधि तीव्र है और यह सदस्य देशों पर अनिवार्य रूप से लागू है। अर्थात् WTO में विवादों का निपटारा बिना अधिक विलम्ब के हो जाता है और इसके द्वारा लिए गए निर्णय सदस्य देशों को मानने पडते है। अतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित विवादों का निपटारा करने के लिए WTO में विवाद निवारण समिति (Dispute Settlement Body – DSB) गठित की गई है। विवाद की अवस्था में सबसे पहले यह समिति विवाद के दोनों पक्षो से विवाद के बारे में विचार-विमर्श करती है। WTO का डायरेक्टर जनरल, विवाद को निपटाने के लिए मध्यस्थ का कार्य करता है। शिकायत करने वाला देश विवाद निवारण समिति (DSB) को विवाद निवारण के लिए एक पैनल (Panel) बनाने को कह सकता है। DSB द्वारा नियुक्त पैनल, दोनो पक्षों से विवाद के बारे में विचार-विमर्श करता है। यह पैनल 6 महीने के अंदर अपनी रिपोर्ट DSB को सौंप देगा, परतु किसी आकस्मिक स्थिति (Urgency) में इसे 3 महीने के अंदर भी रिपोर्ट पेश करने को कहा जा सकता है। DSB इस रिपोर्ट को 60 दिनों के अंदर स्वीकार कर लेता है, परतु यदि पीड़ित पार्टी पैनल रिपोर्ट के पुनरावलोकन के लिए अपील (Appellate Review) करती है तो ऐपीलेट प्राधिकरण (Appellate

Body) अपनी पुनरावलोकन रिपोर्ट (Review Report) 90 दिनों के अंदर DSB को पेश करता है। DSB इस रिपोर्ट पर आधारित निर्णय 30 दिन के अन्दर लागू करेगा। विवाद निपटारा समझौते का उद्देश्य कम समय में विवादों का सन्तोषजनक हल ढूंढना है।

■ 7.7 निर्यात-अनुदानों पर समझौता (Agreement on Export-Subsidies)

WTO समझौते निर्यात अनुदानों पर रोक लगाते हैं। निर्यात-अनुदान स्वतन्त्र अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा में बाधा डालते हैं। अत: स्वतन्त्र अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए निर्यात-अनुदानों को वर्ष 2013 तक समाप्त कर दिया जाएगा। लेकिन जिन विकासशील देशों का विश्व-व्यापार में हिस्सा 3.25 प्रतिशत से कम है, तो ऐसे देशों को निर्यात अनुदान समाप्त करने के लिए 5 अतिरिक्त वर्ष दिए गए हैं। अर्थात ये देश निर्यातों पर 2018 तक अनुदान दे सकते हैं।

■ 7.8 राशिपातन पर रोक के लिए समझौते (Anti-Dumping Agreements)

राशिपातन के अतर्गत एक देश दूसरे देश में उत्पादों को बहुत ही कम कीमत पर बेचकर उस देश के घरेलू उद्योगों को नुकसान पहुचाता है। जब उस उत्पाद के घरेलू उद्योग कमजोर पड़ जाते हैं या बंद हो जाते हैं, तो उस उत्पाद की कीमत को बढ़ा दिया जाता है। WTO द्वारा, राशिपातन को रोकने के लिए, सदस्य-देशों को यह निर्देश दिया गया है कि वे राशिपातन द्वारा किसी देश के घरेलू उद्योग को नुकसान नहीं पहुचायेंगे। यदि कोई देश दूसरे देश के घरेलू बाजार में राशिपातन करता है, तो इसके विरुद्ध WTO में शिकायत की जा सकती है। यदि डप (Dump) किये गए आयात की मात्रा उस देश के घरेलू बाजार में बिकने वाले उस उत्पाद की कुल मात्रा का एक प्रतिशत से भी कम है, तो इस दशा में इस डपिग को नाममात्र ही माना जायेगा और WTO इसकी सुनवाई नहीं करेगा। वर्ष 2011 के आठवें (Eighth) मन्त्रीस्तरीय सम्मेलन में राशिपातन को रोकने के लिए बहुत से सुरक्षात्मक उपाय किये गए।

■ 7.9 सदस्य देशों की व्यापारिक नीतियों का पुनरावलोकन करना (Reviewing Trade Policies of Member Countries)

WTO के अतर्गत व्यापारिक नीति समीक्षा निकाय (Trade Policies Review Body – TPRB) बनाई गई है। यह समिति सदस्य देशो की आर्थिक व व्यापारिक नीतियो का निरीक्षण करती है। यह उन्हें आवश्यक सुधारों के बारे में सलाह भी देती है। इसके लिए सदस्य देश अपनी व्यापारिक व आर्थिक नीतियों सबधी रिपोर्ट TPRB को नियमित रूप से भेजते है। TPRB चार मुख्य व्यापारिक देशो/समूहों (यूरोपियन समुदाय, U.S.A., जापान, कनाडा) की व्यापारिक नीतियो का प्रत्येक दो वर्ष में, अगले 16 प्रमुख देशों/समूहो का प्रत्येक चार वर्ष में, तथा अन्य देशो का प्रत्येक 6 वर्ष के बाद निरीक्षण करता है। यह निकाय सदस्य देशों को भविष्य में बनाई जाने वाली आर्थिक नीतियो के निर्माण में मार्गदर्शन भी करती है। भारत की व्यापार नीतियो का पुनरावलोकन (TPR) प्रत्येक चार वर्ष के बाद किया जाता है। WTO द्वारा भारत की व्यापार नीतियो का पाँचवा मूल्यांकन वर्ष 2011 में किया गया।

■ 8. विश्व व्यापार संगठन तथा भारत (WTO and India)

भारत WTO के सस्थापक सदस्यों में से है। भारत का अधिकतर विदेशी व्यापार उन देशों से होता है जो WTO के सदस्य हैं। भारत में इस विषय पर काफी वाद-विवाद रहा है कि भारत को WTO का सदस्य बनने से लाभ हुआ है या हानि। भारत के WTO के सदस्य बने रहने के पक्ष तथा विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते है:

■ 8.1 विश्व व्यापार समझौतों से भारत को हानि या विश्व व्यापार संगठन के विपक्ष में तर्क (Disadvantages of World Trade Agreements for India or Arguments Against WTO)

आलोचकों के अनुसार, WTO समझौतों से केवल विकसित देशों को लाभ होगा तथा भारत जैसे अल्पविकसित देशों को इससे हानि उठानी पड़ेगी। देश मे विदेशी कम्पनियों के प्रवेश से हमारी संस्कृति पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा। साम्यवादी नेता **श्री सोमनाथ चटर्जी** के अनुसार, **"गैट या WTO भारत को फिर से विकसित देशों का उपनिवेश (Colony) बनाने वाले दस्तावेज हैं। देश की भावी पीढ़ियां शासक दल को इस पर कभी माफ नहीं करेगी।"** WTO के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

(1) कृषि क्षेत्र को हानि (Disadvantage to Agricultural Sector): कृषि को गैट समझौते या WTO में शामिल करने से यह आशका व्यक्त की जा रही है कि इससे किसानों को कृषि सम्बन्धी तकनीक एवं उन्नत बीजों के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मोहताज हो जाना पड़ेगा तथा इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से ब्राडिड बीज, खाद एवं कीटनाशक

खरीदते समय किसानों को अधिक राशि देनी होगी। खेती से सबधित उन्नत तकनीक का लाभ बड़े व धनी कृषक ही उठा पायेंगे। इन सब का सम्मिलित प्रभाव यह होगा कि छोटे किसान जो सख्या में अधिक है, अपनी भूमि बेचने को विवश हो जायेंगे और ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी की समस्या और भी अधिक बढ़ जायेगी। भारतीय कृषि को WTO से होने वाले नुकसान इस प्रकार हैं:

(i) सब्सिडी में कमी (Reduction in Subsidy): आलोचकों के अनुसार, WTO या गैट समझौतों के बाद कृषि क्षेत्र को मिलने वाली सरकारी सहायता कम कर दी जायेगी। इसका निर्धन किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(ii) खाद्यान्नों का आयात (Import of Foodgrains): यह आशका व्यक्त की गई है कि WTO या गैट समझौते के बाद देश में बड़ी मात्रा में विकसित देशों के आधिक्य खाद्यान्नों (Surplus Foodgrains) का आयात किया जायेगा। इससे घरेलू किसानों को आयातित खाद्यान्नों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा।

(iii) पौधों की किस्म का संरक्षण (Plant Breeding Protection): WTO के अनुसार पौधों की किस्म का संरक्षण स्वे-जेनेरिस कानून द्वारा निर्धारित किया गया है। भारत के किसानों को नये तथा उन्नत किस्म के पौधों को प्राप्त करने के लिए काफी धन खर्च करना पड़ेगा तथा उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर निर्भरता बढ़ जायेगी।

(2) घरेलू उद्योगों को हानि (Loss to Domestic Industries): WTO के अनुसार भारत विदेशी निवेश पर कोई नियन्त्रण नहीं लगा सकेगा। इससे बहुराष्ट्रीय कम्पनिया भारत मे अपने उद्योग स्थापित करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होंगी। इसका घरेलू उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इससे स्वदेशी निवेशकर्ताओं को हानि होगी क्योंकि आर्थिक दृष्टि से घरेलू उद्योग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतियोगिता करने में असमर्थ होंगे। इसका लघु उद्योगों पर सबसे बुरा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि लघु उद्योगों की विपणन, तकनीकी व उत्पादन क्षमता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से बहुत ही कम होती है। इससे घरेलू उद्योगों को नुकसान होगा तथा घरेलू उद्योग बन्द हो जाएंगे।

(3) भारतीय जड़ी-बूटियों का विदेशी कम्पनियों द्वारा पेटेंट (Patent of Indian Herbs by Foreign Companies): कुछ विदेशी कम्पनियों ने भारतीय जडी-बूटी सम्पत्ति, खाद्यान्नों, जैसे- हल्दी, नीम, तुलसी, बासमती चावल आदि के पेटेन्ट प्राप्त कर लिए हैं। एक अमरीकी कम्पनी ने 1995 में हल्दी का पेटेंट ले लिया। भारत ने इसके विरुद्ध WTO में शिकायत की और फिर विश्व व्यापार संगठन ने, अमरीकी कम्पनी का हल्दी का पेटेंट रद्द कर दिया। एक अन्य अमरीकी कम्पनी ने नीम का पेटेंट प्राप्त किया, इसी तरह बासमती चावल का पेटेंट भी एक विदेशी कम्पनी ने कासमती (Kasmati) और टेक्समती (Texmati) के नाम से प्राप्त किया है। इस तरह भारतीय जडी बूटी सम्पत्ति एव खाद्यान्नों का विदेशी कम्पनियों द्वारा पेटेंट लिए जाने का खतरा है। भारत को इन जडी बूटियों तथा खाद्यान्नो के प्रयोग पर पेटेंट प्राप्त करने वाली विदेशी-कम्पनी को बड़ी रायल्टी देनी पड़ सकती है।

(4) कीमतों पर प्रभाव (Effect on Prices): यदि सामान्य दिनचर्या की वस्तुओं जैसे खाद्यान्नों, दवाइयो आदि का पेटेंट हो जाता है, तब भारत जैसे विकासशील देशो को इन वस्तुओ के प्रयोग पर पेटेंट धारको (Patent-holders) को रायल्टी का भुगतान करना होगा। इससे कीमतों में वृद्धि होगी। पेटेन्ट सम्बन्धी समझौते का भारत के दवाई उद्योग पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(5) मुकद्दमों की अधिक लागत (Increased Litigation Cost): बहुराष्ट्रीय कम्पनिया किसी भी पेटेन्ट के बारे में भारतीय कम्पनियों के विरुद्ध विश्व व्यापार सगठन के सम्मुख नकल करने का दावा पेश कर सकती है। नकल न करने को साबित करने में भारतीय अनुसधानकर्ताओं को अनावश्यक उलझन में पडना होगा। उनका समय तथा धन नष्ट होगा। इस सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि शिकायत करने वाला देश (Complainant) शिकायत पत्र को अपने देश में दर्ज करेगा। भारत में विवाद का न्यायीकरण सस्ता है तथा क्षतिपूर्ति की राशि भी कम तय की जाती है, जबकि अमेरिका आदि विकसित देशों में चलाये हुए विवादों में भारतीयों को अपना बचाव करने में काफी व्यय करना पड़ेगा। इस प्रकार पेटेन्ट संबधी विवाद बढ़ेंगे और इनकी न्यायिक प्रक्रिया भारतीयों को महगी पड़ेगी।

(6) **सामाजिक-लागत, वातावरण-लागत व मजदूरी-लागत का मुद्दा** (Issue of Social Cost, Environment Cost and Labour Cost): विकसित देशों का यह कहना है कि विकसित देशों में सामाजिक-लागत, वातावरण-लागत व श्रम-लागत विकासशील देशों की तुलना में अधिक है। इन लागतों के अधिक होने से विकसित देशों में उत्पादन लागत बढ़ जाती है। अत: विकसित देशों को अपने आयातों पर इन लागतों के अंतर के बराबर टैरिफ लगाने की अनुमति दी जानी चाहिये, ताकि विकसित व विकासशील देशों के बीच इन लागतों के अंतर के प्रभाव को खत्म किया जा सके। परन्तु ऐसा होने से भारत जैसे विकासशील देश को नुकसान होगा। क्योंकि ऐसा होने से टैरिफ रुकावटों के कारण विकासशील देशों के लिए विकसित देशों को निर्यात करना कठिन हो जाएगा।

(7) **क्षेत्रीय-समूहों को नुकसान** (Loss to Regional Groupings): गैट द्वारा बहुपक्षीय व्यापार (Multilateral Trade) को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे क्षेत्रीय व्यापारिक समूहों; जैसे - SAARC, NAFTA, ASEAN आदि के व्यापार को हानि हुई है अर्थात् WTO में व्यापार बढ़ने से इन क्षेत्रीय समूहों के व्यापार की मात्रा में कमी आई है।

(8) **सेवा क्षेत्र को हानि** (Disadvantage to Service Sector): WTO के अंतर्गत यह आशंका व्यक्त की गई है कि इससे हमारे सेवा क्षेत्र के व्यापार को हानि होगी। हमारी बैंकिंग, बीमा, यातायात, शिक्षा तथा होटल आदि संस्थाएं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सेवाओं से प्रतियोगिता नहीं कर सकेंगी। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे इन सेवाओं के क्षेत्र में कार्यरत स्वदेशी संस्थायें बन्द हो जायेंगी और हमारी आर्थिक स्वतन्त्रता छिन जायेगी।

(9) **बेरोजगारी में वृद्धि** (Increase in Unemployment): WTO समझौतों से विकासशील देशों में आयातित वस्तुओं का स्वतन्त्र प्रवाह हो रहा है तथा इन देशों में बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आ रही हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां पूंजी-प्रधान तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इससे रोजगार अवसरों में कम वृद्धि होती है। इसके अलावा आयातित वस्तुओं के स्वतन्त्र प्रवाह से विकासशील देशों में घरेलू उत्पादन कम हो जाता है। कम उत्पादन से रोजगार के कम अवसर उत्पन्न होते हैं।

■ 8.2 विश्व व्यापार समझौतों से भारत को लाभ या WTO के पक्ष में तर्क

(Advantages of World Trade Agreements for India or Arguments in favour of WTO)

WTO के विरुद्ध उपरोक्त तर्क दिये गए हैं जबकि वास्तविकता कुछ और है। विपक्ष के ये तर्क WTO का एक पक्षीय मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं। कुछ तर्क तो बिल्कुल निराधार हैं। WTO से भारत को प्राप्त होने वाले मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं:

(1) **विदेशी व्यापार में वृद्धि** (Increase in Foreign Trade): WTO से भारत के विदेशी व्यापार को बहुत बढ़ावा मिला है। WTO का सदस्य होने से भारत के WTO के 158 अन्य सदस्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बन गए हैं। WTO समझौतों के अंतर्गत विभिन्न देशों ने टैरिफ एवं गैर-टैरिफ रुकावटों को कम किया है, इससे भारत के लिए नए बाजार खुले हैं। अब भारत का वस्तुओं व सेवाओं दोनों का विदेशी व्यापार बहुत तेज गति से बढ़ रहा है।

(2) **कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि** (Increase in Exports of Agricultural Goods): विकसित देशों द्वारा कृषि पर दी जा रही सरकारी सहायता में कमी से विश्व की मंडियों में भारतीय खाद्यान्नों की मांग बढ़ेगी। इससे भारत को कृषि पदार्थों का निर्यात बढ़ाने का अवसर प्राप्त होगा। WTO ने सीमा शुल्क और आयात संबंधी प्रतिबन्धों में कमी करने की सिफारिश की है। इसके फलस्वरूप भारत का कृषि निर्यात काफी प्रोत्साहित होगा। वर्ष 2011-12 में भारतीय कृषि उत्पादों का निर्यात 37,618 मिलियन अमेरिकी डॉलर था और अगले पाँच वर्षों में इसके दुगुने होने की सम्भावना है।

(3) **विदेशी निवेश के अंतरप्रवाह में वृद्धि** (Increase in Inflow of Foreign Investment): ट्रिम्स (TRIMs) के अनुसार, WTO के सभी सदस्य देश विदेशी निवेश के अंतरप्रवाह पर लगी सभी रुकावटों को हटा देंगे। इससे भारत में भी विदेशी निवेश का अंतरप्रवाह बढ़ा है, भारत में बहुत सी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, जैसे- L.G., सैमसंग, सोनी आदि निवेश कर रही हैं। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेश बढ़ा है। विकास की दर में तेजी आई है तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है।

(4) **सेवाओं में सुधार** (Improvement in Services): WTO प्रस्ताव के अंतर्गत सेवा क्षेत्र के व्यापार को शामिल कर लेने से भारत जैसे विकासशील देशों को लाभ प्राप्त होगा। इस प्रस्ताव के अनुसार विकसित देश अल्पविकसित राष्ट्रों में अनेक व्यापारिक एवं सेवा संस्थाएं; जैसे- बैंक, बीमा, सूचना-तकनीकी सेवाएं, बिजनेस आऊट-सोर्सिंग (कॉल सेन्टर), यातायात, होटल आदि खोलेंगे। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को देश में व्यापारिक सेवा संस्थाएं खोलने की अनुमति देने से एक ओर तो घरेलू अर्थव्यवस्था में बेहतर सेवाएं उपलब्ध होंगी, वहीं दूसरी ओर भारत के बेरोजगारों को रोजगार के व्यापक अवसर प्राप्त होंगे। भारत में उचित रोजगार अवसर मिलने से लोगों का रोजगार के लिए विदेशों में पलायन भी घटेगा और 'ब्रेन ड्रेन' की समस्या समाप्त हो जायेगी।

(5) **कपड़ा उद्योग को लाभ** (Benefits for Clothing and Textile Industry): WTO के प्रस्ताव से भारत के कपड़ा उद्योग को सबसे अधिक लाभ होगा। WTO प्रस्ताव के अनुसार कपड़ा उद्योग पर लगे सभी प्रतिबन्ध समाप्त कर दिये गए हैं। कपड़े के निर्यात पर लगे प्रतिबन्ध समाप्त हो जाने से भारतीय वस्त्रों का निर्यात अधिक होने लगेगा। इससे वस्त्र उद्योग प्रोत्साहित होगा और इस क्षेत्र में रोजगार के नये अवसर पैदा होंगे।

(6) **बेहतर तकनीक व अच्छी किस्म के उत्पादों का अंतरप्रवाह** (Inflow of Better Technology and Better Quality Products): विदेशी व्यापार और विदेशी निवेश के बढ़ने से बेहतर तकनीक का अंतरप्रवाह होता है और देश में अच्छी किस्म के उत्पादों की उपलब्धता होती है। इससे जन सामान्य के जीवन-स्तर में सुधार होता है तथा औद्योगिक विकास में प्रगति होती है।

(7) **बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था के लाभ** (Benefits of Multilateral Trade System): WTO के अंतर्गत जब कोई व्यापारिक समझौता किया जाता है, तब यह समझौता एक सदस्य देश का उन सभी देशों के साथ होता है जिन्होंने इस व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं। WTO में किये गए व्यापारिक समझौते सभी सदस्य देशों के बीच एक साथ लागू हो जाते हैं। इससे भारत के 158 देशों के साथ व्यापारिक संबंध बन गए हैं। बहुपक्षीय व्यापारिक समझौतों से विदेशी-व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है। यदि विश्व व्यापार संगठन की बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था न होती, तो भारत को विभिन्न देशों के साथ पृथक-पृथक व्यापारिक समझौते करने पड़ते। तब भारत के इतने अधिक देशों के साथ व्यापारिक संबंध न होते।

(8) **पेटेन्ट व्यवस्था के कारण अनुसंधान को प्रोत्साहन** (Promotion to Research because of Patenting System): पेटेन्ट प्रणाली से अनुसंधानकर्ताओं को प्रोत्साहन मिलेगा। शोध कार्य करने पर यदि शोधकर्ता कोई नया उत्पाद ढूंढता है, तो वह इस नए उत्पाद के पेटेन्ट का पंजीकरण करवा सकता है। पेटेन्ट पर वह शोधकर्ता रॉयल्टी के रूप में बहुत आय अर्जित कर सकता है। इस तरह पेटेन्ट प्रणाली शोधकार्यों को बढ़ावा देती है।

(9) **अच्छी किस्म के बीजों तथा पौधों की नई किस्मों के लाभ** (Benefits of using Quality Seeds and New Varieties of Plants): भारतीय किसान एक बार रॉयल्टी का भुगतान करके अच्छी किस्म के बीजों तथा पौधों की नई किस्मों को प्राप्त कर सकते हैं। इससे कृषि उत्पादन व कृषि उत्पादकता में वृद्धि होगी तथा किसानों को लाभ होगा। इसके अलावा किसान अपनी उपज का एक हिस्सा, आगे बोई जाने वाली फसलों में बीज के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें अलग से रॉयल्टी देने की आवश्यकता नहीं होगी, अर्थात् किसान अपनी फसल में से अगली फसलों के लिए बीज रखने के लिए स्वतंत्र हैं।

(10) **राशिपातन पर प्रतिबंध** (Restricts Dumping): यदि कोई देश अपने अतिरिक्त उत्पादन को अन्य देश में बहुत ही कम कीमत पर बेचता है, ताकि उस देश के घरेलू उद्योगों को नष्ट किया जा सके, तो ऐसे देश के विरुद्ध विश्व व्यापार संगठन में शिकायत की जा सकती है। विश्व व्यापार संगठन की विवाद-निपटारा-समिति ऐसे देश के विरुद्ध कार्यवाही करती है। इस तरह विश्व व्यापार संगठन राशिपातन क्रियाओं को रोकने में योगदान देता है।

(11) **WTO के विरुद्ध गलत धारणाएं** (False Apprehensions against WTO): WTO के विरुद्ध कुछ गलत धारणाएँ इस प्रकार हैं:

(i) **कृषि क्षेत्र में सब्सिडी/अनुदानों को कम करना अनिवार्य नहीं** (No Compulsory Reduction in Subsidies in Agriculture Sector): WTO के विपक्ष में यह तर्क गलत है कि इसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली सब्सिडी में कमी होगी। यह प्रस्ताव सब्सिडी में कमी की बात तभी करता है जब उक्त सब्सिडी उत्पाद के बाजार मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक है। भारत में इस प्रकार की सब्सिडी 10 प्रतिशत से काफी कम है। वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा कृषि को दी जा रही सब्सिडी लगभग 3 प्रतिशत है। अत: यह मानना कि WTO के कारण कृषि क्षेत्र को मिलने वाली सब्सिडी में कटौती की जायेगी निराधार है।

(ii) **सार्वजनिक वितरण प्रणाली में कोई रुकावट नहीं** (No Disturbance to Public Distribution System-PDS): WTO के आलोचकों का यह मत है कि WTO समझौतों में अनुदानों में अनिवार्य कटौती करने के समझौता हमारी सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर बुरा प्रभाव डालेगा। लेकिन वास्तविकता में WTO समझौते सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विरुद्ध नहीं है। इन समझौतों के बाद भी भारत सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के अन्तर्गत, निर्धनता रेखा के नीचे रह रहे लोगों को रियायती दरों पर आवश्यक खाद्य पूर्ति की उपलब्धता सरकारी डिपुओं के माध्यम से करा पायेगा क्योंकि विश्व व्यापार संगठन विकासशील देशों को इसकी अनुमति देता है।

(iii) **खाद्यान्नों के आयात में वृद्धि आवश्यक नहीं** (No Need of Increase in Imports of Foodgrains): WTO समझौते के कारण भारत के खाद्यान्न के आयात में वृद्धि करना आवश्यक नहीं है। इसका कारण यह है कि खाद्यान्न का आयात उन देशों के लिए आवश्यक नहीं होगा जो भुगतान सन्तुलन की कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं। चालू खाते पर भुगतान शेष के असन्तुलित होने के कारण भारत खाद्यान्नों के आयात पर रोक लगाने या उसे नियन्त्रित करने के लिए परिमाणात्मक अथवा अन्य प्रतिबन्ध लागू कर सकता है। अत: WTO के आलोचकों का यह मानना कि WTO समझौतों के बाद भारत के खाद्यान्नों के आयातों में वृद्धि हो जाएगी, निराधार है।

(iv) **दवाइयों की कीमतों में वृद्धि का गलत डर** (False Fear of Increase in Prices of Medicines): ऐसा सोचा जा रहा है कि WTO समझौतों के अन्तर्गत दवाइयों के पेटेन्ट होने से भारत में दवाइयों की कीमतें बढ़ जायेंगी। परन्तु भारत में कुल उपलब्ध दवाइयों में से 10 प्रतिशत से कम दवाइयां ही पेटेन्ट सूची में आती हैं, अत: अत्यधिक परेशान होने की बात नहीं है। **विश्व स्वास्थ्य संगठन** ने अनिवार्य और जीवन रक्षक दवाइयों को WTO से बाहर रखा है। फिर हमारे देश में गैर पेटेन्ट दवाइयां सामान्य रूप से उपलब्ध हैं जो निश्चित ही पेटेन्ट सूची की दवाइयों की बढ़ती हुई कीमत को नियन्त्रित करने में सहायक होंगी। इसके अलावा यदि भारतीय वैज्ञानिकों को पर्याप्त सुविधाएं दी जायें तो भारत में अच्छी दवाइयों का उत्पादन किया जा सकता है।

(v) **निर्यात-सब्सिडी में कटौती की बाध्यता नहीं** (No Compulsory Reduction in Export Subsidies): आलोचकों का यह मानना है कि WTO समझौतों से निर्यात-अनुदान वर्ष 2013 तक बन्द हो जाएंगे। परन्तु WTO समझौते में वह विकासशील देश अपने निर्यातों पर 5 अतिरिक्त वर्षों के लिए अनुदान दे सकता है जिसका विश्व व्यापार में हिस्सा 3.25 प्रतिशत से कम है। भारत का कुल विश्व व्यापार में हिस्सा केवल 2.10 प्रतिशत है। अत: इस आधार पर, भारत निर्यातों पर वर्ष 2018 तक निर्यात-सब्सिडी दे सकता है।

विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के पक्ष व विपक्ष में दिए गए तर्कों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि WTO के प्रस्ताव से भारत को अवश्य ही लाभ होगा। इससे भारत की वस्तुओं व सेवाओं के विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिलेगा। भारत में विदेशी निवेश का अंतरप्रवाह बढ़ेगा, विदेशी तकनीक व उन्नत बीजों के प्रयोग से आर्थिक विकास की गति बढ़ेगी। इसके अलावा विश्व के 159 देश इस संगठन के सदस्य हैं, अत: भारत इस संगठन की सदस्यता छोड़कर अन्य देशों से अलग-थलग नहीं रह सकता। आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपनी कुशलता में सुधार करना है, ताकि WTO से होने वाले कुप्रभावों से बचा जा सके। इसके अलावा सभी समझौते एक ही देश के लिए लाभप्रद नहीं हो सकते। क्योंकि ये समझौते बहुत से सदस्य देशों के हितों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। अत: भारत को WTO का सदस्य बने रहना चाहिए तथा WTO समझौतों से लाभ उठाना चाहिए।

9. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विश्व व्यापार संगठन का योगदान

(Role of World Trade Organisation in International Trade)

(1) **द्विपक्षीय व्यापार से बहुपक्षीय व्यापार की ओर** (From Bilateral Trade to Multilateral Trade): विश्व व्यापार संगठन से पहले अंतर्राष्ट्रीय व्यापार द्विपक्षीय आधार पर दो देशों के मध्य होता था। विश्व व्यापार संगठन से बहुपक्षीय व्यापार समझौतों को बढ़ावा मिला है।

(2) **विश्व व्यापार की मात्रा में वृद्धि** (Increase in Volume of World Trade): विश्व व्यापार संगठन से सभी सदस्य देशों के मध्य व्यापार को बढ़ावा मिला है। इससे सदस्य देशों के मध्य व्यापार से टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को हटाकर स्वतन्त्र व्यापार को बढ़ावा दिया है। इससे न केवल उत्पादों के बल्कि सेवाओं के व्यापार में भी वृद्धि हुई है।

(3) **विश्व व्यापार की संरचना में परिवर्तन** (Change in Composition of World Trade): विश्व व्यापार संगठन से पहले, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मुख्यत: वस्तुओं में ही होता था परन्तु विश्व व्यापार संगठन ने सेवाओं के व्यापार को भी बढ़ावा दिया है। इससे विश्व व्यापार की संरचना में परिवर्तन हुआ है। WTO के 'सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौते' (General Agreement on Trade in Services – GATS) के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों में सेवाओं के स्वतन्त्र व्यापार को बढ़ावा मिला है। सेवाओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगी टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाओं को समाप्त कर दिया गया है। गैट्स (GATS) में सभी प्रकार की सेवाओं, जैसे- बीमा, यात्रा व पर्यटन, होटल, बैंकिंग, जहाजरानी, दूरसंचार, बिजनेस आऊटसोर्सिंग (कॉल-सेंटर), सूचना-तकनीकी संबंधी सेवाओं, मीडिया-सेवाओं आदि को शामिल किया जाता है। अब विदेशी सेवाओं व घरेलू सेवाओं पर एक ही तरह के प्रावधान लागू होते हैं।

(4) **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़े झगड़ों का निपटारा** (Settlement of Disputes Related to International Trade): अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़े विवादों के निपटारे हेतु विश्व व्यापार संगठन में **विवाद निवारण समिति** (Dispute Settlement Body – DSB) गठित की गई है। विवाद निवारण के लिए DSB एक पैनल (Panel) बनाता है। यह पैनल दोनों पक्षों से विवाद के बारे में विचार-विमर्श करता है। यह पैनल 6 महीने के अंदर अपनी रिपोर्ट DSB को देता है। परन्तु किसी आकस्मिक स्थिति (Urgency) में इसे 3 महीने के अंदर भी रिपोर्ट पेश करने को कहा जा सकता है। विवाद निपटारा समिति का उद्देश्य कम समय में विवादों का संतोषजनक हल ढूंढना है। विवादों के संतोषजनक निपटारे से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिलता है।

(5) **कृषि निर्यातों में वृद्धि** (Increase in Agricultural Exports): WTO ने सदस्य देशों के कृषि आयातों व कृषि उत्पादों पर सब्सिडी कम करने की सिफारिश की है। परन्तु विकासशील देश अपनी फसल के बाजार मूल्य के 10 प्रतिशत तक के बराबर कृषि अनुदान दे सकते हैं। इससे विकासशील देशों के कृषि निर्यातों को बढ़ावा मिला है।

(6) **कपड़ा उद्योग के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार** (Expansion of International Trade in Textile and Clothing): पिछले बहुत से वर्षों से कपड़ा क्षेत्र में व्यापार के संबंध में बहु फाइबर व्यवस्था (Multi-Fibre Arrangement – MFA) प्रचलित थी। इस व्यवस्था में विकसित देशों ने कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबंध लगाए हुए थे। WTO समझौते से कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबंधों को लगाए जाने की प्रणाली अर्थात् MFA को समाप्त कर दिया गया है। इससे कपड़े के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिला है।

(7) **राशिपातन पर प्रतिबंध** (Restricts Dumping): WTO द्वारा, राशिपातन को रोकने के लिए, सदस्य देशों को यह निर्देश दिया गया है कि वे राशिपातन द्वारा किसी देश के घरेलू उद्योग को नुकसान नहीं पहुंचाएंगे। यदि कोई देश दूसरे देश के घरेलू बाजार में राशिपातन करता है, तो इसके विरुद्ध WTO की शिकायत निवारण समिति ऐसे देश के विरुद्ध कार्यवाही करती है। इस तरह WTO विश्व व्यापार में राशिपातन को कम करने में सहायक है।

(8) **व्यापार बाधाओं में कमी** (Reduction in Trade Barriers): विश्व व्यापार संगठन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को कम करता है। यह आयात करों, निर्यात अनुदानों, आयात कोटा, आयात लाइसेंसिंग, निर्यात परमिट, निर्यात कोटा आदि की समाप्ति की सिफारिश करता है। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिलता है।

■ 10. विश्व व्यापार संगठन के समक्ष चुनौतियाँ (Challenges before WTO)

(1) **विकसित देशों द्वारा विरोध** (Opposition from Developed Nations): बड़े औद्योगिक देश जैसे यू०एस०ए० विश्व व्यापार संगठन के समझौतों का कड़ा विरोध करते हैं। उनका यह कहना है कि मुक्त व्यापार से विकसित देशों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। विकसित देशों में उत्पादों की कीमतें अधिक होती हैं क्योंकि वहाँ उन्हें सामाजिक उपरिव्यय (Social-overheads), वातावरणीय व्यय (Environmental Expenses) करने पड़ते हैं, वहाँ श्रम लागत भी तुलनात्मक रूप से ज्यादा है। विकसित देशों को यह डर है कि स्वतन्त्र व्यापार होने पर उत्पादन क्रियाएँ तथा रोज़गार अवसर विकसित देशों से हटकर विकासशील देशों की ओर चले जाएँगे क्योंकि वहाँ श्रम-लागत कम है। विकसित देशों द्वारा स्वतन्त्र विश्व व्यापार के कड़े विरोध के कारण, WTO के कार्यकरण पर कुप्रभाव पड़ा है।

(2) **क्षेत्रीय व्यापार समूहों से खतरा** (Danger from Regional Trade Groupings): क्षेत्रीय व्यापार समूह जैसे NAFTA, EFTA, EEC, ASEAN, BRICS आदि द्वारा बढ़ते विदेशी व्यापार से भी विश्व व्यापार संगठन द्वारा व्यापार को बहुत खतरा हो रहा है। इन क्षेत्रीय व्यापार समूहों में सदस्य देशों के मध्य व्यापार पर कोई बाधाएँ नहीं होतीं, अतः क्षेत्रीय समूहों के सदस्य देश दूर स्थानों पर स्थित देशों की बजाय अपने क्षेत्रीय समूह के सदस्य देशों के साथ विदेशी व्यापार को प्राथमिकता देते हैं। इन सदस्य देशों के साथ व्यापार पर परिवहन लागत भी कम आती है, क्योंकि ये देश कई बार आस पास (एक ही क्षेत्र में) ही स्थित होते हैं। अब यू०एस०ए० जैसे विकसित देश भी द्विपक्षीय व क्षेत्रीय व्यापार समझौतों को प्राथमिकता दे रहे हैं। इससे WTO समझौतों द्वारा व्यापार को खतरा हो रहा है।

■ 11. दोहा सम्मेलन (Doha Conference)

विश्व व्यापार संगठन की चौथी मंत्रीस्तरीय सभा दोहा में नवम्बर 2001 में सम्पन्न हुई। इस सभा में 144 सदस्य देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में चीन और ताईवान को भी विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों के रूप में शामिल किया गया। इस सभा में विकासशील व विकसित देशों में अपने अपने हितों को लेकर झगड़ा हो गया। इस सम्मेलन में निम्नलिखित बातों पर विचार हुआ:

(1) विकसित देशों ने अमेरिका की अध्यक्षता में WTO में नये मुद्दे उठाए, जैसे निवेश, प्रतिस्पर्धात्मक नीति, सरकार के खरीदारी में पारदर्शिता, वातावरण लागत आदि। भारत ने विकसित देशों द्वारा उठाये गए नये मुद्दों का विरोध किया और सदस्य देशों से आग्रह किया कि विश्व व्यापार संगठन के पहले से तय मुद्दों (पुराने मुद्दों), जिन पर सदस्य देश पहले ही अपनी सहमति दे चुके हैं उन्हें लागू किया जाये और इसके बाद नये मुद्दों की बात की जाये। शुरूआती दौर में यह लगा कि भारत अलग थलग पड़ जाएगा, लेकिन बाद में बहुत से विकासशील देशों ने भारतीय विचार को अपना समर्थन दिया। विश्व व्यापार संगठन के चेयरमैन ने यह घोषणा की कि नये मुद्दों पर विचार सर्व सहमति के बाद ही किया जा सकता है। चेयरमैन ने अपनी घोषणा में इन नये मुद्दों को अगले मंत्रीस्तरीय सम्मेलन के लिए स्थगित कर दिया।

(2) विकासशील देशों के हित को ध्यान में रखते हुए इन देशों की आवश्यक दवाइयों को पेटेन्ट (Patent) से मुक्त कर दिया गया। इसके अलावा राष्ट्रीय आपदा जैसे महामारियों (Epidemic) का फैलना, मलेरिया, TB, AIDS आदि का फैलना, इन दशाओं में सार्वजनिक हित में इस मुद्दे पर ट्रिप्स के प्रावधान दवाइयों पर लागू नहीं होंगे।

(3) गरीब देशों में खाद्य सुरक्षा (Food Security) के मुद्दे पर चर्चा की गई और इन देशों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) में खाद्यान्नों के वितरण पर अनुदान (Subsidy) जारी रखने की अनुमति दे दी गई।

(4) सदस्य देश इस बात पर सहमत हुए कि गैर कृषि उत्पादों पर टैरिफ को कम किया जायेगा और इन उत्पादों पर कुछ समयावधि में टैरिफ समाप्त कर दिए जायेंगे।

(5) डम्पिंग विरोधी नियमों (Anti dumping Rules) का पुनरावलोकन (Review) किया जाएगा और इन्हें अधिक प्रभावी बनाये जाने पर सहमति व्यक्त की गई।

(6) सभी सदस्य देशों ने इस विषय पर सहमति व्यक्त की कि समय के साथ साथ निर्यात अनुदानों (Export Subsidies) को समाप्त कर दिया जाएगा।

(7) WTO के इस सम्मेलन में ट्रिप्स (TRIPs) समझौते में सुधार के लिए 9 सदस्यों की एक समिति बनाई गई। भारत भी इस समिति का एक सदस्य है।

(8) दोहा सम्मेलन, 'दोहा डिवेलपमेंट एजेंडा' (Doha Development Agenda) बनाकर समाप्त हुई।

■ 12. जेनेवा आठवाँ मंत्रीस्तरीय सम्मेलन (Geneva Eighth Ministerial Conference)

WTO का आठवां मंत्रीस्तरीय सम्मेलन 15 दिसंबर, 2011 से 17 दिसंबर, 2011 तक जेनेवा में हुआ। इस सम्मेलन में WTO के सभी 153 सदस्य देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन का मुख्य विचार बिंदु था– '**बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था का महत्त्व व विश्व व्यापार संगठन**'। इस सम्मेलन में निम्न मुख्य बातों पर विचार किया गया:

(1) विदेशी व्यापार, आर्थिक विकास व रोजगार को बढ़ावा देने के लिए सदस्य देशों द्वारा इस बात पर सहमति प्रकट की गयी कि वर्तमान वैश्विक आर्थिक वातावरण में 'स्पष्ट रूप से परिभाषित नियमों पर आधारित बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था' को सुदृढ़ किया जाए।

(2) इस बात पर सहमति प्रकट की गई कि विवाद निवारण समिति की कार्यप्रणाली व संचालन पर रोक के लिए उपायों को गरीब व छोटे सदस्य देशों की जरूरतों व क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए सुधारा जाएगा।

(3) विदेशी व्यापार व आर्थिक विकास के मध्य धनात्मक संबंध के महत्त्व पर जोर दिया गया। सदस्य देशों द्वारा सहमति प्रकट की गयी कि विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए, अधिक टैरिफ व गैर टैरिफ रियायतें दी जाएँगी।

(4) सम्मेलन में WTO की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता व समावेशकता (Inclusiveness) लाने पर जोर दिया गया। अर्थात् WTO के समझौतों से सभी सदस्य देश लाभान्वित हों, इस बात पर जोर दिया गया।

(5) सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि आँकड़ों को एकत्रित करने, उनके विश्लेषण करने तथा आवश्यक सूचनाओं को सदस्य देशों को शीघ्र उपलब्ध करवाने के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे। सदस्य देशों की व्यापार नीतियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए एक वेब पोर्टल विकसित किया जाएगा, जिसका नाम होगा– 'एकीकृत व्यापार सूचना पोर्टल' (Integrated Trade Intelligence Portal)। सभी सदस्य देश अपनी व्यापार नीति संबंधी सूचना इस वेब पोर्टल पर उपलब्ध करवाएँगे। इससे सदस्य देशों को अन्य सदस्य देशों की व्यापार नीति संबंधी जानकारी बिना विलम्ब के मिल पाएगी तथा वे इन देशों से व्यापार के संबंध में उचित निर्णय ले सकेंगे।

(6) दोहा सम्मेलन के ऐसे विवादित मुद्दे जिन पर सदस्य देशों की सहमति नहीं बन पायी थी, पर चर्चा की गई। सदस्य देशों ने इन विवादित मुद्दों को निश्चित समय अवधि में हल करने पर सहमति बनायी।

(7) चार नए सदस्य देशों को WTO में शामिल करने पर सहमति व्यक्त की गयी। ये देश हैं– रूस, सामोआ, मोन्टेनेग्रो, वानुआतु।

(8) सदस्य देशों द्वारा सहमति प्रकट की गयी कि बौद्धिक सम्पदा व विवाद निपटारा संबंधी प्रावधानों को अधिक सुदृढ़ किया जाएगा।

(9) सदस्य देशों ने इस बात पर जोर दिया कि क्षेत्रीय व्यापार समझौते, बहुपक्षीय समझौतों के पूरक हों, तथा ये बहुराष्ट्रीय व्यापार के रास्ते में बाधा उत्पन्न न करें।

(10) विकासशील देश, विकसित देशों द्वारा दी गयी टैरिफ व गैर टैरिफ रियायतों में कम रियायतें देंगे। अति अल्पविकसित देशों की विकास दर में वृद्धि लाने के लिए व इन देशों से गरीबी दूर करने के लिए इन्हें व्यापारिक रियायतें, अधिक बाजार पहुँच व अधिक तकनीकी सहायता उपलब्ध करवायी जाएगी।

■ 13. बाली नौवाँ मंत्रीस्तरीय सम्मेलन (Bali Ninth Ministerial Conference)

विश्व व्यापार संगठन का नौवाँ मंत्रीस्तरीय सम्मेलन 3 दिसंबर 2013 से 7 दिसंबर, 2013 तक बाली, इंडोनेशिया में हुआ। इस सम्मेलन में विश्व व्यापार संगठन के सभी 159 सदस्य देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन का मुख्य विचार बिंदु सदस्य देशों में

स्वतंत्र व्यापार को बढ़ावा देना, अति-अल्प-विकसित देशों में विकास की गति को तीव्र करना व विकासशील देशों में खाद्य-सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उन्हें कुछ छूटें देना था। इस सम्मेलन में निम्न मुख्य मुद्दों पर विचार किया गया।

(1) दोहा सम्मेलन के ऐसे विवादित मुद्दे जिन पर सदस्य देशों की सहमति नहीं बन पायी थी, पर चर्चा की गई। इन विवादित मुद्दों को निश्चित समय अवधि में हल करने पर सहमति बनायी गयी।

(2) बहुपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए विशेष उपायों पर सहमति बनायी गयी। व्यापार की लागत में 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत के मध्य तक की कमी लाने के लिए कस्टम (Custom) संबंधी प्रक्रिया व औपचारिकताओं को सरल बनाने, इस प्रक्रिया में पारदर्शिता को बढ़ावा देने, तथा अफसरशाही व भ्रष्टाचार को कम करने के लिए विशेष उपाय करने पर सहमति प्रकट की गई।

(3) विकासशील देशों में खाद्य-सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (Public Distribution System) पर दिए जाने वाले अनुदानों पर 10 प्रतिशत की अधिकतम सीमा लागू नहीं होगी। यह एक अंतरिम (Interim) उपाय होगा, चार वर्षों के बाद इस उपाय का पुनरावलोकन किया जाएगा।

(4) विकासशील देशों में विदेशी व्यापार संबंधी अधो-संरचना; जैसे- बंदरगाहों का विकास, कार्गो-हैंडलिंग सयंत्र (Cargo-handling-equipments) का प्रयोग, समर्पित सड़क व रेल-नेटवर्क का विकास, आदि को सुदृढ़ करने के लिए वित्तीय व तकनीकी सहायता प्रदान की जाएगी। इसके अलावा कस्टम अधिकारियों को कस्टम संबंधी औपचारिकताओं को शीघ्रता से निपटाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाएगा।

(5) अति-अल्प-विकसित देशों के कपास से बने उत्पादों की बाजार-पहुँच में सुधार लाने के लिए इन्हें टैरिफ व गैर-टैरिफ-बाधाओं से मुक्त रखा जाएगा। इससे अति-अल्प-विकसित देशों के सूती उत्पादों के निर्यातों में वृद्धि होगी।

(6) अति-अल्प-विकसित देशों को विकासात्मक सहायता प्रदान की जाएगी।

(7) वैश्विक स्तर पर स्वस्थ प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने के लिए, सभी सदस्य देश निर्यातों पर दिए जाने वाले अनुदानों को कम करेंगे।

(8) अति-अल्प-विकसित देशों के सेवा-क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए, इन देशों के सेवा-उत्पादों के विकसित देशों में निर्यात बढ़ाने के विशेष प्रयास किए जाएंगे।

(9) वैश्विक स्तर पर निवेश के स्वतंत्र प्रवाह को बढ़ावा देने के लिए स्थिर व निवेश-मैत्री वैश्विक व्यावसायिक वातावरण विकसित करने के प्रयास किए जाएंगे।

(10) सदस्य-देशों ने इस बात पर सहमति प्रकट की, कि विकासशील देशों के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए, इन्हें उच्च-तकनीक उपलब्ध करवायी जाएगी।

(11) विश्व व्यापार संगठन की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता लायी जाएगी, तथा इसे अधिक समावेशी बनाया जाएगा; ताकि सभी सदस्य देश WTO से लाभान्वित हों।

■ 14. गैट व विश्व व्यापार संगठन में अंतर (Difference between GATT and WTO)

गैट (GATT)	विश्व व्यापार संगठन (WTO)
(1) गैट के अंतर्गत मुख्य रूप से वस्तुओं के व्यापार पर ही जोर दिया गया था। यद्यपि उरुग्वे दौर में सेवाओं के व्यापार को भी गैट में शामिल किया गया, पर इससे संबंधित कोई समझौता नहीं किया गया।	विश्व व्यापार संगठन में वस्तुओं व सेवाओं दोनों के व्यापार पर जोर दिया गया।
(2) गैट एक कम शक्तिशाली संस्था थी। इसकी विवाद-निवारण-व्यवस्था धीमी व अकुशल थी।	विश्व-व्यापार संगठन एक शक्तिशाली संस्था है। इसकी विवाद-निवारण-व्यवस्था कुशल, तेज व सुदृढ़ है।
(3) गैट के अंतर्गत अधिवेशन नियमित रूप से पूर्व निर्धारित समय पर नहीं बुलाये जाते थे।	विश्व व्यापार संगठन में प्रत्येक दो वर्षों के बाद नियमित रूप से मंत्रीस्तरीय सम्मेलन बुलाया जाता है।
(4) गैट के अंतर्गत एक छोटा सचिवालय था जो एक डायरेक्टर जनरल की देखरेख में कार्य करता था।	विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत एक विशाल सचिवालय है। इसका संगठनात्मक ढाचा बहुत विशाल है।
(5) गैट के अंतर्गत ट्रिप्स व ट्रिम्स पर अधिक जोर नहीं दिया गया।	विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत ट्रिप्स व ट्रिम्स पर विशेष जोर दिया गया है।
(6) गैट के अंतर्गत चर्चा के लिए एक निश्चित समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई थी। कई बार तो किसी विषय पर चर्चा सालों-साल चलती रहती थी। जैसे गैट का आठवा दौर आठ वर्ष तक चला।	विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत चर्चा के लिए एक निश्चित-समय-सीमा निर्धारित की जाती है, जैसे- इसका नौवा मंत्रीस्तरीय सम्मेलन वर्ष 2013 में पाँच दिन तक चला।

■ विश्व व्यापार व्यवस्था में क्षेत्रीय आर्थिक (व्यापारिक) समूहों का बढ़ता महत्त्व

[Growing Importance of Regional Economic (Trading) Groups in World Trading System]

विश्व व्यापार व्यवस्था में क्षेत्रीय व्यापार समझौतों का बहुत प्रसार हो रहा है। इन क्षेत्रीय व्यापार समझौतों का मुख्य उद्देश्य एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र में स्थित सदस्य देशों के मध्य व्यापार को बढ़ावा देना है। क्षेत्रीय आर्थिक समूहों (व्यापारिक ब्लॉक) के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: यूरोपीयन यूनियन (European Union – EU), उत्तरी अमेरिकन स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र (North American Free Trade Area — NAFTA), दक्षिणी पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का समुदाय (Association of South East Asian Nations — ASEAN), क्षेत्रीय सहयोग के लिए दक्षिणी एशियाई समुदाय (South Asian Association for Regional Cooperation — SAARC), 'ब्राजील, रूस, भारत, चीन तथा दक्षिणी अफ्रीका का उभरता समूह ब्रिक्स (BRICS), आदि। वर्तमान में, कुल विश्व व्यापार का लगभग एक-तिहाई हिस्सा क्षेत्रीय व्यापार समझौतों से होता है। इन क्षेत्रीय व्यापार समूहों में सदस्य देश विदेशी व्यापार, विदेशी निवेश, श्रम के प्रवाह आदि संबंधी प्रावधान बनाते हैं।

यदि क्षेत्रीय व्यापार समझौता एक विकसित देश व अन्य विकसित देशों के मध्य होता है, तो उसे उत्तर-उत्तर (North-North) समझौता, यदि यह समझौता विकासशील देश व अन्य विकासशील देशों के साथ होता है तो इसे दक्षिण-दक्षिण (South-South) समझौता और यदि यह समझौता विकसित व विकासशील देशों के मध्य होता है, तो इसे उत्तरी-दक्षिणी (North-South) समझौता कहते हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था में व्यापारिक समूहों का बहुत प्रसार हो रहा है। जर्मन कस्टम यूनियन (Custom Union), जिसकी शुरुआत वर्ष 1834 में हुई, विश्व के एक प्रारंभिक आर्थिक समूह के रूप में जाना जाता है। वर्ष 2005 में क्षेत्रीय व्यापारिक समझौतों की संख्या बढ़कर 211 हो गई। जनवरी 2014 के अंत तक 583 क्षेत्रीय व्यापारिक समझौतों की अधिसूचना (Notification) जारी की गई, जिनमें से लगभग 377 समझौते कार्यरत थे। विश्व के बहुत से देश एक से अधिक व्यापारिक समझौतों के सदस्य हैं। अर्थात एक समय में एक देश, एक से अधिक व्यापारिक समझौतों का सदस्य बना हुआ है।

व्यापारिक ब्लॉकों से न केवल विदेशी व्यापार में वृद्धि होती है बल्कि इससे सदस्य देशों को विभिन्न आर्थिक व अन्य लाभ भी प्राप्त होते हैं। व्यापारिक समूहों से बड़े बाजार की उत्पत्ति होती है, इससे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अंतर्प्रवाह को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिए मैक्सिको ने जब NAFTA में सदस्यता प्राप्त की, तब मैक्सिको में एक ही वर्ष में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश दुगुने से भी अधिक हो गया। क्षेत्रीय आर्थिक समूहों से उत्पादन में विशिष्टता को बढ़ावा मिलने के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन की बचतें (Economies of Large Scale) प्राप्त होती हैं। ऐसे देश जिनका अपना बाजार क्षेत्र बहुत छोटा है, वे इन समूहों की सदस्यता के बिना बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं कर सकते। व्यापारिक समूहों में सदस्यता लेने से छोटे देशों के उत्पादक भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देकर बड़े पैमाने पर उत्पादन कर सकते हैं। इससे औसत उत्पादन लागत में कमी आती है। इससे उत्पादकों व उपभोक्ताओं दोनों

को लाभ प्राप्त होता है। गैर-सदस्य देशों की निर्माणी इकाइयाँ भी अपने उत्पादों की क्वालिटी में सुधार तथा निर्माण-लागत में कमी ला का प्रयास करती हैं, ताकि वे भी बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना कर सकें। इससे बाजार कुशलता (Market-Efficiency) में सुधार आता है

व्यापारिक समूहों का भविष्य बहुत उज्ज्वल है, क्योंकि वर्ष 2003 में WTO की Cancun मंत्रीस्तरीय सभा की असफलता बाद WTO के माध्यम से होने वाले विश्व व्यापार में रुकावटें आ रही हैं। WTO में विकसित व विकासशील देशों के मध्य बहुत मतभे हो गए हैं। इसके अलावा WTO के 159 सदस्य देश हैं, जिनकी सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ अलग-अलग हैं। इन सभी सदस्य देशों में विभिन्न मुद्दों पर सर्वमान्य स्वीकृति (Consensus) होना बहुत ही मुश्किल है। WTO की विश्व व्यापार में असफलता क्षेत्रीय आर्थिक समूहों को बढ़ावा मिल रहा है। इन क्षेत्रीय समूहों में पड़ोसी देश ही सदस्य देश होते हैं। इनमें सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक अंतर कम होते हैं। इनमें सदस्य देशों की संख्या भी कम होती है, जिससे इनमें विभिन्न मुद्दों पर सर्वमान्य रजामंदी लाना सर होता है। इसके अलावा इनके मध्य विदेशी व्यापार में परिवहन लागत कम आती है, क्योंकि ये देश एक ही भौगोलिक क्षेत्र में स्थित हो हैं, इन सब कारणों से क्षेत्रीय आर्थिक समूहों का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

विनिमय दर एवं वैश्विक वित्तीय व्यवस्था
(Exchange Rate and Global Financial System)

■ 1. विदेशी विनिमय का अर्थ (Meaning of Foreign Exchange)

साधारणतः 'विदेशी विनिमय' शब्द दो बातों की ओर संकेत करता है: (i) **विदेशी मुद्रा (करेंसी)**, (ii) **विनिमय दर**। सामान्यतया विदेशी विनिमय का संबंध विदेशी करेंसी अर्थात अन्य देशों की करेंसी से होता है। उदाहरण के लिए पौंड स्टर्लिंग, डॉलर, फ्रैंक, रूबल इत्यादि विदेशी करेंसी या विदेशी विनिमय है। विनिमय दर से अभिप्राय उस दर से है जिस दर पर किसी देश की करेंसी की एक इकाई को किसी अन्य देश की करेंसी के साथ बदला जाता है। अर्थशास्त्र में विदेशी विनिमय शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थों में किया जाता है। विदेशी विनिमय से अभिप्राय उन सभी गतिविधियों से है जिनके द्वारा विभिन्न देशों के नागरिक विभिन्न विदेशी मुद्राओं (करेंसी) में भुगतान करते हैं। **हार्टले विदर** के शब्दों में, **"विदेशी विनिमय अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक विनिमय की कला तथा विज्ञान दोनों ही है।"** (Foreign exchange is the art and science of international monetary exchange. – **Hartly Withers**) कला के रूप में इसका संबंध (i) उन सभी संस्थाओं से है जो विदेशी भुगतानों में सहायक होती हैं; (ii) वे सभी तरीके जिनके द्वारा विदेशी भुगतान किए जाते हैं तथा (iii) वे दर जिस पर एक देश की करेंसी को दूसरे देश की करेंसी में बदला जाता है। विज्ञान के रूप में इसका संबंध विनिमय दर के निर्धारण तथा इससे संबंधित सभी सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक समस्याओं से है। संक्षेप में, विदेशी विनिमय शब्द का प्रयोग उस प्रणाली के लिए किया जाता है जिसके द्वारा विभिन्न देश एक-दूसरे की करेंसियों का क्रय तथा विक्रय करते हैं। इसमें वे सभी तरीके, संस्थाएँ, विभिन्न करेंसियाँ तथा विदेशी विनिमय से संबंधित साख पत्र सम्मिलित होते हैं जिनकी सहायता से विभिन्न देश परस्पर भुगतानों का निपटारा करते हैं।

■ 2. विदेशी विनिमय बाज़ार (Foreign Exchange Market)

एक करेंसी को किसी अन्य करेंसी में बदलने के लिए विदेशी विनिमय बाज़ार में जाना होता है। इस बाज़ार में विभिन्न करेंसियों का विनिमय किया जाता है। **लिप्सी** तथा **क्रिस्टल** के शब्दों में **"विदेशी विनिमय बाज़ार वे बाज़ार होते हैं जिनमें एक करेंसी की दूसरी करेंसी में अदला-बदली होती है।"** (The foreign exchange markets are the markets in which one currency can be traded for another. – **Lipsey** and **Chrystal**)। वस्तुओं के बाज़ार की भाँति विदेशी विनिमय बाज़ार में भी क्रेता तथा विक्रेता पाए जाते हैं। इनमें व्यक्ति भी होते हैं और फर्में तथा वित्तीय संस्थाएँ भी होती हैं। क्रेता तथा विक्रेता मिल कर सौदे करते हैं। आधुनिक टेक्नोलॉजी ने इन बाज़ारों को विश्वभर में फैला दिया है। एक देश से दूसरे देश में कोषों (Funds) के हस्तांतरण के अलावा, सट्टे की क्रिया (Speculative Activity) विदेशी विनिमय बाज़ार का एक अन्य पहलू है। लोग विदेशी विनिमय की बदलती दरों से लाभ कमाने हेतु विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय करते हैं।

■ 3. विनिमय दर (Exchange Rate)

विनिमय दर उस दर को कहते हैं **जिस पर किसी देश की करेंसी की एक इकाई के बदले अन्य देश की करेंसी की इकाइयों की संख्या प्राप्त की जाती है** (Exchange rate is that rate at which one unit of currency of a country can be exchanged for the number of units of currency of another country)। दूसरे शब्दों में, यह विदेशी करेंसी की एक इकाई प्राप्त करने के लिए घरेलू करेंसी में चुकाई गई कीमत है। इसे दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है, जैसे-

$1 = ₹ 50 or ₹ 1 = 2 सेंट

अतः विनिमय दर दो देशों की करेंसियों के बीच विनिमय अनुपात को व्यक्त करती है। यह एक देश की करेंसी की दूसरे देश की करेंसी के रूप में कीमत होती है। एक करेंसी के बाहरी मूल्य या विनिमय दर में वृद्धि को मूल्य वृद्धि (Appreciation) तथा कमी को मूल्य ह्रास (Depreciation) कहते हैं।

- **परिभाषाएं (Definitions)**

  (i) **हेनस** के शब्दों में, **"विनिमय दर एक करेंसी की किसी अन्य करेंसी के रूप में कीमत होती है।"** (Exchange rate is the price of the currency stated in terms of another currency. – **Haines**)

  (ii) **क्राउथर** के शब्दों में, **"विनिमय दर किसी करेंसी की एक इकाई के बदले में अन्य करेंसी की कितनी इकाइयाँ मिल सकती हैं, इसका माप है।"** (The rate of exchange measures number of units of one currency which is exchanged in the foreign market for one unit of another. – **Crowther**)

  (iii) **सेयर्ज़** के शब्दों में, **"करेंसियों की एक-दूसरे के रूप में कीमत को विदेशी विनिमय दर कहा जाता है।"** (The prices of currencies in terms of each other are called foreign exchange rate. – **Sayers**)

■ 3.1 स्थिर तथा लचीली विनिमय दर (Fixed and Flexible Rate of Exchange)

विनिमय दर स्थिर होनी चाहिए या लचीली, यह एक ऐसा विवादास्पद प्रश्न है। स्वर्ण मुद्रा मान (Gold Standard) के अन्तर्गत विनिमय दर स्थिर होती है, किंतु पत्र मुद्रा मान (Paper Currency Standard) के अन्तर्गत यह स्थिर या लचीली हो सकती है। सन् 1945 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना विनिमय दर में स्थिरता बनाए रखने के उद्देश्य से की गई थी, किंतु 1973 से IMF भी लचीली विनिमय दर के सिद्धांत को स्वीकार करने लगा है।

- **(1) स्थिर विनिमय दर (Fixed Rate of Exchange)**

स्थिर विनिमय दर का अर्थ है कि सरकार द्वारा विनिमय की दर को स्थिर बनाए रखना। सरकार द्वारा इस दर को लागू करने के सभी प्रकार के प्रयत्न किए जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के चार्टर के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश को अपनी करेंसी का सोने या डॉलर के रूप में समता मूल्य (Par Value) निश्चित करना तथा उसे बनाए रखना होता है। एक सदस्य देश अपनी करेंसी के समता मूल्य में IMF को सूचित करके 10 प्रतिशत तक परिवर्तन अर्थात अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन (Devaluation or Overvaluation) कर सकता है। 10 प्रतिशत से अधिक परिवर्तन के लिए उसे IMF की मंज़ूरी लेनी होती है। स्थिर विनिमय दर के निर्धारण में बाज़ार की शक्तियों का कोई हाथ नहीं होता है और न ही इसमें कोई उतार-चढ़ाव आते हैं।

- **(1.1) स्थिर विनिमय दर के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Fixed Rate of Exchange)**

  (i) **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन** (Encouragement to International Trade): स्थिर विनिमय दर के फलस्वरूप निश्चितता तथा विश्वास का वातावरण बना रहता है। विदेशियों को यह ज्ञात होता है कि उन्हें आयात किए जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए कितनी घरेलू करेंसी देनी है तथा निर्यात के फलस्वरूप उन्हें कितनी घरेलू करेंसी प्राप्त होगी। इसका प्रभाव यह होता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है तथा उसका विकास होता है।

  (ii) **आर्थिक विकास** (Economic Development): आर्थिक विकास के लिए दीर्घकालीन विदेशी पूँजी की आवश्यकता होती है। दीर्घकालीन विदेशी निवेश तभी किये जायेंगे जब विनिमय दर स्थिर होती है तथा विनिमय बाज़ार में कोई अनिश्चितता नहीं होती। यदि विनिमय दर में अधिक परिवर्तन होते रहते हैं तो विदेशी निवेशकर्ता दीर्घकाल के लिए पूँजी का निवेश नहीं करते। इसका आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतएव् स्थिर विनिमय दर आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने में सहायक होती है।

(iii) सट्टे की समाप्ति (End of Speculation): स्थिर विनिमय दर के फलस्वरूप भविष्य के संबंध में अनिश्चितता नहीं रहती। विनिमय दर का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है। इसलिए सट्टे के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। विनिमय दर में सट्टा उसी समय संभव होता है जब भविष्य में विनिमय दर के कम या अधिक होने की संभावना हो।

(iv) आन्तरिक कीमत स्थिरता (Internal Price Stability): स्थिर विनिमय दर के फलस्वरूप देशों में कीमत स्तर में बढ़ने की अधिक प्रवृत्ति नहीं रहती। इसके विपरीत लोचशील विनिमय दर के फलस्वरूप देश की आन्तरिक स्थिरता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हॉम (Halm) के अनुसार, **''विनिमय दर के परिवर्तनों से विदेशी व्यापार में सम्मिलित की जाने वाली वस्तुओं की कीमतों में निरन्तर परिवर्तन होने से कीमत स्तर के सूचकांक में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इसका प्रभाव यह होता है कि आन्तरिक कीमत स्थिरता भंग हो जाती है।''**

(v) पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन (Encouragement to Capital Formation): स्थिर विनिमय दर में निवेशकर्ताओं को यह ज्ञात होता है कि विनिमय दर भविष्य में भी लगभग वही रहेगी, जो वर्तमान में है। अतः वे विनिमय दर में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप लाभ होने की संभावना में अपने धन को तरल रूप में नहीं रखते, बल्कि उसका दीर्घकालीन निवेश करना अधिक पसन्द करते है। अतः स्थिर विनिमय दर से पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है तथा रोजगार के अवसर बढ़ते है।

- **(1.2) स्थिर विनिमय दर के विपक्ष में तर्क (Arguments against Fixed Rate of Exchange)**

(i) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में अधिक लाभदायक नहीं होता (Not Very Helpful in Promoting International Trade): स्थिर विनिमय दर के पक्ष में मुख्य तर्क यह दिया गया है कि इसके फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में मदद मिलेगी। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में स्थायी विनिमय दर की तुलना में लोचशील विनिमय दर व्यवस्था अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

(ii) वास्तविक विनिमय दर नहीं (Not Real Rate of Exchange): स्थायी विनिमय दर एक कृत्रिम विनिमय दर है। इसे बनाए रखने के लिए सरकार को कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने पड़ते है। इससे देश की वास्तविक आर्थिक स्थिति का ज्ञान नहीं होता।

(iii) सट्टे का अंत नहीं होता (No Elimination of Speculation): स्थायी विनिमय दर के पक्ष में यह तर्क भी दिया जाता है कि इसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय में होने वाले सट्टे का अंत हो जायेगा परन्तु वास्तविक अनुभव इसके विपरीत है। स्थिर विनिमय दर की दशा में भी सरकार समय समय पर विनिमय दर का पुनरावलोकन करती रहती है। सट्टेबाजों को यदि ऐसा लगे की सरकार मुद्रा का अवमूल्यन करने वाली है तो वे विदेशी मुद्रा के संग्रहण में लग जाते है। अतः स्थिर विनिमय दर की दशा में भी सट्टेबाजी का अंत नहीं होता।

(iv) दीर्घकालीन पूँजी प्रवाह के लिए आवश्यक नहीं (Not Necessary for Long Term Capital Flow): स्थायी विनिमय दर के पक्ष में दिया जाने वाला यह तर्क भी उचित नहीं है कि इसकी अनुपस्थिति में दीर्घकालीन पूँजी प्रवाह को बाधा पहुँचेगी। निवेशकर्ताओं को यह अनुमान पहले से ही होता है कि दीर्घकाल में विनिमय दर में परिवर्तन अवश्य हो जायेंगे। अतः वे इस संभावना को ध्यान में रखते हुए विदेशों में दीर्घकालीन पूँजी निवेश की योजनाएं बनाते है। अतः केवल स्थायी विनिमय दर का दीर्घकालीन पूँजी निवेश के लिए होना आवश्यक नहीं है।

(v) अंतर्राष्ट्रीय संकट (International Crisis): पिछले कुछ वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली के संकट का मुख्य कारण स्थायी विनिमय दर की व्यवस्था थी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सभी सदस्य देशों ने अपनी करेंसी की विनिमय दर डॉलर के साथ संबंधित की हुई थी। डालर को अपरिवर्तित घोषित करके तथा उसका अवमूल्यन करके अमेरिकन सरकार ने स्थायी विनिमय दर की व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया। इससे अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संकट उत्पन्न हुआ और उसके समाधान के लिए लोचशील मौद्रिक प्रणाली अपनायी गई।

- **(2) लोचशील विनिमय दर** (Flexible Rate of Exchange)

लोचशील विनिमय दर वह प्रणाली है जिसके अंतर्गत किसी देश की करेंसी की विनिमय दर विनिमय बाजार में माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। सरकार द्वारा विनिमय दर को किसी निश्चित स्तर पर बांध कर नहीं रखा जाता। लोचशील विनिमय दर प्रणाली के अंतर्गत विनिमय दर, करेंसी की माँग और पूर्ति के अनुसार स्वयं ही घटती-बढ़ती रहती है।

- **(2.1) लोचशील विनिमय दरों के पक्ष में तर्क** (Arguments in Favour of Flexible Rate of Exchange)

(i) वैश्विक उतार चढ़ाव के ऋणात्मक प्रभाव को कम करना (Reduction in the Negative Impact of Global Fluctuations): लोचशील विनिमय दर के अंतर्गत घरेलू अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था में आ रहे उतार चढ़ावों के कुप्रभावों से बचाया जा सकता है। लोचशील विनिमय दर में माँग व पूर्ति की बाजार शक्तियों में परिवर्तन आने से विभिन्न देशों की विनिमय दर अपने आप समायोजित हो जाती है। इससे वैश्विक अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव के कुप्रभाव से बचा जा सकता है।

(ii) आयातों तथा निर्यातों का नियमन (Regulation of Imports and Exports): देश में आर्थिक परिस्थितियां समय-समय पर बदलती रहती है। कभी देश में उत्पादन, आय, रोजगार, व्यापार आदि का स्तर ऊंचा हो जाता है और कभी नीचा। फलतः देश को अपनी अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए कभी मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation) और कभी अतिमूल्यन (Over-valuation) करना पड़ता है। यह केवल लोचशील विनिमय दर में ही संभव है।

(iii) माँग तथा पूर्ति के सिद्धांत का लागू होना (Application of the Theory of Demand and Supply): अर्थशास्त्र का माँग तथा पूर्ति का नियम सार्वभौमिक (Universal) है। यदि विनिमय दर को स्वतंत्र छोड़ दिया जाये, तो यह नियम विनिमय दर के निर्धारण में भी सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है। व्हिटलेसी (Whittlessey) के अनुसार, **''चूंकि माँग पूर्ति का सिद्धांत एक महत्त्वपूर्ण नियम है जो प्रत्येक क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य करता है, अतः विनिमय दर के निर्धारण में भी विनिमय दर को स्वतंत्र छोड़कर अर्थात् लोचदार विनिमय दर द्वारा इस नियम को कार्य करने देना चाहिए।''**

(iv) भुगतान संतुलन में सुधार (Improvement in the Balance of Payments): क्योंकि विदेशी विनिमय तथा देश की आन्तरिक व्यवस्था भुगतान सन्तुलन से भी काफी सीमा तक प्रभावित होते है और भुगतान सन्तुलन में सन्तुलन लाना विनिमय दर का एक मुख्य कार्य है, अतः इस सन्तुलनकर्ता (विनिमय दर) को स्वचालित या स्वतंत्र रूप से कार्य करने देना अधिक हित में है। भुगतान सन्तुलन में सन्तुलन तभी स्थापित किया जा सकता है जब विदेशी विनिमय में समयानुकूल परिवर्तन होते रहें।

(v) अंतर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि (Increase in International Liquidity): लोचशील विनिमय दर की स्थिति में विभिन्न देशों की सरकारों को सोने या दूसरी बहुमूल्य धातुओं को रिजर्व के रूप में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसके फलस्वरूप तरलता की समस्या का समाधान हो सकेगा। विदेशी विनिमय में सट्टा करने वाले भी आवश्यकतानुसार विदेशी विनिमय की पूर्ति कर सकेंगे।

(vi) मौद्रिक नीति को प्रभावशाली बनाने में सहायक (Helpful in Making Monetary Policy Effective): प्रो० शूमैन (Shomen) के अनुसार, **''विनिमय की लोचशील दर देश की मौद्रिक नीति को अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है।''** उदाहरण के लिए यदि किसी देश की सरकार उत्पादन में वृद्धि करना चाहती है तो वह ब्याज की दर को कम कर देगी। विदेशों में तुलनात्मक अधिक ब्याज दर के कारण पूँजी का प्रवाह दूसरे देशों की ओर होगा। इससे विदेशी मुद्रा की माँग में वृद्धि होगी तथा लोचशील विनिमय दर के कारण घरेलू मुद्रा के मूल्य में कमी आएगी। इससे निर्यातों में वृद्धि होगी तथा आयातों में कमी होगी, इससे अर्थव्यवस्था का भुगतान शेष सकारात्मक हो जाएगा। इसका अर्थव्यवस्था पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। कम ब्याज दरों से घरेलू खर्चों में भी वृद्धि होगी, इससे बाजार माँग बढ़ेगी तथा उत्पादक अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित होंगे। अतः लोचशील विनिमय दर, मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होती है।

● **(2.2) लोचशील विनिमय दर के विपक्ष में तर्क (Arguments against Flexible Rate of Exchange)**

(1) अनिश्चितता उत्पन्न करता है (Causes Uncertainty): लोचशील विनिमय दर अनिश्चितता उत्पन्न करता है। इस अनिश्चितता के कारण निर्यातकर्ताओं तथा आयातकर्ताओं के लिए यह जानना असंभव हो जाता है कि विदेशी करेंसी में उन्हें कितनी कीमत देनी पड़ेगी तथा अपनी करेंसी के लिए कितना मूल्य प्राप्त होगा। इसका विदेशी व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसके कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा विदेशी निवेश कम किया जायेगा क्योंकि इस प्रणाली में जोखिम बढ़ जाता है।

(2) सट्टेबाजी को प्रोत्साहन (Encourages Speculation): लोचशील विनिमय दर की इसलिए भी आलोचना की जाती है क्योंकि इसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय में सट्टेबाजी की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इस सट्टेबाजी के कारण विनिमय दरों में **कृत्रिम परिवर्तन** (Artificial changes) होते हैं। इस सट्टेबाजी का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आर्थिक कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(3) दीर्घकालीन विदेशी निवेश हतोत्साहित होता है (Discourages Long Term Foreign Investment): लोचशील विनिमय दर के फलस्वरूप दीर्घकालीन विदेशी निवेश हतोत्साहित होता है। इसके कारण एक देश से दूसरे देश को पूँजी का हस्तांतरण जोखिमपूर्ण हो जाता है। इसका विभिन्न देशों के बीच पूँजी के हस्तांतरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(4) मुद्रा स्फीति उत्पन्न होती है (Causes Inflation): लोचशील विनिमय दर के फलस्वरूप मुद्रा स्फीति उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी कारण से एक देश की करेंसी का मूल्य **ह्रास** (Depreciation) हो जाता है तो इसके फलस्वरूप आयात की जाने वाली वस्तुओं की कीमतें बढ़ जायेंगी। आयात की जाने वाली कई वस्तुयें घरेलू उद्योगों के लिए आगत (Inputs) अर्थात् कच्चा माल हो सकती है। इसलिए आयात की जाने वाली वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाने के कारण घरेलू उद्योगों के उत्पादन की कीमतें भी बढ़ जायेंगी। इसके फलस्वरूप सामान्य कीमत स्तर बढ़ेगा। सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि होने पर लोगों का रहन सहन महंगा हो जायेगा। मजदूर अपनी मजदूरी में वृद्धि की जाने की माँग करेंगे। इसके कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति बढ़ेगी।

(5) स्थिरता से वंचित (Deprives Stability): लोचशील विनिमय दर की आलोचना इसलिए भी की जाती है क्योंकि इसके कारण विश्व अर्थव्यवस्था एक स्थिर विनिमय के माध्यम, हिसाब-किताब की एक स्थिर इकाई, मूल्य के स्थिर भंडार तथा उधार का भुगतान करने के एक स्थिर प्रमाप (Standard) से वंचित हो जाती है। इसका अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(6) सरकारी हस्तक्षेप (Government Intervention): लोचशील विनिमय दर की दशा में सरकारी हस्तक्षेप से बचा नहीं जा सकता। यह तो संभव है कि सरकार विनिमय दर को संतुलित रखने के लिए किसी प्रकार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं करे। विनिमय दर बाजार की शक्तियों द्वारा ही निर्धारित हो। परंतु यह संभव नहीं है कि सरकार की मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां विनिमय दर को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करें। इन नीतियों का विनिमय दर पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। अतएव यह संभव नहीं है कि विनिमय दर में केवल माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा ही परिवर्तन होता रहे।

हमने ऊपर स्थिर तथा लोचशील विनिमय दरों के पक्ष तथा विपक्ष में दिये जाने वाले तर्कों का अध्ययन किया है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किसी देश को कौन सी प्रणाली अपनानी चाहिये। **सोडरस्टन** के शब्दों में, **"इस प्रश्न का उत्तर परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यह निर्णय अर्थव्यवस्था की प्रकृति पर निर्भर करेगा तथा अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होने पर इसमें भी परिवर्तन होता है। इसमें नैतिक निर्णय** (Value Judgement) **भी शामिल होता है। अंत में, इस प्रश्न का उत्तर राजनीतिक मूल्यों तथा राजनीतिज्ञों के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।"**

दुर्लभ करेंसी तथा सुलभ करेंसी (Hard Currency and Soft Currency)

दुर्लभ करेंसी उस करेंसी को कहते हैं जिसे विश्वभर में वस्तुओं तथा सेवाओं के भुगतान के रूप में स्वीकार किया जाता है, इसका संचित मूल्य (Store of value) स्थिर रहता है और यह बहुत विश्वसनीय होती है। किसी करेंसी को दुर्लभ बनाने के कई कारण होते हैं, जैसे राजनैतिक स्थिरता, निम्न मुद्रा स्फीति, स्थिर (Consistent) मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां, इसके समर्थन हेतु मूल्यवान धातुओं का रिजर्व में पड़ा होना। अन्य करेंसियों की तुलना में इसका मूल्य लम्बे समय तक स्थिर रहता है या फिर उसमें वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है। कुछ विकसित देशों की कागजी करेंसियों को दुर्लभ करेंसियों की मान्यता प्राप्त होती रही है। इनमें अमरीकी डॉलर, यूरो (Euro), फ्रैंक (Franc), ब्रिटिश पाउन्ड स्टर्लिंग, आदि शामिल हैं। इसके विपरीत, सुलभ करेंसी उस करेंसी को कहते हैं जिसका अन्य करेंसियों की तुलना में मूल्यह्रास अधिक होता है।

■ 4. संतुलन विनिमय दर का निर्धारण (Determination of Equilibrium Rate of Exchange)

I. स्थिर विनिमय दर का निर्धारण (Determination of Fixed Rate of Exchange)

इसका निर्धारण सरकार करती है क्योंकि वही इसमें परिवर्तन करने के योग्य होती है। सन् 1930 से पूर्व जब विश्व के कई देशों में स्वर्ण मुद्रा मान प्रचलित था तब विनिमय दर उस देश की मानक मुद्रा (Standard Money) की एक इकाई में निहित सोने की मात्रा (Quantity of gold contained in one unit of standard money) पर निर्भर करती थी, जैसे- यदि अमरीका की सरकार एक डॉलर की कीमत 1 ग्राम सोने के बराबर निश्चित करती है और इंग्लैंड की सरकार एक पौंड की कीमत 4 ग्राम सोने के बराबर निश्चित करती है, तो पौंड की विनिमय दर 4 डॉलर तथा डॉलर की विनिमय दर 1/4 पौंड होगी। सन् 1945 के पश्चात् विश्व के अधिकांश देश अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund - IMF) के सदस्य बन गए। सभी सदस्यों ने अपनी अपनी करेंसियों की कीमत सोने के रूप में घोषित कर दी, भले ही वे करेंसियाँ सोने में परिवर्तनीय थी या नहीं थी। इस प्रकार विनिमय दर सरकारों द्वारा घोषित अपनी-अपनी करेंसी की प्रति इकाई सोने की कीमत पर आश्रित थी। यदि किसी देश की सरकार अपनी करेंसी को सोने की मात्रा में परिवर्तित करती थी तो उसके अनुरूप विनिमय की दर में भी परिवर्तन होता था। अतः स्थिर विनिमय दर का निर्धारण सरकार द्वारा घोषित सोने के रूप में करेंसी की कीमत पर निर्भर करता था। देश के भुगतान शेष की स्थिति को ध्यान में रखते हुए सरकार अपनी करेंसी की सोने के रूप में कीमत निर्धारित करती थी। आवश्यकता अनुसार इसे बढ़ाया या घटाया जा सकता था। सन् 1973 से IMF के सभी सदस्य देशों ने स्थिर विनिमय दर त्याग कर लचीली विनिमय दर प्रणाली अपनायी है।

II. लचीली विनिमय दर का निर्धारण (Determination of Flexible Rate of Exchange)

लचीली विनिमय दर का निर्धारण सरकार द्वारा नहीं किया जाता। इसका निर्धारण विदेशी विनिमय बाजार में विभिन्न करेंसियों की माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। अन्य शब्दों में, अन्य उत्पादों की कीमत की तरह इसका निर्धारण बाजार की शक्तियों द्वारा होता है। उस बाजार को विदेशी विनिमय बाजार कहते हैं जहाँ विदेशी करेंसियों की माँग तथा पूर्ति की जाती है। वह विनिमय दर जिस पर विदेशी करेंसी की माँग तथा उसकी पूर्ति बराबर होते हैं, विनिमय की समता दर कहलाती है। इसे सामान्य दर (Normal Rate) या संतुलन दर (Equilibrium Rate) भी कहते हैं। **लिप्सी** तथा **क्रिस्टल** के अनुसार, **"विदेशी विनिमय बाजार अन्य प्रतियोगी बाजारों की तरह होता है जिसमें माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ संतुलन कीमत को स्थापित करती हैं जिस पर माँग की मात्रा पूर्ति की मात्रा के बराबर होती है।"** (A foreign exchange market is like other competitive markets in which the forces of demand and supply lead to equilibrium price at which quantity demanded is equal to quantity supplied. – **Lipsey** and **Chrystal**)

● **विदेशी विनिमय की माँग (Demand for Foreign Exchange)**

विदेशी विनिमय की माँग कई उद्देश्यों के लिए की जाती है जैसे वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात का भुगतान करने के लिए, ऋणों का भुगतान करने के लिए, तथा विदेशों में निवेश करने के लिए, इत्यादि। विदेशी करेंसी की माँग तथा विनिमय दर में विपरीत संबंध होता है। यदि विनिमय दर कम होगी तो विदेशी करेंसी की माँग अधिक होगी। इसके विपरीत यदि विनिमय दर ऊँची होगी तो विदेशी विनिमय की माँग कम होगी। स्पष्टतः जब विनिमय दर ऊँची होती है तब वस्तुओं तथा सेवाओं का आयात कम किया जाता है। कम आयातों का अर्थ कम विदेशी विनिमय की माँग है। इसके विपरीत जब विनिमय दर निम्न (Low) होती है तब वस्तुओं तथा सेवाओं का अधिक

आयात किया जाता है। अधिक आयात का अर्थ विदेशी विनिमय की अधिक माँग है। अत: विदेशी विनिमय के माँग वक्र की ढलान बाएँ से दाएँ नीचे को होती है। अर्थात् ऋणात्मक होती है जो यह बताती है कि विनिमय की ऊँची दर पर विदेशी विनिमय की माँग कम होती है तथा निम्न दर पर उसकी माँग अधिक होती है।

- **विदेशी विनिमय की पूर्ति (Supply of Foreign Exchange)**

विदेशी विनिमय की पूर्ति भी कई तत्वों पर निर्भर करती है, जैसे-विदेशों को किए जाने वाले निर्यात, विदेशों से प्राप्त ऋण तथा विदेशी निवेश, आदि। साधारणत: विदेशी विनिमय की पूर्ति तथा विनिमय दर में सीधा सबंध होता है। विनिमय दर के बढ़ने से विदेशी विनिमय की पूर्ति बढ़ती तथा विनिमय दर के घटने से विदेशी विनिमय की पूर्ति घटती है। अत: पूर्ति वक्र का ढलान धनात्मक (Positive) अर्थात बाएँ से दाएँ ऊपर को उठने वाला होता है।

- **संतुलन विनिमय दर (Equilibrium Rate of Exchange)**

विनिमय की सतुलन दर उस बिंदु पर निर्धारित होती है जहाँ उसकी माँग तथा पूर्ति बराबर होते है। घरेलू करेंसी की विदेशी विनिमय बाजार में माँग तथा पूर्ति के सदर्भ में भी इसका अध्ययन किया जाता है। चित्र 1 में सतुलन विनिमय दर को दिखाया गया है इस रेखाचित्र में विदेशी विनिमय की माँग तथा पूर्ति को OX-अक्ष तथा विनिमय दर को OY-अक्ष द्वारा दिखाया गया है। DD विदेशी विनिमय का माँग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र है। दोनों वक्र एक-दूसरे को बिंदु E पर काटते है तथा OR सतुलन विनिमय दर है। इस दर पर विदेशी विनिमय की माँग तथा पूर्ति OQ के बराबर है। OR के अतिरिक्त किसी अन्य विनिमय दर पर विनिमय बाजार में असतुलन की स्थिति पाई जाएगी। यदि विनिमय दर बढ़कर OR_1 हो जाती है तब विदेशी विनिमय की पूर्ति उसकी माँग से अधिक हो जाएगी। OR_1 विनिमय दर पर कुल पूर्ति R_1B है जो कि कुल माँग R_1A से अधिक है। पूर्ति की इस अधिकता को AB द्वारा दिखाया गया है। इस अधिक पूर्ति के कारण विनिमय दर घट कर OR हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि विनिमय दर घट कर OR_2 हो जाती है तो कुल माँग कुल पूर्ति से अधिक हो जाएगी। विनिमय दर OR_2 पर कुल माँग R_2D कुल पूर्ति R_2C से अधिक है। CD अतिरिक्त माँग (Excess Demand) को प्रकट करता है। इसके कारण विनिमय दर बढ़कर OR हो जाएगी। सक्षेप में, OR सतुलन विनिमय दर है जब कि OR_1 तथा OR_2 बाजार विनिमय दरें हैं। इन बाजार दरों की प्रवृत्ति लौट कर सतुलन विनिमय दर बन जाने की होती है।

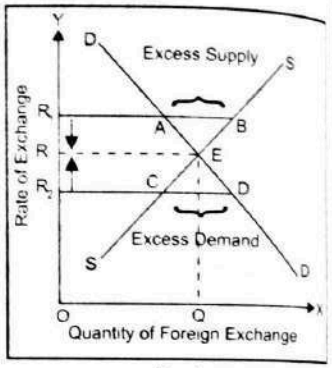

चित्र 1

■ 5. विनिमय-दरों को प्रभावित करने वाले तत्त्व/विनिमय दर में अत्यधिक उतार-चढ़ाव के कारण (Factors Influencing Rate of Exchange/Reasons for Volatility in Exchange Rate)

विनिमय दर के विभिन्न सिद्धातो से केवल यह ज्ञात होता है कि दीर्घकाल में विनिमय दर कैसे निर्धारित होती है। इनसे यह ज्ञात नही होता कि अल्पकाल में विनिमय दर मे क्यों परिवर्तन आते रहते है। इसका कारण यह है कि अल्पकालीन विनिमय दर पर कई तत्वों का प्रभाव पड़ता है। ये तत्त्व इस प्रकार है:

(1) केंद्रीय बैंक की भूमिका (Central Bank Intervention): देश का केंद्रीय बैंक भी विनिमय बाजार में विदेशी मुद्रा का क्रय विक्रय करता है। इसका उद्देश्य लाभ अर्जित करना नहीं, अपितु घरेलू करेंसी के विनिमय मूल्य को लक्षित स्तर पर बनाए रखना होता है। केंद्रीय बैंक के क्रय-विक्रय व्यवहारों से विदेशी मुद्रा की माँग व पूर्ति प्रभावित होती है। इससे विनिमय दर प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, जब केंद्रीय बैंक को लगता है कि घरेलू करेंसी का मूल्य अधिक बढ़ने से देश के निर्यातों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, तो रिजर्व बैंक विदेशी मुद्रा को खरीद लेता है जिससे घरेलू अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा की पूर्ति कम हो जाए, ताकि विनिमय दर में ऐच्छिक परिवर्तन हो सके।

(2) कॉमर्शियल बैंकिंग क्रियाएँ (Commercial Banking Operations): **बैंकिंग क्रियाओं का विनिमय दर पर काफी प्रभाव पड़ता है। जब स्वदेश के बैंक विदेशी साख-पत्रों में रुपया लगाते हैं तो देश की पूँजी का विदेशों को स्थानान्तरण होता है और जब बैंक विदेशी साख-पत्रों का विक्रय करते हैं तब विदेशी पूँजी देश में आती है। यदि साख पत्रों के क्रय-विक्रय का शुद्ध प्रभाव** (Net Effect) देश में विदेशों से अधिक पूँजी आना है तो देशी मुद्रा की अधिक माँग होने के कारण इसका मूल्य विदेशी मुद्रा में बढ़ जाता है और विनिमय दर अनुकूल हो जाती है। इससे विपरीत स्थिति में विनिमय दर प्रतिकूल हो जाती है।

(3) ब्याज दर (Interest Rate): जब अन्य देशों की तुलना में किसी एक देश में ब्याज दर ऊँची हो जाए तब विदेशियों के लिए उस देश में निवेश करना लाभदायक हो जाता है, जिससे देश में विदेशी की पूँजी आने लगती है। इससे स्वदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जाती है और फलस्वरूप विनिमय दर अनुकूल हो जाती है। इसके विपरीत, ब्याज दर गिरने पर विनिमय दर प्रतिकूल हो जाती है।

(4) आर्थिक दशाएं (Economic Conditions): देश की आर्थिक दशाएं भी विनिमय दर को कई प्रकार से प्रभावित करती है, जैसे– (a) **संरक्षण नीति**: सरकार विदेशी प्रतियोगिता से उद्योगों को सरक्षण देकर आयात को कम और निर्यात में वृद्धि करती है, जिससे भुगतान सतुलन देश के अनुकूल होकर विनिमय दर को देश के पक्ष में कर देता है। (b) **युद्ध व शान्ति**: देश में शान्ति होने पर और स्थाई, निष्पक्ष एव कुशल सरकार होने पर विदेशियों का विश्वास जमता है और वे अपनी पूँजी देशी उद्योगों के विकास मे लगाते है जिससे विनिमय दर पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। (c) **राजकोषीय नीति**: यदि सरकार अपने बजट में घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing) अपनाती है तो विनिमय दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। घाटे की वित्त व्यवस्था मे, सरकार बजट के घाटे को पूरा करने के लिए अधिक करेंसी जारी करती है। घरेलू मुद्रा की पूर्ति बढ़ने से, घरेलू मुद्रा की क्रय-शक्ति कम हो जाती है, जिससे विनिमय दर पर कुप्रभाव पड़ता है। (d) **विनिमय नियन्त्रण**: सरकार का केंद्रीय बैंक विनिमय नियन्त्रण के विभिन्न तकनीक अपना कर विनिमय दर को प्रभावित करता रहता है। (e) **आर्थिक विकास की दर**: (Rate of Economic Growth): राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत व निवेश की ऊँची दर, आदि आर्थिक विकास के ऊँचे स्तर के सूचक है। आर्थिक विकास की ऊँची दर विदेशी निवेशकों को आकर्षित करती है, जिससे घरेलू करेंसी की माँग बढती है। इसके फलस्वरूप घरेलू मुद्रा का विनिमय मूल्य बढ़ जाता है।

(5) मौद्रिक दशाएँ (Monetary Conditions): मुद्रा सबधी निम्न दशाएं भी विनिमय दर को प्रभावित करती है: (a) **मुद्रा स्फीति** (Inflation): जब किसी देश में मुद्रा स्फीति या कीमत वृद्धि की दशा खराब हो जाए या इसकी सभावना हो, तब आयातों में वृद्धि होने लगती है क्योंकि आयातित उत्पाद घरेलू उत्पादो की तुलना मे सस्ते होते है। मुद्रा स्फीति से निर्यातों में कमी आती है तथा व्यापार की शर्तें प्रतिकूल हो जाती है। (b) **मुद्रा विस्फीति** (Deflation): जब देश में विस्फीति की स्थिति नजर आए अथवा लोग यह आशा करने लग जाये कि स्वदेशी मुद्रा के लिए विशाल माँग उत्पन्न हो जाएगी, तो इसके फलस्वरूप विनिमय दर देश के पक्ष मे परिवर्तित होने लगेगी। (c) **मुद्रामान के प्रकार** (Kind of Monetary Standard): यदि देश में स्वर्णमान है, तो विनिमय दर मे परिवर्तन सीमित होंगे और यदि अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा मान है तो इससे देश की विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव की कोई सीमा नही होगी।

(6) स्टॉक एक्सचेंज संबंधी तत्त्व (Factors Related to Stock Exchange): विनिमय दर पर प्रभाव डालने वाली स्टॉक एक्सचेंज संबधी दशाओ के अंतर्गत ऋण सबधी व्यवहार तथा विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय सम्मिलित किया जाता है। (a) **ऋण संबंधी लेन-देन**: ऋण सबधी लेन-देन भुगतान सतुलन को प्रभावित करके विनिमय दर में परिवर्तन लाते हैं। जब देशवासी विदेशों से ऋण लेते है अथवा अपने दिये हुए ऋणों पर उनसे ब्याज प्राप्त करते है तो स्वदेश में विदेशी मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाएगी और ऐसा होने पर विनिमय दर हमारे पक्ष में हो जाएगा। इसके विपरीत होने पर विनिमय दर विपक्ष में हो जायेगा। (b) **प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय**: जब स्वदेशी निवेशकर्ता विदेशों में स्टॉक, शेयर और प्रतिभूतियाँ आदि खरीदते है तो इनके लिए विदेशी मुद्रा में भुगतान करना पड़ता है, जिससे स्वदेश में विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जाती है और विनिमय दर देश के विपक्ष मे हो जाती है। इसके विपरीत, जब विदेशी निवेशकर्ता हमारे देश में स्टॉक आदि खरीदते है तो उन्हें इनका भुगतान हमारी मुद्रा में करना पड़ता है। फलस्वरूप, स्वदेश में विदेशी मुद्रा की पूर्ति बढ़ जायेगी और इस प्रकार विनिमय दर हमारे पक्ष में हो जायेगी।

(7) राजनीतिक दशाएँ (Political Conditions): जब देश की राजनीतिक दशा मजबूत होती है, वहाँ सुदृढ़ एवं स्थायी सरकार का शासन होता है और श्रमिकों और उद्योगपतियों के सबंध ठीक होते हैं, तब देश में पूँजी लगाने हेतु देशी एवं विदेशी सभी निवेशकर्ताओं को बड़ी प्रेरणा मिलती है। फलस्वरूप, घरेलू मुद्रा की माँग बढ़ जाने के कारण विनिमय दर अनुकूल हो जाती है। इसके विपरीत, देश में राजनीतिक दशा खराब होने पर विनिमय दर प्रतिकूल हो जाती है। देश में राजनीतिक अस्थिरता होने पर अनिश्चितता का वातावरण बना रहता है, इससे घरेलू करेंसी के मूल्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

(8) व्यापारिक प्रवाह (Trade Movements): किसी देश के आयात तथा निर्यात की मात्रा तथा मूल्य में होने वाले परिवर्तन का विदेशी विनिमय दर पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। यदि आयात, निर्यातों से बढ़ जाते हैं तो विदेशी करेंसी की माँग बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप विनिमय दर प्रतिकूल हो जाती है। इसके विपरीत यदि निर्यात, आयातों से अधिक होते हैं तो घरेलू करेंसी की माँग बढ़ जायेगी। इसके फलस्वरूप विनिमय दर हमारे पक्ष में हो जायेगी।

(9) पूँजी प्रवाह (Capital Flow): एक देश से दूसरे देश में होने वाले पूँजी के प्रवाह का भी विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि एक देश जैसे अमेरिका से भारत की ओर पूँजी का प्रवाह बढ़ जाये तो विनिमय बाजार में भारतीय रुपये की माँग बढ़ जायेगी। लोग भारत में पूँजी भेजने के लिए रुपये की अधिक माँग करेंगे। इसके फलस्वरूप रुपयों की डालरों के रूप में विनिमय दर बढ़ जायेगी अर्थात् विनिमय दर हमारे पक्ष में हो जाएगी।

(10) सट्टा (Speculation): यदि सटोरिये यह समझते हैं कि भविष्य में रुपये की विनिमय दर बढ़ जायेगी तो रुपये की अधिक माँग करेंगे। इसके फलस्वरूप रुपये की विनिमय दर अनुकूल हो जाएगी।

■ 6. विनिमय दर के सिद्धांत (Theories of Rate of Exchange)

विभिन्न मुद्रा मान में विनिमय दर के निर्धारण के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

(1) टकसाली समता सिद्धांत (Mint Par Theory)

(2) क्रयशक्ति समता सिद्धांत (Purchasing Power Parity Theory)

(3) भुगतान संतुलन सिद्धांत (Balance of Payments Theory)

■ 6.1 टकसाली समता सिद्धांत या स्वर्ण मान में विनिमय दर का निर्धारण

(Mint Par Theory or Determination of Rate of Exchange in Gold Standard)

यह सिद्धांत उन देशों के विनिमय दर के निर्धारण की व्याख्या करता है जिनमें धातुमान अर्थात् स्वर्णमान या चांदीमान प्रचलित है। इस सिद्धांत के अनुसार जब दो देशों की करेंसी धातुमान पर आधारित होती है तो उन करेंसियों की विनिमय दर उनमें निहित मुद्रा की मात्रा के आधार पर निर्धारित की जाती है। हम **स्वर्णमान** के संबंध में इस सिद्धांत की व्याख्या करेंगे। एक देश के मुद्रामान को उस समय **स्वर्णमान** कहा जायेगा जब (i) देश का मौद्रिक अधिकारी सोने की निश्चित कीमत पर असीमित मात्रा में सोना खरीदने तथा बेचने को तैयार होता है। (ii) मुद्रा की इकाई का मूल्य सोने के क्रय मूल्य के बराबर निर्धारित होता है। (iii) **मुद्रा का बाहरी मूल्य** (External Value) सोने के निश्चित वजन के रूप में व्यक्त किया जाता है। (iv) स्वर्ण के आयात और निर्यात की स्वतंत्रता होती है।

● (i) विनिमय दर का निर्धारण (Determination of Rate of Exchange)

जब दो देशों में स्वर्णमान या चांदीमान होती है तो विनिमय दर का निर्धारण बहुत सरल है। इन देशों की विनिमय दर उनकी मुद्रा में निहित सोने या चांदी के भार या उनकी मुद्रा के स्वर्ण मूल्य के आधार पर निर्धारित की जाती है। मुद्रा की इकाई में स्वर्ण के भार की समानता के आधार पर निर्धारित होने वाली विदेशी विनिमय दर को **विनिमय की 'टकसाली समता दर'** (Mint Par Parity) या विनिमय की स्वर्ण समता दर कहा जाता है (By mint parity is meant that the exchange ratio is determined on a weight to weight basis of the two currencies)। इस सिद्धांत के अनुसार यदि दोनों देशों में स्वर्ण के सिक्के प्रचलन में हैं तो इन सिक्कों में निहित शुद्ध स्वर्ण की मात्राओं के आधार पर विनिमय दर निर्धारित होगी। इसे निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा

सकता है। मान लीजिए इंग्लैंड की मुद्रा अर्थात् एक पौंड में पांच ग्रेन सोना है तथा अमेरिका की मुद्रा अर्थात् एक डॉलर में एक ग्रेन सोना है। इन मुद्राओं की विनिमय दर इनमें निहित सोने की मात्रा द्वारा निर्धारित होगी अर्थात्

1 पौंड = 5 ग्रेन सोना; 1 डॉलर = 1 ग्रेन सोना

अतएव 1 पौंड = 5 डॉलर, या 1 डॉलर = 1/5 पौंड

यदि चलन में स्वर्ण मुद्रा नहीं है तो दोनों देशों में प्रचलित मुद्राओं का स्वर्ण मूल्य जो उन देशों की सरकारें निर्धारित करती हैं, विनिमय दर को निर्धारण के लिए प्रयोग किया जायेगा। अर्थात् विनिमय दर टकसाली समता द्वारा निर्धारित होगी। **प्रो० थामस** के शब्दों में, **"टकसाली समता वह अनुपात है जो एक ही धातुमान पर आधारित देशों की प्रमापित मुद्राओं के वैधानिक धातु साम्य से प्रकट की जाती है।"** (The mint par is an expression of the ratio between the statutory bullion equivalents of the standard monetary units of two countries on the same metallic standard. **–S.E. Thomas**)। जैसे प्रथम विश्वयुद्ध से पहले ब्रिटेन में एक पौण्ड में विशुद्ध स्वर्ण की मात्रा 113.0016 ग्रेन थी और अमेरिका के एक डॉलर में 23.2200 ग्रेन थी। इसी अनुपात के आधार पर विनिमय की समता दर का अनुमान निम्नलिखित सूत्र की सहायता से लगाया जाता है।

$$\text{Mint Parity या Exchange Rate of Currency A} = \frac{\text{Gold Contents Per Unit of Currency A}}{\text{Gold Contents Per Unit of Currency B}}$$

$$1 \text{ पौण्ड} = \frac{\text{प्रति पौण्ड } 113.0016 \text{ ग्रेन सोना}}{\text{प्रति डॉलर } 23.2200 \text{ ग्रेन सोना}} = 4.866 \text{ डॉलर}$$

अत: एक पौंड की विनिमय दर 4.866 डॉलर निर्धारित होगी। इस विनिमय दर को **टकसाली विनिमय दर** कहते हैं।

स्वर्णमान में विदेशी विनिमय का भुगतान बहुत आसान होता है। इसमें भुगतान की निम्न दो विधियां होती हैं

(1) **पहली विधि**: आयातकर्ता (Importers) या अन्य लोग जिन्हें भुगतान के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है, वे विनिमय बाजार से विदेशी मुद्रा खरीद लेते हैं तथा उसका भुगतान निर्यातकर्ता को कर देते हैं।

(2) **दूसरी विधि** में विदेशी भुगतान के लिए स्वर्ण का निर्यात किया जा सकता है। देनदार स्वर्ण को बाजार में खरीद कर या सरकार से प्राप्त करके उसे लेनदार को भेज सकता है। यह विधि थोड़ी खर्चीली है क्योंकि स्वर्ण के भेजने पर पैकिंग, यातायात, बीमा आदि पर धन खर्च करना पड़ेगा। इसलिए आयातकर्ता स्वर्ण का निर्यात करना तभी पसन्द करेगा जब विनिमय बाजार में विनिमय दर **टंक समता दर** (Mint Parity Rate of Exchange) तथा स्वर्ण के यातायात आदि पर किये जाने वाले व्यय से अधिक होती है। उदाहरण के लिए यदि 1 पौंड के मूल्य के सोने को इंग्लैंड से अमेरिका भेजने पर किये जाने वाले व्यय से अधिक होती है। उदाहरण के लिए यदि 1 पौंड के मूल्य के सोने को इंग्लैंड से अमेरिका भेजने पर 0.02 सैण्ट का व्यय होता है और टंक समता दर 1 पौण्ड = 4.866 डॉलर है तो यदि बाजार में विनिमय दर 4.866 + 0.02 = 4.886 डॉलर से अधिक होगी तभी स्वर्ण इंग्लैंड से अमेरिका को निर्यात किया जायेगा। इसके विपरीत यदि विनिमय दर 4.886 डॉलर प्रति पौंड के बराबर होगी या उससे कम होगी तो इंग्लैंड का आयातकर्ता स्वर्ण को निर्यात करने की अपेक्षा विनिमय बाजार से डॉलर खरीद कर निर्यातकर्ता को भुगतान करना पसंद करेगा।

● (ii) विनिमय दर में परिवर्तन तथा स्वर्ण बिंदु

(Fluctuations in the Rate of Exchange and Gold Points)

दीर्घकाल में विनिमय दर की प्रवृत्ति टंक समता या **टकसाली समता** (Mint Par) के बराबर होने की होती है। टंक समता के बराबर विनिमय दर तभी रह सकती है जब विदेशी मुद्रा की माँग तथा पूर्ति बराबर रहे। माँग और पूर्ति की सापेक्ष शक्तियों में परिवर्तन होते रहते हैं और इन परिवर्तनों के अनुसार विनिमय दरों में भी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। परंतु ये उतार-चढ़ाव असीमित नहीं होते। बाजार में विनिमय दर एक सीमा तक कम या अधिक हो सकती है। इस सीमा को **स्वर्ण बिंदु** कहा जाता है। **स्वर्ण बिंदु उन अधिकतम या न्यूनतम सीमाओं को निर्धारित करते हैं जिनके बीच टकसाली समता दर में परिवर्तन होता है। ये दो प्रकार के होते हैं (1) ऊपर वाला स्वर्ण बिंदु और (2) नीचे वाला स्वर्ण बिंदु**। विनिमय दर, दो देशों, में इन दोनों स्वर्ण बिंदुओं के बीच रहती है। जब दो देश स्वर्णमान पर

होता है और इनके बीच स्वर्ण के आयात और निर्यात पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता, तब विनिमय की दर में परिवर्तन की सीमाएं स्वर्ण के भेजने के व्यय (पैकिंग, कार्टेज, जहाज का व्यय, बीमा व्यय, आदि) से निर्धारित होती है। यदि स्वर्ण को भेजने पर होने वाले व्यय को टंक समता में जोड़ दिया जाये तो **ऊपर वाला स्वर्ण बिंदु** निश्चित किया जा सकता है। इसी प्रकार जब टंक समता में से, सोने को भेजने पर होने वाले व्यय को घटा दिया जाए तो **नीचे वाला स्वर्ण बिंदु** निश्चित किया जा सकता है। अब मान लो एक पौण्ड के मूल्य के सोने को इंग्लैण्ड से अमेरिका भेजने पर 0.02 सेण्ट का व्यय होता है और टंक समता दर 1 पौण्ड = 4.866 डॉलर है।

ऊपर वाला स्वर्ण बिंदु (Upper Gold Point)

= टंक समता दर + स्वर्ण निर्यात मूल्य या 1 पौण्ड = 4.866 + 0.02 = 4.886 डॉलर

नीचे वाला स्वर्ण बिंदु (Lower Gold Point)

= टंक समता दर – स्वर्ण का निर्यात मूल्य या 1 पौण्ड = 4.866 – 0.02 = 4.846 डॉलर

किसी देश की मुद्रा की विनिमय दर ऊपर वाले स्वर्ण बिदु के बराबर होगी अथवा नीचे वाले स्वर्ण बिदु के बराबर होगी, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उस देश का भुगतान सतुलन प्रतिकूल है या अनुकूल है। मान लीजिए कि अमेरिका और इंग्लैण्ड के बीच भुगतान सतुलन अमेरिका के प्रतिकूल हो जाता है। इसके फलस्वरूप अमेरिका में पौण्ड की माँग बढ़ जाएगी तथा डॉलरों के रूप में पौण्ड का मूल्य भी बढ़ जाएगा, अर्थात् अब एक पौण्ड का मूल्य 4.866 डॉलर न रहकर 4.886 डॉलर हो जाएगा। अब यदि पौण्ड का मूल्य बाजार में 4.886 डॉलर से अधिक माँगा जाता है तो अमेरिका का व्यापारी इंग्लैण्ड के व्यापारी को स्वर्ण के निर्यात द्वारा भुगतान करेगा। इससे स्पष्ट है कि अमेरिका से सोने का निर्यात तब आरम्भ होगा जब इग्लैण्ड में एक पौड का भुगतान करने के लिए अमेरिकन व्यापारी को 4.886 डॉलर से अधिक रकम देनी पड़ती है। दूसरे शब्दों में, 1 पौण्ड = 4.886 डॉलर की सीमा वह सीमा है जिससे अधिक वास्तविक विनिमय **दर होने पर सोना अमेरिका से इंग्लैण्ड को जाने लगेगा। अत: अमेरिका की दृष्टि से इस सीमा (या विंदु) को स्वर्ण निर्यात बिंदु या ऊपर वाला स्वर्ण विंदु** (Gold Export Point or Upper Gold Point) **और इंग्लैण्ड की दृष्टि से स्वर्ण आयात बिंदु या नीचे वाला स्वर्ण विंदु** (Gold Import Point or Lower Gold Point) **कहा जायेगा। इस प्रकार किसी समय विनिमय की उच्चतम सीमा = टंक-समता दर + स्वर्ण परिवहन व्यय** (Cost of Transporting Gold) **होती है। इससे अधिक विनिमय दर होने पर सोना एक देश से दूसरे देश को जाने लगता है।**

इसके विपरीत जब इग्लैण्ड का भुगतान सतुलन प्रतिकूल हो जाता है तब इंग्लैण्ड के आयातकर्ता को आयात किये गये माल का भुगतान करने के लिए डॉलरों की आवश्यकता पड़ेगी। इससे इंग्लैण्ड में डॉलर की माँग बढ़ जाएगी और इसके साथ ही, इसकी पूर्ति उतनी न होने के कारण, डॉलर के विदेशी मूल्य में भी वृद्धि हो जाएगी। अन्य शब्दों में, इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच विनिमय-दर घटकर (1 पौड = 4.866 – (4.866 – 0.02) डॉलर हो जायेगी। परंतु यह विनिमय दर 1 पौंड = 4.846 डॉलर से कम नहीं गिरेगी क्योंकि 1 पौंड = 4.846 डॉलर नीचे वाला बिदु (Lower Point) है। यदि विनिमय दर इस 1 पौंड = 4.846 डॉलरों से नीचे गिर जाती है तब इग्लैण्ड के आयातकर्ता अपने आयातों का भुगतान डॉलरों में करने की बजाए सोने के रूप में करना ही पसन्द करेंगे। क्योंकि ऐसा करने से उनकी लागत कम बैठती है और लाभ अधिक होता है। अब इग्लैण्ड के आयातकर्ता द्वारा अपने आयातों का भुगतान सोने के रूप में करने से डॉलरों की माँग कम हो जाएगी। फलस्वरूप डॉलरों का पौंडों के रूप में विदेशी मूल्य कम हो जाएगा और इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के बीच विनिमय दर ऊपर उठ जाएगी। इसका अभिप्राय यह है कि 1 पौंड = 4.846 डॉलर वह सीमा है जिससे कम विनिमय दर हो जाने पर सोना इग्लैण्ड से अमेरिका को जाने लगता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि इंग्लैण्ड और अमेरिका की विनिमय दर 1 पौड = 4.886 डॉलर से अधिक नहीं हो सकती और 1 पौंड = 4.846 डॉलर से कम नहीं हो सकती। अन्य शब्दों में, विनिमय दर इन दोनों स्वर्ण बिंदुओं के बीच में रहेगी। यदि **किसी समय विनिमय दर इन सीमाओं का उल्लंघन करती है तब स्वर्ण के आयात और निर्यात द्वारा यह असंतुलन की स्थिति स्वयं ही दूर हो जायेगी। परंतु कई बार असाधारण समय में जब सोने का आयात-निर्यात नहीं हो पाता, तब विनिमय दर इन दोनों सीमाओं का उल्लंघन कर सकती है।** एक बात यह भी ध्यान में रखने की है कि स्वर्ण बिंदु स्थिर न होकर परिवर्तनशील भी होते हैं क्योंकि सोने को भेजने के व्यय या बीमा व्यय आदि में हमेशा प्रतियोगिता के कारण परिवर्तन होते रहते है। चित्र 2 में स्वर्ण बिंदुओं एवं विनिमय दर में होने वाले परिवर्तनों की सीमाओं को प्रकट किया गया है।

चित्र 2

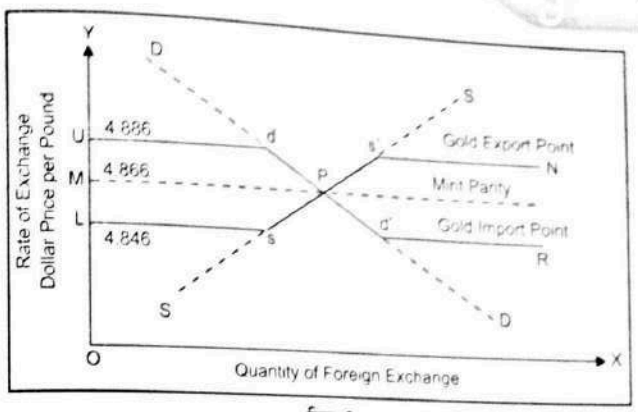

चित्र 2 में OX अक्ष पर विदेशी विनिमय की माँग तथा पूर्ति को प्रकट किया गया है तथा OY अक्ष पर डॉलर के रूप में पौड की विनिमय दर को प्रकट किया गया है। DD विदेशी विनिमय की माँग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र है। MP रेखा टंक समता (Mint Parity) को प्रकट करती है। इससे प्रकट होता है कि माँग तथा पूर्ति वक्र बिदु P पर एक-दूसरे को काट रहे है अतएव बिदु P सतुलन बिदु है। इस बिदु P पर OM (4.866 डॉलर प्रति पौड) संतुलन विनिमय दर निर्धारित होगी। OU (4.886 डॉलर) उच्चतम स्वर्णांक बिदु या स्वर्ण निर्यात बिंदु है तथा OL (4.846 डॉलर) न्यूनतम स्वर्णांक बिदु या स्वर्ण आयात बिदु है। वास्तविक विनिमय दर OU तथा OL के मध्य कहीं भी निर्धारित हो सकती है। विनिमय दर Ud से अधिक नहीं होगी तथा Ls से कम नहीं होगी। इसलिए d के ऊपर की माँग वक्र तथा d' से नीचे की माँग वक्र का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अतएव् वास्तविक माँग वक्र Udd'R होगी तथा इसी प्रकार पूर्ति वक्र Lss'N होगी क्योंकि s से नीचे की पूर्ति वक्र तथा s' से ऊपर के पूर्ति वक्र का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है।

यदि भुगतान सतुलन इग्लैण्ड के **अनुकूल** है तो 1 पौड की विनिमय दर 4.886 डॉलर तक निर्धारित हो सकती है, इससे अधिक नहीं क्योंकि इसके बाद माँग वक्र नीचे की ओर मुड गई है तथा पूर्ति वक्र इसके बाद ऊपर उठने की बजाए OX अक्ष के समानान्तर हो गई है। इसके विपरीत यदि भुगतान सतुलन इग्लैण्ड के **प्रतिकूल** है तो विनिमय दर 4.846 डॉलर से कम निर्धारित नहीं हो सकती क्योंकि इसके बाद पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठ गई है तथा माँग वक्र नीचे गिरने की बजाए OX वक्र के समानान्तर हो गई है।

■ 6.2 विनिमय दर निर्धारण का क्रय शक्ति समता सिद्धांत

(Purchasing Power Parity Theory of Exchange Rate Determination)

अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा मान (Inconvertible Paper Currency) के अतर्गत विनिमय दर का निर्धारण **क्रय शक्ति समता** सिद्धात के अनुसार होता है। इस सिद्धात के अनुसार ऐसे देशों में विनिमय दर का निर्धारण इन की करेंसियों की परस्पर क्रय शक्तियों के अनुपात द्वारा (Ratio of the purchasing power of their respective currencies) होता है। कुछ अर्थशास्त्रियों के विचार में इस सिद्धात का सबसे पहले सन् 1802 में जान व्हीटले ने प्रतिपादन किया था। तत्पश्चात् **विलियम ब्लैक तथा डेविड रिकार्डो** ने इसमें और अधिक सुधार किए थे। किंतु इसे वैज्ञानिक ढग से प्रस्तुत करने का श्रेय स्वीडन के **अर्थशास्त्री गुस्ताव कैसल** को जाता है। इस सिद्धात के अनुसार जिन देशो में अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रामान प्रचलित होता है उनमें विनिमय दर का निर्धारण उनके परस्पर कीमत स्तर के अनुपातो द्वारा होता है। इन देशों की करेंसियों की क्रय शक्ति समता ही उनमें विनिमय दर के निर्धारण का आधार प्रस्तुत करती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अमरीका में एक डॉलर से उतना ही गेहूँ खरीद सकता है जितना भारत में ₹ 50 के साथ, तो अमरीकी डॉलर तथा भारतीय रुपये के बीच विनिमय दर 1 डॉलर = ₹ 50 या ₹ 1 = 2 सेंट निर्धारित होगी।

(i) गुस्ताव कैसल के अनुसार, **"दो करेंसियो के बीच विनिमय दर अवश्य ही उनकी आंतरिक क्रय शक्ति के भागफल द्वारा निर्धारित होती है।"** (The rate of exchange between two currencies must stand

essentially on the quotient of the internal purchasing power of these currencies. – Gustav Cassel)

(ii) **जी.डी. एच. कोल के शब्दों में, "राष्ट्रीय करेंसियों के सापेक्षिक मूल्य का विशेषकर जब वे स्वर्ण पुद्रापान के अंतर्गत नहीं होती, दीर्घकाल में निर्धारण उनकी वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में सापेक्षिक क्रय शक्ति द्वारा होता है।"** (The relative values of national currencies especially when they are not on gold standard in the long run, are determined by their relative purchasing power in terms of goods and services. – **G.D.H. Cole**)

इस सिद्धांत की दो व्याख्याएँ हैं: **निरपेक्ष व्याख्या** जिसमें विनिमय दर के निर्धारण की व्याख्या की जाती हैं तथा **सापेक्ष व्याख्या** जिसमें विनिमय दर में परिवर्तन के माप को समझाया जाता है।

- **निरपेक्ष व्याख्या (विनिमय दर का निर्धारण)**
  [Absolute Version (Determination of Rate of Exchange)]

पत्र मुद्रा मान के अंतर्गत दो देशों के बीच विनिमय दर का निर्धारण उनकी करेंसियों की आंतरिक क्रय शक्ति के अनुपात द्वारा होता है। इस सिद्धांत के अनुसार विनिमय दर विभिन्न राष्ट्रीय करेंसियों की आंतरिक क्रय शक्ति के बीच संबंध को व्यक्त करती है। इसका निर्धारण उस स्तर पर होगा जिस पर दो देशों के कीमत स्तर समता की स्थिति में होंगे। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि भारत में एक क्विंटल गेहूँ की कीमत ₹ 1,350 है तथा अमरीका में 27 डॉलर है। इसका अर्थ यह है कि एक डॉलर की क्रय शक्ति ₹ 50 की क्रय शक्ति के बराबर है, तदनुसार एक डॉलर की विनिमय दर ₹ 50 तथा एक रुपये की विनिमय दर 2 सेंट होगी।

भारत में 1 क्विंटल गेहूँ की कीमत = ₹ 1,350; अमरीका में 1 क्विंटल गेहूँ की कीमत = 27 डॉलर ∴ $ 1 = ₹ 50

अर्थात एक डॉलर की क्रय शक्ति ₹ 50 की क्रय शक्ति के बराबर है। इसे **क्रय शक्ति समता** कहा जाता है।

निम्नलिखित समीकरण में बताया गया है कि विनिमय दर का कैसे निर्धारण किया जाता है।

$$R = \frac{\text{B देश की करेंसी की क्रय शक्ति}}{\text{A देश की करेंसी की क्रय शक्ति}}$$

$$R = \frac{P_B \times Q}{P_A \times Q}$$

(यहाँ, R: A देश की करेंसी की B देश की करेंसी के रूप में कीमत; P_B : B देश में वस्तुओं की कीमत; P_A : A देश में वस्तुओं की कीमत; Q: वस्तुओं की मात्रा)

मान लीजिए भारत में 1 क्विंटल गेहूँ की कीमत ₹ 1,350 तथा अमरीका में 27 डॉलर है। अत: डॉलर के रूप में रुपये की विनिमय दर:

$$\frac{\$\ 27 \times 1}{₹\ 1{,}350 \times 1} = \frac{\$1}{₹\ 50} \text{ अथवा, } \$1 = ₹\ 50 \text{ अथवा } ₹\ 1 = \frac{1}{50} \text{ डॉलर}$$

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि विनिमय दर का निर्धारण विदेशी करेंसी की आंतरिक क्रय शक्ति तथा घरेलू करेंसी की आंतरिक क्रय शक्ति के अनुपात द्वारा होता है।

- **सापेक्ष व्याख्या (विनिमय दर में परिवर्तन का माप)**
  [Relative Version (Measurement of Change in Rate of Exchange)]

गुस्ताव कैसल (Gustav Cassel) के अनुसार विनिमय दर में परिवर्तन को दो देशों की करेंसियों की क्रय शक्तियों में होने वाले परिवर्तन द्वारा मापा जाता है। यदि एक देश के कीमत स्तर में परिवर्तन अन्य देश के कीमत स्तर से अधिक होता है तो इसकी करेंसी का मूल्य उसी अनुपात में घटेगा। उदाहरण के लिए, यदि विनिमय दर 1 डॉलर = ₹ 50 है तथा भारत में कीमत स्तर दुगना हो जाता है जबकि अमरीका में यह स्थिर रहता है तब संशोधित विनिमय दर 1 डॉलर = ₹ 100 हो जाएगी। एक उदाहरण द्वारा विनिमय दर में

परिवर्तन के माप की व्याख्या की जाती है। मान लो कि 1981 में अमरीका तथा भारत में विनिमय दर ₹ 10 = 1 डॉलर या ₹ 1 = 0.10 डॉलर है। इस वर्ष कीमत सूचकांक दोनों देशों में 100 है और यह आधार वर्ष है। यदि सन 2013 में भारत में कीमत सूचकांक बढ़कर 750 तथा अमरीका में बढ़कर 150 हो जाता है तो इसके परिणामस्वरूप विनिमय दर में परिवर्तन को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है:

$$\text{नई विनिमय दर} = \frac{\text{विदेशी करेंसी का घरेलू मूल्य} \times \text{विदेशी कीमत सूचकांक}}{\text{घरेलू कीमत सूचकांक}}$$

$$₹\ 1 = \frac{0.10 \text{ डॉलर} \times 150}{750} = \frac{1}{50} \text{ डॉलर अथवा } ₹\ 50 = 1 \text{ डॉलर अथवा } ₹\ 1 = 2 \text{ सेंट}$$

डॉलर × अमरीका में कीमत सूचकांक = रुपया × भारत में कीमत सूचकांक

अमरीका	भारत
1981 में 1 डॉलर × 100	= ₹ 10 × 100
2013 में 1 डॉलर × 150	= ₹ 10 × 750
150 डॉलर = ₹ 7,500 अथवा	1 डॉलर = ₹ 50

अत: जब अमरीका की तुलना में भारत में कीमत स्तर तीन गुना बढ़ जाता है, तब विनिमय दर एक चौथाई हो जाती है। इसे निम्नलिखित सूत्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

$$R_n = R \times \frac{PB_1}{P_B} \times \frac{P_A}{PA_1}$$

(यहाँ, R_n : A देश की नई विनिमय दर; R : पुरानी विनिमय दर, PB_1 : चालू वर्ष में B देश का कीमत स्तर, P_B : आधार वर्ष में B देश का कीमत स्तर; PA_1 : चालू वर्ष में A देश का कीमत स्तर, P_A : आधार वर्ष में A देश का कीमत स्तर।)

- **आलोचना (Criticism)**

(1) **कीमत स्तर तथा विनिमय दर में कोई सीधा संबंध नहीं** (No Direct relation between Price Level and Rate of Exchange): ऐसा निष्कर्ष निकालना गलत है कि कीमत स्तर तथा विनिमय दर में सीधा संबंध होता है अर्थात् मुद्रा की इकाई की क्रय शक्ति में परिवर्तन होने से विनिमय दर में तुरंत परिवर्तन हो जाएगा। इस सिद्धांत के अनुसार एक देश की करेंसी के एक इकाई की क्रय शक्ति में होने वाले परिवर्तन ही एक मात्र ऐसे निर्धारक है जो विनिमय दर में परिवर्तन लाते है। किंतु वास्तविक जीवन में कीमत स्तर के अतिरिक्त प्रशुल्क (Tariff), सट्टा, पूँजी प्रवाह, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिवर्तन आदि भी विनिमय दर को प्रभावित करते है।

(2) **अविश्वसनीय आधार** (Unreliable Base): क्रय शक्ति समता सिद्धांत सामान्य कीमत स्तर के सूचकांक पर आधारित है। किंतु सूचकांकों की विश्वसनीयता संदेहपूर्ण होती है। विभिन्न देश विभिन्न आधारों पर कीमत सूचकांक तैयार करते हैं। उनके आधार वर्ष तथा वस्तुओं के संघटक (Composition) भिन्न-भिन्न होते है। विभिन्न देशों के मात्र कीमत सूचकांकों के आधार पर वास्तविक विनिमय दर ज्ञात नहीं की जा सकती।

(3) **घरेलू उपभोग में प्रयुक्त उत्पादों पर लागू नहीं होता** (Not Applicable on Goods which are Used Domestically): **केन्ज, हैक्शर, हॉम** आदि कुछ अर्थशास्त्री यह मानते है कि यह सिद्धांत घरेलू उपभोग की

वस्तुओं पर लागू नहीं होता। उनके विचार में यह सिद्धात ऐसी वस्तुओं की कीमतों पर लागू होता है जो विदेशी व्यापार में सम्मिलित होती हैं। किंतु इसे घरेलू उपभोग में प्रयुक्त उत्पादों पर लागू करना तर्कहीन होगा। विनिमय दर तथा घरेलू उपयोग वाली वस्तुओं की कीमतों में कोई संबध नहीं होता।

(4) पारस्परिक माँग की लोच की अवहेलना (Ignores the Elasticity of Reciprocal Demand): केन्ज़ के अनुसार यह सिद्धांत पारस्परिक माँग की लोच की अवहेलना करता है। पारस्परिक माँग की लोच, कीमतों और आय में परिवर्तन के फलस्वरूप निर्यातों की माँग में परिवर्तन का माप होती है। लोगों की आय में परिवर्तन के कारण उनकी विदेशी वस्तुओं की माँग में वृद्धि या कमी हो सकती है। विदेशी वस्तुओं की माँग में वृद्धि से विनिमय दर में वृद्धि या कमी के कारण विनिमय दर में कमी संभव हो सकती है।

(5) पूँजी-प्रवाह के प्रभाव की अवहेलना (Ignores the Impact of Capital Flows): यह सिद्धांत पूँजी के आवागमन के विनिमय दर पर पड़ने वाले प्रभाव की अवहेलना करता है। पूँजी के आवागमन के कारण, विनिमय दर में वृद्धि या कमी हो सकती है। मान लो कि पूँजी का भारत से अमरीका को प्रवाह अधिक होता है। इससे अमरीका की करेंसी की माँग बढ़ जाएगी जिससे डॉलर की विनिमय दर भारतीय रुपये के रूप में बढ़ जाएगी।

(6) सट्टे के प्रभाव की अवहेलना (Ignores the Impact of Speculation): विनिमय दर निर्धारण का यह सिद्धांत सट्टे के विनिमय दर पर पड़ने वाले प्रभाव की अवहेलना करता है। वास्तव में, सट्टे के व्यवहार विदेशी मुद्रा की माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

(7) विनिमय दर में परिवर्तन भी कीमत स्तर को प्रभावित करता है (Change in Rate of Exchange also Affects the Price Level): **कैसल** (Cassel) के अनुसार यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि कीमत कारण तथा विनिमय दर परिणाम होती है। दूसरे शब्दों में, कीमत स्तर में परिवर्तन विनिमय दर में परिवर्तन कर देता है किंतु विनिमय दर में परिवर्तन से कीमत स्तर में परिवर्तन नहीं होता। अत: यह एकपक्षीय सिद्धांत है। वास्तविकता यह है कि यदि विनिमय दर में दीर्घकाल तक परिवर्तन होते रहेंगे तो कीमत स्तर में भी परिवर्तन होंगे। इसे एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लीजिए किन्हीं कारणों से भारतीय रुपये का बाहरी मूल्य अस्थायी रूप से गिर जाता है फलस्वरूप भारत के आयात महंगे हो जाएंगे तथा उनका भुगतान करने के लिए अधिक विदेशी विनिमय की आवश्यकता पड़ेगी। इसके विपरीत भारतीय निर्यात विदेशी करेंसियों के रूप में सस्ते हो जाएँगे। परिणामस्वरूप, भारतीय निर्यातों की प्रतियोगी क्षमता विदेशों में बढ़ जाएगी। भारत में निर्यातों की वृद्धि व आयातों की कमी से घरेलू अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की पूर्ति कम हो जाती है। इससे भारत में कीमतें बढ़ जाएंगी। इस प्रकार विनिमय दर में परिवर्तन विभिन्न देशों में कीमत स्तर में परिवर्तन लाने की प्रवृत्ति रखता है।

(8) व्यापार चक्रों के प्रभावों की अवहेलना (Ignores the Effects of Trade Cycles): यह सिद्धांत कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तनों को विनिमय दर में होने वाले परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी ठहराता है। परंतु व्यापार चक्रों के प्रभावों की पूर्णत: अवहेलना करता है। **नर्कसे** के अनुसार, **''यह सिद्धांत माँग को कीमत का फलन बताता है तथा व्यापार चक्रों के कारण समग्र आय तथा व्यय में होने वाले व्यापक परिवर्तनों की ओर ध्यान नहीं देता और जिससे विदेशी व्यापार की मात्रा तथा मूल्य में भारी उतार-चढ़ाव आते हैं, भले ही कीमतें उतनी ही रहें।''**

(9) केवल दीर्घकालीन सिद्धांत (Only Long Period Theory): यह सिद्धांत विनिमय दर के निर्धारण की समस्या का दीर्घकाल के संदर्भ में विवेचन करता है तथा अल्पकालीन परिवर्तनों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। व्यावहारिक दृष्टि से विदेशी विनिमय से संबंधित कोई भी सिद्धांत प्रासंगिक नहीं हो सकता यदि वह अल्पअवधि कारकों को ध्यान में नहीं रखता। अल्पकाल में मौद्रिक कारक बहुत ही चंचल या अस्थिर (Volatile) होते हैं तथा किन्हीं दो करेंसियों के बीच विनिमय दर का निर्धारण इनके प्रभाव से बच नहीं सकता।

संक्षेप में, क्रय शक्ति समता सिद्धांत निश्चित रूप से विनिमय दर तथा करेंसी की इकाई की क्रय शक्ति के बीच संबंध स्थापित करता है। फिर भी, इसे एक गणितीय फार्मूले की भांति लागू नहीं किया जा सकता। यह केवल इतना ही बताता है कि किसी एक निश्चित अवधि में क्या संभावित (Probable) विनिमय दर होगी। इसके साथ ही यह ऐसी कोई गारंटी नहीं देता कि उक्त विनिमय दर अनिवार्य रूप से निश्चित समय अवधि के दौरान जारी रहेगी।

■ 6.3 विनिमय दर निर्धारण का भुगतान संतुलन सिद्धांत या आधुनिक सिद्धांत (Balance of Payments Theory or Modern Theory of Exchange Rate Determination)

विनिमय दर के निर्धारण का तीसरा तथा आधुनिक सिद्धांत भुगतान संतुलन सिद्धांत है। इसे माँग तथा पूर्ति सिद्धांत भी कहा जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार किसी देश की करेंसी की विनिमय दर उस देश की करेंसी की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होगी। यदि विनिमय की माँग अधिक हो जाए तो विनिमय का मूल्य बढ़ जायेगा। परंतु विनिमय की माँग कम होने पर विनिमय का मूल्य कम हो जाएगा। इसी प्रकार विनिमय की पूर्ति भी विनिमय दर को प्रभावित करती है। प्रो॰ कुरीहारा के अनुसार, ''कागजी मुद्रा के बाहरी मूल्य में होने वाले परिवर्तनों की सबसे सन्तोषजनक व्याख्या यह है कि स्वतंत्र विनिमय दर उस स्तर पर निर्धारित होगी जिस पर विदेशी विनिमय की माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाये।''

● **(i) विनिमय दर का निर्धारण (Determination of Rate of Exchange)**

इस सिद्धांत के अनुसार विनिमय दर करेंसी की विदेशी विनिमय बाजार में माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। इस संबंध में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि माँग तथा पूर्ति किस प्रकार निर्धारित होती है। माँग के विषय में इस सिद्धांत की यह मान्यता है कि माँग पर विनिमय दर का प्रभाव नहीं पड़ता। यह अन्य तत्त्वों द्वारा निर्धारित होती है। विदेशी विनिमय की माँग काफी सीमा तक (i) अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों का भुगतान, (ii) उन पर ब्याज, (iii) विदेशी सहायता, (iv) विदेशों में किये जाने वाले निवेश आदि के द्वारा निर्धारित होती है। इन तत्त्वों में परिवर्तन आने पर माँग में भी परिवर्तन आता है। माँग की तुलना में विनिमय की पूर्ति का विनिमय दर के निर्धारण में अधिक महत्त्व है। यदि देश के द्वारा प्राप्त किया गया विदेशी विनिमय अधिक है तो विनिमय दर कम होगी, पर यदि विनिमय की पूर्ति कम है तो विनिमय दर अधिक होगी। विनिमय की पूर्ति पर भुगतान शेष का प्रभाव पड़ता है। यदि किसी देश के निर्यात में कमी होती है या विदेशी पूंजी या भुगतान प्राप्त नहीं होता या अदृश्य आय कम हो जाती है तो विनिमय दर बढ़ जाती है। इसके विपरीत यदि इन मदों से प्राप्त विनिमय की राशि बढ़ जाती है तो विनिमय दर कम हो जाती है। अतएव विनिमय दर के निर्धारण पर भुगतान शेष का प्रभाव पड़ता है।

यदि किसी देश का भुगतान शेष **प्रतिकूल** (Unfavourable) होता है तो विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जायेगी तथा देशी मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के रूप में कम हो जाएगा। इसके विपरीत यदि भुगतान शेष **अनुकूल** होता है तो विदेशी मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाएगी तथा देशी मुद्रा की विनिमय दर बढ़ जाएगी, अतएव भुगतान शेष में अन्तर आने के फलस्वरूप विनिमय दर में परिवर्तन आ जाता है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए रुपये तथा डॉलर की विनिमय दर में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना है। मुम्बई के विदेशी विनिमय बाजार में रुपये की माँग उन लोगों द्वारा की जाएगी जो डॉलर बेचकर रुपया प्राप्त करना चाहते है तथा रुपये की पूर्ति उन लोगों के द्वारा की जाएगी जो डॉलर खरीदना चाहते हैं। भारत के **निर्यातकर्ता** रुपये की माँग तथा डॉलर की पूर्ति और **आयातकर्ता** रुपये की पूर्ति तथा डॉलर की माँग करेंगे। अतएव मुम्बई विदेशी विनिमय बाजार में रुपये की पूर्ति तथा डॉलर की माँग एक समान होगी। इसी प्रकार रुपये की माँग तथा डॉलर की पूर्ति भी समान होगी। मान लीजए सतुलन विनिमय दर ₹ 50 प्रति डॉलर है। भारत के अमेरिका से भुगतान संतुलन **प्रतिकूल** होने के कारण डॉलर की माँग बढ जाती है। इसके फलस्वरूप भारत के आयातकर्त्ता एक डॉलर के लिए ₹ 50 से भी अधिक राशि देने को तैयार हो जायेंगे। इस कारण रुपये का विदेशी मूल्यह्रास हो जाएगा तथा डॉलर के विदेशी **मूल्य में वृद्धि** हो जायेगी। इसके विपरीत यदि भारत का भुगतान सतुलन **अनुकूल** हो तो रुपये की माँग बढ़ जायेगी। आयातकर्ता एक डॉलर के लिए ₹ 50 से कम राशि देने को तैयार होंगे। इस प्रकार रुपये का विदेशी मूल्य बढ़ जाएगा तथा डॉलर का मूल्य कम हो जायेगा। इस सिद्धांत को चित्र 3 की सहायता द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 3 में OX रेखा पर करेंसी की मात्रा तथा OY रेखा पर विनिमय दर प्रकट की गई है। DD करेंसी की माँग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र है। बिंदु E पर करेंसी की माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को काट रहे हैं। यह संतुलन का बिंदु होगा। क्योंकि इस बिंदु पर करेंसी की माँग तथा पूर्ति दोनों OR के बराबर हैं। बिंदु E से ज्ञात होता है कि OR सतुलन

चित्र 3

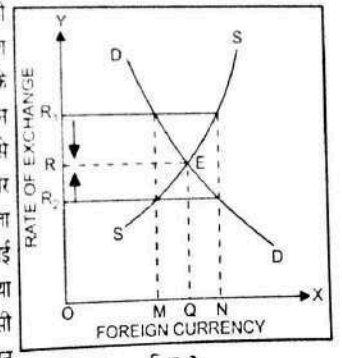

विनिमय दर होगी। यदि विनिमय दर बढ़ कर OR_1 हो जाती है तो करेंसी की पूर्ति (ON) करेंसी की माँग (OM) से MN अधिक होगी। पूर्ति के अधिक होने के कारण विनिमय दर कम होकर OR हो जायेगी। इसके विपरीत यदि विनिमय दर OR_2 हो जाती है तो करेंसी की माँग करेंसी की पूर्ति से अधिक होगी। माँग के पूर्ति से अधिक होने के कारण विनिमय दर बढ़कर OR हो जायेगी। अतएव विनिमय दर वहीं तय होगी जहाँ करेंसी की माँग तथा पूर्ति एक-दूसरे के बराबर हैं।

- **(ii) गुण (Merits)**

(1) इस सिद्धांत का मुख्य लाभ यह है कि इससे यह ज्ञात हो जाता है कि विनिमय दरों में परिवर्तन करके भुगतान शेष के असंतुलन को ठीक किया जा सकता है। यदि भुगतान संतुलन प्रतिकूल है तो मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation) किया जाता है।

(2) इस सिद्धांत के अनुसार विनिमय दर का निर्धारण भी किसी वस्तु की कीमत की भांति देश की करेंसी की कुल माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है। इस प्रकार यह सिद्धांत विनिमय दर के निर्धारण की समस्या को **सामान्य संतुलन विश्लेषण** (General Equilibrium Analysis) का एक अंग बना देता है।

(3) इस सिद्धांत के अनुसार, वस्तुओं के आयात-निर्यात के अतिरिक्त भुगतान संतुलन पर सेवाओं के आयात-निर्यात, पूँजी के स्थानान्तरण तथा युद्ध आदि में हरजाने का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए विनिमय दर भी इन तत्त्वों पर निर्भर करती है।

(4) इस सिद्धांत के अनुसार विनिमय दर आंतरिक कीमत स्तर को प्रभावित करती है। विनिमय दर में वृद्धि होने से आयात की जाने वाली वस्तुओं की कीमत में भी वृद्धि हो जाती है। इसके फलस्वरूप सामान्य मूल्य स्तर में भी वृद्धि होती है। इसी प्रकार विनिमय दर कम हो जाने से देश के सामान्य कीमत स्तर में भी कमी हो जाती है।

- **(iii) आलोचना (Criticism)**

(1) यह सिद्धांत पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक धारणा पर आधारित है। वास्तव में विनिमय बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पाई जाती तथा सरकार इसमें हस्तक्षेप करती रहती है।

(2) यह सिद्धांत भुगतान संतुलन की मदों को स्थायी मानता है, किन्तु कीमत स्तर आदि में परिवर्तन के कारण इसमें सदा परिवर्तन होते रहते है।

(3) यह सिद्धांत आयात की जाने वाली कई वस्तुओं की माँग को मूल्य-निरपेक्ष (Inelastic) अर्थात् विनिमय दर में होने वाले परिवर्तनों से स्वतंत्र मानता है। किन्तु इस प्रकार की बात वास्तविक जीवन में नहीं पाई जाती। कोई वस्तु कितनी भी आवश्यक क्यों न हो, इसमें कुछ न कुछ मात्रा में **प्रतिस्थापन की सापेक्षता** (Substitution Elasticity) अवश्य ही पाई जाती है।

संक्षेप में, भुगतान संतुलन सिद्धांत विनिमय दर निर्धारण का अधिक उचित, तर्कपूर्ण तथा व्यावहारिक सिद्धांत है।

वैश्विक वित्तीय व्यवस्था (Global Financial System)

■ 1. परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

वैश्विक वित्तीय व्यवस्था का आशय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रही वित्तीय संस्थाओं व अधिनियमों से है। ये संस्थाएँ व अधिनियम अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की मात्रा, ढाँचे (Pattern) व दिशा को प्रभावित करते है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का विकास वैश्विक वित्तीय व्यवस्था की स्थिरता (Stability) पर निर्भर करता है। हाल के वर्षों में, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार व पूँजी के प्रवाह में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था को नियमित करने वाली मुख्य वैश्विक संस्थाएँ है: अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, अंकटाड, बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट (Bank for International Settlement) आदि। इन अंतर्राष्ट्रीय वैश्विक संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय तरलता, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना, विभिन्न देशों में वित्तीय स्थिरता को बनाए रखना, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पूँजी के प्रवाह को बढ़ावा देना, विश्व को अंतर्राष्ट्रीय संकट से बचाना आदि है। वर्ष 2008 में अमेरिका से शुरू हुए वित्तीय संकट के कुप्रभाव से विश्व को बचाने में तथा वर्ष 2011 में यूरोपीयन देशों में आए सार्वजनिक ऋण संकट से उबारने में

वैश्विक वित्तीय संस्थाओं ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने वैश्विक वित्तीय संकट तथा यूरोपीयन सार्वजनिक ऋण संकट से पीड़ित देशों के लिए विशेष कोष की स्थापना की।

19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों व बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न अधिकतर देशों ने स्वर्णमान (Gold Standard) को अपना लिया। स्वर्णमान में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में स्वर्ण मुद्रा (Gold Currency) या ऐसी मुद्रा जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वर्ण में परिवर्तनशील हो, उसका प्रयोग किया जाता था। 1891 से 1914 की अवधि में स्वर्णमान व्यवस्था अच्छी तरह से चली। परंतु पहले विश्व युद्ध के दौरान इसे कुछ देशों में बंद कर दिया गया। वर्ष 1930 तक लगभग सभी देशों में स्वर्णमान व्यवस्था को रद्द कर दिया गया। स्वर्णमान के बंद होने से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में शिथिलता आ गई। वर्ष 1929 में अमेरिका में शुरू हुई आर्थिक मंदी ने अन्य देशों पर भी बहुत कुप्रभाव डाला। इस अवधि में बहुत से देशों ने बहुत अधिक दर से टैरिफ लगाए गए। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इसके अलावा दूसरे विश्व युद्ध, जो वर्ष 1939 में शुरू हुआ, ने भी वैश्विक आर्थिक स्थिरता को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम वर्षों में विभिन्न देशों ने यह अनुभव किया कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसा फोरम होना चाहिए जो विश्व में आर्थिक-सहयोग व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा दे तथा संकटकाल में जरूरतमंद देशों की सहायता करे। द्वितीय विश्वयुद्ध का विश्व की अर्थव्यवस्था पर बहुत प्रभाव पड़ा। वैश्विक वित्तीय व्यवस्था के सुधार करने के विचार से अमेरिका में जुलाई, 1944 में ब्रेटन वुड्स (Bretton Woods) के स्थान पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में 44 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि सभी देशों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व आर्थिक सहयोग बढ़ाने के लिए तथा आर्थिक विकास के लिए दो संस्थाएँ स्थापित की जाएँ, ये संस्थाएँ थी: (1) **अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** तथा (2) **विश्व बैंक**

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना 27 दिसम्बर, 1945 को हुई। इसकी स्थापना विश्व व्यापार के संतुलित विकास, अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग तथा सदस्य देशों के भुगतान शेष की अस्थायी असंतुलन की समस्या को सुलझाने के उद्देश्य से की गई। 2014 में IMF के सदस्य देशों की संख्या 188 थी। IMF का मुख्यालय वाशिंगटन डी०सी०, यू०एस०ए० में है।

विश्व बैंक का उद्देश्य युद्ध से नष्ट हुई अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण तथा सभी विकसित एवं अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए कोषों की व्यवस्था करना था। इस बैंक ने 27 दिसम्बर, 1945 से अपना कार्य आरंभ किया। वर्ष 1947 में 23 देशों ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए 'प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी सामान्य करार (गैट)' (General Agreement on Tariffs and Trade-GATT) पर हस्ताक्षर किए। इसमें विश्व व्यापार पर टैरिफ व गैर टैरिफ प्रतिबंध कम करने पर सहमति की गई। इसके अलावा इसमें 'व्यापार से संबंधित निवेश उपाय' (Trade Related Investment Measures-TRIMs) भी किए गए। इसमें विदेशी निवेश पर लगे सभी प्रतिबंधों को समाप्त करने पर सहमति की गई। ऐसी उम्मीद की गई कि निवेश के स्वतंत्र प्रवाह से वैश्विक उत्पाद व रोजगार में वृद्धि होगी तथा सदस्य देशों के भुगतान शेष की समस्या का समाधान करने में सहायता मिलेगी।

गैट के आठवें दौर, जिसे उरूग्वे दौर (Uruguay Round) भी कहते है, में तय किया गया कि गैट के स्थान पर 1 जनवरी, 1995 से 'विश्व व्यापार संगठन' (WTO) की स्थापना की जाएगी। WTO ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, विदेशी निवेश, स्वतंत्र व स्वस्थ विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया है तथा बौद्धिक संपदा के संरक्षण के लिए प्रभावकारी कदम उठाए है। WTO के ट्रिम्ज (TRIMs) समझौते से अल्पविकसित देशों में विदेशी पूँजी के प्रवाह में वृद्धि हुई है। इससे उनकी विदेशी पूँजी की समस्या का समाधान व भुगतान शेष की समस्या का समाधान करने में सहायता मिली है। इससे वैश्विक कंपनियों व विदेशी निवेशकों को अन्य देशों में पूँजी निवेश के अवसर प्राप्त हुए है। अब अधिकतर देशों में कई क्षेत्रों में 100% विदेशी समता भागीदारी (Foreign Equity Participation) की अनुमति दे दी गई है। अब अधिकतर देशों ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को लाभांश, ब्याज, रॉयल्टी को अपने मूल देश में वापिस भेजने (Repatriation) की अनुमति दे दी है।

वर्ष 1964 में 'संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन– अंकटाड (United Nations Conference on Trade and Development–UNCTAD) की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य अल्पविकसित देशों में व्यापार व विकास को बढ़ावा देना है।

■ 2. वैश्विक वित्तीय प्रणाली में मुख्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ
(Main International Institutions in Global Financial System)

अतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त के क्षेत्र में निम्नलिखित मुख्य अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं:

● (1) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष [International Monetary Fund (IMF)]

अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना वर्ष 1945 में की गई। इसके मुख्य उद्देश्य—विश्व व्यापार संबंधी समस्याओं को हल करना, अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना, विभिन्न देशों की करेंसियों के मध्य विनिमय दर को निर्धारित करना, सदस्य देशों की भुगतान शेष में अस्थायी असंतुलन की समस्या को हल करना आदि हैं। अप्रैल 2014 में IMF के सदस्य देशों की संख्या 188 थी। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) अतर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं के समाधान के लिए सदस्य देशों को विशेषज्ञों का परामर्श उपलब्ध करवाना।

(ii) सदस्य देशों के मध्य भुगतान की बहुमुखी व्यवस्था लाने के लिए IMF ने 'विशेष आहरण अधिकार' (Special Drawing Rights–SDRs) नाम से पेपर करेंसी चलायी है। इसके अलावा यह विभिन्न देशों की करेंसियों को आपस में परिवर्तित करने की व्यवस्था भी करता है।

(iii) आपातकालीन स्थिति में यह अपने सदस्य देशों को सहायता उपलब्ध करवाता है।

(iv) यह सदस्य देशों द्वारा विदेशी विनिमय पर लगे सभी प्रतिबंधों व नियत्रणों को समाप्त करने का प्रयत्न करता है।

(v) यह सदस्य देशों के दीर्घकालीन कोषों को लाभकारी क्रियाओं में निवेश करने में सहायता करता है।

(vi) यह धनी देशों को निर्धन देशों में निवेश करने हेतु प्रेरित करने के लिए उन्हें मौद्रिक सहायता प्रदान करता है।

(vii) यह सदस्य देशों को प्रभावी आर्थिक नीतियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करता है जिससे एक देश में आए वित्तीय सकट के प्रभाव को दूसरे देश में फैलने से रोका जा सके।

(viii) यह अपने सदस्य देशों को ऋण सुविधा प्रदान करता है; जैसे-किसी आकस्मिक घटना; जैसे-बाढ़, भूचाल, सूखा आदि से निर्यातों में कमी आ गई हो और इसके परिणामस्वरूप देश के भुगतान शेष में अस्थायी असंतुलन आ गया हो तो उसे ठीक करने के लिए मुद्रा कोष 'क्षतिपूर्वक वित्त सुविधा' के अंतर्गत ऋण उपलब्ध करवाता है। इसी तरह यह सदस्य देशों को प्राथमिक उत्पादों के बफर स्टॉक जैसे-खाद्यान्नों/अनाज का स्टॉक रखने के लिए ऋण सुविधा उपलब्ध करवाता है।

● (2) विश्व बैंक (World Bank)

विश्व बैंक की स्थापना वर्ष 1945 में की गई। इसका मुख्य उद्देश्य युद्ध से नष्ट हुई अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण तथा सभी विकसित एवं अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए कोषों की व्यवस्था करना था। अप्रैल 2014 में विश्व बैंक के सदस्य देशों की सख्या 188 थी। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) विश्व बैंक अपनी सहयोगी संस्थाओं—अंतर्राष्ट्रीय विकास सघ (IDA), अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC), अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (IBRD), तथा बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेंसी (MIGA) के साथ मिलकर सदस्य देशों को ऋण उपलब्ध करवाता है। इसके अलावा यह सदस्य देशों के निजी उद्यमियों को भी उत्पादक कार्यों के लिए ऋण उपलब्ध करवाता है।

(ii) यह सदस्य देशों में अपने विशेषज्ञों को भेजकर उन्हें तकनीकी सहायता व आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करता है।

(iii) यह सदस्य देशों को विभिन्न देशों/संस्थाओं से दी जाने वाली सहायता का समन्वय भी करता है।

(iv) सदस्य देशों में कृषि तथा ग्रामीण विकास के लिए सहायता प्रदान करने के लिए विश्व बैंक ने 'कृषि विकास के लिए अतर्राष्ट्रीय कोष' की स्थापना की है।

(v) यह कल्याणकारी सस्थाओं; जैसे-यूनीसेफ (UNICEF), यूनेस्को (UNESCO), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), अंतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (ILO), खाद्य एवं कृषि सगठन (FAO) आदि को वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाता है।

(vi) विकासशील देशों को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध करवाने के लिए 'तीसरी खिड़की योजना' चलायी गई है।

● (3) संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन—अंकटाड
[United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD)]

अंकटाड की स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा 1964 में अल्पविकसित व विकासशील देशों के अतर्राष्ट्रीय व्यापार व आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए की गई। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है:

(i) अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं और विकसित देशों से विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए अधिक वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाना।

(ii) विकासशील देशों की ऋण समस्या के समाधान के लिए विशेष उपाय करना, विकसित देशों से ग्राट व अन्य वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाना; जैसे-अंकटाड ने विकसित देशों से माँग की कि विकसित देश अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) का कम से कम 1% अश विकासशील देशों को सहायता के रूप में प्रदान करें।

(iii) अति अल्पविकसित देशों, जिन्हें संयुक्त राष्ट्र 'हार्ड कोर देश' (Hard Core Nations) कहता है, उनके विकास के लिए विशेष उपाय करना।

(iv) वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संगठन; जैसे- आइ०एम०एफ०, विश्व बैंक, विश्व व्यापार सगठन इत्यादि के नियमों को ध्यान में रखते हुए बहुपक्षीय व्यापार समझौतों को लागू करना। बहुपक्षीय व्यापार समझौतों में बहुत से देशों के बीच एक साथ व्यापार समझौता किया जाता है।

(v) विभिन्न देशों की सरकारों और विभिन्न क्षेत्रीय-आर्थिक समूहों (Regional Economic Groups); जैसे-SAARC, ASEAN आदि की विकासात्मक नीतियों के बीच समन्वय स्थापित करना।

(vi) विकासशील देशों के प्राथमिक एवं निर्मित उत्पादों का उचित कीमतों एवं लाभपूर्ण शर्तों पर निर्यात करने में मदद करना जिससे विकासशील देशों के भुगतान-शेष की समस्या का समाधान हो सके।

● (4) विश्व व्यापार संगठन [World Trade Organisation (WTO)]

विश्व व्यापार संगठन ने 'प्रशुल्क एवं व्यापार सबंधी करार (गैट)' को वर्ष 1995 में प्रतिस्थापित किया। अप्रैल 2014 में विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों की संख्या 159 थी। यह सदस्य देशों के मध्य टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को हटाकर, बहुपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देता है। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(i) बहुपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देना। बहुत से देशों के बीच किये गये व्यापार को बहुपक्षीय व्यापार कहा जाता है।

(ii) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में टैरिफ और गैर-टैरिफ रुकावटों को दूर करके स्वतत्र व्यापार को बढ़ावा देना।

(iii) यह आश्वस्त करना कि अल्पविकसित देश भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार से लाभान्वित हों।

(iv) खुली विश्व व्यापार प्रणाली की सभी रुकावटों को दूर करना तथा विश्व व्यापार को आर्थिक विकास के लिए प्रयोग करना।

(v) विश्व में रोजगार के स्तर को बढ़ाने के लिए उत्पादन के स्तर तथा उत्पादकता को बढ़ाना।

(vi) संसार के संसाधनों का अधिकतम मात्रा में विस्तार करना तथा उनका अनुकूलतम प्रयोग करना।

(vii) विश्व की जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार लाना और सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक विकास की गति को तेज करना।

(viii) अति-गरीब राष्ट्रों (Poorest Nations) के विकास के लिए विशेष प्रयास करना।

● **(5) अंतर्राष्ट्रीय निपटारे के लिए बैंक [Bank for International Settlements (BIS)]**

BIS एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जो अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व वित्तीय सहयोग को बढ़ावा देती है तथा केंद्रीय बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करती है। BIS की स्थापना 17 मई, 1930 को की गई। यह विश्व की सबसे पुरानी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्था है। इस बैंक का मुख्यालय बेसल (स्विटजरलैंड) में है। यह बैंक विभिन्न देशों के केंद्रीय बैंकों के गवर्नरों को नीतिगत निर्णय लेने, चर्चा करने व सूचनाओं के आदान-प्रदान में एक मंच प्रदान करता है। इस बैंक की बैंकिंग पर्यवेक्षण तथा वित्तीय स्थिरता समिति ने वित्तीय संस्थाओं की पूंजी से संबंधित बेसल-I, बेसल-II तथा बेसल-III प्रमाप जारी किए हैं। इन प्रमापों को विश्वभर में स्वीकार किया गया है। इन प्रमापों का उद्देश्य बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिरता को बनाए रखना तथा साख-जोखिम को कम करना है।

● **(6) एशियन विकास बैंक (Asian Development Bank–ADB)**

यह एक मुख्य क्षेत्रीय विकास बैंक है। इसकी स्थापना एशियाई व प्रशांत (Pacific) क्षेत्रों के विकासशील देशों के विकास व वृद्धि के लिए की गई। इसका मुख्यालय फिलिप्पाइज में मेनिला में है। इसकी स्थापना वर्ष 1966 में की गई। 67 देश इस बैंक के सदस्य हैं। इनमें से 48 देश एशिया व प्रशांत क्षेत्र से हैं तथा 19 देश अन्य क्षेत्रों से हैं। ADB एक बहुपक्षीय विकास वित्त संस्थान है। यह सदस्य देशों को विकास क्रियाओं के लिए ऋण प्रदान करता है। इसके कुल ऋणों का 80 प्रतिशत विकास क्षेत्रों जैसे-अधोसंरचना (परिवहन, संचार, ऊर्जा, जलपूर्ति, साफ-सफाई, शहरी विकास), पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा, क्षेत्रीय सहयोग तथा वित्तीय क्षेत्र आदि के लिए दिए गया है। इसका मुख्य उद्देश्य एशियाई व प्रशांत क्षेत्रों से निर्धनता को दूर करना है। यह बैंक निजी क्षेत्र की उत्पादकता में सुधार के लिए भी ऋण उपलब्ध करवाता है। इस तरह सदस्य देशों को वित्तीय सहायता उपलब्ध करवा कर यह इनके आर्थिक विकास व क्षेत्रीय सहकारिता को बढ़ावा दे रहा है। क्षेत्रीय सहकारिता से सदस्य देशों के मध्य व्यापार व निवेश के प्रवाह को बढ़ावा मिलता है।

● **(7) संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन–यूनीडो**
(United Nations Industrial Development Organisation–UNIDO)

यूनीडो की स्थापना 17 नवंबर, 1966 में की गई थी। वर्ष 1985 में यह संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट एजेंसी बन गई। इसका उद्देश्य विकासशील देशों के औद्योगिक विकास को बढ़ावा देना है। इसके द्वारा उत्पादन उद्योगों को विशेष ध्यान दिया जाता है। इसका मुख्यालय आस्ट्रिया में वियाना में है। जनवरी, 2013 को इसके 172 सदस्य देश थे। औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देकर यह निर्धनता उन्मूलन की दिशा में कार्य करता है। प्रशिक्षण कार्यक्रम संगठित करके यह उद्योगों को तकनीकी सहायता प्रदान करता है। यूनीडो विकासशील देशों के निर्यात प्रेरक उद्योगों की ओर विशेष ध्यान देता है। विकासशील देशों में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने हेतु यह उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह सदस्य देशों के मध्य क्षेत्रीय सहकारिता, विदेशी व्यापार व विदेशी निवेश के प्रवाह को बढ़ावा देता है।

● **(8) अन्य संस्थाएँ (Other Institutions)**

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व वित्त में 'यूरोपीयन यूनियन' (European Union–EU) (जो 28 राष्ट्रों का समूह है) यूरोप के देशों में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसने अपने 28 देशों में साझी मुद्रा 'यूरो' (Euro) जारी की है तथा EU केंद्रीय बैंक स्थापित किया है। इससे यूरोपीयन देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में तरलता में वृद्धि हुई है। विभिन्न क्षेत्रीय आर्थिक समूह; जैसे-नाफटा, एसियन इ०यू०, सार्क, जी-7 (NAFTA, ASEAN, EU, SAARC, G-7) आदि ने भी सदस्य देशों में आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रारंभ में 'G-7' सात देशों का समूह था। इसमें सात मुख्य औद्योगिक देशों के वित्त मंत्रियों ने भाग लिया परन्तु अब इसकी संख्या बढ़कर 20 हो गई है। G-20 के सदस्य देश आपस में आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए नियमित रूप से सभाएँ आयोजित करते हैं। सभी आर्थिक संस्थाएँ विश्व में आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा दे रही हैं तथा विभिन्न देशों में उत्पादों, सेवाओं पूँजी व श्रम के स्वतंत्र प्रवाह को बढ़ावा दे रही हैं।

■ 3. विशेष आहरण अधिकार [Special Drawing Rights (SDRs)]

अन्तर्राष्ट्रीय तरलता को बढ़ाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विशेष आहरण अधिकार की शुरुआत की। इसे कागजी-सोना (Paper-gold) भी कहा जाता है। इस योजना की शुरुआत IMF द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में आई कमी को पूरा करने के लिए की गई। अन्तर्राष्ट्रीय तरलता का अभिप्राय किसी देश द्वारा आयातों के भुगतान की क्षमता से है। यदि कोई देश आयातों का भुगतान करने की स्थिति में नहीं है, अर्थात् भुगतान शेष प्रतिकूल है, तब वह देश अपने भुगतान-शेष के घाटे को पूरा करने के लिए विशेष आहरण अधिकार (SDR) का प्रयोग कर सकता है। इस योजना की शुरुआत वर्ष 1969 में की गई थी। इसके अन्तर्गत सदस्य देशों को SDR का कोटा आवंटित किया जाता है। वर्ष 1969 में SDR को एक अमेरिकन डॉलर के सोने के मूल्य के बराबर परिभाषित किया गया था, अर्थात् एक SDR = 0.88867 ग्राम सोना। यह स्थिर विनिमय दर व्यवस्था 1973 में समाप्त कर दी गई। वर्ष 1973 में SDR को सदस्य-देशों की 16 सबसे अधिक प्रचलित मुद्राओं के आधार पर परिभाषित किया गया। वर्ष 1981 में इन देशों की संख्या 16 से कम करके 5 कर दी गई। इनके अंतर्गत अमेरिकन डॉलर, ब्रिटिश पौंड, फ्रेंच-फ्रैंक, जर्मन का डिएच मार्क, तथा जापान के येन को शामिल किया गया। वर्तमान में इसे यूरो, अमेरिकन डॉलर, ब्रिटिश पौंड व जापानी येन के मूल्यों के आधार पर परिभाषित किया जाता है।

प्रत्येक सदस्य देश को SDR का निर्धारित कोटा दिया जाता है। SDR एक कूपन की तरह होता है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के समय विदेशी मुद्रा में बदला जा सकता है। SDR के कोटे का निर्धारण सदस्य-देश द्वारा दी गई पूँजी के आधार पर किया जाता है। सदस्य देशों के SDR कोटे का प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद पुनर्विलोकन किया जाता है। ऐसे सदस्य देशों जिनके पास कम से कम 85 प्रतिशत वोटिंग हिस्सा है कि 3/5 सहमति से सदस्य देशों का कोटा बदला जा सकता है। SDR को सदस्य देश अपने केंद्रीय बैंक में रखते हैं। भुगतान शेष के घाटे के समय, यदि कोई देश SDR के बदले विदेशी मुद्रा प्राप्त करना चाहे, तो इसके लिए उसे पहले IMF को आवेदन करना होगा। फिर IMF किसी देश को नियुक्त करेगा, जिसका भुगतान-शेष आधिक्य (Surplus) वाला हो, यह देश SDR के बदले पहले देश को विदेशी मुद्रा उपलब्ध करवायेगा। सभी SDR व्यवहारों (Transactions) का रिकार्ड IMF के खाते में रखा जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा विशेष-आहरण अधिकार (Special Drawing Right) शुरू करने से, विश्व व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि हुई। वर्तमान में कुछ मुख्य देशों की मुद्राएँ जैसे-अमेरिकन डॉलर, यूरो, फ्रांस का फ्रेंक, जर्मनी का मार्क, जापान का येन, ब्रिटेन का पौंड– को विश्व-व्यापार में भुगतान के लिए प्रयोग किया जा रहा है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि हुई है और विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिला है।

● **SDR के लाभ (Benefits of SDRs)**

(i) अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में सोने पर निर्भरता कम हो गई है।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि हुई है।

(iii) प्रतिकूल-भुगतान शेष वाले देशों को इससे लाभ हुआ है।

(iv) सोने की तुलना में SDR को रखना काफी आसान है, और सोने की तरह इसके चोरी होने का भय नहीं है। यह एक तरह का कागजी कूपन है, जिसकी निर्माण-लागत कम होती है।

(v) SDR द्वारा किए गए भुगतान सुविधाजनक व लोचशील होते हैं।

● **SDR की आलोचना (Criticism of SDRs)**

(i) वर्ष 1999 में कुल SDR का 70 प्रतिशत हिस्सा 26 अमीर देशों को ही वितरित किया गया। जबकि अल्पविकसित देशों को 30 प्रतिशत हिस्सा ही प्राप्त हुआ। अत: विकासशील देशों को SDR से अधिक फायदा नहीं हुआ।

(ii) विकसित देशों तथा विकासशील देशों से ली जाने वाली ब्याज की दर में कोई भेद नहीं किया गया। अर्थात् विकासशील देशों को ब्याज में कोई छूट नहीं दी गई।

(iii) कोटे का निर्धारण सदस्य देशों की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नहीं किया गया।

(iv) शुरू में SDR पर लिए जाने वाले ब्याज की दर 1.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, लेकिन अब ब्याज दर 5 चुने देशों (अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, जापान) के बाजार ब्याज दर के औसत के आधार पर ली जाती है। अब ब्याज दर अधिक हो गई है, इससे विकासशील देशों पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

■ 4. वर्ष 1973 से विनिमय दर निर्धारण (Exchange Rate Determination since 1973)

विनिमय दर वह दर है जिस पर किसी एक देश की मुद्रा की एक इकाई को किसी अन्य देश की मुद्रा की इकाइयों के बदले परिवर्तित किया जा सकता है। विनिमय दर स्थिर या लोचशील हो सकती है। स्थिर विनिमय दर व्यवस्था के अंतर्गत सरकार विनिमय दर

निर्धारित करती है। इस प्रणाली में माँग व पूर्ति की बाजारी शक्तियाँ विनिमय दर को निर्धारित नहीं करती हैं। प्रत्येक सदस्य देश अपनी करेंसी के समता मूल्य को सोने या डॉलर के रूप में व्यक्त करता है। लोचशील विनिमय दर व्यवस्था में विनिमय दर का निर्धारण माँग व पूर्ति की बाजारी शक्तियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। इस व्यवस्था में विनिमय दर सरकार द्वारा किसी एक स्तर पर निर्धारित नहीं की जाती। पहले अधिकतर देशों ने स्थायी विनिमय दर व्यवस्था को अपनाया था। परंतु वर्ष 1973 में स्थिर विनिमय दर व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही विनिमय दर निर्धारण के लिए अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष ने निम्न कदम उठाए:

(1) **परिवर्तनशील विनिमय दर** (Floating Exchange Rate): अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने स्थिर विनिमय दर के स्थान पर परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्था चलाई। इसके अंतर्गत मुद्राओं की विनिमय दर बाजारी शक्तियों अर्थात् माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

(2) **करेंसी की पैगिंग** (Pegging of Currency): इस व्यवस्था में एक देश किसी दूसरे देश के साथ अपनी करेंसी को संबंधित कर देता है। इन दो देशों की करेंसी के मध्य स्थिर विनिमय दर निर्धारित की जाती है। परंतु अन्य सभी देशों के साथ परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्था चलायी जाती है।

(3) **रेंगती पैग** (Crawling Peg): यह व्यवस्था परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्था व पैगिंग व्यवस्था का संमिश्र है। इसमें एक देश अपनी करेंसी को किसी दूसरे देश की करेंसी के साथ संबंधित कर देता है। इन दोनों करेंसियों के मध्य विनिमय दर अल्पकाल में स्थिर होती है, परंतु कुछ समय-अंतराल के बाद इस स्थिर विनिमय दर में परिवर्तन कर दिया जाता है। परंतु अन्य सभी देशों की करेंसी के साथ परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्था चलाई जाती है। इस व्यवस्था में स्थिर विनिमय दर व्यवस्था व परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्था दोनों के ही गुण पाए जाते हैं।

(4) **लक्षित क्षेत्र व्यवस्था** (Target-zone System): इस व्यवस्था में किसी एक विशेष क्षेत्र में स्थित देशों के साथ स्थिर विनिमय दर व्यवस्था चलाई जाती है। जबकि उस क्षेत्र से बाहर स्थित देशों के साथ परिवर्तनशील विनिमय दर व्यवस्था चलाई जाती है। यह व्यवस्था उस विशेष क्षेत्र में स्थित देशों के मध्य विदेशी व्यापार को बढ़ावा देती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में रुकावटें
(Barriers to International Business)

■ 1. भूमिका (Introduction)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश के दो मुख्य ढंग हैं: व्यापार रूट और निवेश रूट। व्यापार रूट में उत्पादों व सेवाओं को अन्य देशों में निर्यात व आयात किया जाता है। निवेश रूट में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश द्वारा विदेशों में सहायक कंपनियाँ स्थापित की जाती हैं या विलयन व अधिग्रहण द्वारा विदेशों में व्यवसाय का प्रसार किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में रुकावटों का अध्ययन दो भागों में किया गया है। अध्याय के पहले भाग में व्यापार रूट में रुकावटों का अध्ययन किया गया है तथा अध्याय के अंत में निवेश रूट की रुकावटों की चर्चा की गई है।

एक देश या तो स्वतंत्र व्यापार (Free Trade) नीति या संरक्षण नीति (Protection Policy) को अपनाता है। स्वतंत्र व्यापार नीति से अभिप्राय उस नीति से है जिसमें कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता। निर्यातकों तथा आयातकों को अनुमति होती है कि वे बिना किसी प्रकार के निर्यात शुल्क या आयात शुल्क के व्यापार करने में स्वतंत्र होते हैं। इसके विपरीत संरक्षणवादी नीति से अभिप्राय स्थानीय उत्पादकों को (विदेशी प्रतियोगिता से) संरक्षण देने की नीति से है। यह संरक्षण शुल्क लगाकर (आयातों पर कर लगाकर) या गैर-कर रोकें लगाकर प्रदान किया जाता है। गैर-टैरिफ रुकावटों (Non-tariff Barriers) में कोटा निर्धारित करना (Fixation of Quotas), आयात-लाइसेंस की अनिवार्यता या सीमा शुल्क कार्य प्रणाली (Custom Procedure) को जान-बूझ कर जटिल बनाना जिससे आयातों को निरुत्साहित किया जा सके, शामिल हैं।

विभिन्न देशों में विदेशी व्यापार के रास्ते में बहुत सी रुकावटें हैं। कुछ रुकावटें मानव द्वारा बनाई गई हैं; जैसे- टैरिफ लगाना, कोटा निर्धारित करना, लाइसेंस लेने की अनिवार्यता व अन्य गैर-टैरिफ प्रतिबंध। कुछ रुकावटें प्राकृतिक भी होती हैं; जैसे- भौगोलिक दूरी के कारण उत्पादों को एक देश से दूसरे देश तक ले जाने में बहुत समय लगता है तथा परिवहन-व्यय भी बहुत अधिक होते हैं; जैसे- भाड़ा, बीमा, माल को चढ़ाने-उतारने संबंधी व्यय, पोर्ट-व्यय आदि। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तभी होगा यदि घरेलू कीमतों व विदेशों में उपलब्ध उन्हीं उत्पादों की कीमतों में अंतर, परिवहन लागत व टैरिफ-खर्चों से अधिक है। जैसे- मान लो- देश A में एक उत्पाद को बनाने की लागत $10,000 है तथा उसी उत्पाद को देश B में बनाने की लागत $12,000 है। यदि हम परिवहन व्ययों व टैरिफ को भूल जाएं तो देश B इस उत्पाद को देश A से आयात करेगा ताकि लागत अंतर का लाभ उठाया जा सके। परंतु यदि देश A से देश B तक सामान लाने का खर्च $ 2,000 से अधिक होगा तो देश B को यह उत्पाद देश A से आयात करना लाभदायक नहीं होगा। अत: देश B इस उत्पाद को देश A से तभी आयात करेगा यदि इसमें परिवहन लागत $2,000 से कम आती है। इस तरह परिवहन लागत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के रास्ते में बाधा है। यदि परिवहन लागत आयातक द्वारा दी जानी है, तो परिवहन लागत आयात पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। यदि परिवहन लागत निर्यातक द्वारा दी जानी है, तो यह निर्यातक पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। दोनों ही दशाओं में यह विदेशी व्यापार के रास्ते में रुकावट है।

■ 2. स्वतंत्र व्यापार की धारणा (Concept of Free Trade)

ऐसी व्यापार नीति, जिसके अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं के दो देशों के बीच विनिमय पर कोई रोक नहीं लगाई जाती, स्वतंत्र व्यापार नीति कहलाती है। इस प्रकार स्वतंत्र व्यापार वह स्थिति है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण स्वतंत्रता होती है। सभी देश एक दूसरे से प्रत्येक वस्तु का कितनी भी मात्रा में व्यापार करने में स्वतंत्र होते हैं। देश की सरकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी कार्यों में हस्तक्षेप

नहीं करती है, परन्तु स्वतन्त्र व्यापार की नीति का यह अर्थ नहीं है कि सरकार आयात तथा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर किसी प्रकार का कर भी न लगाए. वास्तव में स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति में भी सरकार द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल वस्तुओं पर कर लगाए जा सकते हैं, परन्तु इन करों का उद्देश्य आय (Revenue) की प्राप्ति होती है, इनका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की स्वतन्त्र प्रवाह अथवा दिशा आदि में किसी प्रकार का परिवर्तन करना नहीं होता।

- **परिभाषाएँ (Definitions)**

(i) एडम स्मिथ के अनुसार, **"स्वतन्त्र व्यापार, व्यापारिक नीति की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें स्वदेशी तथा विदेशी वस्तुओं में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाता और इसलिए न तो विदेशी वस्तुओं पर कोई अतिरिक्त भार डाला जाता है और न ही स्वदेशी वस्तुओं को कोई विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं।"** (Free trade is that system of commercial policy which draws no distinction between domestic and foreign commodities and therefore neither imposes additional burden on the latter nor grants any special favour to the former. –**Adam Smith**)

(ii) लिप्सी के शब्दों में, **"स्वतन्त्र व्यापार में वस्तुओं के आयात तथा निर्यात पर कोई सीमा-शुल्क या प्रतिबंध नहीं होते। इसमें एक देश उन सब वस्तुओं का आयात करता है जिन्हें वह विदेश से उस कीमत पर खरीद सकता है जो उन्हें स्वदेश में उत्पादन करने की लागत से कम होती है।"** (A world of free trade would be one with no tariffs and no restriction of any kind on importing or exporting. In such a world, a country would import all those commodities that it could buy from abroad at a price lower than the cost of producing them at home. –**Lipsey**)

■ 2.1 स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में तर्क (Arguments Favouring Free Trade)

स्वतन्त्र व्यापार से किसी एक देश को नहीं बल्कि विश्व के सभी देशों को लाभ होता है। स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

(1) **उत्पादन का अधिकतमीकरण** (Maximization of Output): तुलनात्मक लागत लाभ सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशेषता प्राप्त करेगा जिसके लिए वह अधिक उपयुक्त है या जिसके उत्पादन में उसे अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त होता है. इसके फलस्वरूप संसार में विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन अधिकतम होगा. लिप्से के शब्दों में, **"स्वतन्त्र व्यापार विश्व उत्पादन के अधिकतमीकरण में सहायक होता है।"**

(2) **संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग** (Optimum Utilization of Resources): क्योंकि उत्पादन तुलनात्मक लागत लाभ के सिद्धान्त के अनुसार होता है, इसलिए संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग किया जाता है। प्रत्येक देश आगतों के न्यूनतम लागत संयोग (Least-Cost-Combination) द्वारा वस्तुओं का उत्पादन करता है।

(3) **पारस्परिक लाभदायक** (Mutually Beneficial): स्वतन्त्र व्यापार सभी पक्षों के लिए लाभदायक होता है. यदि किसी देश पर किसी प्रकार का दबाव नहीं है तो वह देश उन्हीं वस्तुओं का आयात तथा निर्यात करेगा जिनसे उसे अधिकतम लाभ मिलने की संभावना हो. अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप साधारणतया सभी देशों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होने की संभावना होती है।

(4) **क्षेत्रीय श्रम-विभाजन** (Territorial Division of Labour): **स्वतन्त्र व्यापार के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय या भौगोलिक श्रम विभाजन को प्रोत्साहन मिलता है.** प्रत्येक देश उन्हीं वस्तुओं में विशिष्टता प्राप्त करता है जिनके उत्पादन में उसे भूमि, जलवायु, खनिज पदार्थ इत्यादि जैसी प्राकृतिक सुविधाएँ उपलब्ध हों. स्वतन्त्र व्यापार के फलस्वरूप संसार के विभिन्न देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेंगे जिनमें उन्हें तुलनात्मक लाभ अधिकतम है।

(5) **कार्यकुशल उद्यमी** (Efficient Entrepreneurs): स्वतन्त्र व्यापार के कारण विभिन्न देशों में कम से कम लागत पर वस्तुएँ बनाने की प्रतिस्पर्धा होती है. इसलिए ऐसी अवस्था में केवल कार्यकुशल फर्में अथवा उद्यमी ही बाजार में टिक सकते हैं. कम कार्यकुशल उद्यमी इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा में बाजार छोड़कर चले जाते हैं. इसके परिणामस्वरूप साधनों

का दुरुपयोग नहीं होने पाता. अतएव स्वतन्त्र व्यापार में उत्पादन के कार्यकुशलता अधिक होने के कारण उत्पादन लागत कम होती है तथा कीमतें कम हो जाती हैं।

(6) **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग** (International Co-operation): स्वतन्त्र व्यापार के फलस्वरूप विभिन्न देश कुछ वस्तुओं के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और एक दूसरे से वस्तुओं का आदान-प्रदान करते हैं. इसके परिणामस्वरूप विभिन्न देशों के लोग अन्य देशों के सम्पर्क में आते हैं. इसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि होती है. सारा संसार एक आर्थिक इकाई बन जाता है।

(7) **आविष्कारों की संभावना** (Possibility of Inventions): स्वतन्त्र व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि प्रत्येक देश बढ़िया से बढ़िया वस्तुएँ बनाने का प्रयास करता है. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा होने के कारण वे वस्तुओं का कम से कम लागत पर उत्पादन करना चाहते हैं. इसके लिए विभिन्न देशों में उत्पादन की ऐसी नई तकनीक की खोज की जाती है जिससे कम से कम समय, कम से कम खर्च तथा कच्चे माल के कम अपव्यय से अधिक से अधिक और बढ़िया माल तैयार हो सके।

(8) **एकाधिकारी प्रवृत्ति पर रोक** (Check on Monopolistic Tendencies): स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति में विदेशी प्रतियोगिता की संभावना बढ़ जाती है. इसके फलस्वरूप देश के उत्पादक, एकाधिकार स्थापित नहीं कर पाते हैं. यदि वे किसी वस्तु के उत्पादन में एकाधिकार स्थापित करके उसकी कीमत में वृद्धि करेंगे तो विदेशों से उस वस्तु का आयात किया जा सकता है. इस प्रकार एकाधिकार स्थापित करने का कोई लाभ नहीं होगा। अतएव् स्वतन्त्र व्यापार के फलस्वरूप एकाधिकार को नियंत्रित किया जा सकता है।

(9) **उपभोक्ताओं को लाभ** (Advantages to Consumers): स्वतन्त्र व्यापार में सबसे अधिक लाभ उपभोक्ताओं को होता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता होने के कारण प्रत्येक उत्पादक कम से कम लागत पर वस्तुएँ बनाने का प्रयत्न करता है. इसके अलावा वस्तुओं के आयात पर भी किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होता। इसलिए उपभोक्ताओं को अपने मनपसन्द की अच्छी से अच्छी वस्तु कम से कम कीमत पर प्राप्त हो जाती है। उन्हें वे वस्तुएँ भी प्राप्त हो जाती हैं जिनका उत्पादन उनके देश में नहीं होता।

(10) **विस्तृत बाजार** (Wide Market): स्वतन्त्र-व्यापार से सारा संसार एक ही विस्तृत बाजार का रूप धारण कर लेता है। विभिन्न देशों के उत्पादकों को अपने माल को विश्व बाजार में बेचने का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। बाजार का आकार बढ़ने से उत्पादन का पैमाना बढ़ जाता है। इससे उत्पादन की लागत कम हो जाती है। इसके फलस्वरूप उत्पादकों के लाभ बढ़ जाते हैं।

(11) **सस्ती आयातित वस्तुएँ** (Cheaper Imported Goods): स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत किसी प्रकार के प्रतिबन्ध और सीमा शुल्क न होने के कारण आयात की गई वस्तुएँ सस्ती पड़ती हैं। प्रत्येक देश केवल उन्हीं वस्तुओं का निर्यात करता है जिनके उत्पादन में उसे प्राकृतिक सुविधाएँ प्राप्त हैं तथा तुलनात्मक लाभ अधिक है और उन वस्तुओं का आयात करता है जिसके उत्पादन में तुलनात्मक लाभ कम हैं। सस्ती आयातित वस्तुओं के उपयोग से जीवन स्तर ऊँचा होता है।

(12) **आय, उत्पादन तथा रोज़गार में वृद्धि** (Increase in Income, Production and Employment): स्वतन्त्र व्यापार से प्रत्येक देश उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिनके लिए वहाँ सबसे अनुकूल परिस्थितियाँ होती हैं। इससे उत्पादन के साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग होता है तथा अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है। उत्पादन क्रियाओं में विकास से आय तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। इससे उत्पादन, राष्ट्रीय आय तथा रोजगार में वृद्धि होती है।

(13) **यातायात तथा संचार का विकास** (Development of Transport and Communications): स्वतन्त्र व्यापार की अवस्था में सभी देश उद्योगों के पूर्ण विकास का प्रयत्न करते हैं। उद्योगों के विकास के कारण व्यापार बढ़ता है। कच्चा माल तथा तैयार वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जानी होती हैं। इसके लिए यातायात तथा संचार का विकास होता है। दूसरे देशों को माल ढोने के लिए भी स्वतन्त्र यातायात तथा संचार के साधनों का विकास किया जाता है।

(14) **अल्पविकसित देशों का आर्थिक विकास** (Economic Development of Underdeveloped Countries): स्वतन्त्र व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देश अपने आर्थिक विकास के लिए पूंजीगत वस्तुएँ, मशीनरी, आवश्यक कच्चे माल तथा तकनीकी जानकारी का आयात आसानी से कर सकते हैं। स्वतन्त्र व्यापार से पूर्ण प्रतियोगिता को प्रोत्साहन मिलता है। इसके फलस्वरूप अल्पविकसित देशों को अपनी आयातित वस्तुएं सस्ते मूल्यों पर मिल सकती हैं। इससे इन देशों के आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है।

■ 2.2 स्वतंत्र व्यापार के विपक्ष में तर्क (Arguments Against Free Trade)

स्वतन्त्र व्यापार के उपरोक्त लाभों के बावजूद भी, 1929-33 की विश्व मंदी के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक आधार पर कई देशों ने इस नीति का त्याग कर दिया। स्वतन्त्र व्यापार के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं

(1) **पूर्ण प्रतियोगिता और अहस्तक्षेप व्यापार नीति का अप्रचलन** (Non-existence of Perfect Competition and Laissez Faire Policy): स्वतन्त्र व्यापार के लिए अहस्तक्षेप की नीति तथा पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में कीमत यन्त्र की प्रक्रिया का क्रियाशील होना आवश्यक है। किन्तु ये शर्तें वर्तमान समय के संसार में नहीं पायी जाती हैं। एकाधिकार, कार्टेल्ज (Cartels), अपूर्ण श्रम बाजार तथा सीमा शुल्कों के प्रचलन में होने के कारण स्वतन्त्र व्यापार को त्यागना पड़ा था।

(2) **एक पक्षीय आर्थिक विकास** (One-sided Economic Development): स्वतन्त्र व्यापार की नीति के अन्तर्गत कुछ उद्योगों को तुलनात्मक लाभ प्राप्त होते हैं किन्तु अन्य उद्योग विकसित नहीं होते। अतः इस कारण अर्थव्यवस्था का एक-पक्षीय विकास ही हो पाता है।

(3) **हानिकारक वस्तुएँ** (Harmful Products): क्योंकि स्वतन्त्र व्यापार की व्यवस्था में अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया जाता था तथा राज्य द्वारा राष्ट्रों के बीच वस्तुओं के आने-जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाए जाते थे, इस कारण अनेक देशों के अनैतिक व्यापारियों ने हानिकारक वस्तुओं का बड़े पैमाने पर आयात आरम्भ कर दिया। इसका देश के स्वास्थ्य तथा कल्याण पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ा। ऐसी वस्तुओं के आयात पर व्यापारिक प्रतिबन्ध लगाना अनिवार्य बन गया।

(4) **गलाकाट प्रतियोगिता** (Cut Throat Competition): जो देश बेहतर उत्पादन साधनों से सम्पन्न होते हैं वे कुछ वस्तुओं का उत्पादन, अन्य देशों की तुलना में, सस्ता करने के योग्य होते हैं। इससे स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत विश्व बाजार में गलाकाट प्रतियोगिता आरम्भ हुई जो घरेलू उद्योगों के लिए हानिकारक सिद्ध हुई। अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना अनिवार्य हो गया।

(5) **एकाधिकार** (Monopoly): स्वतन्त्र व्यापार के कारण अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकारों तथा स्थानीय एकाधिकारों को बढ़ावा मिला। **हैबरलर** (Haberler) के अनुसार स्वतन्त्र व्यापार के कारण ऐसे एकाधिकारों का विकास हुआ जो अन्य देशों तथा स्वदेशी हितों के लिए हानिकारक सिद्ध हुए। इस कारण भी संरक्षण की नीति को अपनाना पड़ा।

(6) **आर्थिक निर्भरता** (Economic Dependence): स्वतन्त्र व्यापार के फलस्वरूप प्रत्येक देश को कई आवश्यक वस्तुओं के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। युद्ध अथवा किसी दूसरी प्रकार की आपत्ति के समय में यदि दूसरे देशों से वस्तुओं का आयात किया जाना सम्भव न हो सके तो उस देश को काफी कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्वतन्त्र व्यापार की नीति का त्याग किया जाए जिससे देश में विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विकास हो सके।

(7) **आर्थिक विकास में रुकावटें** (Hurdles in Economic Development): विकसित देशों ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों का शोषण किया है तथा उनके आर्थिक विकास में कई प्रकार की बाधाएँ भी उत्पन्न की हैं। अतः अल्पविकसित देशों को अपने आर्थिक विकास के लिए स्वतन्त्र व्यापार की नीति का त्याग करना पड़ा है।

(8) **राशिपातन** (Dumping): राशिपातन के अन्तर्गत एक देश दूसरे देश में उत्पाद को बहुत ही कम कीमत पर बेच कर उस देश के घरेलू उद्योगों को नुकसान पहुँचाता है। जब उस उत्पाद के घरेलू उद्योग कमजोर पड़ जाते हैं या बंद हो जाते हैं, तो उस उत्पाद की कीमत को बढ़ा दिया जाता है। स्वतन्त्र व्यापार की नीति से संसार के कुछ विकसित देश अल्पविकसित देशों में सस्ते माल की पूर्ति को इतना अधिक बढ़ा देते हैं कि उन देशों के उद्योग उनकी प्रतियोगिता का सामना नहीं कर पाते और धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। राशिपातन को रोकने के लिए **अन्तर्राष्ट्रीय** व्यापार में सरकार को अवश्य हस्तक्षेप करना पड़ता है।

(9) **बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अपनाए गए गलत व्यवहार** (Wrong Practices of Multinational Corporations): स्वतन्त्र व्यापार की नीति के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगमों तथा विशाल औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना को प्रोत्साहन मिलता है। ये बहुराष्ट्रीय निगम एकाधिकार की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए प्रशासन को भ्रष्ट करते हैं, अपने प्रतियोगियों को नष्ट करने के लिए गैर-कानूनी तरीके भी अपनाते हैं। प्रत्येक देश की सरकार इनके कार्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए स्वतन्त्र व्यापार में हस्तक्षेप करती है।

■ 3. संरक्षण की स्थिति (The Case for Protection)

संरक्षण शब्द से अभिप्राय ऐसी नीति से है जिसके द्वारा स्वदेशी उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से सुरक्षित रखा जाता है। इसका लक्ष्य निम्न-कीमतों वाली वस्तुओं के आयातों पर प्रतिबन्ध लगाना है जिससे ऊँची कीमतों वाली वस्तुओं का उत्पादन करने वाले स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहित किया जा सके। स्वदेशी उद्योगों को सुरक्षित करने के लिए विदेशी वस्तुओं पर इस दर से आयात कर लगाए जाते हैं जिससे उनकी कीमतें स्वदेशी वस्तुओं की कीमतों से अधिक हो जाएं, या इन्हें कोटा प्रणाली द्वारा सुरक्षित किया जाता है, या अन्य गैर-प्रशुल्क प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं जिनके कारण सस्ती विदेशी वस्तुओं का आयात कठिन या असम्भव हो जाता है, या स्वदेशी उद्योगों को वित्तीय सहायता (Subsidies) दी जाती है जिससे वे सस्ती विदेशी वस्तुओं से प्रतियोगिता कर सकें। संरक्षण की नीति स्वतन्त्र व्यापार की नीति से बिल्कुल भिन्न होती है। स्वतन्त्र व्यापार में सरकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती परन्तु संरक्षण की नीति में सरकार कई आर्थिक तथा अनार्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में हस्तक्षेप करती है। सरकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाती है, कई वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन देती है, इसके विपरीत कई वस्तुओं के आयात को हतोत्साहित करती है।

- **परिभाषाएँ (Definitions)**

(i) **प्रो. एनातोल मुराद के अनुसार, "राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने की नीति को संरक्षण कहा जाता है।"** (The policy of protecting national interest through restrictions on international trade is called protection. –**Prof. Anatol Murad**)

(ii) **पैन्गुइन शब्दकोश के अनुसार, "आयात के प्रवाह को रोकने के लिए टैरिफ लगाने तथा कोटा निर्धारित करने की नीति को संरक्षण कहा जाता है।"** (Protection is the imposition of tariffs or quotas to restrict the inflow of imports. –**Penguin Dictionary**)

■ 3.1 संरक्षण के पक्ष में तर्क (Arguments for Protection)

हैबरलर (Haberler) ने संरक्षण के पक्ष में दिए गए तर्कों को दो ग्रुपों में बाँटा है: आर्थिक तथा गैर-आर्थिक। इनकी हम बारी-बारी से व्याख्या करेंगे।

- **I. आर्थिक तर्क (Economic Arguments)**

(1) **व्यापार की शर्तें तर्क** (Terms of Trade Argument): देश के भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन (Dis-equilibrium) को ठीक करने हेतु व्यापार की शर्तों का तर्क दिया जाता है। व्यापार की शर्तों का तात्पर्य उस दर से है, जिस पर निर्यातों व आयातों का विनिमय किया जाता है। आयात शुल्क लगाने से आयात महंगे हो जाते हैं जिससे आयातित वस्तुओं की माँग कम हो जाती है, अतः व्यापार की शर्तें अनुकूल हो जाती हैं। एक देश किस सीमा तक

आयात प्रशुल्क द्वारा अपनी व्यापार की शर्तों में सुधार ला सकता है यह स्वदेश तथा विदेश की माँग तथा पूर्ति की सापेक्षिक लोच पर निर्भर करता है।

(2) **मोल-भाव तर्क** (Bargaining Argument): तर्क दिया जाता है कि अन्य देशों के साथ व्यापार वार्ता में मोल-भाव करने के लिए प्रशुल्क का लगाना जरूरी है। ऐसा लगता तो ठीक है, किन्तु निर्धन (या कम विकसित) देश धनी (या विकसित) देशों के साथ सौदेबाजी करते समय अपने आप को निस्सहाय स्थिति में पाते हैं।

(3) **माल को विदेशों में सस्ते दामों पर बेचने के विरुद्ध तर्क** (Anti-dumping Argument): विदेशों में सस्ते दामों पर माल बेचने (राशिपातन) के विरुद्ध भी संरक्षण का तर्क दिया जाता है। इस क्रिया द्वारा विदेशी बाजारों में सस्ती वस्तुओं की बाढ़ आ जाती है। अत: ऐसे माल से प्रतियोगिता करने वाली घरेलू इकाइयाँ बर्बाद हो जाती हैं। इन फर्मों की सुरक्षा के लिए ऊँचे आयात कर अनिवार्य बन जाते हैं। इन करों के फलस्वरूप आयातित देशों में वस्तुओं के दाम बढ़ जाते है तथा राशिपातन का डर दूर हो जाता है।

(4) **संतुलित विकास तर्क** (Balanced Growth Argument): इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास होना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों (Sectors) का साथ-साथ विकास हो सके। इसके लिए जरूरी है कि कृषि तथा विभिन्न विनिर्माण (Manufacturing) उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से सुरक्षित रखा जाए।

(5) **शिशु उद्योग तर्क** (Infant Industry Argument): इस तर्क के अनुसार यदि उद्योगों को उनके शैशव काल में सुव्यवस्थित विदेशी उत्पादकों से बचाया या सुरक्षित नहीं किया गया तो वे न तो विकसित हो पाएँगे और न कोई तुलनात्मक लागत लाभ प्राप्त कर सकेंगे। अत: इन उद्योगों को हर प्रकार की सुविधा देकर सुरक्षित किया जाता है, जैसे विदेशी वस्तुओं पर भारी आयात प्रशुल्क लगाकर। फलस्वरूप ऐसे उद्योगों का विस्तार होगा तथा उन्हें बड़े पैमाने की आन्तरिक बचतें प्राप्त होंगी। **संरक्षण के शिशु उद्योग तर्क की अर्थशास्त्रियों द्वारा** कड़ी आलोचनाएँ की गयी है। ये आलोचनाएँ इस प्रकार हैं: (i) यह निर्णय लेना बहुत कठिन है कि **किस उद्योग को संरक्षण देना आवश्यक** है क्योंकि आरंभ में सभी उद्योग शैशव काल में होते हैं। (ii) उद्योग को **संरक्षण** इस शर्त पर दिया जाता है कि कुछ वर्षों के बाद जब उद्योग विकास कर लेगा तथा विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने के योग्य हो जाएगा तो इसे **समाप्त कर दिया जाएगा।** किन्तु विश्वसनीय मापदण्ड के अभाव में इस सम्बन्ध में निर्णय लेना कठिन है। (iii) **कुछ घरेलू उद्योगपति जिन्हे संरक्षण के कारण अच्छे लाभ प्राप्त होने लगते हैं, आयात प्रशुल्कों को समाप्त नहीं होने देते।**

(6) **सामाजिक महत्त्व के क्षेत्रों तथा आधारभूत उद्योग तर्क** (Socially Important Sector or Key Industries Argument): सामाजिक महत्त्व के क्षेत्रों; जैसे– कृषि तथा आधारभूत उद्योगों; जैसे– लोहा तथा इस्पात, भारी रसायन, मशीनें बनाने वाले उद्योग, भारी विद्युत सामग्री उद्योग, इत्यादि को संरक्षण दिया जाना चाहिए।

(7) **रोजगार संबंधी तर्क** (Employment Argument): देश में रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए भी संरक्षण की नीति का समर्थन किया जाता है। आयात प्रशुल्क लगाने से आयातों में कमी आती है तथा आयात प्रतिस्थापन (Import Substitutes) उद्योगों को बढ़ावा मिलता है, जिससे रोजगार में वृद्धि होती है।

(8) **व्यापार संतुलन तर्क** (Balance of Trade Argument): इस तर्क के अनुसार, एक देश को आयात प्रशुल्क इसलिए लगाने चाहिए जिससे आयातों की तुलना में निर्यातों का आधिक्य हो। इस आधिक्य के कारण देश को विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी। किन्तु यह विचार सही नहीं है क्योंकि यदि सभी देश इसका पालन करने लगेंगे तो किसी को भी कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा।

(9) **ऊँची मजदूरी वाली घरेलू वस्तुएँ तर्क** (High Wage Domestic Goods Argument): जिन वस्तुओं को देश में उत्पादित करने के लिए ऊँची मजदूरी देनी पड़ती है उन्हें निम्न मजदूरी आयातित वस्तुओं से बचाने के लिए आयात प्रशुल्क लगाए जाने चाहिए। अर्थात् विकासशील देशों के श्रम प्रधान उत्पादों (जिनकी उत्पादन लागत अधिक है) को विकसित देशों के पूंजी प्रधान उत्पादों (जहाँ उत्पादन लागत तुलनात्मक रूप से कम होती है) से संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

(10) **मुद्रा को घर में रखने का तर्क** (Keeping Money at Home Argument): इस तर्क के अनुसार जब हम विदेशों से निर्मित वस्तुओं का आयात करते है तब हमें वस्तुएँ प्राप्त होती है और विदेशी निर्यातकों को मुद्रा प्राप्त होती है। किन्तु जब हम निर्मित वस्तुओं को अपने देश में खरीदेंगे, तब हमें वस्तुएँ तथा मुद्रा दोनों ही प्राप्त होंगे। किन्तु यह तर्क असंगत है, क्योंकि यदि सभी देश इस तर्क का पालन करने लगेंगे, तो कोई अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होगा और न ही इसके लाभ किसी देश को प्राप्त होंगे।

(11) **स्वदेशी बाजार के विस्तार का तर्क** (Expanding Home Market Argument): संरक्षण के फलस्वरूप सभी घरेलू वस्तुओं के स्वदेशी बाजार का विस्तार हो सकेगा। घरेलू इकाइयाँ सम्पूर्ण घरेलू बाजार में अपने उत्पाद बेच पाएँगी।

(12) **आत्मनिर्भरता का तर्क** (Self-sufficiency Argument): सभी देश प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना चाहते है। इसका कारण यह है कि युद्ध काल में या किसी अन्य आर्थिक संकट के समय में विदेशों से वस्तुओं के आयात में बाधा पड़ जाती है और देशवासियों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए उद्योगों को पनपने का अवसर मिलना चाहिए, इसके लिए उद्योगों को संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना असम्भव है। ऐसा होने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

(13) **हानिकारक तथा विलासिता की वस्तुओं के आयात पर रोक** (To Check the Import of Luxuries and Harmful Goods): स्वतंत्र व्यापार में बहुत-सी हानिकारक तथा महंगी विलासिता की वस्तुओं, जैसे महंगी ब्राण्डेड शराब, प्रीमियम कारों का आयात भी हो जाता है। हानिकारक उत्पादों के आयात से लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए इन वस्तुओं के हानिकारक प्रभाव से बचने के लिए इनके आयात पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ता है। अतएव संरक्षण के द्वारा हानिकारक तथा विलासिता की वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है।

(14) **विदेशी पूँजी आकर्षित करने के लिए** (To Attract Foreign Capital): संरक्षण नीति के द्वारा देश में विदेशी पूँजी को आकर्षित किया जा सकता है। संरक्षण के लिए लगाए गए करों से बचने के लिए विकसित देश माल का निर्यात न करके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संरक्षण की नीति अपनाने वाले देश में पूँजी का निवेश करने लगते है, अर्थात् करों व व्यापार प्रतिबंधों से बचने के लिए विदेशी इकाइयां निवेश रुट अपनाती है। इससे संरक्षण नीति अपनाने वाले देश में विदेशी पूंजी के अंतर्प्रवाह में वृद्धि होती है।

(15) **बचत में वृद्धि** (Increase in Saving): संरक्षण नीति से बचत को प्रोत्साहन मिलता है। जब विदेशी वस्तुओं के आयात पर ऊँचे कर लगा दिए जाते है तो आयातित वस्तुएँ महँगी पड़ती है। इसके परिणामस्वरूप दिखावे तथा शान शौकत की आयातित वस्तुओं पर किया जाने वाला उपभोग व्यय कम हो जाता है और बचत में वृद्धि होती है। इस बचत का उपयोग पूँजी पदार्थों का आयात करने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार देश में पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

- **II. गैर-आर्थिक तर्क (Non-Economic Arguments)**

(1) **सुरक्षा तर्क** (Defence Argument): सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने की नीति अपनानी चाहिए। यदि एक देश अपनी औद्योगिक तथा कृषि संबंधी वस्तुओं के लिए अन्य देशों पर आश्रित रहेगा तो युद्ध के समय ऐसी निर्भरता राष्ट्रीय हित के लिए बहुत अधिक हानिकारक सिद्ध होगी।

(2) **संरक्षण तर्क** (Preservation Argument): राष्ट्र के निश्चित वर्गों के लुप्त होते परंपरागत धन्धों व ऐसे प्राचीन पेशों, जो देश की संस्कृति की निशानी है, को सुरक्षित रखने के लिए भी संरक्षण की नीति का समर्थन किया जाता है।

(3) **राष्ट्रीयता तर्क** (Nationalism Argument): संसार के अधिकतर देशों के लोग अपने देश में निर्मित वस्तुओं का उपभोग करना नहीं चाहते। भारत जैसे पिछड़े हुए देशों में लम्बी दासता के कारण यह मनोवृत्ति बन गई है कि स्वदेशी माल घटिया होता है और विदेशी माल हमेशा बढ़िया होता है। इस प्रवृत्ति को दूर करने के लिए स्वदेशी की भावना को

जागृत किया जाता है सरक्षण के कारण विदेशी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाये जाने से स्वदेशी वस्तुओं की माँग बढ़ती है और इससे राष्ट्रीय भावना भी जागृत होती है।

■ 3.2 संरक्षण के विपक्ष में तर्क (Arguments Against Protection)

(1) **अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने में बाधा** (Hindrance in Achieving Maximum Output): संरक्षण नीति में लागए गए प्रतिबन्धों के कारण उत्पादन साधनों की गतिशीलता तथा अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन में कठिनाइयाँ आती है। इस कारण साधनों का पूरा उपयोग तथा श्रम विभाजन के लाभ प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि साधनों के वितरण में असतुलन उत्पन्न हो जाता है तथा सामाजिक लाभ कम हो जाता है।

(2) **उपभोक्ताओं को हानि** (Loss to the Consumers): संरक्षण नीति के अनुसार लगाए गए आयात करों के परिणामस्वरूप आयात वस्तुओं के मूल्य उतने ही बढ़ जाते हैं जितना कि कर लगाया जाता है। इसलिए उपभोक्ताओं को महँगी वस्तुएँ खरीदनी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त यदि आयातों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाए तो उपभोक्ताओं को देश के अन्दर बनी हुई घटिया किस्म की वस्तुएँ महँगी खरीदनी पड़ेंगी। वे विदेशों में बनी उच्च क्वालिटी की वस्तुओं का उपभोग नहीं कर पाएगें।

(3) **साधनों का अनार्थिक उपयोग** (Uneconomic Use of Resources): संरक्षण नीति में लगाए गए प्रतिबन्धों के कारण देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का उसी देश में प्रयोग करना पड़ता है। अविकसित देशों में पूँजी तथा तकनीकी ज्ञान की उचित सुविधाएँ प्राप्त न होने के कारण प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग सम्भव नही होता है, इससे प्राकृतिक साधनों का अल्प-उपयोग होता है।

(4) **अकुशल तथा दुर्बल उद्योगों को प्रोत्साहन** (Encouragement to Inefficient and Weak Enterprises): संरक्षण के कारण स्वदेशी उद्योगों में शिथिलता आ जाती है। उत्पादक यह जानते है कि विदेशी आयात पर या तो ऊँचे कर लगे हुए है या उन पर पूर्ण प्रतिबन्ध है। इसलिए वे जैसा भी माल बनाएँगे वह ऊँचे दामों पर बिक जाएगा। इस प्रकार प्रतियोगिता की स्थिति में उत्पादकों में वस्तु को बढ़िया बनाने तथा लागत को घटाने का जो प्रोत्साहन रहता है, संरक्षण मिलने पर वह समाप्त हो जाता है। इसलिए संरक्षण में अकुशल तथा दुर्बल उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है।

(5) **विदेशी व्यापार में कमी** (Fall in Foreign Trade): संरक्षण नीति में आयातों पर या तो प्रतिबन्ध लगा दिए जाते है या ऊँचे कर लगा दिए जाते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि आयात कम हो जाते है। आयातों के कम होने पर निर्यात भी कम हो जाते है। इस प्रकार संरक्षण की स्थिति में विदेशी व्यापार में कमी आ जाती है।

(6) **धन और आय का असमान वितरण** (Unequal Distribution of Wealth and Income): संरक्षण के कारण धन और आय के वितरण में असमानता उत्पन्न होती है। अमीर अधिक अमीर तथा गरीब अधिक गरीब हो जाता है। इसका कारण यह है कि पूँजीपति घटिया वस्तुएँ बनाकर अधिक मूल्य पर बेचते हैं और इस प्रकार अत्यधिक लाभ कमाते हैं। कीमते अत्यधिक बढ़ने के कारण उपभोक्ताओं को हानि उठानी पड़ती है।

(7) **अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार** (Immorality and Corruption): संरक्षण के कारण अनैतिकता और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। संरक्षण प्राप्त उद्योगों के मालिक लम्बे समय तक संरक्षण प्राप्त करने के लिए अपने उद्योगों का ऐसा चित्र पेश करते है जिससे यह लगे कि ये उद्योग दुर्बल हैं और उनसे कोई लाभ प्राप्त नहीं हो रहा। इसके लिए वे सरकारी अधिकारियों को रिश्वत देकर उन्हें संरक्षण जारी रखने के पक्ष में बोलने के लिए बाध्य करते हैं।

(8) **अंतर्राष्ट्रीय द्वेष** (International Hostility): संरक्षण से अंतर्राष्ट्रीय शत्रुता एवं द्वेष की भावना उत्पन्न होती है। जब एक देश अपने आयातों पर ऊँचे कर लगा देता है तो दूसरा देश भी बदले की भावना से वही काम करता है। प्रारम्भ में बदले की यह भावना आर्थिक द्वेष तक सीमित रहती है, परंतु धीरे-धीरे शीत युद्ध का रूप धारण कर लेती है और अन्त में यह युद्ध में बदल जाती है।

(9) **तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की अवहेलना** (Ignores the Comparative Cost Theory): संरक्षण नीति के अन्तर्गत सभी देश प्रत्येक वस्तु का उत्पादन करने का प्रयास करते हैं। वे केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते जिनमें उन्हें तुलनात्मक लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार से संरक्षण नीति के फलस्वरूप तुलनात्मक सिद्धान्त की अवहेलना होती है तथा संसार का कुल उत्पादन बढ़ने नहीं पाता।

(10) **कुशल उद्योगों को प्रोत्साहन नहीं** (No Encouragement to Efficient Industries): कुछ उद्योगों को संरक्षण मिलने से कुशल उद्योगों को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। विश्व-व्यापी आयात प्रतिबन्धों के कारण औद्योगिक इकाइयों का विक्रय क्षेत्र सीमित होकर केवल स्वदेशी बाजार ही रह जाता है। इस कारण उन्हें विकास व फैलाव का अवसर नहीं मिलता।

(11) **एकाधिकारी प्रवृत्ति** (Monopolistic Tendency): संरक्षण नीति में आयात पर लगाए गए प्रतिबधों के परिणामस्वरूप प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है और उसका स्थान एकाधिकारी ले लेते है। एकाधिकारी उद्योगों को प्रतियोगिता का कोई डर नहीं रहता। उद्योगों की कार्यकुशलता में वृद्धि नहीं होती। इसके फलस्वरूप घटिया किस्म की वस्तुओं का उत्पादन होता है। परतु एकाधिकारी उनकी कीमत अधिक वसूल करते है। इससे उपभोक्ताओं का शोषण होता है।

(12) **उचित प्रतियोगिता का अभाव** (Lack of Fair Competition): संरक्षण के कारण आयात-निर्यात पर बहुत से प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं, इसलिए ससार के विभिन्न देशों को उचित प्रतियोगिता तथा विशिष्टीकरण से होने वाले लाभों से वंचित रहना पड़ता है।

■ 4. संरक्षण की विधियाँ (Methods of Protection)

संरक्षण नीति के संयत्रों/विधियों को निम्न मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है; जैसे (i) **प्रशुल्क प्रतिबंध/रोकें,** (ii) **गैर-प्रशुल्क प्रतिबंध/रोकें तथा** (iii) **प्राकृतिक प्रतिबंध/रोकें।**

■ 4.1 प्रशुल्क प्रतिबन्ध/रोकें (Tariff Barriers)

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए विश्व के सभी देश प्रशुल्क का प्रयोग करते है। जब कोई व्यापार-वस्तुएँ राष्ट्रीय सीमा को पार करती है तब उस पर लगाए जाने वाले कर को प्रशुल्क कहते है। आयात प्रशुल्क आयातित वस्तुओं पर लगाए जाने वाले कर है जबकि निर्यात प्रशुल्क निर्यातित वस्तुओं पर लगाए जाने वाले कर है। संरक्षण की नीति के संदर्भ में आयात-प्रशुल्क निर्यात प्रशुल्क से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। वास्तव में, प्रशुल्क रोकों का सम्बन्ध आयात प्रशुल्कों से है। आयात प्रशुल्कों के कारण आयातित वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाती है जिससे घरेलू उत्पादकों को अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में संरक्षण प्राप्त होता है। आयात-प्रशुल्क/आयात कर तीन प्रकार के होते हैं:

(i) **विशिष्ट कर** (Specific Duty): जो आयात कर वस्तुओं के वजन, नाप या गिनती के अनुसार लगाए जाते है, उन्हें विशिष्ट कर कहते है। इन्हें आयातित उत्पाद के प्रति भौतिक इकाई पर एक निर्धारित राशि के रूप में लगाया जाता है; जैसे- मान लो एक भारतीय आयातक को जर्मनी से कंप्यूटर आयात करने पर भारत सरकार को ₹ 1,000 प्रति कप्यूटर की दर से आयात कर देना पड़ता है, चाहे कंप्यूटर की कीमत कुछ भी हो, तो यह विशिष्ट कर का उदाहरण है।

(ii) **मुल्यानुसार कर** (Ad-valorem Duty): जो आयात कर वस्तुओं के मूल्य के प्रतिशत के रूप में लगाए जाते है, उन्हें मूल्यानुसार कर कहा जाता है। यह बिक्री कर की तरह उत्पाद के मूल्य पर एक निर्धारित प्रतिशत के रूप में लगाया जाता है। जैसे- आयातित कंप्यूटर पर 10 प्रतिशत की दर से मूल्यानुसार कर लगाया जा सकता है। यदि एक भारतीय जर्मनी से कंप्यूटर आयात करता है, जिसका मूल्य ₹ 30,000 है, तो उसे ₹ 3,000 (30,000 × 10% = 3,000) का आयात कर देना होगा।

(iii) **संयुक्त टैरिफ** (Compound Tariff): यह विशिष्ट कर व मूल्यानुसार कर का सयोग है। जैसे- यदि भारतीय आयातक को जर्मनी से कंप्यूटर आयात करने पर ₹ 1,000 निर्धारित राशि तथा कंप्यूटर के मूल्य पर 5 प्रतिशत का मूल्यानुसार कर लगाया जाता है, तो इसे संयुक्त टैरिफ कहा जाएगा।

■ प्रशुल्क कैसे काम करते हैं? (How do Tariffs Work?)

एक अर्थव्यवस्था में प्रशुल्क कैसे काम करते है इसे चित्र 1 द्वारा समझाया गया है। इसमें बताया गया है कि कैसे उपभोक्ता, सरकार, घरेलू उत्पादकों तथा विदेशी उत्पादकों को प्रशुल्क लगाने से लाभ हानि होती है।

चित्र 1 में D तथा S किसी वस्तु की क्रमशः माँग तथा पूर्ति को प्रकट करने वाली वक्रे है। स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति में Q_0Q_1 इकाइयों का P_W कीमत पर आयात किया जाता है। (घरेलू उपभोक्ता के लिए Q_0Q_1 अतिरिक्त माँग है)। प्रत्येक आयातित इकाई पर 't' के बराबर प्रशुल्क लगाया जाता है। परिणामस्वरूप कीमत में 't' के बराबर वृद्धि होती है तथा प्रत्येक घरेलू उत्पादक को उस द्वारा बेची गयी इकाइयों की P_d कीमत प्राप्त होती है। इस कीमत पर उपभोग की मात्रा में Q_2Q_1 की कमी हो जाती है। उपभोक्ताओं को उपभोग की प्रत्येक इकाई की P_W की तुलना में ऊँची कीमत P_d चुकानी पड़ती है। प्रशुल्क के कारण उपभोक्ता की कुल हानि A, B तथा T क्षेत्र द्वारा दिखायी गयी है। (क्योंकि कीमत में 't' के बराबर वृद्धि हो जाती है, इसलिए उपभोक्ता को OQ_2 की प्रत्येक इकाई पर 't' के बराबर अतिरिक्त राशि चुकानी पड़ती है।)

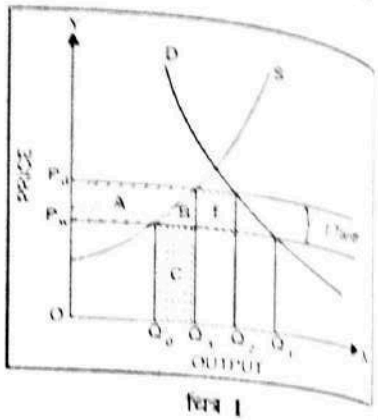

चित्र 1

घरेलू उत्पादक अब अधिक इकाइयों की बिक्री कर सकते है और उनकी पूर्ति बढ़कर OQ_3 इकाइयाँ हो जाती है। फलस्वरूप, आयातों को Q_3Q_2 इकाइयों तक ही सीमित रखा जाता है। घरेलू उत्पादकों को बेची गई प्रत्येक इकाई से P_d कीमत प्राप्त होती है इसलिए उनकी कुल आय (Revenue) A, B तथा C क्षेत्रफल के बराबर बढ़ जाती है। (स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति में C आय का क्षेत्र वह आय है जो विदेशी उत्पादक को प्राप्त करनी थी)। विदेशी उत्पादक P_W कीमत पर केवल Q_3Q_2 इकाइयाँ बेच सकते है, अतः उनकी कुल आय की प्रवृत्ति घटने की होती है। उपभोक्ता द्वारा खोया गया 'T' क्षेत्र सरकार को प्राप्त होता है। 'T' क्षेत्र उस कुल आय को प्रकट करता है जो सरकार द्वारा प्रशुल्कों से तब एकत्र की जाती है, जब 't' प्रति इकाई आयात कर लगाया जाता है। (कुल सरकारी आय $= t \times Q_3Q_2$)

इस प्रकार प्रशुल्क रोकों (Tariff Barriers) से घरेलू कीमत में प्रशुल्क राशि के बराबर वृद्धि होती है, जिस कारण घरेलू उपभोक्ताओं तथा विदेशी उत्पादकों को हानि होती है तथा घरेलू उत्पादकों को लाभ होता है। निस्सन्देह, सरकार को कर आय (Tax Revenue) के रूप में लाभ प्राप्त होता है।

■ 4.2 गैर-प्रशुल्क प्रतिबंध/रोकें (Non-tariff Restrictions/Barriers)

वे रोकें जिनसे आयातित वस्तु की कीमत में सीधे वृद्धि नहीं होती, गैर प्रशुल्क रोकें कहलाती है। दूसरे शब्दों में, कोई भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यापार प्रतिबन्ध जिसमें प्रशुल्क सम्मिलित नहीं होता, गैर प्रशुल्क रोक कहलाता है। कुछ महत्त्वपूर्ण गैर प्रशुल्क रोकें को नीचे दिया गया है:

(1) आयात कोटा प्रणाली (Import Quota System): आयात कोटा प्रणाली संरक्षण की एक अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रभावशील प्रणाली है। इसके अन्तर्गत सरकार एक निश्चित समय में विभिन्न देशों से विभिन्न वस्तुओं के आयातों की मात्रा निश्चित कर देती है। आयातकर्ता इस निश्चित मात्रा, जो कि स्वदेशी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है, से अधिक आयात नहीं कर सकते। कोटा प्रणाली दो प्रकार की होती है। **(i) देशीय कोटा** (Country Quota): इसके अन्तर्गत सरकार द्वारा यह निश्चित कर दिया जाता है कि किस देश से कितना माल मँगवाया जा सकता है। **(ii) विश्वव्यापी कोटा** (Global Quota): इसके अन्तर्गत सरकार प्रत्येक वस्तु की आयात की जाने वाली अधिकतम सीमा निश्चित कर देती है। यह माल किसी भी देश से मँगवाया जा सकता है। आयातित वस्तुओं की शेष माँग देश में उत्पादन बढ़ा कर पूरी की जाती है। इस प्रकार स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण मिल जाता है।

(2) राजकीय व्यापार (State Trading): इसके अन्तर्गत विदेशी व्यापार पर सरकार का नियन्त्रण हो जाता है। सरकार जिन वस्तुओं का जितनी मात्रा में आयात करना उचित समझती है उनका आयात करती है। [illegible] संरक्षण देना चाहती है, उसके द्वारा तैयार माल का विदेशों से आयात बन्द कर देती या कम कर देती है।

(3) वित्तीय अनुदान (Subsidies): स्वदेशी उद्योगों के संरक्षण की यह एक परोक्ष विधि है। [illegible] अथवा कर लगाने के स्थान पर स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन पर वित्तीय अनुदान देता है। [illegible] अपनी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाकर विदेशों से कम लागत पर वस्तुओं का उत्पादन कर सकते है। [illegible] उत्पादों को आयातित उत्पादों की तुलना में प्राथमिकता देंगे।

(4) अवमूल्यन (Devaluation): किसी देश की मुद्रा के अवमूल्यन से आयातों में कमी तथा निर्यातों को प्रोत्साहन मिलता है। अवमूल्यन के कारण देश की मुद्रा की कीमत विदेशी मुद्रा की कीमत की तुलना में कम हो जाती है। [illegible] अवमूल्यन करने से आयात महँगे हो जाते है तथा निर्यात सस्ते हो जाते है। इसलिए निर्यातों में वृद्धि हो जाती है। यह संरक्षण की एक परोक्ष विधि है।

(5) विनिमय नियन्त्रण (Exchange Control): विनिमय नियन्त्रण को मौद्रिक प्रतिबन्ध भी कहा जाता है। विनिमय नियन्त्रण में विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) पर सरकार का नियन्त्रण रहता है। प्रत्येक आयातकर्ता को विदेशी वस्तुओं की कीमत चुकाने के लिए विदेशी मुद्रा सरकार से लेनी पड़ती है। सरकार केवल उन्हीं वस्तुओं के आयात के लिए विदेशी मुद्रा प्रदान करती है जिन वस्तुओं की देश में कमी होती है अथवा जिनका देश में निर्माण नहीं हो सकता है। इस प्रकार स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण मिल जाता है।

(6) वैधानिक निषेध (Legal Prohibitions): स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए कई बार सरकारी नियमों द्वारा आयातों तथा निर्यातों पर प्रतिबन्ध लगा दिए जाते है। विशेष वस्तुओं का कानून द्वारा आयात बन्द कर दिया जाता है। जैसे भारत में बनी हुई मलमल तथा छींट की [illegible] अत्यधिक [illegible] करती थी। इससे इंग्लैण्ड के कपड़ा उद्योग की माँग कम हो गई थी। ब्रिटिश सरकार ने इन कपड़ों का इंग्लैण्ड में आयात बन्द करके अपने कपड़ा उद्योग का संरक्षण किया था।

(7) भेदमूलक माल भाड़ा दरें (Discriminating Freight Rates): उद्योगों को संरक्षण देने की यह भी एक विधि है। जिन देशों के पास अपने परिवहन के साधन होते है वे आयात की गई वस्तुओं पर अधिक किराया लेकर आयातों को कम करने तथा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर कम किराया लेकर निर्यातों को बढ़ावा देने का प्रयत्न करते है।

(8) लाइसेंस प्रणाली (Licence System): सरकार अनुचित तथा अनावश्यक आयातों को कम करने के लिए लाइसेंस प्रणाली प्रारम्भ कर देती है। किसी भी वस्तु को आयात करने के लिए सरकार से लाइसेंस लेना आवश्यक होता है। सरकार उन वस्तुओं के आयात का लाइसेंस नहीं देती जिनके उत्पादन की देश में वृद्धि की जाती है। इस प्रकार भी सरकार उद्योगों को संरक्षण देती है।

(9) द्विपक्षीय समझौते (Bilateral Agreements): किन्हीं दो देशों में आयात निर्यात करने के सम्बन्ध में एक दूसरे को विशेष सुविधाएँ देने के लिए समझौता हो जाता है। ये सुविधाएँ अन्य देशों पर लागू नहीं होती। इससे इन दो देशों के मध्य व्यापार को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार व्यापार में वृद्धि भी होती है तथा स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण भी मिल जाता है।

(10) तकनीकी नियमन (Technical Regulations): कुछ सरकारें स्वास्थ्य, सुरक्षा व पर्यावरण संरक्षण आदि को ध्यान में रखते हुए आयातों पर प्रतिबन्ध लगाती है। यदि सरकार को ऐसा लगता है कि कुछ उत्पाद स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते है या किसी कारण सुरक्षा मापदंडों को पूरा नहीं करते, तो [illegible] सरकार इन उत्पादों के आयात पर कुछ रोक लगा देती है। इसी तरह यदि किसी उत्पाद से पर्यावरण संरक्षण सम्भव नहीं है, तो सरकार उस उत्पाद के आयात की मनाही कर सकती है।

(11) **प्रशासनिक प्रतिबंध** (Administrative Barriers): कई बार आयातों को कम करने के लिए सरकार जानबूझ कर प्रशासनिक औपचारिकताएं बढ़ा देती है ताकि इनसे लोग आयात के लिए हतोत्साहित हो जाए; जैसे- उत्पादों की अत्यधिक जाँच पड़ताल, जटिल फार्म व अत्यधिक कागजी कार्यवाही, मजूरी में अत्यधिक देरी, उत्पादो की लेबलिंग व पैकिंग से सबंधित अत्यधिक प्रावधान आदि। इन औपचारिकताओं से परेशान होकर लोग आयात का विचार ही छोड़ देते है, तथा घरेलू उत्पाद खरीदने के लिए मन बना लेते है। ये प्रतिबध छिपे हुए प्रतिबधों (Hidden Barriers) का एक प्रारूप है।

(12) **सरकारी खरीद में घरेलू उत्पादों को प्राथमिकता** (Preference to Domestic Products for Government Procurement): कई बार सरकार अपने लिए उत्पाद खरीदते समय घरेलू उत्पादों को, विदेशी उत्पादों की तुलना में अधिक प्राथमिकता देती है; चाहे विदेशी उत्पाद घरेलू उत्पाद से सस्ता भी क्यों न हो। ऐसा विशेषकर तब होता है, जब देश का भुगतान शेष प्रतिकूल होता है। सरकार का ऐसा दृष्टिकोण अतर्राष्ट्रीय व्यापार के रास्ते में बाधा उत्पन्न करता है। सरकार का ऐसा दृष्टिकोण छिपी हुई रुकावटों का एक प्रारूप है।

(13) **विदेशी उत्पादों के प्रति नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण बनाना** (Developing Negative Attitude of Society towards Foreign Products): कई बार कुछ सामाजिक सगठन विदेशी उत्पादो के प्रयोग का विरोध करते है। वे प्रदर्शन द्वारा, मीडिया में लेख देकर जन सामान्य को विदेशी उत्पादों के बहिष्कार के लिए प्रेरित करते है। रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र में यह नारा, "भारतीय बने, भारतीय खरीदें" (Be Indian, Buy Indian) बार-बार दिया जाता है। सामाजिक सगठन जन-सामान्य को विदेशी उत्पादों के नकारात्मक पहलू बार-बार बता कर उन्हें भारतीय उत्पाद ही खरीदने के लिए प्रेरित करते है। इससे आयातों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

■ 4.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्राकृतिक प्रतिबंध—परिवहन लागत

(Natural Barriers to International Trade—Transportation Cost)

अतर्राष्ट्रीय व्यापार के अधिकतर सिद्धात इस अवास्तविक मान्यता पर आधारित है कि अतर्राष्ट्रीय व्यापार पर परिवहन लागतों का कोई प्रभाव नही पड़ता। इन सिद्धातों में परिवहन लागत की उपेक्षा की गई है। परतु वास्तविक जीवन में परिवहन लागत का अतर्राष्ट्रीय व्यापार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जब तक दो देशों में किसी वस्तु की उत्पादन लागतों में पाया जाने वाला अंतर परिवहन लागत (Transport Cost) से अधिक नही होगा, उस समय तक वस्तु का आयात और निर्यात नहीं किया जा सकेगा। अतएव किसी देश की निर्यात की क्षमता केवल उत्पादन की तुलनात्मक लागत पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं होती, बल्कि साथ ही साथ परिवहन लागत पर भी निर्भर होती है। यदि परिवहन लागत दो देशों में किसी वस्तु की कीमत-अंतर से अधिक है तो उन देशों में उस वस्तु का व्यापार नही होता।

अतर्राष्ट्रीय व्यापार में अत्यधिक दूरी के कारण उत्पादों के परिवहन में बहुत अधिक खर्चा हो जाता है; जैसे- माल भाड़ा, बीमा व्यय, माल को लादने व उतारने संबंधी व्यय, पोर्ट व्यय आदि। परिवहन लागत से आयातित उत्पादों की कीमत बढ़ जाती है। यदि परिवहन लागत 'घरेलू कीमत व विदेशी बाजार में कीमत के अतर' से अधिक है, तो उस उत्पाद को विदेश से आयात नहीं किया जाता। परतु यदि परिवहन लागत 'घरेलू कीमत व विदेशी बाजार में कीमत के अतर' से कम है, तो विदेशी व्यापार होता है। परंतु प्रत्येक दशा में परिवहन लागत अतर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा को कम करता है। अर्थात् परिवहन लागत अतर्राष्ट्रीय व्यापार के रास्ते में बाधा है।

परिवहन लागत से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ कम हो जाते हैं क्योंकि परिवहन लागत से लागत-अंतर (घरेलू कीमतों व विदेशी कीमतो में अतर) कम हो जाता है। परिवहन लागत से विदेशी व्यापार की मात्रा भी कम हो जाती है। ये सभी व्यापार प्रतिबंध; जैसे- टैरिफ बाधाएँ, परिवहन लागत, अत्यधिक प्रशासनिक औपचारिकताएँ, जन-सामान्य का विदेशी उत्पादों के लिए नकारात्मक दृष्टिकोण, सामाजिक प्रचार (Social-Propaganda) व अन्य गैर-टैरिफ-प्रतिबंध, आदि की समस्या को निवेश पद्धति (Investment Mode) अपना कर दूर किया जा सकता है। इस पद्धति में विदेशी कंपनी अपना उत्पादन आधार मेजबान देश में हस्तांतरित कर देती है। उत्पाद मेजबान देश में ही बनाए जाते है। ये मूल देश से मेजबान देश में निर्यात नहीं किए जाते, अत: इन पर टैरिफ व गैर-टैरिफ प्रतिबंध लागू नही होते। इन पर परिवहन लागत भी नहीं देनी पड़ती, क्योंकि इनका उत्पादन मेजबान देश में ही किया जाता है। मेजबान देश की सरकार भी विदेशी कंपनियों को निवेश के लिए आकर्षित करती है। क्योंकि इससे मेजबान देश की अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण, निर्यात व रोजगार को बढ़ावा मिलता है। इससे वहाँ आर्थिक विकास की गति में वृद्धि होती है। इससे मेजबान देश की भुगतान शेष की

समस्या के समाधान में भी सहायता मिलती है क्योंकि विदेशी निवेश के साथ विदेशी मुद्रा का अंतर्प्रवाह भी होता है। यद्यपि अतर्राष्ट्रीय व्यापार सगठन; जैसे- विश्व व्यापार सगठन (WTO) अतर्राष्ट्रीय व्यापार से टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ समाप्त करने के लिए प्रयास कर रहे हैं, तथापि अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का भविष्य निवेश पद्धति में ही दिखता है।

■ संरक्षण की उत्तम विधि कौन-सी है? (Which Method of Protection is Best?)

सरक्षण की विभिन्न विधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् भी यह निर्णय लेना कठिन हो जाता है इसमें से सबसे उत्तम विधि कौन-सी है। यह एक जटिल एव विवादपूर्ण प्रश्न है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक विधि के अपने-अपने गुण व दोष है। इसलिए अर्थशास्त्रियों के पास ऐसा कोई मापदण्ड नही है जिसके आधार पर इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सके। ससार में विभिन्न देशों में **कोटा प्रणाली, आयात प्रशुल्क तथा लाइसेंस प्रणाली** का अधिक प्रयोग किया जाता है। यह निश्चित है कि इन विधियों से स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है। परतु इसके साथ यह भी भय बना रहता है कि इन विधियो के अपनाने से अन्य देशों में किस प्रकार की प्रतिक्रिया होगी। इसके अतिरिक्त कुछ देशों में स्वदेशी उद्योगो को वित्तीय अनुदान देकर भी अप्रत्यक्ष रूप से सरक्षण दिया जाता है। इस विधि का व्यापक रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह बहुत खर्चीली विधि है तथा इससे सरकार का वित्तीय भार बढ़ जाता है। **इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी भी विधि को उत्तम नहीं कहा जा सकता। विभिन्न देश अपने हितो को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर संरक्षण की विभिन्न विधियों का प्रयोग करते हैं।**

■ 5. अल्पविकसित देशों के लिए संरक्षण नीति का महत्त्व/औचित्य

(Rationale of Protection Policy for Less Developed Countries)

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए सरक्षण की नीति का बहुत अधिक महत्त्व एव औचित्यता है। इन देशो के लिए विशेष रूप से निम्नलिखित कारणों से सरक्षण की नीति उपयोगी होती है:

(1) **औद्योगिक विकास** (Industrial Development): अल्पविकसित देशो को नए-नए उद्योग स्थापित करने मे कठिनाई होती है क्योंकि उन्हें विकसित देशो के उद्योगों से प्रतियोगिता करनी पडती है। इस प्रतियोगिता का सामना करने के लिए इन देशों के लिए **शिशु उद्योग तर्क** (Infant Industries Argument) का बहुत अधिक महत्त्व है। इन देशो के लिए अपने नए उद्योगों को **संरक्षण** देना आवश्यक हो जाता है। सरक्षण के फलस्वरूप उद्योगो को विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला नहीं करना पड़ता तथा उनका उत्पादन महँगा तथा घटिया होने पर भी बाजार मे बिकने लगता है। इसके फलस्वरूप उद्योगों को अपना विकास करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। वे धीरे धीरे अपने उत्पादन को बढ़िया तथा सस्ता बनाने में सफल हो जाते हैं। परतु सरक्षण सभी उद्योगो को नहीं दिया जाना चाहिए। यह उन्ही उद्योगो को दिया जाना चाहिए। (i) जो आधारभूत उद्योग (Basic Industries) हो। (ii) जिनके विकास के लिए देश मे पर्याप्त धन उपलब्ध हो तथा (iii) जो संरक्षण के बिना पनप नहीं सकते हो। सरक्षण केवल एक निश्चित समय के लिए दिया जाना चाहिए तथा उसके बीतने पर हटा लिया जाना चाहिए। अतएव अल्पविकसित देशो मे **पूर्ण संरक्षण** के स्थान पर **भेदमूलक संरक्षण** (Discriminating Protection) दिया जाना चाहिए। यह अस्थायी होना चाहिए।

(2) **पूँजी निर्माण** (Capital Formation): अल्पविकसित देशो में लोगों की आय कम होती है। ये बचत कम कर पाते है। इससे निवेश तथा पूँजी निर्माण कम होता है। पूँजी निर्माण कम होने के कारण इन देशो में आय कम होती है। इस प्रकार **नर्कसे** (Nurkse) के अनुसार, **देश निर्धनता के दुश्चक्र** (Vicious Circle of Poverty) मे फंसे रहते है। इन देशों में जो लोग धनी होते हैं, वे अपना धन निवेश करने के स्थान पर शान-शौकत तथा विलासिता की वस्तुओ पर खर्च कर देते है। अन्य शब्दों में **प्रदर्शन प्रभाव** के अन्तर्गत लोग विदेशी वस्तुओं के उपभोग को अधिक महत्त्व देने लगते है। अल्पविकसित देशों की जनता की आय में वृद्धि करने तथा उन्हें बचत करने की प्रेरणा देने के लिए सरक्षण की नीति अपनाना आवश्यक है। इस नीति के अनुसार विलासिता की वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। इसके फलस्वरूप धनी लोग अपनी बचतों को निवेश करते हैं तथा देश में बनी हुई वस्तुओं पर खर्च करते है। इसका परिणाम यह होता है कि देश में उत्पादन बढ़ता है। अधिक लोगों को रोजगार मिलता है। आय में वृद्धि होती है। बचत करने की क्षमता बढ़ती है। निवेश तथा पूँजी निर्माण बढ़ता है। इसके फलस्वरूप आय में वृद्धि होती है तथा विकास की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है।

(3) **संतुलित विकास** (Balanced Development): अधिकतर अल्पविकसित देश कृषि प्रधान होते है तथा उनका औद्योगिक विकास बहुत कम होता है। इसके फलस्वरूप उनकी अर्थव्यवस्थाएँ असंतुलित रहती है। इन अर्थव्यवस्थाओं का संतुलित विकास करने के लिए उद्योगो का विकास करना आवश्यक हो जाता है। उद्योगो के विकास के लिए संरक्षण की नीति अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। पीगू के अनुसार, **''किसी कृषि प्रधान देश में जहाँ विनिर्माण के लिए प्राकृतिक साधन उपलब्ध है, उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करने के लिए संरक्षण की नीति का पक्ष अधिक मजबूत होता है।''** संक्षेप में, पिछड़े हुए कृषि प्रधान देशों को अपने औद्योगिक विकास के लिए संरक्षण की नीति अपनाना आवश्यक तथा लाभदायक हो जाता है।

(4) **आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक** (Necessary for Self-reliance): अल्पविकसित देशो मे आत्मनिर्भरता के लिए संरक्षण आवश्यक हो जाता है। आधुनिक युग मे प्रत्येक राष्ट्र ठोस सुरक्षा, आत्मनिर्भरता तथा पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संरक्षण की नीति अपनाने के लिए बाध्य है। इन देशो को अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि वे संरक्षण द्वारा उद्योगो का विविधीकरण करे तथा शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे देश की सुरक्षा की व्यवस्था करें।

(5) **नियोजित आर्थिक विकास के लिए आवश्यक** (Necessary for Planned Economic Development): अल्पविकसित देशों के नियोजित आर्थिक विकास के लिए संरक्षण आवश्यक होता है। आर्थिक नियोजन से अभिप्राय है निश्चित समय मे निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए देश के सीमित साधनो का कुशल प्रयोग। संरक्षण की नीति द्वारा देश के सीमित साधनो का पूर्व निर्धारित प्राथमिकता के अनुसार प्रयोग करना सम्भव होता है। इसके फलस्वरूप देश के साधन विलासिता तथा अनावश्यक उपभोग की वस्तुओ के स्थान पर विदेशो से नई तकनीक तथा पूँजीगत वस्तुओ का आयात करने के लिए प्रयोग किए जा सकते है।

(6) **विदेशी पूंजी के अंतरप्रवाह में वृद्धि** (Increase in Inflow of Foreign Capital): संरक्षण नीति से अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के व्यापार रूट मे बाधा आती है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ व्यापार रूट के स्थान पर निवेश रूट को अपनाने लगती है। निवेश रूट मे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश मे वृद्धि होती है। इससे संरक्षण नीति अपना रहे देश में विदेशी पूंजी का अंतरप्रवाह होने लगता है। विदेशी पूंजी के अंतरप्रवाह मे वृद्धि से भुगतान शेष पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(7) **व्यापार की अनुकूल शर्तें** (Favourable Terms of Trade): कुछ अर्थशास्त्रियों का यह विचार था कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें अल्पविकसित देशों के लिए प्रतिकूल तथा विकसित देशो के लिए अनुकूल होती जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अल्पविकसित देश कृषि पदार्थों का निर्यात करते है तथा तैयार माल का आयात करते है। इसलिए अल्पविकसित देशों को संरक्षण की नीति अपनानी चाहिए, एक ओर तैयार माल के आयात पर ऊंची दर के आयात कर लगाने चाहिए तथा दूसरी ओर देश मे **आयात प्रतिस्थापन** (Import Substitution) उद्योगो तथा निर्यात उद्योगो को प्रोत्साहित करना चाहिए, इसके फलस्वरूप इन देशो के तैयार माल के निर्यात बढ़ेगे व आयात कम होने लगेंगे। इससे व्यापार की शर्तें इनके अनुकूल होने लगेंगी।

(8) **भुगतान शेष के असंतुलन को ठीक करना** (To Correct Disequilibrium in Balance of Payments): अधिकतर अल्पविकसित देशों का भुगतान शेष प्रतिकूल होता है, इसे संतुलित करने के लिए आवश्यक है कि संरक्षण नीति द्वारा आयात पर प्रतिबन्ध लगाए जाएं, इसके फलस्वरूप आयात कम होंगे। आयात पर प्रतिबन्ध लगाने के साथ-साथ निर्यात बढ़ाने के प्रयत्न किये जाने चाहिए, इसका परिणाम यह होगा कि भुगतान शेष संतुलित होने की प्रवृत्ति रखा करेगा।

संक्षेप में, लगभग प्रत्येक अल्पविकसित देश संरक्षण की नीति अपनाकर अपना विकास करने का प्रयत्न करता है।

■ 6. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के निवेश प्रारूप में बाधाएँ (Barriers to Investment Mode of International Business)

(1) **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की कठोर नीति** (Strict Foreign Direct Investment Policy): बहुत से देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति बहुत कठोर होती है, जो कुछ क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को सम्पूर्ण रूप से प्रतिबंधित (Ban) कर देती है या उन पर स्वामित्व सबंधी सीमा (Ownership Ceilings) निर्धारित कर देती है। प्रायः यह स्वामित्व सीमा 26 प्रतिशत, 49 प्रतिशत, 51 प्रतिशत, 74 प्रतिशत होती है। कठोर दृष्टिकोण होने पर स्वामित्व सीमा कम निर्धारित की जाती है। जैसे 26 प्रतिशत स्वामित्व सीमा का तात्पर्य है कि विदेशी कपनी मेजबान देश की कपनी की समता पूजी की अधिकतम 26 प्रतिशत तक की स्वामी हो सकती है। पूंजी पर स्वामित्व सीमा निवेश प्रारूप में बाधा उत्पन्न करती है।

(2) **अत्यधिक नियंत्रण** (Excessive Checks and Controls): कुछ देशो मे अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के निवेश प्रारूप पर अत्यधिक नियंत्रण लगाया जाता है। विदेशी कपनियो को मेजबान देश मे सहायक कपनी स्थापित करने के लिए विभिन्न सरकारी विभागो से अनुमति लेनी पड़ती है, जिसमे अत्यधिक औपचारिकताएं होती है। कई बार विदेशी कपनियों को सरकारी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए सरकारी अफसरो को बड़ी राशि रिश्वत के रूप मे भी देनी पड़ती है। ये अत्यधिक सरकारी नियंत्रण अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के निवेश प्रारूप में बाधा उत्पन्न करते है।

(3) **प्रत्यावर्तन पर प्रतिबंध** (Restriction on Repatriation): कुछ मेजबान देशो मे विदेशी कपनियो पर ब्याज, लाभाश, लाभ, रॉयल्टी, तकनीकी सेवाओ की फीस, पूंजी आदि को मूल देश मे वापस भेजने पर मनाही होती है या अत्यधिक शर्तें लगायी जाती है। इससे विदेशी निवेशक ऐसे मेजबान देशो मे निवेश माध्यम द्वारा व्यवसाय मे प्रवेश नही लेते, क्योकि कोई भी निवेशक उस देश में निवेश नही करेगा, जहा उसे निवेश पर अर्जित आय या मूल पूंजी वापस लेने पर मनाही या अत्यधिक प्रतिबध हों।

(4) **जन सामान्य का नकारात्मक दृष्टिकोण** (Negative Attitude of General Public): कुछ देशो मे, जन सामान्य का विदेशी उत्पादों व विदेशी कपनियों के प्रति अत्यधिक नकारात्मक दृष्टिकोण होता है। उनका यह मानना है कि विदेशी उत्पाद व विदेशी कपनिया उनकी संस्कृति को नष्ट कर देगी। उनके घरेलू उद्योगो को हानि पहुँचाएगी, पूँजी प्रेरक तकनीक का प्रयोग करके रोजगार अवसरो को कम करेगी। मेजबान देश के छोटे उद्यमी, विदेशी कपनियो से प्रतिस्पर्धा का सामना करने में असफल होकर बेरोजगार हो जाते है क्योकि अत्यधिक प्रतिस्पर्धा के कारण उनके छोटे उपक्रम बद हो जाते है। वे विदेशी कपनियो को बहुत ही बुरी नजर से देखते है। मेजबान देश के लोगो का नकारात्मक दृष्टिकोण विदेशी कपनी के निवेश प्रारूप द्वारा प्रवेश के रास्ते मे बाधा उत्पन्न करता है।

(5) **अनिवार्य निर्यात की शर्त** (Condition of Compulsory Export): कुछ देशो मे विदेशी कपनियो पर यह शर्त लगायी जाती है कि उन्हे मेजबान देश मे किए गए कुल उत्पादन का एक निश्चित प्रतिशत अनिवार्य रूप से निर्यात करना होगा। कई बार यह प्रतिशत इतना अधिक होता है कि विदेशी कपनी चाह कर भी मेजबान देश के घरेलू बाजार मे पकड नहीं बना पाती, क्योकि उसे अपने उत्पादन का अधिकतर अश निर्यात करना पड़ता है। ऐसा हो सकता है कि विदेशी कपनी ने मेजबान देश के विशाल घरेलू बाजार से आकर्षित होकर ही वहाँ निवेश माध्यम द्वारा प्रवेश का निर्णय लिया हो। इस तरह निर्यात की अनिवार्य शर्त भी निवेश माध्यम द्वारा अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय मे प्रवेश बाधा उत्पन्न करती है।

(6) **सामाजिक-सांस्कृतिक रुकावटें** (Socio-Cultural Barriers): विदेशी कपनी को मेजबान देश मे विभिन्न सामाजिक व सास्कृतिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। जैसे– भाषीय विभिन्नता, सामाजिक रीति रिवाजो, परपराओं, मूल्य व्यवस्था, कार्य-पद्धति, क्रय-उद्देश्यो, क्रय-व्यवहारो, कार्य-संस्कृति, उपभोक्ताओं की पसद, प्राथमिकता आदि में अत्यधिक भिन्नता के कारण विदेशी कपनी मेजबान देश मे निवेश माध्यम द्वारा प्रवेश लेने में हिचकिचाती है। मेजबान देश के कठोर सामाजिक वातावरण मे, विदेशी कपनी के कर्मचारी, स्वय को ढालने मे बहुत कठिनाई अनुभव करते है।

(7) **अधिक जोखिम** (More Risk): राष्ट्रीय व्यवसाय की तुलना से अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम की मात्रा अधिक होती है। निवेश माध्यम से मेज़बान देश में प्रवेश लेने पर, विदेशी कंपनी को अत्यधिक जोखिम का सामना करना पड़ता है। जैसे– राजनीतिक अस्थिरता के कारण सरकारी नीतियों में अनिश्चितता, सांस्कृतिक जोखिम, विदेशी विनिमय दर में अत्यधिक उतार-चढ़ाव के कारण जोखिम आदि। जोखिम की अत्यधिक मात्रा अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के रास्ते में बाधा उत्पन्न करती है।

(8) **व्यवसाय के नियंत्रण में कठिनाई** (Difficulty in Controlling the Business): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र पर फैला होता है। इस कारण प्रत्यक्ष बैठकें आयोजित करना मुश्किल होता है। इससे व्यवसाय के नियंत्रण में कठिनाई आती है। भाषीय विभिन्नता के कारण भी कर्मचारियों के साथ संचार में कठिनाई आती है, जिससे उन्हें प्रभावी रूप से नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा मूल देश व मेजबान देश की कार्य पद्धतियों में विभिन्नता भी नियंत्रण के रास्ते में बाधा उत्पन्न करती है।

(9) **लेखांकन व अंकेक्षण पद्धतियों में विभिन्नता** (Heterogenous Accounting and Auditing Procedures): विभिन्न देशों में लेखांकन व अंकेक्षण की पद्धतियों में अत्यधिक विभिन्नता है। इनमें एकरूपता के अभाव में मूल कंपनी व सहायक कंपनियों के समामेलित खाते बनाने में बहुत कठिनाई आती है।

(10) **विदेशी कंपनियों पर करों का अधिक भार** (More Taxes on Foreign Companies): कुछ देशों में विदेशी कंपनियों पर घरेलू कंपनियों की तुलना में करों की दरें अधिक होती हैं। मेजबान देश की सरकार का विदेशी कंपनियों के प्रति पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण विदेशी कंपनियों के निवेश माध्यम द्वारा प्रवेश के रास्ते में बाधा उत्पन्न करता है।

(11) **अन्य रुकावटें** (Other Barriers):

(i) विदेशी विनिमय दरों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव।

(ii) मेजबान देश में टैक्नोलॉज़ी की चोरी व नकल का भय।

(iii) मेजबान देश में अच्छी क्वालिटी की अधोसंरचना सुविधाओं का अभाव।

(iv) मेजबान देश में खराब कानून व्यवस्था, आतंकवादी हमले, अत्यधिक सांप्रदायिक दंगे।

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक सूचना एवं संचार

(International Business Information and Communication)

■ 1. परिचय (Introduction)

बाजार में आ रहे बदलावों को समझने के लिए सूचना एवं संचार की अहम भूमिका है। व्यावसायिक प्रबंधकों को विपणन वातावरण के विभिन्न घटकों, जैसे- प्रतियोगी इकाइयों, पूर्तिकर्ताओं, ग्राहकों, सरकारी नीतियों, तकनीकी नवाचारों, राजनैतिक वातावरण, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण, वैश्विक वातावरण आदि के बारे में सामयिक, उपयोगी एवं विश्वसनीय जानकारी की आवश्यकता पड़ती है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में न केवल घरेलू अर्थव्यवस्था के बारे में बल्कि उन सभी देशों के बारे में भी सूचना की आवश्यकता होती है जहाँ वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ कार्यरत है या जिन देशों में व्यवसाय फैलाने के बारे में सोच रही है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के प्रबंधकों को निर्णय लेने के लिए उचित समय पर उपयोगी तथा विश्वसनीय सूचनाओं का मिलना जरूरी है।

व्यावसायिक इकाई में प्रत्येक निर्णय लेते समय सूचना कच्चे माल का कार्य करती है। अर्थात् सूचनाओं के उपलब्ध होने पर ही प्रबंधक उचित निर्णय ले सकते है। सूचनाओं को प्राप्त करने के सामान्य स्रोत– सरकारी प्रकाशन, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन, जैसे- विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, अंकटाड (UNCTAD), संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व व्यापार संगठन के प्रकाशन; पत्रिकाएँ और जरनल, शोध प्रकाशन, व्यापार एवं उद्योग मंडल के प्रकाशन आदि है। आजकल इंटरनेट भी सूचना प्राप्त करने का एक आसान स्रोत उभर कर आया है। इंटरनेट में सूचना के विभिन्न स्रोतों से आसानी से सूचना प्राप्त की जा सकती है, जैसे- विश्व बैंक द्वारा जारी सूचनाओं को इंटरनेट के माध्यम से जाना जा सकता है, लेकिन कई बार सूचना की रिपोर्ट करने में व वास्तविक घटना जिसके बारे में सूचना दी जा रही है, के बीच एक लंबा समय अंतराल (Long Time-gap) होता है, यह लंबा समय अंतराल सूचना की उपयोगिता को कम कर देता है, उचित समय पर तथा विश्वसनीय सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए कुछ व्यावसायिक इकाईयाँ अपने स्वयं के बाजार सर्वेक्षण करवाती है जिससे इन इकाइयों को समय पर तथा सही जानकारी मिल सके। समय पर तथा सही जानकारी एकत्रित करने के लिए व्यावसायिक इकाईयाँ बहुत सा धन खर्च करती है। लगभग सभी बड़ी कंपनियों ने अपनी स्वयं की प्रबंध सूचना व्यवस्था (Management Information System–MIS) स्थापित की हुई है, यह सूचना व्यवस्था प्रबंधकों को प्रभावी निर्णय लेने के लिए समय पर, उपयोगी तथा विश्वसनीय सूचनाएँ उपलब्ध करवाती है।

सूचनाओं की प्राप्ति से निर्णय लेने में आने वाली अनिश्चितताओं को कम किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में कार्यरत इकाइयों के लिए अनिश्चितता का स्तर अधिक होता है, अतः इन व्यावसायिक इकाइयों को बहुत से तत्त्वों/घटकों के बारे में सूचना एकत्रित करनी पड़ती है, बड़ी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियाँ विभिन्न देशों के विपणन वातावरण के बारे में व्यवस्थित जानकारी एकत्रित करने के लिए अपना विपणन शोध विभाग (Marketing Research Department) बनाती है, वैश्विक व्यावसायिक इकाईयाँ विभिन्न विदेशी बाजारों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करती है जिससे उचित विदेशी बाजारों का चयन किया जा सके। सूचनाओं के आधार पर विभिन्न देशों के बाजारों में से कुछ देशों को चुना जाता है जहाँ व्यवसाय को प्राथमिकता दी जाए। लेकिन सूक्ष्म एवं छोटे व्यावसायिक उपक्रम साधनों के अभाव में विपणन शोध नहीं कर पाते। सूचनाओं के अभाव में ये सूक्ष्म एवं छोटे उपक्रम अपने उत्पादों को बेचने में मुश्किल का सामना करते है, इन छोटे उपक्रमों को बाजार क्षमता, प्रतिस्पर्धा का स्तर, ग्राहकों के स्वाद एवं पसंद आदि के बारे में पर्याप्त जानकारी का अभाव होता है, आजकल छोटे आयातक/निर्यातक इंटरनेट के माध्यम से विश्व बाजारों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करते है।

संचार में सूचनाओं की आवश्यकता होती है। संचार में प्रेषक (Sender) द्वारा संदेश प्राप्त करने वाले व्यक्ति को सूचनाओं एवं विचारों आदि को संप्रेषित किया जाता है, वैश्विक व्यवसाय में बड़े भौगोलिक क्षेत्र के कारण संचार और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आजकल आधुनिक एवं तीव्र संचार संप्रेषित सयत्रों, जैसे- फैक्स, ई-मेल, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, मोबाइल फोन आदि को अंतर्राष्ट्रीय संचार में प्रयोग किया जाने लगा है। आजकल मूल देश में कंपनी के मुख्यालय से मेजबान देश में सहायक कंपनियों के बीच संचार इन आधुनिक एवं तीव्र संचार संप्रेषण सयत्रों से ही किया जाने लगा है, इन आधुनिक सयत्रों के चलन से परंपरागत संचार संप्रेषण के तरीकों, जैसे- पत्र-लेखन, रिपोर्ट लेखन, मिमो आदि का प्रचलन कम हो रहा है, आधुनिक संचार सयत्रों से व्यावसायिक संचार में लगने वाले समय-अंतराल को कम किया गया है, अब बिना किसी समय-अंतराल के संदेश तुरंत संप्रेषित किया जा सकता है।

■ 2. सूचना का अर्थ (Meaning of Information)

सूचना एक ऐसा संदेश है जिसमें आँकड़ों को एकत्रित, संगठित एवं विश्लेषित करके सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि के लिए संप्रेषित किया जाता है, सूचनाओं को समाचारों, अनुभव, सर्वेक्षण, अध्ययन आदि से एकत्रित किया जाता है, सूचना आँकड़ों से भिन्न होती है। आँकड़ों में उन्हीं तथ्यों को शामिल किया जाता है जिनका सांख्यिकीय विश्लेषण किया जा सके, जबकि सूचना में उन सभी तथ्यों को शामिल किया जाता है जो अर्थपूर्ण (Meaningful) हो एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया में उपयोगी हो, सूचना से संदेश प्राप्त करने वाले व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि होनी है, सूचना सही, उचित, उपयोगी तथा सामयिक होनी चाहिए, सूचना को इस ढंग से संप्रेषित किया जाना चाहिए जिससे सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति इसे आसानी से समझ सके तथा वह इसका सही अर्थ निकाल सके। प्रभावकारी संचार से संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति संदेश को उसी तरह से समझ सकता है जैसे प्रेषक उसे समझाना चाहता है, सही व्यक्ति के पास, सही समय पर, सही सूचना का होना, व्यावसायिक निर्णयों के लिए बहुत मूल्यवान संपत्ति मानी जाती है, सूचना को आजकल सॉफ्ट-अधोसंरचना (Soft Infrastructure) भी कहा जाने लगा है, निर्णय लेने वालों के लिए सूचना की उपलब्धता व्यावसायिक इकाई में भौतिक अधोसंरचना की तरह महत्त्वपूर्ण है।

सूचनाओं को प्राथमिक स्रोतों या द्वितीयक स्रोतों से एकत्रित किया जाता है, द्वितीयक स्रोतों में सूचना को प्रकाशित स्रोतों, जैसे- सरकारी प्रकाशनों, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशनों, व्यापार तथा उद्योगों से संबंधित पत्रिकाओं एवं जरनलों, समाचार-पत्रों आदि के माध्यम से एकत्रित किया जाता है, सूचना के प्राथमिक स्रोतों में सूचना को पहली बार एकत्रित किया जाता है अर्थात् यह सूचना पहले से किसी अन्य द्वारा एकत्रित नहीं की गई है, इसे व्यावसायिक इकाई स्वयं बाजार सर्वेक्षण, विक्रयकर्ताओं की रिपोर्टों आदि के द्वारा एकत्रित करती है। प्राथमिक स्रोतों से उन सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है जो पहले से विद्यमान न हों या विद्यमान सूचना की विश्वसनीयता कम हो या यह सूचना बहुत पुरानी हो, आदि। द्वितीयक स्रोतों से सूचना एकत्रित करते समय स्रोत की विश्वसनीयता, सूचना की उपयोगिता तथा सूचना एकत्रित करने की समय अवधि आदि के बारे में जानकारी एकत्रित करनी पड़ती है। यदि द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचना उपयोगी है, इसका स्रोत विश्वसनीय है तथा इसे एकत्रित करने व इसके प्रकाशन में अधिक समय अंतराल नहीं है तब यह सूचना व्यवसाय के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती है। द्वितीयक सूचनाओं को एकत्रित करने में कम समय, कम प्रयत्न तथा कम खर्च आता है। यदि द्वितीयक स्रोतों से एकत्रित सूचना अपर्याप्त लगे तब इस सूचना के साथ-साथ प्राथमिक स्रोतों से भी सूचना एकत्रित की जाती है।

■ 3. सूचना का वर्गीकरण (Classification of Information)

सूचना के महत्त्व के आधार पर सूचना को महत्त्वपूर्ण, गोपनीय, कार्यात्मक या सार्वजनिक सूचनाओं में वर्गीकृत किया जाता है।

(1) महत्त्वपूर्ण सूचना (Strategic Information): यह सूचना महत्त्वपूर्ण निर्णयों, व्यूह-रचना निर्माण, नीति निर्माण आदि में प्रयोग की जाती है। इस तरह की सूचना के प्रयोग में अधिक अनुभव, बुद्धिमत्ता तथा निर्णय लेने के कौशल की आवश्यकता होती है। यह सूचना कम संरचनात्मक होती है; जैसे-बाजार सर्वेक्षणों की रिपोर्ट, बाजार अनुसंधान रिपोर्ट, वातावरण विश्लेषण रिपोर्ट आदि। इन रिपोर्टों को समझने के लिए अधिक कौशल की आवश्यकता होती है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में इस तरह की सूचना की आवश्यकता विदेशी बाजारों के मूल्यांकन एवं चयन के समय पड़ती है, वैश्विक व्यवसाय का तरीका; जैसे-व्यापार रूट, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रूट, एकीकरण एवं सविलयन या तकनीकी सहयोग आदि का चयन करते समय महत्त्वपूर्ण सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। विदेशी बाजारों में उत्पाद की छवि, कीमत, संवर्द्धन तथा वितरण के समय भी इस तरह की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है; जैसे- यह निर्णय लेना की वर्तमान उत्पाद में कुछ समायोजन करके विदेशी बाजारों में उत्पाद जारी किया जाए या विदेशी बाजारों के लिए वहाँ के

[illegible] अलग से उत्पाद बनाया जाए, एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है, इसके लिए महत्त्वपूर्ण सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है।

(2) कार्यात्मक सूचना (Operational Information): कार्यात्मक सूचनाओं की आवश्यकता महत्त्वपूर्ण निर्णयों की तुलना में अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण निर्णयों में पड़ती है। कार्यात्मक सूचना व्यावसायिक संगठन पर बेहतर नियंत्रण के लिए भी पड़ती है। इन सूचनाओं को साराश रिपोर्टों, सारणीयों, ग्राफों आदि द्वारा भी प्रस्तुत किया जाता है। यह सूचना व्यवसाय को चलाने के लिए प्रत्येक दिन लिये जाने वाले कार्यात्मक निर्णयों में काम आती है। अधिकतर कार्यात्मक सूचना व्यवसाय के सूक्ष्म (Micro) वातावरण से सबधित होती है। ये सूचनाएँ व्यवसाय के आंतरिक वातावरण के बारे में भी होती है। उदाहरण के लिए, कच्चे माल के उपलब्ध स्टॉक की मात्रा की जानकारी क्रय प्रबधक के लिए कच्चे माल का नया क्रय आदेश जारी करते समय, एक आवश्यक सूचना है। इसी तरह किसी ग्राहक को उधार विक्रय करते समय उस ग्राहक की साख क्षमता (Creditworthiness) की जानकारी एक आवश्यक सूचना है।

(3) **गोपनीय सूचना** (Confidential Information): व्यवसाय की ऐसी सूचना जिसकी बाहरी पक्षों से रक्षा की जाती है गोपनीय सूचना कहलाती है। गोपनीय सूचना व्यवसाय के अदर भी हर एक कर्मचारी को उपलब्ध न होकर व्यवसाय के कुछ महत्त्वपूर्ण कर्मचारियों की पहुँच में ही होती है। यदि गोपनीय सूचना व्यवसाय की प्रतियोगी इकाइयों को मिल जाए तब व्यवसाय के हाथ में आए अवसरो का लाभ व्यावसायिक इकाई से निकलकर प्रतियोगी इकाइयों के हाथों में चला जाएगा।

(4) **सार्वजनिक सूचना** (Public Information): ऐसी सूचना जो जन-सामान्य की पहुँच में हो उसे सार्वजनिक सूचना कहा जाता है। इस सूचना को गोपनीय नही रखा जाता। व्यवसाय द्वारा यह सूचना उत्पाद ब्राउशरों (Product Brochures), व्यावसायिक इकाई की वेबसाइट, वार्षिक रिपोर्टों आदि के द्वारा उपलब्ध करवाई जाती है।

■ 4. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के लिए सूचना की आवश्यकता/सूचना के क्षेत्र
(Information Requirements for International Business/Areas of Information)

अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में सफलतापूर्वक व्यवसाय चलाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई के प्रबंधकों को विभिन्न तरह की सूचना की आवश्यकता पड़ती है। इन प्रबधकों को उचित निर्णय लेते समय निम्न क्षेत्रों में विश्वसनीय, सामयिक तथा उपयोगी सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है।

(1) **बाजार क्षमता के बारे में सूचना** (Information about Market Potential): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में विभिन्न देशों के बाजारों में से उचित बाजार चुनते समय इन बाजारों की बाजार क्षमता के बारे में सूचना की आवश्यकता पड़ती है। बाजार क्षमता से यहाँ अभिप्राय बाजार में माँग के संभावित स्तर से है। विदेशी बाजारों की बाजार क्षमता को जानने के लिए वहाँ की सकल घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय, आर्थिक विकास दर, जनसख्या आकार, क्रय क्षमता आदि सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है।

(2) **प्रतियोगी इकाइयों के बारे में सूचना** (Information about Competitors): वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों को विदेशी बाजारों में प्रतिस्पर्धा का स्तर जानने के लिए, प्रतियोगी इकाइयों की शक्तियों एवं कमजोरियों का पता लगाने के लिए, उनकी रणनीतियाँ, उनका बाजार हिस्सा जानने के लिए प्रतियोगी इकाइयों के बारे में सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। कई बार प्रतियोगी इकाइयों के बारे में गुप्त रूप से भी सूचना एकत्रित की जाती है। यह सूचना प्रतिस्पर्धा का सामना करने तथा प्रति-रणनीतियाँ (Counter Strategies) बनाते समय काम आती है।

(3) **सरकारी नियमों तथा नीतियों के बारे में सूचना** (Information about Government Rules and Regulations): वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों को विभिन्न देशों की टैरिफ दरों, आयातों पर लगे परिमाणात्मक प्रतिबधों; जैसे- आयात कोटा, आयातों पर रोक, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) की सीमा, कर रियायतें, FDI पर मिलने वाले अनुदान, मेजबान देश की सरकार का विदेशी कंपनियों के बारे में दृष्टिकोण आदि के बारे में सूचना की आवश्यकता होती है। इस सूचना की आवश्यकता विभिन्न देशों का मूल्यांकन एवं चयन करते समय, विदेशी बाजारों में प्रवेश का तरीका चयन करते समय पड़ती है।

(4) **विपणन संमिश्र के बारे में सूचना** (Information about Marketing Mix): वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों को उचित व्यावसायिक रणनीतियाँ बनाते समय विपणन संमिश्र के विभिन्न तत्त्वों, जैसे-उत्पाद, कीमत, स्थान (वितरण), संवर्द्धन के बारे में सूचना की आवश्यकता पड़ती है। यह निम्न चर्चा से स्पष्ट है:

(i) **उत्पाद के बारे में सूचना** (Information about Product): वैश्विक व्यावसायिक इकाई को प्रमापित उत्पाद या उपभोक्ताओं की पसद के अनुसार उत्पाद (अनुरूप उत्पाद) बनाने का निर्णय लेना पड़ता है। प्रमापित उत्पाद की दशा में संपूर्ण बाजार क्षेत्र में एक जैसा उत्पाद ही जारी किया जाता है। अनुरूप उत्पाद बनाए जाने पर विभिन्न देशों में वहाँ के उपभोक्ताओं की पसद, नापसद, क्रय क्षमता, संस्कृति आदि को ध्यान में रखकर विभिन्न देशों में अलग-अलग उत्पाद बनाए जाते है। इसके लिए विभिन्न देशों के ग्राहकों की पसद, नापसद, स्वाद, फैशन, उपभोक्ताओं की प्राथमिकता, संस्कृति आदि सबधी सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है।

(ii) **कीमत के बारे में सूचना** (Information about Price): वैश्विक कंपनियाँ विभिन्न देशों के बाजारों में एक-जैसे उत्पाद के लिए अलग-अलग कीमत भी निर्धारित कर देती है। किसी देश में कीमत उस देश में प्रतिस्पर्धा का स्तर, प्रतियोगी उत्पादों की कीमतें, उत्पादन लागत, परिवहन लागत, टैरिफ दर, बीमा व्यय, मेजबान देश के लोगों की क्रय-क्षमता, कीमतों पर सरकारी नियत्रण, मेजबान देश की वर्तमान आर्थिक दशाएँ, व्यापार चक्र की अवस्था, लोगों का जीवन स्तर, मुद्रा स्फीति दर आदि को ध्यान में रखकर तय की जाती है। वैश्विक कंपनी कीमत निर्धारण के समय ये सब सूचनाएँ एकत्रित करती है।

(iii) **वितरकों (स्थान) के बारे में सूचना** [Information about Distributors (Place)]: वैश्विक कंपनी को यह निर्णय लेना होता है कि यह प्रत्यक्ष निर्यात करे या अप्रत्यक्ष निर्यात, प्रत्यक्ष विपणन करे या अप्रत्यक्ष विपणन। इन निर्णयों को लेते समय थोक विक्रेताओं, फुटकर विक्रेताओं, स्टॉकिस्टों, निर्यात प्रबंध कंपनियों, निर्यात ब्रोकर आदि द्वारा ली जाने वाली कमीशन, दी जाने वाली सेवाओं आदि के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती है।

(iv) **संवर्द्धन के बारे में सूचना** (Information about Promotion): संवर्धन का तरीका चुनते समय, मीडिया का चयन, ब्राड अंबेसडर का चयन, विज्ञापन संदेश का निर्माण, विज्ञापन एजेंसी का चयन आदि के समय विभिन्न तरह की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। ये सूचनाएँ विभिन्न तरह के मीडिया की लोकप्रियता, विज्ञापन एजेन्सियों द्वारा ली जाने वाली कमीशन, ब्राड अंबेसडर की लोकप्रियता/छवि, विक्रयकर्ताओं के पारिश्रमिक, प्रतियोगी इकाइयों द्वारा प्रयोग किए जा रहे मीडिया आदि के बारे में हो सकती है।

(5) **ग्राहकों के बारे में सूचना** (Information about Customers): वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों को विदेशी बाजारों में ग्राहकों के बारे में विभिन्न सूचनाएँ; जैसे-उनकी पसद, नापसद, स्वाद, प्राथमिकता, क्रय क्षमता, क्रेता-व्यवहार आदि के बारे में जानकारी एकत्रित करनी पड़ती है। यह जानकारी वैश्विक व्यावसायिक इकाई को उत्पाद नियोजन एवं विकास के बारे में मदद करती है।

(6) **वैश्विक संभार तंत्र के बारे में सूचना** (Information about Global Logistics): वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों को विभिन्न देशों में पाये जाने वाले सभार तंत्र (Logistics) के तत्त्वों, जैसे पूर्तिकर्ता, यातायात के साधन, समुद्री जहाज द्वारा माल भेजने की लागत (Shipping Cost), गोदामों आदि के बारे में सूचना की आवश्यकता होती है। यह सूचना वैश्विक कंपनी को विभिन्न देशो के बाजारों का चयन करते समय काम आती है।

(7) **मेजबान देश के समष्टि व्यावसायिक वातावरण के बारे में सूचना** (Information about Macro Business Environment of the Host Nation): वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में जोखिम को कम करने के लिए विभिन्न देशों का चयन करते समय इन देशो के समष्टि व्यावसायिक वातारण के बारे में सूचना एकत्रित करती हैं। इसके लिए व्यावसायिक वातावरण के निम्न घटकों के बारे में सूचना एकत्रित करके विश्लेषित की जाती है:

(i) **आर्थिक वातावरण** (Economic Environment): इसके अंतर्गत आर्थिक दशाएँ; जैसे- राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, मुद्रा-स्फीति दर, व्यापार चक्र की अवस्था, आर्थिक नीतियाँ; जैसे- टैरिफ नीति, निर्यात-आयात नीति, वित्तीय नीति, राजकोषीय नीति, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, औद्योगिक नीति, आर्थिक कानून; जैसे- विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम, सेबी (SEBI) अधिनियम, आदि शामिल है।

(ii) **राजनीतिक वातावरण** (Political Environment): इसमें सरकार का विदेशी कंपनियों के प्रति दृष्टिकोण, राजनीतिक स्थिरता, सरकार की दूरगामी सोच, कानून व्यवस्था, अन्य देशों के साथ राजनीतिक संबंध, आदि शामिल है।

(iii) **भौतिक वातावरण** (Physical Environment): इसमें प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, अधो संरचना, बंदरगाह संबंधी सुविधाएँ, मौसम तथा जलवायु संबंधी स्थितियाँ आदि शामिल है।

(iv) **तकनीकी वातावरण** (Technological Environment): इसके अंतर्गत अनुसंधान एवं विकास स्तर, नवाचार, आधुनिक तकनीक तथा तकनीकी विशेषज्ञों की उपलब्धता, तकनीक की सुरक्षा के लिए बनाए गए अधिनियम; जैसे-पेटेंट एक्ट, कॉपीराइट अधिनियम आदि शामिल है।

(v) **जनांकिकीय वातावरण** (Demographic Environment): इसमें जनसंख्या का आकार, ग्रामीण-शहरी जनसंख्या का अनुपात, आयु-संरचना, साक्षरता दर, कुशल मानवीय संसाधनों की उपलब्धता आदि शामिल है।

(vi) **सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण** (Socio Cultural Environment): इसके अंतर्गत लोगों के कार्य के प्रति दृष्टिकोण, रीति-रिवाज, संस्कृति, मूल्यों, रहन-सहन के तरीके, कार्य करने के ढंग, सामाजिक पहलुओं,आदतों आदि को शामिल किया जाता है।

सूचना की आवश्यकता (Need of Information)

(i)	वैश्विक इकाई बने या घरेलू बाजार तक सीमित रहे?	— वैश्विक बाजारों का मूल्यांकन तथा इनकी घरेलू अवसरों से तुलना।
(ii)	किस बाजार में प्रवेश किया जाए?	— विभिन्न देशों के बाजारों को श्रेणीबद्ध (Ranking) करना (देशों का मूल्यांकन तथा चयन)।
(iii)	कैसे प्रवेश किया जाए? (प्रवेश का कौन-सा तरीका चुना जाए?)	— प्रशुल्क/गैर-प्रशुल्क रुकावटों के बारे में सूचना, परिवहन लागत, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, राजनीतिक स्थिरता आदि की जानकारी।
(iv)	विपणन कैसे किया जाए?	— क्रेता व्यवहार, क्रय क्षमता, वितरण चैनलों आदि के बारे में जानकारी।

■ 5. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में व्यावसायिक सूचना की उपयोगिता

(Utility of Business Information in International Business)

व्यवसाय में विश्वसनीय सूचनाओं का मिलना निर्णय लेने की प्रक्रिया में बहुत महत्त्वपूर्ण है। निर्णय लेने से अभिप्राय बहुत से उपलब्ध विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने से है। सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने के लिए सभी विकल्पों का विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण में विकल्पों के बारे में विभिन्न सूचनाओं की जरूरत होती है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में व्यावसायिक सूचनाओं का महत्त्व आगे की गई चर्चा से स्पष्ट होता है:

(1) **देश स्थितिकरण संबंधी निर्णय लेना** (To Decide Country Location): एक वैश्विक कंपनी उस देश का चयन करती है जहाँ उत्पादन और विपणन का आधार बनाया जा सके। उत्पादन तथा विपणन के लिए देश स्थितिकरण का निर्णय लेते समय वैश्विक व्यावसायिक इकाई को विभिन्न सूचनाओं; जैसे-कच्चे माल की उपलब्धता, श्रम व कुशल कर्मचारियों की उपलब्धता, सरकारी नियम, प्रशुल्क (Tariff) की दरें, आयात कोटा, सरकार द्वारा दिये जा रहे कर

प्रोत्साहन आदि के बारे में सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन सूचनाओं के अभाव में देश स्थितिकरण का निर्णय नहीं लिया जा सकता।

(2) **प्रवेश के तरीके संबंधी निर्णय लेना** (To Decide Mode of Entry): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के अंतर्गत विदेशी बाजारों में प्रवेश के विभिन्न तरीके है; जैसे-व्यापार रूट, निवेश रूट, विलयन एवं अधिग्रहण, अनुबंधीय प्रवेश विधि, रणनात्मक गठबंधन आदि। प्रवेश के विभिन्न तरीके विभिन्न स्थितियों में उपयोगी होते है, वैश्विक कंपनी को विदेशी बाजारों में प्रवेश का तरीका चयन करते समय विभिन्न तरह की सूचनाओं का विश्लेषण करना पड़ता है, नहीं तो यह महत्त्वपूर्ण निर्णय गलत हो सकता है।

(3) **प्रमापरूपता तथा अनुरूपता से संबंधित निर्णय लेना** (To Take Decision regarding Standardisation and Customisation): प्रमापरूपता से अभिप्राय वैश्विक इकाई द्वारा सभी बाजारों के लिए लगभग एक जैसा उत्पाद बेचने से है। अनुरूपता के अंतर्गत वैश्विक इकाई विभिन्न देशों के लिए वहाँ के ग्राहकों की पसंद, प्राथमिकता, स्वाद, फैशन, संस्कृति, क्रय क्षमता के अनुसार अलग-अलग उत्पाद बनाती है। इस निर्णय को लेने के लिए वैश्विक इकाई को विभिन्न देशों के क्रेता-व्यवहार के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती है।

(4) **कीमत नीतियाँ तथा रणनीतियाँ तैयार करना** (To Design Price Policies and Strategies): समूचे वैश्विक बाजार में एक जैसी कीमत नीति या कीमत रणनीति लागू नहीं की जा सकती। कीमत नीति विभिन्न तत्वों, जैसे-उत्पादन लागत, परिवहन लागत, टैरिफ, प्रतिस्पर्धा का स्तर, मेजबान देश में व्यापार चक्र की अवस्था, ग्राहकों की क्रय क्षमता, माँग लोच आदि पर निर्भर करती है। अतः वैश्विक कंपनी को कीमत नीतियों व रणनीतियाँ तैयार करते समय विभिन्न देशों से इन सभी तत्वों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती है।

(5) **व्यवसाय को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक चरों को समझना** (To Understand Cultural Variables affecting the Business): वैश्विक व्यावसायिक इकाई को विभिन्न देशों की संस्कृति को समझना पड़ता है। विभिन्न देशों के सांस्कृतिक चरों में बहुत अंतर है; जैसे-विभिन्न देशों की भाषा, रीति-रिवाज, आदतें, विश्वास, मूल्यों, प्रथाओं, कार्य करने के तरीकों, कायिक या दैहिक भाषा, शिष्टाचार, आदि में अंतर है। वैश्विक कंपनी को विभिन्न देशों की संस्कृति को समझने के लिए इन सभी सांस्कृतिक चरों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती है। वैश्विक कंपनी के अधिकारियों, जिनकी नियुक्ति दूसरे देशों में की जाती है, को सांस्कृतिक झटकों (Cultural Shocks) से बचाने के लिए इन अधिकारियों को विदेशों में भेजने से पहले, इन्हें वहाँ की संस्कृति के बारे में अवगत करवाया जाता है। अतः वैश्विक कम्पनी को विभिन्न देशों के सांस्कृतिक चरों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती है।

(6) **राजनीतिक जोखिम को विश्लेषित करना** (To Analyse Political Risk): मेजबान देश की राजनीतिक स्थितियाँ, वैश्विक कंपनियों को प्रभावित करती है। सरकार का राजनीतिक दृष्टिकोण, राजनीतिक स्थिरता, अन्य देशों के साथ संबंध, राजनीतिक दबाव आदि सभी व्यावसायिक इकाइयों को प्रभावित करते हैं। मेजबान देश में राजनीतिक जोखिम को समझने के लिए वैश्विक व्यावसायिक इकाई को राजनीतिक स्थितियों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती है।

(7) **मेजबान देश की सरकार की आर्थिक नीतियों और इनके व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभाव को समझना** (To Understand Economic Policies of Government of Host Nation and their Impact on Business): मेजबान देश की सरकार द्वारा बनाई गई विभिन्न नीतियाँ व्यवसाय को प्रभावित करती है; जैसे-आयात-निर्यात नीति, कर-नीति, औद्योगिक नीति, मौद्रिक नीति, विदेशी-निवेश नीति आदि। इन नीतियों में आये परिवर्तन MNC के व्यवसाय के लिये अवसर या चुनौती पैदा कर सकते है। इन नीतियों में आ रहे बदलाव को जान कर, समय पर व्यवसाय की नीतियों में आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं। अतः MNC को मेजबान देश की आर्थिक नीतियों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित एवं विश्लेषित करनी पड़ती हैं।

(8) **विभिन्न देशों के संसाधनों का सर्वोत्तम प्रयोग करना** (To Ensure Optimum Utilisation of Resources): विभिन्न देशों के व्यावसायिक वातावरण की जानकारी संसाधनों के सर्वोत्तम प्रयोग के लिए महत्त्वपूर्ण है।

व्यवसाय के अर्थपक, मानवीय और भौतिक साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग विभिन्न देशों के व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न घटकों की जानकारी और विश्लेषण के बाद ही किया जा सकता है।

(9) प्रतियोगी-संस्था की रणनीतियों का विश्लेषण करना तथा इनके लिए प्रति-उपाय करना (To Analyse Competitor's Strategies and Formulate Counter Measures): वातावरण-अध्ययन से वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ अपनी प्रतियोगी-इकाइयों की रणनीतियों को जान सकती हैं, तथा उनका सामना करने के लिए प्रभावशाली योजना का निर्माण कर सकती हैं। ये योजनाएँ व्यवसाय के बाज़ार-हिस्से को बनाये रखने व बढ़ाने में मदद करती है। इस प्रकार आज के प्रतियोगिता के इस युग में यदि हम अपने प्रतियोगियों की रणनीतियों का अध्ययन करके योजनाबद्ध उपाय करें, तो प्रतिस्पर्धा का आसानी से सामना किया जा सकता है।

(10) अपने व्यवसाय को गतिशील व नवाचारी बनाना (To keep Business Dynamic and Innovative): वैश्विक वातावरण के परिवर्तनों की जानकारी, व्यावसायिक-प्रबन्धकों को अधिक सतर्क व गतिशील बनाती है। यदि विभिन्न देशों के वातावरण में कोई सकारात्मक परिवर्तन आये, तो प्रबन्धक अपने व्यवसाय के आकार को बढ़ा सकते है और बाजार हिस्से (Market Share) में वृद्धि कर सकते है। यदि किसी देश के बाजार में कोई नकारात्मक परिवर्तन आए, तो वे अपने व्यवसाय को नकारात्मक परिवर्तनों के प्रभावों से बचाने के लिये सोची-समझी रणनीति (Well Planned Strategy) बना सकते है।

(11) व्यवसाय की शक्तियों को जानना (To Find out the Strengths of Business): व्यवसाय की शक्तियों से हमारा अभिप्राय उस क्षमता से है, जिसके कारण वैश्विक इकाई अपनी प्रतियोगी इकाइयों से आगे निकल सकती है। विभिन्न देशों के व्यावसायिक वातावरण की सूचनाओं का विश्लेषण, व्यवसाय की इन शक्तियों को ढूँढने व पहचानने में मदद करता है। इन शक्तियों को पहचान कर, वैश्विक इकाई ऐसी नीतियाँ बना सकती है, जो व्यवसाय की वृद्धि में सहायक हो और जो प्रतिस्पर्धा का सफलतापूर्वक सामना करने में मदद करें।

(12) व्यवसाय की कमजोरियों/दुर्बलताओं को पहचानना (To Identify Weaknesses of Business): व्यवसाय की दुर्बलताओं से हमारा अभिप्राय व्यवसाय की उन सीमाओं से है, जिनके कारण व्यावसायिक इकाई प्रतियोगी इकाई से पीछे रह जाती है। व्यावसायिक सूचनाओं का विश्लेषण व्यवसाय की इन कमजोरियों को ढूँढने व पहचानने में मदद करता है। व्यवसाय की बढ़ोतरी एव विकास के लिये, प्रबन्धकों को इन कमजोरियों को दूर करने के लिये योजनाएँ बनानी चाहिए।

(13) व्यवसाय के लिये उपलब्ध अवसरों को पहचानना (To Find out Opportunities Available to Business): अवसर से हमारा अभिप्राय व्यवसाय की अनुकूल परिस्थितियों से है। यदि व्यवसाय के पास पर्याप्त साधन है, तो इन अवसरों से व्यवसाय लाभ उठा सकता है। व्यावसायिक सूचनाओं के विश्लेषण से व्यवसाय के लिए उपलब्ध अवसरो का समय पर पता चल जाता है। अत: व्यवसाय उचित समय पर योजनाएँ बनाकर इन अवसरों से लाभ उठा सकता है।

(14) व्यवसाय में आने वाली चुनौतियों का पूर्वानुमान लगाना (To Identify Threats Posed to Business): यहाँ चुनौती से अभिप्राय व्यवसाय की प्रतिकूल परिस्थितियों से है। प्रतिकूल परिस्थितियों से व्यवसाय का जोखिम बढ़ता है। ये चुनौतियाँ या जोखिम—विभिन्न देशों में तकनीकी-परिवर्तन, राजनीतिक-परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन, प्रतियोगिता मे वृद्धि, फैशन मे बदलाव, सरकारी-नीति में प्रतिकूल बदलाव, कच्चे माल की कमी आदि कारणों से हो सकता है। सबंधित सूचनाओं के विश्लेषण से वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ व्यवसाय में आने वाली इन चुनौतियों को पहचान सकती है और उचित समय पर योजनाएँ बनाकर इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकती है।

(15) बाजार दशाओं को जानना (To Understand Market Conditions): व्यवसाय को अपने उत्पाद बाजार में बेचने होते है। इसके लिये व्यवसाय को ग्राहकों, प्रतियोगी-इकाइयों, पूर्तिकर्ताओं आदि के बारे में पता होना चाहिए। विभिन्न देशों की बाजार दशाओं; जैसे- वस्तुओं की माँग व पूर्ति में आ रहे बदलाव, फैशन, पसद, प्रतिस्पर्धा, बाजार में

तेजी-मन्दी आदि के बारे में जानकारी वैश्विक व्यवसाय के लिए लाभप्रद होती है। यह सब जानकारी व्यावसायिक सूचनाओं के अध्ययन से मिलती है।

6. सूचना के स्रोत (Sources of Information)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के प्रबंधकों द्वारा निर्णय लेने के लिए आवश्यक सूचनाओं के स्रोतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है: (1) **प्राथमिक स्रोत** (Primary Sources) (2) **द्वितीयक स्रोत** (Secondary Sources)।

(1) प्राथमिक स्रोत (Primary Sources): प्राथमिक स्रोतों में सूचना पहली बार एकत्रित की जाती है, यानि यह सूचना पहले से विद्यमान नहीं होती। अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाइयाँ प्राथमिक सूचनाओं को बाज़ार सर्वेक्षणों, व्यक्तिगत संपर्क, व्यक्तिगत साक्षात्कार आदि के द्वारा एकत्रित करती है। प्राथमिक स्रोतों से एकत्रित की गई सूचना विशिष्ट, सामयिक तथा विश्वसनीय होती है। लेकिन सूचना को एकत्रित करने का यह तरीका बहुत खर्चीला है तथा इसमें सूचना एकत्रित करने में काफी समय लग जाता है तथा इसके लिए बहुत प्रयत्न करने पड़ते है, यदि द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं में विश्वसनीयता न हो या कम हो, या ये सूचनाएँ हमारे व्यवसाय के लिए अपर्याप्त हो, या घटना के वास्तविक घटित होने के समय व सूचना के रिपोर्ट होने में लम्बा समय अंतराल हो, तब प्राथमिक स्रोतों से सूचना एकत्रित करके इसे द्वितीयक स्रोतों से एकत्रित की गई सूचना के साथ प्रयोग किया जाता है। विदेशी बाजारों से प्राथमिक सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए अनुसंधानकर्ता को स्थानीय भाषा, दैहिक भाषा, स्थानीय रीति-रिवाज, संस्कृति आदि का ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ मेजबान देश के ही विशेषज्ञों की सेवाएँ लेती है।

(2) द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources): सूचना के द्वितीयक स्रोतों मे प्रकाशित स्रोतों, जैसे सरकारी प्रकाशन, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन, व्यापार एव उद्योग से संबंधित जरनल (Journal), पत्रिकाएँ आदि को शामिल किया जाता है। इंटरनेट के माध्यम से भी द्वितीयक स्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है, ब्रॉडबैंड सुविधाओं व मोबाइल फोन पर इंटरनेट सुविधा के विकास से सूचनाएँ एकत्रित करने मे इटरनेट का महत्व बहुत बढ़ गया है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सूचना के प्रमुख द्वितीयक स्रोत इस प्रकार है:

(a) अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन (International Publications): कुछ अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ, जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), विश्व व्यापार संगठन (WTO), अंकटाड, संयुक्त राष्ट्र संगठन (UNO), आदि विभिन्न सर्वेक्षण करती हैं तथा इनकी रिपोर्टों को प्रकाशित करती है। कुछ मुख्य अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन निम्नलिखित है:

(i) विश्व विकास रिपोर्ट (World Development Report)

(ii) मानवीय विकास रिपोर्ट (Human Development Report)

(iii) अंकटाड हैंडबुक ऑफ स्टेटिस्टिक्स (UNCTAD Handbook of Statistics)

(iv) विश्व निवेश रिपोर्ट (World Investment Report)

(v) विश्व व्यापार रिपोर्ट (World Trade Report), आदि।

(b) संस्थागत प्रकाशन (Institutional Publications):

(i) मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज डायरेक्टरी (Mumbai Stock Exchange Directory)

(ii) नेशनल काऊंसिल फॉर अपलाइड इकॉनोमिक रिसर्च के प्रकाशन [Publications of National Council for Applied Economic Research (NCAER)]

(iii) सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनोमी के प्रकाशन [Publications of Centre for Monitoring Indian Economy (CMIE)]

(iv) राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे संगठन की रिपोर्टें (Reports of National Sample Survey Organisation)

(v) कम्पनियों की वार्षिक रिपोर्टें (Annual Reports of Companies)

(vi) ट्रेड एंड इंडस्ट्रीज फेडरेशनज के प्रकाशन (Publications of Trade and Industry Federations), आदि।

(c) **समाचार-पत्र** (Newspapers): इकॉनोमिक टाइम्स (Economic Times), फाइनेंशियल एक्सप्रेस (Financial Express), बिजनेस स्टैंडर्ड (Business Standard), टाइम्स ऑफ इंडिया (Times of India), हिंदुस्तान टाइम्स (Hindustan Times), आदि।

(d) **पत्रिकाएँ और जनरल** (Magazines and Journals): बिजनेस इंडिया (Business India), बिजनेस वर्ल्ड (Business World), इकॉनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली (Economic and Political Weekly), हारवर्ड बिजनेस रिव्यू (Harward Business Review), इंडिया टुडे (India Today), दि संडे ऑब्जर्वर (The Sundary Observer), योजना (Yojana), साउदर्न इकॉनोमिस्ट (Southern Economist), आदि।

(e) **सरकारी प्रकाशन** (Government Publications): (i) भारत की जनगणना-रिपोर्ट (Census of India Reports), (ii) पचवर्षीय-योजना-रिपोर्ट (Five Years Plan Reports), (iii) आर्थिक सर्वेक्षण (Economic Survey), (iv) उद्योगों का वार्षिक सर्वेक्षण (Annual Survey of Industries), (v) विभिन्न मत्रालयो की वार्षिक रिपोर्टें (Annual Reports of Ministries), (vi) रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन (RBI Bulletins), (vii) पब्लिकेशन डिवीजन (Publication Division) द्वारा जारी पुस्तकें, आदि।

■ 7. संचार का अर्थ (Meaning of Communication)

सचार शब्द लैटिन भाषा के एक शब्द 'Communis' से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'जानना, समझना'। सचार का मूल तत्त्व तथ्यों, सूचनाओं, विचारों आदि को भेजना और समझना है। संदेश भेजने वाले व्यक्ति/सगठन को प्रेषक और संदेश प्राप्त करने वाले व्यक्ति को श्रोता प्राप्तकर्ता कहा जाता है। सचार में संदेश प्राप्त करने वाले व्यक्ति को संदेश उसी भाव में समझ आना चाहिए, जिस भाव से प्रेषक ने इसे प्रेषित किया हो। सचार एक द्वि-पक्षीय प्रक्रिया (Two-way-process) है। जिसमें पहले स्रोत द्वारा श्रोता तक संदेश भेजा जाता है और इसके बाद श्रोता संदेश के बारे में अपनी प्रतिक्रिया प्रेषक को देता है। सचार एक ऐसी कला है, जिसमें विचारों, सूचनाओं एव तथ्यो का, दो पक्षो के मध्य, आदान-प्रदान किया जाता है, ताकि प्रेषक द्वारा भेजा गया संदेश प्राप्तकर्ता को समझ आ जाये। यदि संदेश-प्राप्तकर्ता संदेश को ठीक तरह से समझ नही पाता, तो सचार-प्रक्रिया को पूरा नहीं माना जा सकता।

■ 7.1. संचार/संदेशवाहन की परिभाषाएँ (Definitions of Communication)

सचार/संदेशवाहन की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं:

(1) थियो हैमन के अनुसार, **"सन्देशवाहन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सूचना व जानकारी को भेजा जाता है। यह अपने विचारों को देने तथा अपने आपको दूसरों द्वारा समझे जाने की प्रक्रिया है।"** (Communication is the process of passing information and understanding from one person to another. It is the process of imparting ideas and making oneself understood by others. — **Theo Haimann**)

(2) लुईस ए. ऐलन के अनुसार, **"सन्देशवाहन उन सब बातों का योग है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी बात ठीक प्रकार से समझाने के लिए करता है। इसमें बताने, सुनने तथा समझने की व्यवस्थित व निरन्तर प्रक्रिया निहित होती है।"** (Communication is the sum of all the things which a person does when he wants to create understanding in the mind of another. It involves a systematic and continuous process of telling, listening and understanding. — **Louis A. Allen**)

ऊपर दी गई परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि सचार के मुख्यतया चार पहलू है।

(1) **प्रेषक**- जो संदेश भेजता है।

(2) **संदेश** - सूचना जिसे प्रेषित किया जाना है।

(3) **प्राप्तकर्ता** - जिसे संदेश दिया जाना है।

(4) **प्रतिक्रिया**- संदेश प्राप्त करने के बाद प्राप्तकर्ता की प्रतिपुष्टि, जिससे यह जाना जा सके कि उसे संदेश समझ आया है या नहीं।

जीवन के प्रत्येक पहलू में संदेशवाहन किया जाता है। चाहे यह पहलू व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक, धार्मिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय हो। हमें जब भी कोई सूचना, विचार, तथ्यों का आदान-प्रदान करना है, तो हमें सचार की आवश्यकता पड़ती है।

■ 7.2 व्यावसायिक संचार (Business Communication)

प्रत्येक व्यवसाय चाहे वह घरेलू व्यवसाय है या वैश्विक व्यवसाय है, लाभ कमाने के उद्देश्य से कार्य करता है। व्यवसाय एक ऐसी आर्थिक क्रिया है जिसमें उत्पादन के विभिन्न तत्त्वों, जैसे- मनुष्य, मशीन, मुद्रा एव पदार्थ का एकीकरण किया जाता है तथा उत्पादित वस्तुओं को लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से बाजार में बेचा जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में सहायता से उत्पादन किया जाता है तथा उत्पादित वस्तुओं को लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से बाजार में बेचा जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में व्यवसायी एक क्रेता के साथ, विक्रेता के साथ, इंजीनियर के साथ, तकनीकी विशेषज्ञों के साथ, सरकारी अधिकारियों के साथ, अपने कर्मचारियों के साथ तथा कई अन्य लोगों के साथ विचार-विमर्श करता है, तथ्यों का आदान-प्रदान करता है एव सूचनाएं एकत्रित करता है। अतएव व्यावसायिक इकाई द्वारा किया जाने वाला समस्त सचार व्यावसायिक सचार कहलाता है। **आर. लुडलो के शब्दों में, "व्यावसायिक संचार सूचना के आदान प्रदान तथा एक व्यवसाय के विभिन्न भागों में लोगों द्वारा एक दूसरे को समझने की प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत परस्पर संचार के विभिन्न मॉडलों तथा माध्यमों को सम्मिलित किया जाता है।"** (Business communication is the process of transfer of information and understanding between parts and people of business ogranisation. It consists of various models and media involved in communication interchanges. –**R. Ludlow**)। व्यावसायिक सचार का अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के लिए बहुत महत्व है। वैश्विक व्यवसाय में मूल देश में स्थित मुख्यालय तथा विभिन्न देशों में स्थापित सहायक इकाइयों में लबी दूरी के कारण अधिकारियों में मौखिक रूप से आमने सामने बैठकर बार-बार संचार नहीं हो सकता। अत: सूचनाओं का आदान प्रदान मुख्यतया अवैयक्तिक सचार से ही होता है।

■ 8. संचार की प्रकृति या विशेषताएँ (Characteristics or Nature of Communication)

(1) **दो या दो से अधिक व्यक्ति** (Two or More Persons): सचार की पहली मुख्य विशेषता यह है कि इसमें कम से कम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है, क्योंकि एक अकेला व्यक्ति अपने विचारों का आदान प्रदान नहीं कर सकता। विचारों के आदान-प्रदान के लिए सचारक के साथ-साथ श्रोता (Listener) का होना भी आवश्यक है। अत: सचार में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना अनिवार्य है, जिसमें एक व्यक्ति सूचना भेजता है और दूसरा उसे प्राप्त करता है।

(2) **विचारों व सूचनाओं का आदान-प्रदान** (Exchange of Ideas and Informations): विचारों के आदान-प्रदान के बिना संचार संभव नहीं है। सचार की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य विचार, संदेश, भावनाओं आदि का आदान-प्रदान होना अनिवार्य है। संदेशवाहन-प्रक्रिया में प्रेषक श्रोता को कोई संदेश भेजता है। यह संदेश व्यावसायिक इकाई द्वारा चलाई गई योजनाओं, उत्पाद के मूल्य, स्थान में परिवर्तन, इसके द्वारा बनाए गए नये उत्पाद आदि के बारे में हो सकता है।

(3) **शब्दों व चिन्हों का प्रयोग** (Use of Words as well as Symbols): सचार में शब्दों के साथ-साथ चिन्हों, रगों, संकेतों, चेहरे के हावभाव (Gestures) आदि का प्रयोग भी किया जाता है। विभिन्न कपनियाँ विभिन्न रगों, चिन्हों को अपने विपणन-संदेश में प्रयोग करती हैं। इन चिन्हों से श्रोता आसानी से उत्पाद और निर्माता को पहचान लेते हैं। मसाले बनाने वाली कम्पनियाँ मसालों के अच्छे स्वाद को दर्शाने के लिए चेहरे के हावभाव को सचार में प्रयोग करती हैं।

(4) **पारस्परिक समझ** (Mutual Understanding): पारस्परिक समझ से हमारा अभिप्राय है कि संदेश देने वाले और संदेश प्राप्त करने वाले दोनों ही संदेश को एक ही भाव में समझें। अर्थात् श्रोता संदेश को उसी अर्थ में समझे, जिस तरह संचारक उसे समझाना चाहता है। यदि श्रोता संदेश को किसी अन्य भाव से समझता है तो इसे प्रभावी संचार नहीं कहा जा सकता।

(5) **वैयक्तिक और अवैयक्तिक संचार** (Personal and Non-Personal Communication): संचार वैयक्तिक और अवैयक्तिक दोनों प्रकार से किया जा सकता है। वैयक्तिक संचार में संचारक मौखिक रूप से आमने-सामने बैठकर सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है। जबकि अवैयक्तिक संचार में संचारक और श्रोता का एक दूसरे के आमने-सामने होना अनिवार्य नहीं है। अवैयक्तिक-संचार विज्ञापन, पब्लिसिटी आदि के द्वारा किया जाता है। विज्ञापन और पब्लिसिटी में संचारक और श्रोता एक दूसरे के आमने-सामने नहीं होते, बल्कि किसी माध्यम, जैसे - टेलीविजन, समाचार-पत्र आदि के द्वारा संचारक अपने विचार श्रोता तक पहुँचाता है।

(6) **निरन्तर-प्रक्रिया** (Continuous Process): संचार एक निरन्तर प्रक्रिया है। यह व्यापार की अन्य क्रियाओं की तरह एक नियमित क्रिया है। विपणनकर्ता अपने वर्तमान व भावी उपभोक्ताओं के साथ निरन्तर सम्पर्क बनाये रखता है, और उनकी संचार के बारे में प्रतिक्रिया (Feedback) प्राप्त करता है।

(7) **चक्रीय-प्रक्रिया** (Circular Process): संचार एक चक्रीय-प्रक्रिया है। संचारक श्रोता को संदेश देता है, तथा श्रोता अपने, विचार, उत्तर, प्रतिक्रिया संचारक को देता है। प्रतिक्रिया प्राप्त करने के बाद संचारक अपने संदेश में आवश्यक समायोजन करके दुबारा सदेश को श्रोताओं तक पहुँचाता है। यह प्रक्रिया चक्रीय-प्रवाह में चलती रहती है।

(8) **सार्वभौमिक** (Universal): संचार हर जगह विद्यमान है। यह सार्वभौमिक है। प्रत्येक व्यवसाय में, चाहे वह किसी भी स्थान पर हो या किसी भी स्तर पर हो, संचार किया जाता है।

■ 9. प्रभावी व्यावसायिक संचार का महत्त्व

(Significance of Effective Business Communication)

प्रभावी संचार व्यवसाय का एक अति आवश्यक अंग है। सचार कौशल में सुधार व्यवसाय में सफलता के अवसर भी बढ़ा देता है। निम्नलिखित विश्लेषण से प्रभावी संचार के महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है:

(1) **अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक संगठन के लिए जीवन रक्त** (Lifeblood of Global Business Organisation): सभी प्रबन्धकीय कार्यों की सफलता प्रभावी सचार पर निर्भर करती है। संचार एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा वैश्विक व्यावसायिक संगठन में हो रहे कार्यों की व्याख्या की जा सकती है, परिवर्तन लाए जा सकते हैं, मिलकर कार्य करने की भावना जागृत की जा सकती है, सभी कार्यों में एकरूपता लायी जा सकती है, सभी कर्मचारियों में सम्मान का भाव पैदा किया जा सकता है, उन्हें व्यवसाय का एक अग होने का एहसास कराया जा सकता है तथा इन सभी गतिविधियों के द्वारा व्यवसाय के उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। कोई भी कर्मचारी व्यवसाय के उद्देश्यों को तब तक नहीं समझ सकता जब तक कि वह अपने वरिष्ठ अधिकारियों से, अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से तथा अन्य सहकर्मियों से इस बारे में बातचीत नहीं करता। आज के युग में, संचार कौशल प्रत्येक कर्मचारी के लिये आवश्यक है।

(2) **निर्णय लेने का आधार** (Basis of Decision Making): वैश्विक व्यावसायिक इकाई में बहुत से महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं। निर्णय लेने के लिए सहायक कंपनी को मूल कंपनी से विचार-विमर्श की आवश्यकता हो सकती है या मूल कपनी को सहायक कंपनी को कुछ निर्देश देने हो सकते हैं या एक सहायक कंपनी को दूसरी सहायक कंपनी से किसी सलाह या जानकारी की आवश्यकता हो सकती है। इन सभी विचार-विमर्शों में संचार की आवश्यकता पड़ती है।

(3) **समन्वय का आधार** (Basis of Coordination): वैश्विक व्यावसायिक कंपनियाँ बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र में फैली होती है। इसका संगठनात्मक ढांचा बहुत जटिल होता है। संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न डीविजनों, उप-इकाइयों व सहायक कंपनियों के मध्य संचार आवश्यक है। मूल कंपनी से सहायक कंपनियों को यानि नीचे की ओर सचार, सहायक कपनी से मूल कंपनी को संचार यानि ऊपर की ओर संचार; विभिन्न सहायक कंपनियों के मध्य सचार

यानि समानांतर (Horizontal) सचार से पूरे सगठन के कार्य मे समन्वय बनाया जाता है। सचार के बिना समन्वय सभव नही है।

(4) **नियोजन का आधार** (Basis of Planning): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के विकास के लिए कुशल नियोजन अनिवार्य है। कुशल नियोजन के लिए विभिन्न स्तरो पर कार्यरत अधिकारियो एव कर्मचारियो के मध्य परस्पर वार्तालाप की आवश्यकता होती है। नियोजित कार्यक्रमो को लागू करने मे भी सचार की आवश्यकता होती है।

(5) **मानवीय संबंधों तथा टीम भावना का विकास** (Development of Human Relations and Team Spirit): वैश्विक कपनियो में कार्यरत उत्प्रवासी विभिन्न देशो से सबधित होते है, ये विभिन्न धर्मों, सस्कृतियों, जातियों, समुदायों से सबध रखते है। सचार के द्वारा इन अधिकारियो के मध्य मैत्रीपूर्ण मानवीय सबधो का विकास होता है। इससे एक समूह में रहकर टीम भावना से कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है। सचार से आपसी विवादो तथा विचारो की विभिन्नता को मिटाया जा सकता है।

(6) **विपणन कुशलता में वृद्धि** (Increase in Marketing Efficiency): विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय, विक्रय संवर्द्धन, प्रचार, प्रत्यक्ष विपणन आदि के रूप में किया गया विपणन सचार वैश्विक व्यावसायिक इकाई की विपणन कुशलता को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

(7) **प्रबंधकीय कुशलता में वृद्धि** (Increase in Managerial Efficiency): प्रबधकीय कार्यों को व्यवस्थित ढग से करने के लिए सचार अति आवश्यक है। सचार के माध्यम से ही विभिन्न सहायक कपनियों में कार्यरत प्रबधक व्यवसाय के उद्देश्यों को अन्य कर्मचारियों को बता सकते है, निर्देश जारी कर सकते है, कार्य विभाजन कर सकते है तथा विभिन्न उप-इकाइयों के कार्यों पर नियत्रण रख सकते है। इससे प्रबधकीय कार्य कुशलता मे वृद्धि होती है।

(8) **प्रभावी नेतृत्व की स्थापना** (Establishment of Effective Leadership): सफल नेतृत्व के लिए एक प्रबधक को संचार कौशलता में योग्य होना आवश्यक है। एक प्रबधक सफल नेतृत्व तभी प्रदान कर सकता है, जबकि वह प्रभावी संचार प्रक्रिया को जानता हो।

(9) **प्रभावी नियंत्रण** (Effective Control): अतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक सगठन अन्य व्यावसायिक सगठनो की तुलना में बहुत अधिक विशाल होते हैं। इतने विशाल सगठन को चलाना अपने आप में एक कठिन कार्य है, इस अवस्था में सचार के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। संचार द्वारा सहायक कपनियों को निर्देश दिये जाते है, उन पर नियन्त्रण रखा जाता है तथा उनसे उनकी प्रतिक्रिया ज्ञात की जाती है। इस प्रकार पूरी नियन्त्रण प्रक्रिया में सचार की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। मूल देश की सूत्रधारी कंपनी सचार के माध्यम से सहायक कपनियों द्वारा किये गये कार्य की सूचना प्राप्त करती है। इसके आधार पर प्रबन्धक उचित समय में अनियमितताओं मे सुधार कर सकते है।

(10) **संगठनात्मक छवि का आधार** (Basis of Organisational Image): वैश्विक व्यावसायिक सगठन समाज की कई प्रकार से सेवा करता है। सामाजिक उत्तरदायित्व आज हर व्यवसाय की आवश्यकता बन चुका है। सरकार, ग्राहक, जनता, व्यवसाय, सभी को एक दूसरे के सम्पर्क में रहना होता है और इसके लिये आवश्यक है कि प्रभावी सचार तत्र स्थापित किया जाये। समाज में व्यवसाय की अच्छी छवि प्रभावी सचार तत्र द्वारा ही दी जा सकती है। प्रबन्धक को व्यवसाय के आन्तरिक तथा बाह्य वातावरण के सम्पर्क मे रहना आवश्यक होता है। इस कारणवश सचार का महत्त्व न केवल व्यवसाय के अन्दर बल्कि व्यवसाय के बाहर भी है। व्यवसाय के बाहर के समूहो मे जो सचार के द्वारा व्यवसाय से जुड़े होते है, शेयर होल्डर्स, लेनदार, सरकार इत्यादि मुख्य है। सचार के द्वारा ही व्यवसायी इन समूहो को व्यवसाय की प्रगति एवं उन्नति के बारे में समय-समय पर सूचना देता है। इस प्रकार सचार व्यवसाय की सगठनात्मक छवि को बनाए रखने में सहायक होता है। कई बार किसी वैश्विक इकाई की किसी खराब रिपोर्ट के कारण मेजबान देश मे उसकी छवि खराब हो जाती है। कुशल संचार के द्वारा विदेशी कपनियाँ अपनी छवि मे सुधार लाने में सफल होती है।

■ 10. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संचार के तरीके

(Modes of Communication in International Business)

पिछले तीस वर्षों में सूचना तकनीक (Information Technology) के विकास के फलस्वरूप संचार की कई आधुनिक विधियों का प्रचलन संभव हो सका है। **संचार की कुछ मुख्य आधुनिक तकनीकें- फैक्स, ई-मेल, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, वॉयस-मेल** आदि है। ये आधुनिक विधियां धीरे-धीरे संचार की पारम्परिक विधियों, जैसे- पत्र-लेखन, मीमो लेखन, रिपोर्ट लेखन आदि का स्थान ले रही है। इन विधियों ने समस्त संसार में व्यवसाय करने की विधियों को परिवर्तित कर दिया है। **संचार की आधुनिक तकनीकों में सूचनाओं की मात्रा एवं उपलब्धता तथा उन्हें भेजने एवं प्राप्त करने की गति में वृद्धि हुई है। इससे व्यवसाय को चलाने के लिए उसके स्थान की स्थिति (Location) का महत्त्व कम हो गया है।** संचार तकनीक लिखित संचार की प्रथा के महत्त्व को भी धीरे धीरे कम कर रही है तथा इसके स्थान पर संचार की अधिक अनौपचारिक तथा प्रत्यक्ष शैली का विकास हो रहा है।

■ 10.1. व्यावसायिक संचार की आधुनिक विधियाँ

(Modern Forms/Modes of Business Communication)

संचार की वर्तमान विधियों में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का बहुत अधिक प्रयोग किया जाने लगा है। निम्नलिखित तालिका द्वारा संचार के आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की व्याख्या की गई है:

तालिका 1. व्यावसायिक संचार की आधुनिक विधियाँ
(Modern Forms/Modes of Business Communication)

इलेक्ट्रॉनिक संचार संयत्र (Electronic Communication Tools)	प्रयोग (Uses)	कौशल, पूर्णज्ञान (Skills, Knowledge)	सर्वोत्तम प्रयोग (Best Use)
वर्ड प्रोसेसिंग (Word Processing)	इस कम्प्यूटर प्रणाली में दस्तावेजों को टाईप किया जाता है। इस प्रणाली में कई पर्सनल कम्प्यूटर, सॉफ्टवेयर तथा लेजर प्रिंटर शामिल होते है।	इसके लिए टाईपिंग का अभ्यास होना चाहिए। कम्प्यूटर का आधारभूत ज्ञान, वर्ड प्रोसेसिंग तथा सॉफ्टवेयर का ज्ञान भी इसके लिए आवश्यक है।	इस विधि का सर्वोत्तम प्रयोग सूचनाओं को कम्पोज करने, उनका सम्पादन, नक्शा बनाने, प्रूफ पढ़ने तथा लिखित पत्रों, मीमो एवं रिपोर्टों को प्रिंट करने के लिए किया जाता है।
वॉयस मेल (Voice Mail)	इस विधि में टेलीफोन तथा कम्प्यूटरीकरण कॉल प्रबन्ध प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा टेलीफोन करने वाले अपना संदेश रिकार्ड करवा सकते है या सुन सकते है।	इसे प्रयोग करना बहुत सरल है।	एक व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसके लिए अल्प संदेश छोड़ने की यह एक महत्वपूर्ण विधि है।
ई-मेल (E-Mail)	इस विधि का प्रयोग कम्प्यूटर द्वारा शीघ्रता से संदेशों को टाइप करने के लिए किया जाता है जिन्हें एक या अधिक व्यक्तियों को कम्प्यूटर नेटवर्क द्वारा तुरन्त भेजा जा सकता है। इस विधि में संदेश प्रेषक एवं संदेश प्राप्त करने वाले दोनों का एक साथ उपस्थित होना आवश्यक नहीं है।	कम्प्यूटर की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बाद इस विधि का प्रयोग करना बहुत आसान होता है। इसके द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को संदेश भेजना एवं जवाब देना बहुत सरल हो जाता है।	इस विधि के फलस्वरूप वॉयस मेल की तुलना में अधिक विस्तार से तुरन्त उत्तर दिये जा सकते है या संदेश भेजे जा सकते है। इस विधि में भेजे गये संदेशों की सूची का रिकार्ड रखा जाता है।
फैक्स (Fax)	फैक्स मोडेम की सहायता से प्रत्यक्ष रूप से सीधे ही दस्तावेजों को भेजा जा सकता है। इसके लिए दस्तावेज की पूर्व छपाई की आवश्यकता नहीं होती।	यह विधि छपे हुए पृष्ठों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर तुरन्त भेजने की सरल विधि है।	इस विधि के द्वारा वह व्यक्ति भी संदेश भेज सकता है जिसे कम्प्यूटर का कोई ज्ञान न हो।

वीडियो कान्फ्रेंसिंग (Video Conferencing)	कम्प्यूटर नियंत्रित वीडियो कैमरे का प्रयोग करके विभिन्न स्थानों पर रह रहे कर्मचारियों के मध्य, बिना समय व्यर्थ किये व बिना यात्रा किये, मीटिंग संभव हो सकती है।	इसका प्रयोग बहुत सरल होता है।	विभिन्न स्थानों पर स्थित समूहों के बीच मीटिंग करने का यह अच्छा उपाय है। इसमें शाब्दिक तथा चित्रमय दोनों प्रकार के संचार का लाभ मिलता है।
इलेक्ट्रॉनिक डाटा इंटरचेंज (Electronic Data Interchange- EDI)	यह संचार के आदान-प्रदान की कम्प्यूटर आधारित एक मानक व्यवस्था है। इसके द्वारा व्यावसायिक संगठनों द्वारा कम्प्यूटर के माध्यम से संचार किया जाता है।	इसे स्थापित करना एक जटिल कार्य है। सूचना प्रणाली में कुशल पेशेवर व्यक्ति ही इसकी स्थापना कर सकते है।	यह विधि ऑर्डर देने, क्रय करने, बैंकिंग, माल भेजने तथा अन्य प्रकार के व्यावसायिक लेन-देन के लिए उपयुक्त है।
इन्फॉर्मेशन हाई-वे (Information Highway)	यह सूचना-उपलब्धता तथा संचार सेवाओं को व्यावसायिक इकाइयों के लिए उपलब्ध कराने की विधि है। इसके द्वारा उच्च कोटि की संचार सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती है।	इसे प्रयोग करना जटिल है।	इसके द्वारा शॉपिंग कर सकते है, ई-मेल सूचनाएँ भेज सकते है, अनुसंधान, बैंकिंग एवं टीम में सहयोग कर सकते है।
सेलुलर फोन (Cellular Phone)	यह संदेश भेजने, वार्ता करने, छोटी चर्चा करने में बहुत उपयोगी है। किसी भी स्थान तथा किसी भी समय इसका प्रयोग संभव है।	इसे प्रयोग करना बहुत आसान है।	यह तीव्र संचार, कम लागत, तत्काल प्रतिक्रिया जानने के लिए सर्वोत्तम साधन है।

वर्तमान समय में संचार के कई आधुनिक तरीके प्रचलन में है। संचार के सबसे अधिक प्रचलित आधुनिक तरीके निम्नलिखित है

● (1) सेलुलर/मोबाइल फोन (Cellular or Mobile Phone)

व्यवसाय में संदेशों को प्रेषित करने की संचार की एक प्रमुख तकनीक सेलुलर फोन है। इसका प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया है। इस तकनीक का प्रयोग देश के सभी भागों में किया जा सकता है। इस विधि द्वारा मोबाईल फोन की सहायता से किसी भी व्यक्ति से किसी भी स्थान पर सम्पर्क किया जा सकता है। सेलुलर फोन का प्रयोग करके व्यवसायी दूर के स्थान से व्यवसाय कर सकते है। इन्हें बातचीत करने, ऑकड़े स्टोर करने, ऑकड़े तथा लिखित व मौखिक संदेश भेजने, ई-मेल करने आदि के लिए प्रयोग किया जाता है। कर्मचारी इनकी सहायता से डीलरों, ग्राहकों, व सहकर्मियों से बहुत कम लागत व कम समय में सपर्क कर सकते है। सेलुलर फोन के कारण व्यवसायी अपने समय का अधिक उत्पादक प्रयोग कर सकते है।

● (2) वॉयस मैसेज सिस्टम (Voice Message System)

यह किसी व्यक्ति के लिये संदेश छोड़ने का एक इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। यह वर्तमान टेलीफोन तथा कम्प्यूटराइज्ड संदेश व्यवस्था का एक मिला जुला रूप है। यदि वह व्यक्ति जिसको कुछ संदेश दिया जाना है, उपलब्ध नहीं है तो संदेश एक इलेक्ट्रॉनिक वॉयस मेल बॉक्स में छोड़ा जा सकता है। इस माध्यम के दो लाभ है, पहला, पुन: फोन करने में जो समय नष्ट होता है, वह बच जायेगा। दूसरा, संदेश अपने मूल रूप में श्रोता तक पहुँच जायेगा परंतु इसके लिये यह आवश्यक है कि संदेश संक्षेप में तथा पूर्ण हो। वायस मैसेज सिस्टम न केवल संदेश प्राप्त करता है, उन्हें निर्देशित करता है, उनका उत्तर देता है अपितु यह संदेश एकत्रित भी करता है। इस सिस्टम से एक विशेष दिन, विशेष समय पर आये संदेश को पुन: सुना जा सकता है। एक संदेश जो सिस्टम पर आया है, उसे अन्य लोगों को प्रेषित भी किया जा सकता है।

● (3) वीडियो कान्फ्रेंसिंग (Video Conferencing)

वह तकनीक जो आवाज़ तथा चित्र दोनों का प्रेषण करे, वीडियो कान्फ्रेन्सिंग कहलाती है। यह तकनीक उन व्यक्तियों के समूह के मध्य संचार के लिये अति उपयोगी है जिन्हें मौखिक तथा चित्र, दोनों ही प्रकार का संवाद चाहिए। यह तकनीक कम्प्यूटर द्वारा नियंत्रित वीडियो कैमरे का प्रयोग करती है जो आवाज़ तथा चित्र एक साथ उपलब्ध कराती है। इस तकनीक का उपयोग यह है कि दो या दो से अधिक समूह जो एक दूसरे से दूरी पर है तथा एक सभा करना चाहते हैं, उनके लिए यह तकनीक वीडियो तथा ऑडियो दोनों का मिला जुला आधार देती है। इसमें न केवल संदेशों को संचारित करते हैं बल्कि एक दूसरे से सजीव वार्तालाप भी कर सकते है जिससे उनके हावभाव, मुखाभिव्यक्ति, आवाज व चित्रों आदि का भी संचार हो जाता है। वीडियो कान्फ्रेंसिंग दो प्रकार से की जा सकती है।

(i) **कम्प्यूटर के द्वारा** इसको कम्प्यूटर कॉन्फ्रेंसिंग भी कहते है। इसके लिए कम्प्यूटर, वेब कैमरा, टेलीफोन कनेक्शन, इन्टरनेट कनेक्शन की आवश्यकता होती है।

(ii) **कम्प्यूटर के बिना** इसके लिए डिजिटल वेब कैमरा, वीडियो कान्फ्रेंसिंग मशीन, टेलीफोन, सैटलाइट कनेक्शन, प्रोजेक्टर की आवश्यकता होती है।

इस तकनीक से अधिकारियो द्वारा यात्रा पर होने वाली लागत तथा समय की बचत होती है। मध्यम तथा छोटे आकार के व्यवसाय भी इस सुविधा का लाभ उठा रहे है।

● (4) फेसिमाइल अथवा फैक्स (Facsimile or Fax)

फैक्स एक साधारण इलेक्ट्रॉनिक संचार तकनीक है जिसका प्रयोग संदेश प्रेषण के लिये विश्वस्तर पर किया जाता है। फैक्स मशीन लिखत पेज को स्कैन करती है, इसे संकेतो मे परिवर्तित करती है तथा इन संकेतो को अन्य स्थान पर प्राप्तकर्ता फैक्स मशीन को भेजती है। प्राप्तकर्ता फैक्स मशीन इन संकेतो की डीकोडिंग (Decoding) करके उन्हें प्रिंटिड प्रतिलिपि मे परिवर्तित करती है। फैक्स मशीन आलेख की प्रतिलिपि प्रेषित करने के लिए टेलीफोन का प्रयोग करती है। फैक्स तकनीक एक फोटोकापी तकनीक की तरह है परंतु इस तकनीक मे प्रतिलिपि किसी अन्य स्थान पर प्रेषित की जाती है। यह एक तेज और सस्ती प्रणाली है जिसके द्वारा हम अपने दस्तावेजो की फोटोकॉपी इच्छित व्यक्ति तक जल्दी पहुँचा सकते है। वैश्विक व्यावसायिक इकाई में दस्तावेजो के आदान-प्रदान करने के लिए आज फैक्स एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन गया है।

● (5) ई-मेल (E-Mail)

ई मेल का अर्थ एक ऐसे संदेश से है जो कम्प्यूटर व इंटरनेट के द्वारा प्रेषित किया जाता है। ई-मेल द्वारा विश्वभर मे विभिन्न व्यक्तियो को संदेश प्रेषित किया जा सकता है। इस प्रणाली का प्रयोग करने वाले को यूजर (User) कहते है। यूजर अपने घर, कार्यालय, होटल अथवा जहाँ कहो भी वह है, इस प्रणाली का प्रयोग कर सकता है। ई मेल संचार का एक तीव्र तरीका है। इसमे विभिन्न प्रपत्रो को भी भेजा जा सकता है। अधिकांश व्यवसायी व उच्चस्तरीय अधिकारी अब ई मेल का प्रयोग करने लगे है। ई-मेल में विराम चिह्न इत्यादि का प्रयोग आवश्यक नही है तथा इसमे भाषा भी अनौपचारिक है। इन सभी कारणों से ई मेल तकनीक सभी के द्वारा पसंद की जाती है।

■ 11. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय मे संचार में अवरोध

(Barriers in Communication in International Business)

● (1) बोली जाने वाली व लिखित भाषा मे विभिन्नता (Diversity in Spoken and Written Language)

विभिन्न देशो की भाषाओ मे विभिन्नता अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के संचार मे एक बड़ी बाधा है। विश्वभर मे 10,000 से भी अधिक भाषाएँ बोली जाती है। प्रत्येक भाषा मे विभिन्न शब्दो का अलग-अलग अर्थ है। अमेरिका तथा इंग्लैंड दोनों में अंग्रेजी भाषा बोली जाती है, लेकिन इन दोनो समभाषीय देशो मे भी अंग्रेजी के शब्दो के हैजो (Spellings) व अर्थ में अंतर है तथा बोलचाल का तरीका भी भिन्न है। भाषा की विभिन्नता के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई को विभिन्न देशों में कार्यरत अधिकारियों के मध्य, डीलरों, बाजार मध्यस्थों, व ग्राहकों के मध्य संचार मे कठिनाई का सामना करना पड़ता है। विभिन्न भाषाओं के अनुवाद में भी कठिनाई आती है। कुछ शब्दो का प्रत्यक्ष अनुवाद संभव नही होता। अनुवाद मे थोड़ी सी त्रुटि होने पर भ्रामक संचार हो जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका तथा चीन के अधिकारियों के मध्य व्यावसायिक सभा मे अमेरिकन अधिकारी ने चीन को अमेरिका का 'पुराना मित्र देश' (Old Friend) बताया। चीन के अनुवाद करने वाले ने इसका अनुवाद यह किया कि अमेरिका व चीन पहले मित्र थे, पर वर्तमान मे मित्र नही है। चीन के अधिकारियों ने इसे अपने देश के मान-सम्मान को ठेस पहुँचाने वाला मानकर अच्छा नही माना। वह व्यावसायिक सभा असफल रही, जबकि इसकी असफलता का मुख्य कारण भाषा अनुवाद मे होने वाली गलती थी। इसी तरह कजाकिस्तान व अरब के हवाई जहाजो के बीच हवाई दुर्घटना का मुख्य कारण भी भाषा अनुवाद मे हुई गलती थी। जार्ज बर्नड शाह, जो ब्रिटेन का प्रसिद्ध लेखक था, ने USA व UK देशों के मध्य सामान्य भाषा अंग्रेजी की विभिन्नता को उजागर किया। एक अध्ययन के अनुसार लगभग 4,000 से भी अधिक शब्दो का USA तथा UK मे विभिन्न अर्थ है। भाषा की विभिन्नता अंतर्राष्ट्रीय संचार की एक बड़ी बाधा है।

● (2) सांकेतिक भाषा में अंतर (Difference in Silent Language)

सांकेतिक भाषा भी संचार का एक तरीका है। लेकिन विभिन्न भाव भंगिमाओं (Gestures) का विभिन्न देशों में अलग-अलग अर्थ निकाला जाता है। सांकेतिक भाषा में दैहिक भाषा, रंगों के प्रति रुचि, औपचारिक सभा में अधिकारियों के बैठने की दूरी, समय का महत्त्व आदि सभी शामिल है। सांकेतिक भाषा के विभिन्न आयामों की चर्चा इस प्रकार है:

(i) **रंग** (Colours): विभिन्न रंग भी सांकेतिक भाषा का कार्य करते है। विभिन्न रंगों का विभिन्न देशों में अलग-अलग अर्थ निकाला जाता है। उदाहरण के लिए पश्चिमी देशों में मृत्यु होने पर काले रंग के वस्त्र डाले जाते है जबकि एशियन देशों में मृत्यु पर सफेद रंग के वस्त्र डालते है। कुछ पश्चिमी देशों में खुशी के अवसरों पर सफेद रंग के वस्त्र डाले जाते है। लेटिन अमेरिका में दुख के समय जामनी (Purple) रंग के वस्त्र डाले जाते है। अतः व्यावसायिक इकाइयों को उत्पाद के रंग से संबधित निर्णय विभिन्न देशों में रंगों की पसंद के अनुसार लेना चाहिए। उदाहरण के लिए यूनाइटेड एयरलाइंस ने जब हांगकांग में हवाई सेवा शुरू की तो विभिन्न यात्रियों को सफेद रंग का फूल देकर उनका स्वागत किया। लेकिन हांगकांग में घर के किसी नजदीकी की मृत्यु के समय सहानुभूति के लिए सफेद रंग का फूल दिया जाता है। अतः रंगों की पसंद की जानकारी के अभाव में यूनाइटेड एयरलाइंस का संबर्द्धन कार्यक्रम बुरी तरह असफल रहा।

(ii) **उचित दूरी** (Proper Distance): विभिन्न अवसरों पर बातचीत करते समय उचित दूरी बनानी चाहिए। विभिन्न संस्कृति के लोगों में विचारों का आदान-प्रदान करते समय अलग-अलग दूरी को उचित माना जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका में व्यावसायिक सभा में अधिकारी दूसरे पक्ष से 5 से 8 फुट की दूरी पर बैठते है जबकि वे अपनी व्यक्तिगत वार्ता में 1.5 से 3 फुट की दूरी पर बैठते है। यदि वार्ता मे उचित दूरी न बनाई जाए तो यह गलत संदेश देती है। यदि गैर अमेरिकन किसी अमेरिकन अधिकारी से व्यावसायिक वार्ता करे व अमेरीका का अधिकारी वार्ता में उससे 8 फुट की दूरी पर बैठ जाए तो दूसरे पक्ष को ऐसा लगेगा कि अमेरिकन अधिकारी उसे अनदेखा कर रहा है व उसे नीचा दिखा रहा है।

(iii) **समयबद्धता** (Punctuality): समयबद्धता भी सांकेतिक भाषा का एक अंग है। विभिन्न देशों में व विभिन्न संस्कृति के लोगों में समयबद्धता का महत्त्व अलग-अलग है। उदाहरण के लिए USA के अधिकारी व्यावसायिक सभा मे शामिल होने के लिए निर्धारित समय से पहले आ जाते है। यदि सभा मे शामिल होने वाले गैर-अमरीका के अधिकारी है जो सभा में निर्धारित समय पर या निर्धारित समय से कुछ ही मिनट देरी से आए है, तो अमरीका के अधिकारी को यह लगेगा कि दूसरा पक्ष उसे नीचा दिखा रहा है और वे अमरीका के अधिकारी के साथ व्यवसाय करने मे इच्छुक नही है।

(iv) **कायिक भाषा** (Body Language): विभिन्न संस्कृतियों मे कायिक भाषा व इनका अर्थ अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, कुछ देशो मे सिर को बाँयी से दायी तरफ हिलाने (Sideway Movement) को सहमति या 'हां' कहा जाता है जबकि कुछ अन्य देशो मे इसका अर्थ असहमति या 'नहीं' लिया जाता है। इसी तरह अँगूठे व उसके साथ की उंगली से शून्य बनाना व बाकि की तीनों उंगलियों को सीधा खड़ा रखने का अलग अलग देशो मे अलग अर्थ निकाला जाता है। फ्रांस में इसे जीरो, जापान मे इसे धन, अमेरीका मे इसे मै ठीक/अच्छा हूँ, जर्मनी में इसे तुम पागल हो व ग्रीस मे इसे अश्लील संकेत माना जाता है। अतः कायिक भाषा के संकेत विश्व मे एक जैसे नही है व इनका अलग-अलग अर्थ निकाला जाता है।

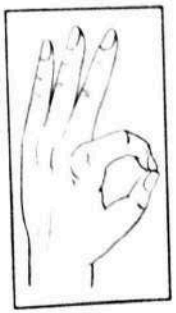

(v) **कार्य के प्रति तत्परता में अंतर** (Difference in Hurry towards Work): विभिन्न संस्कृति के लोगो मे कार्य के प्रति तत्परता में अंतर पाया जाता है। कुछ देशो के लोग चर्चा का शीघ्र निष्कर्ष निकाल लेते है व कुछ देशो के लोग लंबी चर्चा में विश्वास रखते है। एक केस मे फ्रांस की कंपनी व अमेरिका की कंपनी किसी अनुबंध को लेने का प्रयत्न कर रहे थे। अमेरिका की कंपनी ने अनुबंध की चर्चा के लिए कार्य के प्रति तत्परता दिखाते हुए दूसरे पक्ष को एक दिन का समय दिया, जबकि फ्रांस की कंपनी ने अनुबंध के विभिन्न मुद्दों पर चर्चा के लिए दूसरे पक्ष को एक सप्ताह का समय दिया। दूसरे पक्ष को यह लगा कि अमेरिका की कंपनी उन्हें पर्याप्त समय व ध्यान नही दे पाएगी। उन्होंने अमेरिका की कंपनी के अधिकारियों की कार्य के प्रति तत्परता का गलत अर्थ निकालते हुए अनुबंध को फ्रांस की कंपनी को सौंप दिया।

- **(3) अन्य अवरोध (Other Barriers)**

  (i) संगठनात्मक ढाँचे में जटिलताएँ (Complexities in Organisational Structure): अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संगठनात्मक ढाँचा जटिल होता है व यह सूचना के प्रवाह में बाधा उत्पन्न करता है। विभिन्न अधिकारियों के सम्बंधों के स्पष्ट रूप से परिभाषित न होने के कारण संचार में देरी होती है।

  (ii) संचार के इलेक्ट्रॉनिक रूप में तकनीकी खराबी (Technical Error in Electronic Modes of Communication): अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में अधिकतर संचार, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों; जैसे ई-मेल, विडियो-कान्फ्रेंसिंग, वॉयस मेल रिकॉर्डर (Voice Mail Recorder), मोबाइल फोन, फैक्स मशीन आदि से होता है। संचार के इन इलेक्ट्रॉनिक प्रारूपों में तकनीकी खराबी के कारण व्यावसायिक संचार में बाधा आती है।

  (iii) कम व्यक्तिगत संपर्क (Less Face to Face Interactions): अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में मूल कंपनी तथा सहायक कंपनियों में अधिक दूरी होने के कारण व्यक्तिगत सम्पर्क बहुत कम हो पाता है। अधिकतर संचार या तो इलेक्ट्रॉनिक प्रारूपों से या लिखित रिपोर्टों के माध्यम से होता है। इससे संचार की प्रभावोत्पादकता कम हो जाती है।

■ 12. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संचार के अवरोधों को दूर करने के सुझाव

(Suggestions for Overcoming Barriers in Communication in International Business)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संचार की त्रुटि के भयंकर परिणाम हो सकते हैं। गलत अनुवाद या सांकेतिक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा से गलत निष्कर्ष निकालने पर व्यावसायिक सभा असफल हो सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में संचार के अवरोधों को दूर करने के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं:

(1) कुशल अनुवादक को रखना (Hire the Services of Good Translator): विभिन्न देशों के अधिकारियों के बीच व्यावसायिक मीटिंग में कुशल अनुवादक होने चाहिए। इन अनुवादकों को व्यवसाय के तकनीकी शब्दों की जानकारी होनी चाहिए।

(2) वापसी अनुवाद (Back Translation): यदि ऐसे अधिकारियों के मध्य वार्ता हो रही हो जो एक दूसरे की भाषा नहीं समझते, तब सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों का वापसी अनुवाद भी होना चाहिए। जैसे यदि एक अधिकारी अंग्रेजी समझता है व दूसरा स्पेनिश तो जब पहला अधिकारी अंग्रेजी में बोलेगा तो उसका अनुवादक उसे स्पेनिश में बोलकर दूसरे अधिकारी को बताएगा। तब स्पेन के अधिकारी का अनुवादक उसी संदेश का अंग्रेजी में वापसी अनुवाद करेगा, जिससे पहला अधिकारी यह समझ सके कि संदेश का सही अर्थ निकाला गया है या नहीं।

(3) जटिल शब्दों का प्रयोग न करना (Avoid Complex Words): व्यावसायिक चर्चा में जटिल शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। संवाद में सरल भाषा का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

(4) संदेश को दोहराना (Repetition of Message): महत्त्वपूर्ण संदेश को दोहराया जाना चाहिए। यदि दूसरे पक्ष को संदेश समझ न आ रहा हो तो उसी संदेश को प्रेषक द्वारा दूसरी तरह के सरल वाक्य बनाकर समझाना चाहिए। पहले प्रयोग किये गये वाक्य को ही ऊँचे स्वर में दोहराए जाने पर श्रोता को अच्छा नहीं लगता।

(5) पर्याप्त समय (Sufficient Time): विभिन्न देशों के अधिकारियों के बीच वार्ता में संदेश के अनुवाद व उसके वापसी अनुवाद में काफी समय लगता है। अतः इन अधिकारियों के बीच संचार को पर्याप्त समय मिलना चाहिए व इसमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

(6) प्रतिक्रिया को जानना (Taking Feedback): यह जानने के लिए कि लक्षित श्रोता को संदेश उन्हीं अर्थों में समझ आया है जिनमें उसे यह संदेश सम्प्रेषित किया गया था या नहीं, इसके लिए प्रेषक को श्रोता से प्रतिक्रिया प्राप्त करनी चाहिए।

(7) वार्ता के दौरान दूसरे पक्ष को नीचा न दिखाना (Don't Talk Down to the Other Person): वार्ता के दौरान दूसरे पक्ष को नीचा नहीं दिखाया जाना चाहिए; जैसे-श्रोताओं को संदेश समझ न आने पर यह कहना कि 'यह तुम्हारे लिए बहुत कठिन है' की बजाय यह कहना चाहिए कि 'कहीं मैंने संदेश बहुत तेजी से तो नहीं दे दिया?'

(8) पक्षपात रहित वार्ता (Bias Free Conversation): संचार संदेश किसी जाति, समुदाय, धर्म व लिंग के प्रति पक्षपात वाला नहीं होना चाहिए।

(9) अन्य सुझाव (Other Suggestions):

(i) वार्ता में **मजाक (Humour) का प्रयोग** सावधानी से करना चाहिए क्योंकि इनका अर्थ सार्वभौमिक नहीं होता।

(ii) विभिन्न भाषा बोलने वाले अधिकारियों का **अपना-अपना अनुवादक** होना चाहिए।

(iii) अपने व्यवहार व वार्ता के ढंग को दूसरे पक्ष के अनुसार बदलना चाहिए। इससे संचार की कुशलता बढ़ती है।

(iv) वार्ता के अंत में सहमति बनाये गए वाक्यों व मुद्दों को **दोहराया जाना** चाहिए।

(v) महत्त्वपूर्ण वार्ता के बारे में **लिखित पत्र** या मिमो (Memo) द्वारा संवाद में तय संदेश को संक्षेप में लिखकर दूसरे पक्ष को भेजा जाना चाहिए तथा इसी पत्र में दूसरे पक्ष का मिटिंग में आने पर धन्यवाद भी किया जाना चाहिए।

(vi) संचार में दूसरे पक्ष के बारे में **पहले से ही अच्छा या बुरा विचार** नहीं बनाया जाना चाहिए। संचार में दूसरे पक्ष को दूसरी संस्कृति का प्रतिनिधि नहीं मानना चाहिए।

(vii) दूसरे पक्ष के रीति-रिवाजों, मूल्यों, विश्वासों, आदतों आदि के बारे में वार्ता से **पहले जानकारी एकत्रित** की जानी चाहिए।

(viii) दूसरे पक्ष को ध्यान से व **सहजता से सुनना** चाहिए। यदि कोई वाक्य समझ न आए तो दूसरे पक्ष को उस वाक्य को दोहराए जाने के लिए कहना चाहिए।

(ix) दूसरे पक्ष की कायिक भाषा, सांकेतिक भाषा, **हाव-भावों का ध्यान** तो रखना चाहिए, पर उस द्वारा बोले गए शब्दों को कायिक भाषा से अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए।

(x) लिखित संदेश में **छोटे-छोटे अनुच्छेदों (Paragraphs) का प्रयोग** किया जाना चाहिए। इन अनुच्छेदों में 8 से 10 लाइनों से अधिक नहीं लिखा जाना चाहिए।

(xi) शोर को समाप्त करने का प्रयत्न करें, शब्दों का स्पष्ट उच्चारण करें, विराम चिह्नों पर रुकें। **एक बार में एक ही बात करें।**

(xii) दूसरे व्यक्ति को अपनी बात कहने का अवसर दें। उसे **बीच में न रोकें** अन्यथा कोई महत्त्वपूर्ण बात छूट जाएगी तथा यह असभ्य भी लगेगा।

(xiii) अपने संदेश को समझाने के लिए प्रिंटिड फार्मों, चित्रों, **दृश्य यंत्रों (Visual Aids) का प्रयोग** करें। इससे संदेश को स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलती है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. **'व्यवसाय की सफलता के लिए उपयुक्त सूचना की उचित समय पर उपलब्धता अति अनिवार्य है।' इस कथन की व्याख्या करें।**
'Timely availability of relevant information is must for the success of business.' Elucidate this statement.
2. **अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के लिए आवश्यक सूचनाओं का विस्तार से वर्णन करें।**
Discuss in detail the information requirements for international business.

विदेशी बाजार में प्रवेश की व्यूहरचनाएँ, देश मूल्यांकन एवं चयन

(Foreign Market Entry Strategies, Country Evaluation and Selection)

विदेशी बाजार में प्रवेश की व्यूहरचनाएँ (Foreign Market Entry Strategies)

■ 1. परिचय व अर्थ (Introduction and Meaning)

विदेशी बाजार में प्रवेश की व्यूहरचना निर्धारित करना एक बहुत ही रणनात्मक निर्णय है। विदेशी बाजार में प्रवेश संबंधी व्यूहरचना का चयन बहुत ही सावधानी से किया जाना चाहिए क्योंकि इसके दीर्घकालीन प्रभाव होते हैं। एक बार व्यूहरचना का चयन करने के बाद इसे सरलता से बदला नहीं जा सकता। भविष्य में अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई का विकास बहुत सीमा तक व्यूहरचना के चयन पर निर्भर करता है। विदेशी बाजार में प्रवेश के तीन मुख्य माध्यम हैं– व्यापार माध्यम, निवेश माध्यम व अनुबंधीय प्रवेश माध्यम। व्यापार माध्यम में व्यावसायिक इकाई विदेशी बाजारों में अपने उत्पाद निर्यात करती है। निवेश माध्यम में मूल कंपनी विदेशों में सहायक कंपनियाँ स्थापित करती है। अनुबंधीय माध्यम में मेजबान देश की व्यावसायिक इकाइयों से तकनीकी सहयोग समझौते किए जाते हैं। इनमें मूल कंपनी अपनी नवाचारी टेक्नोलॉजी मेजबान देश की व्यावसायिक इकाई को उपलब्ध करवाती है। इन तीन मुख्य रणनीतियों के अलावा विदेशी बाजार में प्रवेश की अन्य रणनीतियाँ भी हैं। उचित रणनीति का चयन विभिन्न घटकों पर निर्भर करता है; जैसे-संसाधनों की उपलब्धता, जोखिम स्तर, टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ, परिवहन लागत, अधोसंरचना सुविधाएँ, प्रबंध का दृष्टिकोण, विदेशी निवेश का अंतर्प्रवाह/बाहरी प्रवाह आदि। वैश्वीकरण ने अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय को बहुत बढ़ावा दिया है। वैश्वीकरण में एक देश की अर्थव्यवस्था को विश्व के अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ स्वतंत्र व्यापार, पूँजी व श्रम के स्वतंत्र प्रवाह द्वारा जोड़ा जाता है।

वैश्वीकरण में घरेलू अर्थव्यवस्था को विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश के लिए खोल दिया जाता है। आयात पर लगे प्रतिबंधों को कम किया जाता है, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा दिया जाता है। अब बहुराष्ट्रीय कंपनियां उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी निवेश कर सकती हैं जो पहले विदेशी कंपनियों के लिए वर्जित या प्रतिबंधित थे। वैश्वीकरण का यह मानना है कि घरेलू अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इससे विश्व की उच्चस्तरीय तकनीक, विशिष्ट ज्ञान, उत्पादों व सेवाओं आदि का घरेलू अर्थव्यवस्था में अंतरप्रवाह बढ़ेगा। विकसित देशों की पूंजी व टेक्नोलॉजी विश्व के विकासशील देशों; जैसे- चीन, भारत आदि में निवेश की जाएगी। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। अब बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कंपनियां कई देशों में अपने उत्पाद, सेवाएं, टेक्नोलॉजी आदि बेचती हैं। संचार व परिवहन की सुविधाओं के विकास से एक देश के लोगों के अन्य देशों में आवागमन में बहुत वृद्धि हुई है। लोग उच्च शिक्षा ग्रहण करने, पर्यटन, चिकित्सा, नौकरी आदि के लिए अन्य देशों में पहले से अधिक जाते हैं।

अत: वैश्वीकरण घरेलू अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़ने की प्रक्रिया है। वैश्वीकरण में मुख्यतया निम्न शामिल हैं:

(i) घरेलू अर्थव्यवस्था का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण।

(ii) विभिन्न देशों में टेक्नोलॉजी, पूंजी व श्रम के स्वतंत्र प्रवाह की अनुमति देना।

(iii) विभिन्न देशों में स्वतंत्र व्यापार, विश्व व्यापार में टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को कम करना।

(iv) बहुराष्ट्रीय निगमों का फैलाव।

■ 2. वैश्वीकरण की विशेषताएं/तत्त्व/संघटक (Characteristics/Elements/Components of Globalisation)

(1) उत्पाद व सेवाओं का स्वतंत्र व्यापार (Free Trade of Goods and Services): वैश्वीकरण में उत्पाद व सेवाओं के आयात व निर्यात के लिए उदार नीति अपनाई जाती है। विभिन्न देशों के मध्य उत्पाद व सेवाओं की क्रय-विक्रय पर लगी टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को हटाया जाता है। संपूर्ण विश्व को एक वैश्विक इकाई माना जाता है।

(2) पूँजी का स्वतंत्र प्रवाह (Free Movement of Capital): वैश्वीकरण का तात्पर्य है - घरेलू अर्थव्यवस्था को विदेशी पूँजी व विदेशी निवेश के प्रवाह के लिए खोलना तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश पर लगी रुकावटों को समाप्त करना। वैश्वीकरण में पूँजी के अंतरप्रवाह व बाहरी प्रवाह पर लगे प्रतिबंधों को हटाया जाता है तथा विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए विभिन्न रियायतें दी जाती हैं।

(3) श्रम का स्वतंत्र प्रवाह (Free Movement of Labour): वैश्वीकरण में विभिन्न देशों के मध्य श्रम के अंतरप्रवाह व बाहरी-प्रवाह को स्वतंत्र किया जाता है। मानव-संसाधनों के प्रवास तथा अप्रवास (Emigration and Immigration) संबंधी प्रावधानों को उदार बनाया जाता है। विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों व सुयोग्य मानवीय संसाधनों की सेवाओं को प्राप्त करना सरल बनाया जाता है। इससे व्यावसायिक इकाइयां अन्य देशों में उपलब्ध सस्ते व कुशल मानवीय संसाधनों की सेवाएं प्राप्त कर सकती हैं। इससे विभिन्न देशों की परस्पर निर्भरता बढ़ती है।

■ 3. विदेशी बाजार में प्रवेश की रणनीतियाँ/वैश्वीकरण की रणनीतियाँ (Foreign Market Entry Strategies/Strategies of Globalisation)

विभिन्न कंपनियाँ वैश्वीकरण की भिन्न-भिन्न रणनीतियाँ अपनाकर अपने व्यवसाय को वैश्विक स्तर पर फैलाती हैं। कुछ कंपनियां अलग-अलग देशों में प्रवेश की भिन्न-भिन्न रणनीतियाँ अपनाती हैं। विदेशी बाजार में प्रवेश की मुख्य रणनीतियाँ निम्नलिखित हैं:

(1) निर्यात करना (Exporting): निर्यात द्वारा व्यवसाय को वैश्विक स्तर पर फैलाना वैश्वीकरण की एक पुरानी रणनीति है। प्रारंभ में घरेलू कंपनी केवल एक ही देश को अपने उत्पाद निर्यात करती है। फिर धीरे-धीरे यह अपने उत्पाद अन्य देशों को निर्यात करके अपने व्यवसाय को कई देशों में फैला कर वैश्विक स्तर की व्यावसायिक इकाई बन जाती है। यदि घरेलू कंपनी की उत्पादन क्षमता पूर्ण रूप से घरेलू अर्थव्यवस्था में प्रयोग नहीं हो पाती, तथा उसकी उत्पादन लागत अन्य देशों की व्यावसायिक इकाइयों की तुलना में कम है, तो वह अपनी अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता का पूर्ण लाभ उठाने के लिए उसका निर्यात करना शुरू कर देती है। किसी एक देश में उत्पादन लागत अन्य देशों की तुलना में विभिन्न कारणों से कम हो सकती है; जैसे- कम श्रम लागत, कुशल श्रम की उपलब्धता, उच्च क्वालिटी के कच्चे माल की अधिक उपलब्धता, अच्छी तकनीक की उपलब्धता आदि।

(2) लाइसेंसिंग व फ्रेंचाइज़िंग (Licensing and Franchising): लाइसेंसिंग के अंतर्गत एक देश की व्यावसायिक इकाई अपनी बौद्धिक संपदा (Intellectual Property); जैसे- पेटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट आदि को प्रयोग करने का अधिकार किसी अन्य देश की व्यावसायिक इकाई को प्रदान करती है। लाइसेंस प्राप्त करने वाली व्यावसायिक इकाई (Licensee), लाइसेंस धारक व्यावसायिक इकाई (Licensor) को एक निश्चित समय-अवधि के लिए रॉयल्टी या फीस देती है। अधिकतर देशों में रॉयल्टी की यह दर विक्रय के 5 प्रतिशत से 8 प्रतिशत के मध्य होती है। लाइसेंसिंग समझौते से लाइसेंस धारक अपनी बौद्धिक संपदा का अधिकतम प्रयोग करके लाभ कमा सकता है। इसी तरह लाइसेंस प्राप्तकर्ता भी रॉयल्टी का भुगतान करके आधुनिकतम टेक्नोलॉजी का प्रयोग करके लाभान्वित हो सकता है।

फ्रेंचाइज़िंग के अंतर्गत एक देश की व्यावसायिक इकाई (फ्रेंचाइज़र- Franchiser) किसी दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई (फ्रेंचाइज़ी - Franchisee) को विधिवत ढंग से व्यवसाय करने का अधिकार प्रदान करती है। इसमें फ्रेंचाइज़ी फ्रेंचाइज़र के ब्रांड नाम से उत्पाद व सेवाएं बेच सकता है। कई बार फ्रेंचाइज़र कुछ मुख्य उपकरण व कलपुर्ज़े फ्रेंचाइज़ी को उपलब्ध करवाता है। कुछ दशाओं में फ्रेंचाइज़र दूसरे देश में डीलरों की नियुक्ति करता है। उदाहरण के लिए, सॉफ्ट ड्रिंक निर्माता जैसे- पेप्सी, कोका कोला अपने उत्पाद का सिरप (Syrup) दूसरे देशों में फ्रेंचाइज़ी को उपलब्ध करवाते हैं। फ्रेंचाइज़ी इकाई का अपना बोटलिंग प्लाट (Bottling Plant) होता है जहां वे इस सिरप में स्वच्छ सॉफ्ट ड्रिंक बनाकर बोतलों में पैक करके फ्रेंचाइज़र के ब्राड नाम से इसे बेचते हैं।

(3) उत्पादन समझौता (Contract Manufacturing): इस रणनीति में विश्व स्तर पर विपणन का कार्य करने वाली कंपनी, किसी विदेशी कंपनी के साथ उत्पाद को बनवाने का समझौता करती है तथा उस उत्पाद के विपणन का दायित्व स्वयं लेती है। अर्थात् उत्पाद का निर्माण तो घरेलू इकाई करती है, परंतु उत्पाद के विपणन कार्य का दायित्व विदेशी कंपनी लेती है। इस रणनीति से विदेशी कंपनी अन्य देशों में बिना अपनी निर्माणी इकाई स्थापित किए अपने व्यवसाय को अन्य देशों में फैला सकती है। यदि किसी देश में इसका व्यवसाय अधिक नहीं चलता है, तो विदेशी कंपनी वहां अपना व्यवसाय बंद कर सकती है क्योंकि वहां उसकी कोई अपनी निर्माणी इकाई नहीं है।

(4) संयुक्त उपक्रम (Joint Ventures): विदेशी बाजार में प्रवेश लेने के लिए यह रणनीति बहुत प्रचलित है। संयुक्त उपक्रम में विदेशी साझेदार घरेलू साझेदार के साथ मिलकर व्यावसायिक इकाई स्थापित करता है। इस संयुक्त उपक्रम का स्वामित्व व प्रबंधकीय अधिकार दोनों साझेदारों के पास होते हैं। घरेलू इकाई को घरेलू ग्राहकों के बारे में, जैसे- उपभोक्ताओं की रुचि, आय-स्तर, फैशन, पसंद, प्राथमिकता आदि के बारे में ज्ञात होता है। उसके पास व्यवसाय को चलाने के लिए आधारभूत सुविधाएं; जैसे- निर्माणी इकाई, वितरण नेटवर्क, सेवा केंद्र (Service Centre) आदि होते हैं। यदि विदेशी साझेदार विकसित देश से होता है, तो उसके पास उच्च स्तरीय टेक्नोलॉजी व तकनीकों उपलब्ध होती है। घरेलू इकाई अपनी निर्माण इकाई, अपना वितरण नेटवर्क उपलब्ध करवाती है तथा स्थानीय श्रम (Local Labour) उपलब्ध करवाती है। संयुक्त उपक्रम का लाभ विदेशी साझेदार व घरेलू इकाई आपस में निर्धारित अनुपात में बांटते हैं।

(5) प्रबंधकीय समझौता (Management Contracting): इस समझौते के अंतर्गत विदेशी कंपनी किसी अन्य देश में अपनी प्रबंधकीय एजेंसियाँ (Management Agencies) स्थापित करती है। इस प्रबंधकीय एजेंसियों के माध्यम से यह अन्य देशों की व्यावसायिक इकाइयों में बिना अपनी पूँजी निवेश किए, इन्हें प्रबंधित करती है। अर्थात् इस समझौते में केवल प्रबंधकीय जानकारी ही उपलब्ध करवाई जाती है। इस सेवा के बदले विदेशी कंपनी घरेलू कंपनी से लाभ का कुछ प्रतिशत या एकमुश्त राशि फीस के रूप में लेती है।

(6) पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियां (Wholly Owned Subsidiaries): कुछ विदेशी कंपनियाँ अन्य देशों में अपने पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियाँ स्थापित करती है। इन सहायक कंपनियों की पूर्ण पूँजी विदेशी कंपनी के पास ही होती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां वैश्वीकरण की इस रणनीति को तब अपनाती है, जब वे निर्माण क्रियाओं व विपणन क्रियाओं पर अपना संपूर्ण नियंत्रण रखना चाहती हैं। यह रणनीति वैश्वीकरण की अन्य रणनीतियों से इस प्रकार भिन्न है कि इसमें निर्माणी इकाई भी विदेशी कंपनी द्वारा ही लगाई जाती है तथा सहायक कंपनी की सारी पूंजी व नियंत्रण बहुराष्ट्रीय कंपनी के पास ही होता है; जैसे- L.G.Electronics ने भारत में L.G. India के नाम से संपूर्ण स्वामित्व वाली अपनी निर्माणी इकाई सहायक कंपनी के रूप में स्थापित की है। इस सहायक कंपनी की संपूर्ण निर्माणी क्रियाएं व विपणन क्रियाएं भारत में ही की जाती हैं। मूल कंपनी (Parent/Holding Company) के ब्राड नाम से ही सहायक कंपनी अपने उत्पाद बेचती है।

(7) संग्रहण समझौते (Assembly Contracts): वैश्वीकरण की इस रणनीति में विदेशी साझेदार मूल उपकरण व पुर्ज़े उपलब्ध करवाता है, परंतु इनका संग्रहण दूसरे देश में किया जाता है। प्राय विकसित देश की व्यावसायिक इकाई मूल उपकरण उपलब्ध करवाती है, जबकि इनका संग्रहण विकासशील देश में किया जाता है। इस प्रकार इस समझौते से विकासशील देश की सस्ती श्रम-लागत (Cheap Labour Cost) का लाभ मिल जाता है। विकासशील देश में इस संग्रहित उत्पाद को विकसित देश के ब्रांड नाम से ही बेचा जाता है। इस समझौते से आयात कर (Custom-duty) की भी बचत होती है, क्योंकि विदेशों से आयातित उपकरणों पर आयात कर, तैयार उत्पादों की तुलना में कम होता है। वैश्वीकरण की इस तकनीक में राजनैतिक विरोध भी कम होता है, क्योंकि इसमें उपकरणों की विकासशील देश में ही संग्रहित करने से स्थानीय लोगों के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं। विकासशील देशों में संग्रहण करके तैयार

उत्पादों को न केवल वहाँ के बाजार में ही प्रयोग किया जाता है अपितु वहाँ से ये अन्य देशों को निर्यात भी किए जाते हैं। इससे विकासशील देशों के निर्यात बढ़ते हैं।

(8) **अन्य देशों में विलयन व अधिग्रहण** (Cross Border Mergers and Acquisitions): ऐसे विलयन व अधिग्रहण विभिन्न देशों की व्यावसायिक इकाइयों के बीच होते हैं। विलयन के अंतर्गत प्राय: एक स्तर पर कार्यरत व एक ही तरह के व्यवसाय में संलग्न व्यावसायिक इकाइयाँ, आपसी प्रतिस्पर्धा को रोकने हेतु व दीर्घकालीन प्रतिस्पर्धात्मक सुदृढ़ता के लिए मिलकर एक ही इकाई में परिवर्तित हो जाती हैं। विलयन के बाद वे बड़े स्तर की बचतों (Economies of Scale) के लाभ उठाती हैं। विदेशी अधिग्रहण (Cross Border Acquisition) के अंतर्गत, प्राय: एक देश की बड़ी व्यावसायिक इकाई अन्य देश की किसी व्यावसायिक इकाई (जो पहली इकाई से तुलनात्मक रूप में छोटी होती है) का अधिग्रहण करती है। अधिग्रहण के बाद छोटी कंपनी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तथा वह अवशोषक (Absorbing) कंपनी में समा जाती है; जैसे- भारत की टाटा स्टील कंपनी ने यूरोप की कोरस (Corus) स्टील कंपनी का अधिग्रहण किया। इसी तरह भारती एयरटेल ने अफ्रीका में जेन टेलीकॉम ऑपरेशन्ज़ (Zain's Telecom Operation) का अधिग्रहण किया। इस प्रकार विदेशों में विलयन व अधिग्रहण द्वारा अन्य देशों में स्थापित व्यावसायिक इकाइयों की निर्माणी इकाइयों व विपणन आधार पर तुरंत पहुंच बन जाती है तथा विदेशी प्रतिस्पर्धा में भी कमी आती है।

(9) **तीसरा देश रूट/स्थान** (Third Country Route/Location): वैश्वीकरण की इस रणनीति का प्रयोग दो देशों के मध्य मैत्रिक संबंधों का लाभ उठाने के लिए किया जाता है। इस रणनीति में एक देश दूसरे देश में प्रत्यक्ष निवेश न करके पहले तीसरे देश में निवेश करता है, तदोपरांत यह निवेश लक्षित देश में किया जाता है। ऐसा लक्षित देश व दूसरे देश के मध्य मैत्रिक संबंधों के कारण निवेश पर उपलब्ध रियायतों व छूटों का लाभ उठाने के लिए किया जाता है; जैसे- भारत में मॉरिशस से मैत्रिक संबंधों के कारण मॉरिशस से आए निवेश पर करों में छूट व रियायतें दी जाती हैं। इस मैत्रिक समझौते का लाभ उठाने के लिए अन्य देश; जैसे- जापान, इंग्लैंड, यू॰एस॰ए॰ आदि भारत में सीधा निवेश न करके पहले मॉरिशस में निवेश करते हैं, तदोपरांत मॉरिशस से भारत में निवेश किया जाता है। इससे मॉरिशस से आए निवेश पर उपलब्ध करों में रियायतों का लाभ अन्य देशों को मिल जाता है। वैश्वीकरण की इस रणनीति को उस दशा में भी अपनाया जाता है, जब मूल निवेशक देश व लक्षित देश के मध्य राजनैतिक या व्यापारिक संबंध अच्छे नहीं है। जैसे मान लो देश A व B के मध्य संबंध अच्छे नहीं हैं। परंतु देश A का निवेशक देश B में या देश B का निवेशक देश A में निवेश करना चाहता है तो ऐसी स्थिति में तीसरे देश के रूट से लक्षित देश में निवेश किया जाता है।

(10) **व्यूहरचनात्मक गठबंधन** (Strategic Alliance): यह गठबंधन दो व्यावसायिक इकाइयों के मध्य किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है; जैसे-नवाचारी टेक्नोलॉजी के विकास के लिए साझी अनुसंधान व विकास इकाई स्थापित करना; साझे प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा दोनों व्यावसायिक इकाइयों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना, दोनों व्यावसायिक इकाइयों के ग्राहकों को विक्रय उपरांत सेवाएँ उपलब्ध करवाने के लिए साझा उपभोक्ता सेवा केंद्र (Common Customer Service Centre) स्थापित करना आदि। कई बार विदेशी बाजार में प्रवेश लेने के लिए व्यूहरचनात्मक गठबंधन किया जाता है। इसमें एक देश की व्यावसायिक इकाई अन्य देश की व्यावसायिक इकाई से यह गठबंधन करती है कि वह उसके बाजार क्षेत्र में प्रवेश करेगी। प्रवेश के इस माध्यम में दोनों व्यावसायिक इकाइयाँ अपने अस्तित्व को बनाए रखती है तथा एक-दूसरे की क्रियाओं में कोई दखलअंदाजी नहीं करती, न ही स्वामित्व में कोई हस्तांतरण होता है। इस माध्यम में मेजबान देश में कोई सहायक कंपनी स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती। इस गठबंधन को रद्द करना बहुत ही सरल होता है क्योंकि इसमें न तो कोई नयी विदेशी सहायक कंपनी की स्थापना की जाती है और न ही स्वामित्व का हस्तांतरण किया जाता है। यह गठबंधन किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है जिससे दोनों साझेदारों को लाभ होता है।

(11) **टर्नकी परियोजनाएँ** (Turnkey Projects): इस समझौते में एक देश की व्यावसायिक इकाई किसी दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई के लिए पूर्ण प्लांट का निर्माण करने का समझौता करती है। जो व्यावसायिक इकाई प्लांट का निर्माण करती है उसे लाइसेंसर (Licensor) कहते है तथा जिस व्यावसायिक इकाई को पूर्ण निर्मित प्लांट मिलना है, उसे लाइसेंसधारी (Licensee) कहते है। जब परियोजना की प्रारंभिक अवस्था, कार्यान्वयन अवस्था की तुलना में अधिक जटिल होती है, तो ऐसी परिस्थिति में टर्नकी परियोजना समझौते किए जाते है। इन समझौतों में लाइसेंसर के पास प्लांट निर्माण संबंधी तकनीकी कौशल, ज्ञान तथा अनुभव होता है। इस सेवा के लिए लाइसेंसर या तो एकमुश्त राशि के रूप में या कुल परियोजना लागत का निर्धारित प्रतिशत अपनी सेवा के लिए प्रतिफल के रूप में लेता है। परियोजना को शुरू करने के लिए यदि लाइसेंसधारी के पास अनुभव व मुख्य तकनीक (Core Competence) की कमी होती है तो यह समझौता लाइसेंसधारी के लिए भी लाभकारी होता है। इस परियोजना से लाइसेंसधारी विश्वस्तरीय आधुनिक डिजाइनों का लाभ उठा सकता है। लेकिन तकनीकी ज्ञान के अभाव के कारण लाइसेंसधारी की भविष्य में भी लाइसेंसर पर निर्भरता बनी रहती है। भविष्य में यदि प्लांट में कोई तकनीकी खराबी आती है या प्लांट के किसी कल-पुर्जे/उपकरण को प्रतिस्थापित करना पड़ता है, तो इसके लिए लाइसेंसधारी को लाइसेंसर पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(12) **प्रति-व्यापार** (Counter-trade): कुछ व्यावसायिक इकाइया दूसरे देश की व्यावसायिक इकाइयों के साथ एक-दूसरे के बाजारों में प्रवेश पाने के लिए प्रति-व्यापार समझौते करती हैं। प्रति-व्यापार ऐसा अनुबंध है जिसमें निर्यात करने के लिए उसी मूल्य का आयात करना होता है। जब यह समझौता दो राष्ट्रों के बीच होता है तब एक देश, दूसरे से इस शर्त पर आयात करता है कि दूसरा देश भी पहले देश से बराबर मूल्य की वस्तुओं का आयात करे। आजकल विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों के बीच भी प्रति-व्यापार समझौते किये जाते हैं। इसके अंतर्गत एक व्यावसायिक इकाई दूसरी व्यावसायिक इकाई से इस शर्त पर आयात करती है कि दूसरी व्यावसायिक इकाई भी पहली व्यावसायिक इकाई से निर्धारित समय में बराबर मूल्य के वस्तुओं का आयात करेगी। इस तरह के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती और देश के भुगतान शेष पर कोई भार नहीं पड़ता। यह एक तरह का वस्तु विनिमय व्यापार (Barter Trade) है। प्राचीन काल में विभिन्न देशों के बीच इसी तरह का व्यापार होता था, क्योंकि इसमें मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। समय के साथ मुद्रा का विकास हुआ और मुद्रा को विभिन्न व्यवहारों के विनिमय में स्वीकार किया जाने लगा। मुद्रा के विकास से प्रति-व्यापार में और भी लोचशीलता आ गई। अब दो देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं का विनिमय एक ही समय पर होना अनिवार्य नहीं रहा। इससे प्रति-व्यापार का विकास हुआ। अब एक देश आयात करते समय, दूसरे देश पर एक निश्चित अवधि में उतने ही मूल्य की वस्तुओं को आयात करने की शर्त लगाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रति-व्यापार आज भी प्रचलित है। बहुत से देश आपस में प्रति-व्यापार समझौते करके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रति-व्यापार उन दशाओं में बहुत उपयोगी है जब देश के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा न हो। प्रति-व्यापार विभिन्न देशों में प्रायः पाया जाता है।

■ 4. विदेशी बाजारों में प्रवेश के घटक/कारण/आवश्यक शर्तें

(Factors/Causes/Essential Conditions for Entry into Foreign Markets)

(1) **उदारीकरण** (Liberalisation): उदारीकरण का तात्पर्य व्यावसायिक इकाइयों पर लगे अनावश्यक प्रतिबंधों व नियंत्रणों को सरकार द्वारा कम करने से है। इसके अंतर्गत कार्यविधियों को सरल बनाया जाता है, तथा प्रशासनिक बाधाओं को कम किया जाता है। इसमें औद्योगिक लाइसेंसिंग, उत्पादों पर कीमत नियंत्रण, आयात लाइसेंस, विदेशी मुद्रा नियंत्रण आदि को उदार बनाया जाता है। इसमें बड़े व्यावसायिक घरानों पर लगे प्रतिबंधों को कम किया जाता है। विदेशी व्यापार पर लगी टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को दूर किया जाता है, विदेशी निवेश के अंतरप्रवाह व बाहरी प्रवाह पर लगे प्रतिबंधों को कम किया जाता है। इसी तरह विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से संबंधित उदार नीति से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश को बढ़ावा मिलता है। इन सबसे विदेशी बाजारों में प्रवेश/वैश्वीकरण को बढ़ावा मिलता है।

(2) **बहुपक्षीय व्यापार समझौते** (Multilateral Trade Agreements): पहले विदेशी व्यापार द्विपक्षीय व्यापार समझौतों द्वारा किया जाता था। ये व्यापार समझौते दो देशों के मध्य होते थे। परंतु अब अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक संस्थाओं; जैसे-विश्व व्यापार संगठन, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, अंकटाड आदि के विकास से बहुपक्षीय व्यापार समझौते किए जाते हैं। ये समझौते बहुत से देशों के मध्य किए जाते हैं। इससे विभिन्न देशों की परस्पर निर्भरता बढ़ गई है तथा वे एक-दूसरे

के बहुत पास आ गए है। बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के बिना वैश्वीकरण संभव ही नहीं था। वर्ष 2013 में 159 देश विश्व व्यापार संगठन के सदस्य थे। WTO के मंच पर हुए बहुपक्षीय व्यापार समझौते एक साथ 159 देशों पर लागू होते है

(3) बहुपक्षीय निवेश समझौते (Multilateral Investment Agreements): बहुपक्षीय निवेश समझौतों से विश्व के कई देश विदेशी निवेश के अंतरप्रवाह व बाहरी प्रवाह पर लगे प्रतिबंधों को हटाते है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विभिन्न देशों में अपने व्यवसाय फैलाने का अवसर मिलता है। ट्रिम्स (TRIMs — Trade Related Investment Measures) विश्व व्यापार संगठन के मंच पर बहुपक्षीय निवेश समझौते का एक उदाहरण है। इन समझौतों से वैश्वीकरण को बढ़ावा मिलता है।

(4) पर्याप्त साधन (Sufficient Resources): व्यवसाय को वैश्विक स्तर पर फैलाने के लिए यह अत्यावश्यक है कि व्यावसायिक इकाई के पास पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन, प्रबंधकीय साधन, तकनीकी विशिष्टता, उद्यमी योग्यताएँ, प्रसिद्ध ब्राड, विपणन योग्यताएँ, कुशल मानवीय संसाधन आदि हों। इन साधनों के अभाव में व्यवसाय को वैश्विक स्तर पर फैलाया नहीं जा सकता।

(5) तुलनात्पक लाभ (Comparative Advantage): जिस व्यावसायिक इकाई की उत्पादन लागत उत्पाद की क्वालिटी, विपणन कौशलता, ब्राड छवि आदि अन्य व्यावसायिक इकाइयों की तुलना में अधिक बेहतर है, ऐसे व्यावसायिक इकाई के लिए अपनी व्यावसायिक क्रियाओं को वैश्विक स्तर पर ले जाने की तुलनात्मक रूप से अधिक संभावना होती है। यह तुलनात्मक श्रेष्ठता उच्च क्वालिटी के कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति, सस्ते व कुशल श्रम की पर्याप्त उपलब्धता, तकनीकी श्रेष्ठता आदि के कारण हो सकती है। जैसे- भारत में रत्नाभूषण उद्योग के लिए कौशल श्रमिक कम श्रम लागत पर उपलब्ध हैं, जिससे रत्नाभूषण बनाने की उत्पादन लागत कम पड़ती है। इससे भारत का रत्नाभूषण उद्योग विश्व स्तर पर उभर पाया है।

(6) परिवहन में सुधार (Improvement in Transportation): पिछले कुछ वर्षों में परिवहन टेक्नोलॉजी में काफी सुधार हुआ है। हवाई परिवहन व्यवस्था में सुधार व बंदरगाहों के विकास से अब उत्पादों को बहुत दूर स्थानों तक कम लागत पर ले जाना बहुत सरल हो गया है। कंटेनर ट्रांसपोर्टेशन (Container Transportation) के विकास से अंतर्देशीय व्यापार बहुत बढ़ गया है। इससे विभिन्न देशों के बाजारों का एकीकरण हो गया है।

(7) सूचना व संचार तकनीक में सुधार (Improvement in Information and Communication Technology): पिछले कुछ वर्षों में सूचना व संचार तकनीक में बहुत सुधार हुआ है। दूरसंचार, इंटरनेट, कम्प्यूटर आदि के विकास से विभिन्न देशों में सूचनाओं का आदान-प्रदान बहुत सरल हो गया है। अब मोबाइल फोन, फैक्स (Fax), ई-मेल (e-mail) आदि बहुत प्रचलित हो गए हैं। इनके परिणामस्वरूप व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं को विभिन्न देशों में करवाना (Business Outsourcing) बहुत सरल हो गया है। इससे वैश्वीकरण को बढ़ावा मिला है।

(8) अन्य देशों का अनुभव (Experience of Other Countries): पिछले दो या तीन दशकों में केंद्रीय नियोजित अर्थव्यवस्थाएँ (Centrally Planned Economies); जैसे- रूस, पूर्वी यूरोप, पूर्वी जर्मनी आदि आर्थिक रूप से असफल हुई है। ये देश वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपनाने में इच्छुक नहीं थे। इसके विपरीत, कुछ विकासशील देशों; जैसे- कोरिया, थाईलैंड, हांगकांग, सिंगापुर आदि ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपना कर आर्थिक सफलता की ऊँचाइयों को छू लिया है। चीन ने वैश्वीकरण के गले को अपना कर आर्थिक विकास की ऊँची दर प्राप्त कर ली है। वैश्वीकरण के कारण इन देशों को मिली सफलता से प्रेरित होकर भारत व अन्य विकासशील देशों ने वैश्वीकरण को अपना लिया है

(9) निगमित संगठनों का विकास (Growth of Corporate Organisations): निगमित संगठनों के विकास से वैश्वीकरण को बढ़ावा मिला है। विदेशी निवेशक कंपनियों के अंश खरीद कर सरलता से अपनी निवेश राशि अन्य देशों में निवेश कर सकते है। प्रतिभूति बाजार से अंशों को खरीद कर व बेचकर विदेशी निवेशक निवेश की राशि को बढ़ा या कम कर सकते है।

(10) उच्च क्वालिटी की आधारभूत सुविधाएँ (Good Quality Infrastructural Facilities): वैश्वीकरण के लिए उच्च क्वालिटी की आधारभूत सुविधाओं का होना बहुत अनिवार्य है। यदि किसी देश में अच्छी क्वालिटी की आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध हैं तो इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उस देश की ओर अपना व्यवसाय फैलाने के लिए आकर्षित होती है। आधारभूत सुविधाओं में ऊर्जा की पर्याप्त पूर्ति, यातायात सुविधाएँ, बंदरगाह सुविधाएँ, वेयरहाउसिंग, बैंकिंग, संचार, सुदृढ़ पूँजी बाजार आदि सुविधाएँ शामिल है।

(11) विश्व स्तर पर स्वीकृत मुद्रा (Globally Accepted Currency): वैश्वीकरण के लिए विश्व स्तर पर स्वीकृत मुद्रा का होना बहुत अनिवार्य है। इससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भुगतानों में सहायता मिलती है तथा अंतर्राष्ट्रीय तरलता बढ़ती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने चार देशों की करेंसियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भुगतानों के लिए मंजूरी दी है ये चार करेंसियाँ इस प्रकार है: अमेरिकन डॉलर, ब्रिटिश पौंड, यूरो और जापान का येन। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों व तरलता को बढ़ाने के लिए अपनी करेंसी 'विशेष-आहरण-अधिकार' (Special Drawing Rights -SDRs) भी जारी की है।

(12) वैश्विक दृष्टिकोण व सोच (Global Vision and Orientation): व्यावसायिक इकाइयों की सोच व दृष्टिकोण वैश्विक स्तर का होना चाहिए। व्यावसायिक इकाइयों के प्रवर्तकों में व्यवसाय को विश्व स्तर पर फैलाने की तीव्र इच्छा, सकारात्मक सोच, व्यापक दृष्टिकोण होना चाहिए। उन्हें वैश्वीकरण की रणनीतियों का ज्ञान होना चाहिए तथा उन्हें इसके लिए भरसक प्रयत्न करने चाहिए।

देश मूल्यांकन एवं चयन (Country Evaluation and Selection)

1. परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

वैश्विक बाजार का क्षेत्र बहुत ही विशाल है। वैश्विक व्यावसायिक इकाई को यह निर्णय लेना होता है कि उसे किस देश में अपने उत्पाद बेचने के लिए प्रवेश करना चाहिए तथा किस देश में अपनी उत्पादन इकाई स्थापित करनी चाहिए। सीमित साधनों, व्यापार संबंधी बाधाओं, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर प्रतिबंधों, राजनीतिक जोखिम, कानून व्यवस्था आदि समस्याओं के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनी के लिए सभी देशों के बाजारों में प्रवेश करना संभव नहीं होता। यदि किसी देश में टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ अत्यधिक है या विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अंतर्प्रवाह पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या किसी देश में राजनीतिक अस्थिरता के कारण राजनीतिक जोखिम अधिक है या विपणन संबंधी घटकों के प्रतिकूल होने के कारण व्यावसायिक प्रवेश लाभकारी नहीं है तो बहुराष्ट्रीय कंपनी को ऐसे देश में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

कई बार कुछ देशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मनाही होती है, तो ऐसे देश में निवेश माध्यम द्वारा प्रवेश लेना बिल्कुल असंभव है। इसके अलावा, यह भी हो सकता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनी के पास विभिन्न संसाधन; जैसे-वित्तीय साधन, मानवीय संसाधन, प्रबंधकीय संसाधन, मुख्य तकनीकी कौशल इतनी अधिक मात्रा में न हों कि सभी देशों में प्रवेश लिया जा सके। ऐसी स्थिति में बहुराष्ट्रीय कंपनी को ऐसे देशों का चयन करना होगा, जहाँ ये प्रवेश ले। आज बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ 150 से भी अधिक देशों में कार्यरत है इतना विशाल आकार बढ़ाने में वैश्विक कंपनियों को बहुत अधिक समय लगा होगा। इन्होंने धीरे-धीरे करके ही विभिन्न देशों में प्रवेश लिया होगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विभिन्न देशों में प्रवेश से पहले उनका मूल्यांकन करती है। इस मूल्यांकन के आधार पर विभिन्न देशों को श्रेणीबद्ध किया जाता है, अर्थात् क्रम सूची (Rank List) बनायी जाती है। सबसे पहले उस देश में प्रवेश लिया जाता है जिसका क्रम सूची में सर्वोच्च स्थान है। फिर उसके बाद दूसरे, तीसरे, चौथे क्रम वाले देश में प्रवेश लिया जाता है।

2. देश मूल्यांकन व चयन में चरण (Steps in Country Evaluation and Selection)

(1) अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक उद्देश्यों को परिभाषित करना (Defining International Business Objectives): अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई के वैश्विक व्यवसाय संबंधी विभिन्न उद्देश्य हो सकते है। ये उद्देश्य देश के मूल्यांकन व चयन को प्रभावित करते है; जैसे-(i) व्यावसायिक इकाई का उद्देश्य यदि अपने अतिरिक्त उत्पादन (Surplus Production) को बेचना है तो उस देश का चयन किया जाना चाहिए जहाँ टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ न्यूनतम हैं। तथा जहाँ उत्पाद की पर्याप्त माँग भी है, (ii) यदि व्यावसायिक इकाई का उद्देश्य नियमित रूप से बहुत विशाल मात्रा में उत्पादों को निर्यात करना है, तो माँग, टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं के अलावा अन्य घटकों; जैसे-आर्थिक

स्थिरता, राजनीतिक स्थिरता, कानून व्यवस्था, प्रतिस्पर्धा का स्तर, सांस्कृतिक घटकों आदि को भी ध्यान में रखा जाना है, (iii) यदि वैश्वक व्यावसायिक इकाई का उद्देश्य उत्पादन क्रियाओं के लिए विदेश में आधार स्थापित करना है, तो देश के मूल्यांकन व चयन में अलग तरह के घटकों का अध्ययन किया जाएगा; जैसे-श्रम लागत, कच्चे माल की उपलब्धता, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह पर प्रतिबंध, अधोसंरचना संबंधी सुविधाएँ, कर-प्रोत्साहन, राजनीतिक दृष्टिकोण आदि को ध्यान में रखा जाएगा। इस तरह वैश्वक व्यावसायिक इकाई के उद्देश्य देश के मूल्यांकन व चयन को प्रभावित करते है।

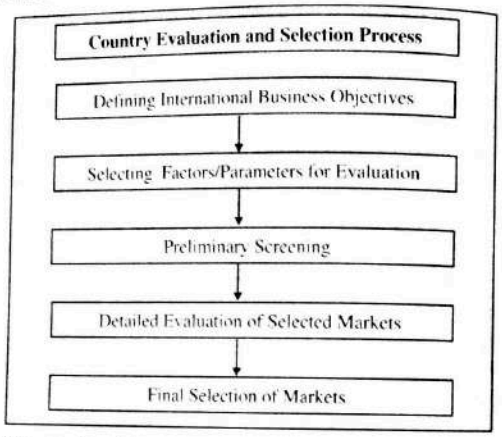

(2) **मूल्यांकन के लिए घटकों/प्रमापों का चयन करना** (Selecting Factors/Parameters for Evaluation) वैश्वक व्यावसायिक उद्देश्यों को परिभाषित करने के बाद देश मूल्यांकन व चयन के लिए घटकों/मापों का चयन किया जाता है। ये घटक दो प्रकार के हो सकते है: (i) बाजार से संबंधित घटक (Market Related Factors), (ii) उद्योग से संबंधित घटक (Industry Related Factors)। बाजार संबंधी घटक समष्टि/सामान्य प्रकृति के होते है अर्थात् ये घटक संपूर्ण देश में एक जैसे होते है। इन्हें सामान्य घटक भी कहते है। इसमें आर्थिक दशाएँ, आर्थिक नीतियाँ, आर्थिक अधिनियम, राजनीतिक घटक, अधोसंरचनात्मक सुविधाएँ, सांस्कृतिक घटक, उत्पादन-केंद्र बनने की क्षमता आदि को शामिल किया जाता है। उद्योग संबंधी घटक भी सामान्य (Macro) प्रकृति के होते हैं तथा सभी उद्योगों के लिए ये घटक एक जैसे होते है। इसमें कच्चे माल की उपलब्धता, श्रम लागत, श्रम की उपलब्धता, प्रतिस्पर्धा का स्तर, माँग, सरकारी कानून, कर-प्रोत्साहन, सांस्कृतिक घटकों आदि को शामिल किया जाता है।

(3) **प्रारंभिक छान-बीन** (Preliminary Screening): प्रारंभिक छान-बीन में विभिन्न प्रमापों/घटकों के आधार पर कुछ देशों का परित्याग कर दिया जाता है। इसका उद्देश्य विस्तृत मूल्यांकन के लिए देशों की संख्या को कम करना है तथा ऐसे देशों का पूर्ण रूप से परित्याग करना है, जो प्रवेश के लिए बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है। प्रारंभिक छँटनी के लिए हितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है, जैसे-विश्व बैंक द्वारा प्रत्येक सदस्य देश के प्रकाशित आँकड़े। ये आँकड़े मुख्य सांख्यकी आँकड़े, जैसे-जनसंख्या संबंधी आँकड़े, सकल घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय, विकास दर संबंधी आँकड़े आदि हो सकते है। ये घटक विभिन्न देशों की प्रारंभिक छान-बीन में सहायक होते है; जैसे-विलासितापूर्ण उत्पाद प्रौद्योगिकी कर के विपणन हेतु एक ऐसे देश में प्रवेश बिल्कुल भी उचित नहीं होगा, जहाँ प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है या जहाँ जीवन-स्तर बहुत निम्न है। इसी तरह यदि किसी देश में जनसंख्या का आकार बहुत कम है, तो उपभोक्ता उत्पादों की

माँग बहुत कम होगी। अतः उपभोक्ता उत्पाद बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनी को ऐसे देश में प्रवेश नहीं लेना चाहिए क्योंकि यहाँ उसे अधिक बाजार आकार नहीं मिलेगा।

(4) **चयन किए गए बाजारों का विस्तृत मूल्यांकन** (Detailed Evaluation of Selected Markets): प्रारंभिक छान-बीन द्वारा देशों की सूची को छोटा करने के बाद (Short-listing) चुने गए देशों का विस्तृत मूल्यांकन किया जाता है। विस्तृत मूल्यांकन में, मूल्यांकन मैट्रिक्स (Evaluation Matrix) तैयार किया जाता है जिसमें इन देशों में बाजार संबंधी घटकों व उद्योग विशेष संबंधी घटकों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित की जाती है। संक्षिप्त सूची के प्रत्येक देश के बाजार के घटकों को अंक (Score) दिए जाते हैं। इसके पश्चात् विभिन्न घटकों को उनके महत्व के आधार पर भार (Weight) दिया जाता है। प्रत्येक देश के लिए भारित मूल्य (Weighted Score) निकालने के लिए अंकों को भार से गुणा करके गुणांकों का जोड़ निकाला जाता है।

(5) **अंतिम चयन** (Final Selection): प्रत्येक देश के भारित-मूल्य के आधार पर, विस्तृत मूल्यांकन के लिए, चुने गए देशों की क्रम-सूची (Rank-list) बनायी जाती है। जिस देश का भारित-मूल्य सर्वाधिक होता है, उसे पहला क्रम, दूसरे सर्वाधिक भारित-मूल्य वाले देश को दूसरा क्रम और इसी तरह अगले क्रम दिए जाते है। इस क्रम सूची में से ऊपर के देश चुन लिए जाते है। भविष्य में व्यवसाय के प्रसार के लिए भी इस सूची का प्रयोग किया जाता है।

■ 3. देश मूल्यांकन व चयन में प्रयोग किए जाने वाले घटक/माप
(Factors/Parameters Used in Country Evaluation and Selection)

विभिन्न देशों के मूल्यांकन की प्रक्रिया में विभिन्न मापों का प्रयोग किया जाता है। इन घटकों को तीन वर्गों में बाँटा जाता है: (i) व्यावसायिक इकाई संबंधी घटक, (ii) उद्योग संबंधी घटक, (iii) बाजार संबंधी घटक। इन घटकों का विस्तृत विश्लेषण निम्नलिखित है:

■ 3.1 व्यावसायिक इकाई संबंधी घटक (Firm-related Factors)

इनका आशय व्यावसायिक इकाई के आंतरिक घटकों से है। इन घटकों को व्यवसाय का आंतरिक वातावरण कहते है। इसमें मुख्यतः वित्तीय संसाधन, भौतिक व मानवीय संसाधन, व्यवसाय का उद्देश्य, प्रबंधकीय नीतियाँ, कार्य दशाएँ, संस्थागत छवि, अनुसंधान व विकास संबंधी क्षमताएँ, उच्च प्रबंध का दृष्टिकोण आदि शामिल है। यदि व्यावसायिक इकाई के पास पर्याप्त मात्रा में वित्तीय व अन्य संसाधन उपलब्ध है तो व्यावसायिक इकाई अपने व्यवसाय को बहुत से देशों में फैला सकती है। परंतु यदि व्यावसायिक इकाई के पास संसाधन सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है तो प्रवेश को केवल पड़ोसी देशों तक ही सीमित रखा जाएगा। इसी तरह व्यावसायिक इकाई के उद्देश्य भी देश के चयन को प्रभावित करते है; जैसे-यदि व्यावसायिक इकाई का उद्देश्य अपने अतिरिक्त उत्पादन (Surplus Production) को बेचना है, तो विदेशों में टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं, निर्यात-आयात नीति व माँग आकार को ध्यान में रखा जाता है। परंतु यदि निर्यात, नियमित रूप में अत्यधिक मात्रा में किया जाना हो तो टैरिफ, गैर-टैरिफ बाधाओं, माँग-आकार, निर्यात-आयात नीति के अलावा अन्य घटकों को भी ध्यान में रखा जाता है; जैसे- आर्थिक स्थिरता, राजनीतिक स्थिरता, कानून व्यवस्था, मुद्रा स्फीति, सांस्कृतिक घटकों आदि का भी देश-मूल्यांकन व चयन प्रक्रिया में अध्ययन किया जाता है। यदि वैश्वक इकाई अन्य देशों में उत्पादन केंद्र स्थापित करना चाहती है, तो देश मूल्यांकन व चयन प्रक्रिया में मुख्यतः कच्चे माल की उपलब्धता, श्रम लागत, अधोसंरचना, सुविधाओं की उपलब्धता, कर-प्रोत्साहन, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक स्थिरता, आदि को ध्यान में रखा जाएगा।

■ 3.2 उद्योग संबंधी घटक (Industry-related Factors)

ये घटक संपूर्ण उद्योग पर लागू होते है। उद्योग संबंधी मुख्य घटक निम्नलिखित है:

(i) **कच्चे माल की उपलब्धता** (Availability of Raw Material): यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी विदेश में उत्पादन इकाई स्थापित करने पर विचार कर रही है, तो यह विदेशों में कच्चे माल की पूर्ति व अन्य आगतों की लागत व उपलब्धता का विश्लेषण करेगी ताकि विदेश में निर्माणी इकाई स्थापित करने पर इसे आगतें (Inputs) कम कीमत पर व उच्च क्वालिटी में उपलब्ध हो सकें।

(ii) श्रम की उपलब्धता व श्रम लागत (Availability and Cost of Labour): यदि श्रम लागत उत्पादन लागत के मुख्य तत्वों में से एक है तो मेजबान देश का चयन करने से पहले वहाँ आवश्यक कौशल वाले श्रम की उपलब्धता व लागत का विश्लेषण किया जाना चाहिए। इसके अलावा विपणन व लेखांकन कार्यों के लिए भी श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

(iii) प्रतिस्पर्धा का स्तर (Level of Competition): प्रतिस्पर्धा का स्तर किसी विपणन क्षेत्र में विद्यमान प्रतियोगी इकाइयों की संख्या पर निर्भर करता है। ऐसी व्यावसायिक इकाई जो हमारे उत्पाद से मिलता-जुलता उत्पाद या इसके निकट प्रतिस्थापित उत्पाद बेचती है, उसे प्रतिस्पर्धी इकाई कहते है। यदि विदेशी बाजार में प्रतियोगी इकाइयों की संख्या बहुत अधिक है अर्थात् प्रतिस्पर्धा का स्तर बहुत ऊँचा है; जैसे-वहाँ गला काट प्रतिस्पर्धा है तो ऐसे देश में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(iv) माँग का आकार (Demand Size): किसी देश में माँग का आकार विभिन्न तत्वों पर निर्भर करता है; जैसे-जनसंख्या का आकार, शहरी व ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात, आय-स्तर, जीवन स्तर, आर्थिक विकास दर, सांस्कृतिक घटक आदि। किसी देश में माँग आकार अधिक होने पर उस देश का चयन किया जाना चाहिए। बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ चीन व भारत में अपनी सहायक कंपनियाँ स्थापित करती हैं, क्योंकि यहाँ जनसंख्या का आकार अधिक होने के कारण माँग का आकार अधिक है।

(v) सरकारी नीति व नियमन (Government Policy and Regulations): किसी देश की सरकार का विदेशी निवेश के प्रति दृष्टिकोण भी देश के मूल्यांकन व चयन को प्रभावित करता है; जैसे- कुछ देशों में सरकार विदेशी कंपनियों के आगमन को आकर्षित करती है। इसके लिए यह विभिन्न प्रोत्साहन; जैसे-कर प्रोत्साहन, अनुदान, उदार अधिनियम, कम प्रावधान, कम प्रशासनिक औपचारिकताएँ आदि सुविधाएँ प्रदान करती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रवेश के लिए उस देश का चयन करना चाहिए जहाँ की सरकार का दृष्टिकोण उदार हो।

(vi) सांस्कृतिक घटक (Cultural Factors): विभिन्न देशों में सास्कृतिक आयाम भिन्न-भिन्न होते हैं। किसी देश का चयन करने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि मूल कंपनी का उत्पाद मेजबान देश की संस्कृति से मेल खाता हो, जिसे वहाँ के लोग आसानी से स्वीकार कर लें; जैसे-डिब्बा बंद भोजन, यद्यपि विकसित देशों में बहुत प्रचलित है परंतु विकासशील देशों के लोग इसे पसंद नहीं करते। इसी तरह हिंदुओं में गाय का मीट खाना उनकी संस्कृति से प्रतिबंधित है। अतः किसी देश का चयन करने से पहले वहाँ के सांस्कृतिक घटकों का अध्ययन करके यह पता लगा लेना चाहिए कि उत्पाद वहाँ की संस्कृति के अनुरूप है या नहीं।

■ 3.3 बाजार से जुड़े घटक (Market-related Factors)

इन घटकों को सामान्य घटक या समष्टि वातावरणीय घटक भी कहते हैं। ये घटक पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू होते है। देश मूल्यांकन व चयन प्रक्रिया में इन घटकों का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है। विपणन संबंधी मुख्य घटक निम्नलिखित है:

(i) **आर्थिक दशाएँ** (Economic Conditions): किसी देश की आर्थिक दशाएँ वहाँ के उपभोग-स्तर तथा क्रय-शक्ति को प्रभावित करती है। इनमें राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, आय-वितरण, विकास दर, व्यापार चक्र की अवस्था, पूँजी निर्माण की दर, मुद्रा-स्फीति दर आदि शामिल है। बहुराष्ट्रीय कंपनी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मेजबान देश की आर्थिक दशाएँ इसके प्रवेश के लिए अनुकूल है।

(ii) आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies): आर्थिक नीतियाँ सरकार व व्यवसाय के मध्य संबंध स्थापित करती है। ये नीतियाँ बहुराष्ट्रीय कंपनी के प्रवेश के अनुकूल या प्रतिकूल हो सकती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को निम्न मुख्य आर्थिक नीतियों का विश्लेषण करना चाहिए:

(a) निर्यात-आयात नीति
(b) विदेशी निवेश नीति
(c) औद्योगिक एवं लाइसेंसिंग नीति
(d) मौद्रिक नीति
(e) राजकोषीय नीति

(iii) आर्थिक अधिनियम (Economic Legislations): किसी देश की सरकार व्यवसाय को नियमित व नियंत्रित करने के लिए विभिन्न आर्थिक अधिनियम पारित करती है; जैसे-भारत सरकार ने कंपनी अधिनियम, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, सेबी (SEBI) अधिनियम, प्रतिस्पर्धा अधिनियम, विदेशी विनिमय प्रबंध विलयन एवं अधिग्रहण को नियमित करते हैं। यदि ये आर्थिक अधिनियम बहुत सख्त एवं जटिल है, इनके कारण दस्तावेजी औपचारिकताएँ अत्यधिक है तो बहुराष्ट्रीय कंपनी को ऐसे देश में प्रवेश नहीं लेना चाहिए।

(iv) राजनीतिक घटक (Political Factors): स्थिर, गतिशील (Dynamic) व अनुकूल राजनीतिक वातावरण की व्यावसायिक विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। बहुराष्ट्रीय कंपनी को देश मूल्यांकन व चयन के समय किसी देश के राजनीतिक वातावरण का विश्लेषण अवश्य करना चाहिए। मेजबान देश में राजनीतिक स्थिरता होने पर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ व्यवसाय संबंधी दीर्घकालीन योजनाएँ बना सकती है। यदि किसी देश में राजनीतिक अस्थिरता है, तो सत्ताधारी सरकार बार-बार बदलती रहती है, इससे सरकारी नीतियों में बार-बार बदलाव आते रहते है। इससे अनिश्चितता का वातावरण बना रहता है, जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश के रास्ते में बाधा है। यदि किसी देश के अपने पड़ोसी देशों के साथ संबंध अच्छे नहीं है तो यह अधिक देशीय जोखिम व राजनीतिक जोखिम की ओर संकेत करता है।

(v) अधोसंरचना (Infrastructure): अधोसरचना में ऊर्जा सृजन, परिवहन, सचार, शिपिग, एयरपोर्ट, समुद्री बदरगाह, बैंकिग, बीमा आदि सुविधाए शामिल हैं। अच्छी क्वालिटी की अधोसरचना सुविधाओं के अभाव में व्यावसायिक इकाइयाँ सुगमता से व्यावसायिक क्रियाएँ नहीं कर सकतीं। किसी देश में प्रवेश से पहले बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अधोसरचना संबंधी सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित कर लेनी चाहिए।

(vi) सांस्कृतिक घटक (Cultural Factors): संस्कृति भोजन-आदतों, पहनावा-शैली, कार्य-शैली, मूल्य नीति शास्त्र आदि को प्रभावित करती है। संस्कृति किसी उत्पाद के प्रति दृष्टिकोण व स्वीकृति को प्रभावित करती है। यह उत्पाद की छवि को भी निर्धारित करती है। बहुराष्ट्रीय कंपनी को देश के मूल्यांकन व चयन के समय वहाँ के सांस्कृतिक वातावरण का विश्लेषण कर लेना चाहिए। और यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कंपनी का उत्पाद मेजबान देश की संस्कृति से मेल खाता है।

(vii) विपणन केंद्र बनने की क्षमता (Potential for becoming Market Hub): यदि किसी देश में विपणन केंद्र बनने की क्षमता है तो बहुराष्ट्रीय कंपनी को ऐसे देश में प्रवेश को प्राथमिकता देनी चाहिए। यदि किसी देश में कच्चे माल की उपलब्धता है, विकसित बंदरगाहें हैं, उच्च कौशल वाले कर्मचारी व श्रमिक उपलब्ध हैं, तो उस देश में विपणन केंद्र बनने की क्षमता होती है। ऐसे स्थान पर उत्पादन केंद्र स्थापित करके बहुराष्ट्रीय कंपनी अपने उत्पाद यहीं बनाकर, यहीं बेच सकती हैं तथा यहाँ से अन्य देशों को निर्यात भी कर सकती है; जैसे-बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने चीन में अपने उत्पादन केंद्र स्थापित किए हैं क्योंकि चीन से दक्षिणी देशों, पूर्वी देशों व एशियाई देशों को उत्पाद निर्यात करना आसान है। इसी तरह दक्षिणी अफ्रीका संपूर्ण अफ्रीका महाद्वीप को उत्पाद निर्यात करने के लिए अच्छा केंद्र है। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ऐसे देश में प्रवेश को प्राथमिकता देती हैं, जिनमें विपणन केंद्र बनने की क्षमता है।

■ 4. मूल्यांकन मैट्रिक्स (Evaluation Matrix)

विभिन्न देशों के बाजारों का मूल्यांकन करने के लिए, जहाँ वैश्विक व्यावसायिक इकाई अपना व्यवसाय फैलाने की सोच रही है, मूल्यांकन मैट्रिक्स का प्रयोग किया जाता है। इस मैट्रिक्स के प्रयोग से विभिन्न देशों के बाजारों को उनकी उत्पादन व विपणन केंद्र बनने की क्षमताओं के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है। विभिन्न देशों के बाजारों के क्रमबद्ध किए जाने से वैश्विक व्यावसायिक इकाई उचित बाजार देश का चयन कर सकती है। व्यवसाय-फैलाव की प्रारंभिक अवस्था में उस देश का चयन किया जाएगा, जिसका मूल्यांकन मैट्रिक्स में क्रम सबसे ऊपर है। फिर आगे फैलाव के लिए उसके बाद के क्रम वाले देशों का चयन किया जाता है। मूल्यांकन मैट्रिक्स में जिस देश का भारित अंक (Weighted Score) जितना अधिक होगा, उसकी विपणन केंद्र बनने की क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

मूल्यांकन मैट्रिक्स में विभिन्न सामान्य घटकों (विपणन संबंधी घटक) व विभिन्न उद्योग संबंधी विशेष घटकों को शामिल किया जाता है। प्रत्येक देश के विभिन्न बाजार संबंधी घटकों व उद्योग संबंधी घटकों को आधारभूत अंक (Raw Score) दिए जाते हैं। उसके बाद विभिन्न बाजार संबंधी घटकों व उद्योग संबंधी घटकों को भार दिए जाते हैं। ये भार उन घटकों के सापेक्षिक महत्व पर निर्भर करते है।

यदि कोई घटक अधिक महत्वपूर्ण है, तो उसे अधिक भार दिया जाता है और यदि उस घटक का महत्व कम है, तो उसे कम भार दिया जाता है। भार निर्धारित करने के बाद आधारभूत अंकों को भार से गुणा करके भारित अंक (Weighted Score) निकाले जाते हैं।

भारित अंक = आधारभूत अंक × भार

Weighted Score = Raw Score × Weight

भारित अंकों की गणना करने के बाद, प्रत्येक देश के लिए विभिन्न भारित अंकों का जोड़ किया जाता है और इस तरह प्रत्येक देश के लिए कुल भारित अंक निकाले जाते हैं। इन कुल भारित अंकों के आधार पर विभिन्न देशों की क्रम सूची तैयार की जाती है। मूल्यांकन मैट्रिक्स के प्रारूप को नीचे दर्शाया गया है।

Evaluation Matrix of Different Countries

Sr. No.	Factors	Weights	Country A		Country B		Country C	
		(a)	Raw Score (b)	Weighted Score (a × b)	Raw Score (c)	Weighted Score (a × c)	Raw Score (d)	Weighted Score (a × d)
1	2	3	4	5	6	7	8	9
	A. Market Related Factors							
1.	Growth Rate of GDP							
2.	Per Capita Income							
3.	Inflation Rate							
4	Economic Stability							
5.	Political Ideology							
6	Political Stability							
7.	Government Policy							
8	Tax Incentives							
9	Intrastructural Facilities							
10	Cultural Factors							
11	Potential to Serve as Marketing Hub							
	Sum of Weighted Score (A)							
	B. Industry Specific Factors							
1	Availability of Raw Materials							
2	Availability of Labour							
3	Labour Cost							
4	Level of Competition							
5	Level of Demand							
6	Govt. Rules and Regulations							
7	Infrastructure							
8	Cultural Factors							
9	Incentives like Tax concessions, Subsidy, Concessional loans, etc.							
	Sum of Weighted Score (B)							
	Total Sum of Weighted Score (A + B)							
	Rank of Countries on the basis of Total Sum of Weighted Score							

विदेशी निवेश एवं FDI का प्रभाव
(Foreign Investment and Impact of FDI)

■ 1. भूमिका (Introduction)

प्रो० लुईस के अनुसार, **''संसार के लगभग प्रत्येक विकसित देश ने अपने आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अपनी बचतों की कमी को पूरा करने के लिए विदेशी पूँजी का प्रयोग किया है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में इंग्लैण्ड ने हॉलैण्ड से ऋण लिए और फिर इंग्लैण्ड ने स्वयं उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में बहुत से देशों को ऋण दिये। संसार के सबसे धनी देश संयुक्त राज्य अमेरिका ने उन्नीसवीं शताब्दी में भारी मात्रा में कर्जे लिए और अब वह इक्कीसवीं बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा ऋणदायक देश बन गया है।''** भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत में विदेशी पूँजी का आगमन ईस्ट इंडिया कपनी के समय से ही हो गया था। परतु अग्रेजो ने भारत में विदेशी पूँजी सबधी जो नीति अपनाई थी वह भारत के हित मे न होकर विदेशी पूँजीपतियों के अनुकूल थी। स्वतत्रता के पश्चात् भारत में विदेशी पूँजी का प्रयोग आर्थिक विकास को बढ़ाने एवम् भुगतान सतुलन को अनुकूल बनाने के लिए किया जाने लगा।

■ 2. विदेशी पूँजी का अर्थ (Meaning of Foreign Capital)

विदेशी पूँजी से अभिप्राय किसी देश की उत्पादक क्रियाओं मे विदेशी सरकार, विदेशी निजी व्यक्ति, अंतर्राष्ट्रीय सस्था द्वारा किये गये पूँजी के निवेश से है। विदेशी पूँजी मे विदेशी सहायता, व्यापारिक ऋण एव विदेशी निवेश को शामिल किया जाता है। **'विदेशी सहायता' में रियायती विदेशी ऋणो तथा विदेशी अनुदानों** को शामिल किया जाता है। विदेशी पूँजी–विदेशी मुद्रा, विदेशी मशीनो व तकनीकी ज्ञान आदि के रूप में लगाई जा सकती है। विदेशी पूँजी के कई स्वरूप जैसे **विदेशी सहयोग**, विदेशी मुद्रा में ऋण, भारतीय शेयर पूँजी मे विदेशी निवेश आदि हो सकते है। कई विदेशी सस्थाए तथा सरकारें अनुदान भी देती हैं। अनुदान और ऋण में मुख्य अतर यह है कि ऋणो को ब्याज सहित वापिस करना पड़ता है जबकि अनुदानों को वापिस नहीं करना पड़ता।

■ 3. विदेशी पूँजी का वर्गीकरण (Classification of Foreign Capital)

विदेशी पूँजी निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है:

(1) विदेशी सहायता; (2) व्यापारिक ऋण; (3) विदेशी निवेश।

■ 3.1 विदेशी सहायता (Foreign Aid)

विदेशी पूँजी का एक रूप विदेशी सहायता है। भारत जैसे अल्पविकसित देश में विदेशी पूँजी, विदेशी सहायता के रूप में भी प्राप्त होती है। विदेशी सहायता से हमारा आँभप्राय विदेशों से प्राप्त रियायती ऋण तथा अनुदान से है। इन ऋणों पर ब्याज की दर, बाजार की सामान्य दरो मे काफी कम होती है और इन्हें वापिस करने की अवधि बहुत लम्बी होती है। विदेशी सहायता का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में विकास की दर को बढाना है। विदेशी सहायता विकसित देशो की सरकारो और अतर्राष्ट्रीय सस्थाओं द्वारा दी जाती है जैसे– विश्व बैंक, अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक इत्यादि।

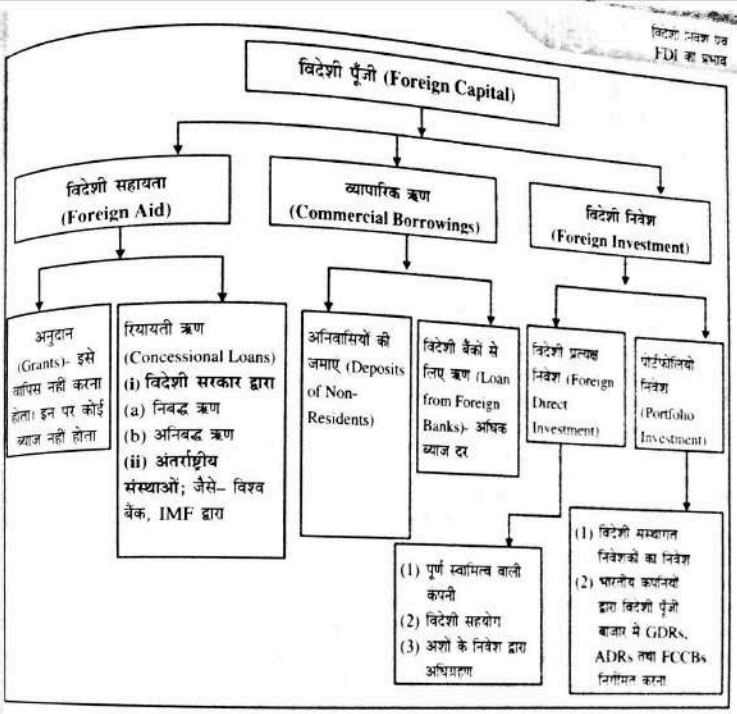

विदेशी सहायता निम्न प्रकार की होती है:

(1) **अनुदान** (Grants): विदेशी सहायता का एक हिस्सा अनुदान के रूप में प्राप्त होता है। विदेशी सहायता के इस हिस्से को वापिस नहीं करना पड़ता। इस पर न तो कोई ब्याज होता है और न ही इसकी मूल राशि को वापिस करना होता है। इससे अल्पविकसित देशों को विकास में काफी सहायता मिलती है।

(2) **रियायती ऋण** (Concessional Loans/Soft Loans): इन रियायती ऋणो पर ब्याज की दर, बाजार में प्रचलित ब्याज की दर से काफी कम होती है और इन्हे वापिस करने की अवधि लम्बी होती है। ये ऋण अल्पविकसित देशों को विकासात्मक परियोजनाओं के लिए और भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के लिए दिए जाते है। ये ऋण निम्न द्वारा दिये जाते हैं:

(i) **विदेशी सरकार से ऋण** (Loan from Foreign Government): विदेशी पूँजी का एक रूप यह है कि एक देश की सरकार दूसरे देश की सरकार को ऋण देती है। ये ऋण निम्नलिखित प्रकार के हो सकते है:

(a) **प्रोजेक्ट ऋण** (Project Loans): प्रोजेक्ट ऋण वे ऋण है, जो किसी विशेष परियोजना को पूरा करने के लिए दिये जाते है। इन्हे निबद्ध ऋण (Tied loans) भी कहा जाता है।

(b) **गैर-प्रोजेक्ट ऋण** (Non-Project Loans): गैर प्रोजेक्ट ऋण वे ऋण है, जो किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं दिये जाते। इनका प्रयोग ऋणी देश अपनी इच्छानुसार कर सकते है। इन्हें अनिबद्ध ऋण (Untied loan) भी कहा जाता है।

(ii) अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण (Loans from International Institutions): अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक आदि के द्वारा विदेशी पूँजी के रूप में ऋण दिये जाते हैं। इन संस्थाओं द्वारा निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को ही ऋण दिए जाते है। ये ऋण भी उदार, प्रोजेक्ट या गैर प्रोजेक्ट प्रकार के हो सकते है।

■ 3.2 व्यापारिक ऋण (Commercial Borrowings)

ये ऋण विदेशी बैंकों से बाजार की प्रचलित ब्याज दर पर लिए जाते है। इन ऋणों पर ब्याज की दर रियायती ऋणों की तुलना में अधिक होती है। तथा इन्हे वापिस करने की अवधि भी कम होती है। व्यापारिक ऋणों में निम्न को शामिल किया जाता है:

(1) विदेशी बैंकों से लिए गये ऋण (Loan from Foreign Banks): बहुत बार सरकार अपने भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के लिए विदेशी बैंकों से ऋण लेती है, जैसे-अमेरिका व जापान के आयात-निर्यात बैंक से लिया गया ऋण, इग्लैंड के निर्यात साख गारण्टी निगम (Export Credit Guarantee Corporation of UK) से लिया गया ऋण इत्यादि।

(2) अनिवासियो की जमाएँ (Deposits of Non-Residents): विदेशी पूँजी को प्राप्त करने का एक अन्य स्रोत अनिवासियो की जमा राशि है। अनिवासियो की जमा पर ब्याज दर प्रायः बाजार की ब्याज दर के बराबर होती है। इसलिए अनिवासियो की जमा को व्यापारिक ऋणो का हिस्सा माना जाता है।

■ 3.3 विदेशी निवेश (Foreign Investment)

विदेशी निवेश से हमारा आशय, विदेशी निवेशको द्वारा अन्य देशो की कंपनियो के अंशों, ऋणपत्रों और बॉण्डो मे किये गए निवेश से है। हालांकि विदेशी सहायता ने विभिन्न देशो के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है पर वर्तमान समय में इसकी उपलब्धता कम होती जा रही है। इसी तरह व्यापारिक ऋणों पर विभिन्न देश अपनी निर्भरता कम कर रहे है क्योंकि इन ऋणों पर ब्याज की दर अधिक होती है इन कारणो से विदेशी पूँजी के लिए विभिन्न देशो की निर्भरता विदेशी निवेश पर बढ़ गई है। विभिन्न देशों की सरकार ने विदेशी निजी क्षेत्र से निवेश आकर्षित करना शुरू कर दिया है। निजी विदेशी निवेश वह निवेश है जिसे किसी विदेशी देश के व्यक्तियों या निजी विदेशी कंपनियो द्वारा अन्य देशो के निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में लगाया जाता है। यह निवेश मुख्य रूप से समता अंशो (Equity Shares) मे लगाया जाता है जिसके ऊपर कोई निश्चित ब्याज या लाभांश की गारण्टी नही होती। यह निम्न प्रकार का होता है: (i) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment), (ii) पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investment)

(1) **विदेशी प्रत्यक्ष निवेश** (Foreign Direct Investment–FDI): विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का तात्पर्य विदेशी कंपनियो द्वारा दूसरे देशो में पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियाँ बनाने और उनका प्रबंध करने से है। इसके अंतर्गत प्रबंध करने के उद्देश्य से अंशो को खरीद कर अधिग्रहण (Acquisition) की गई कंपनी भी शामिल है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मुख्य विशेषता दूसरे देशो की घरेलू कंपनियो को अपने प्रबंध में लेना या प्रबंध के उद्देश्य से पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनियाँ बनाने से है। इस तरह के निवेश मे उद्यम का पूरा जोखिम विदेशी निवेशक ही उठाता है और विदेशी निवेशक उद्यम के पूरे लाभ या हानि के लिए जिम्मेवार होता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का एक अन्य रूप विदेशी सहयोग है। विदेशी सहयोग में विदेशी और घरेलू उद्यमी मिलकर संयुक्त उद्यम (Joint venture) स्थापित करते है। यह निम्न प्रकार का होता है:

(i) विदेशी निजी कंपनियो का घरेलू निजी कंपनियो के साथ सहयोग

(ii) विदेशी निजी कंपनियो का मेजबान देश की सरकार के साथ सहयोग

(iii) विदेशी सरकार का मेजबान देश की सरकार के साथ सहयोग।

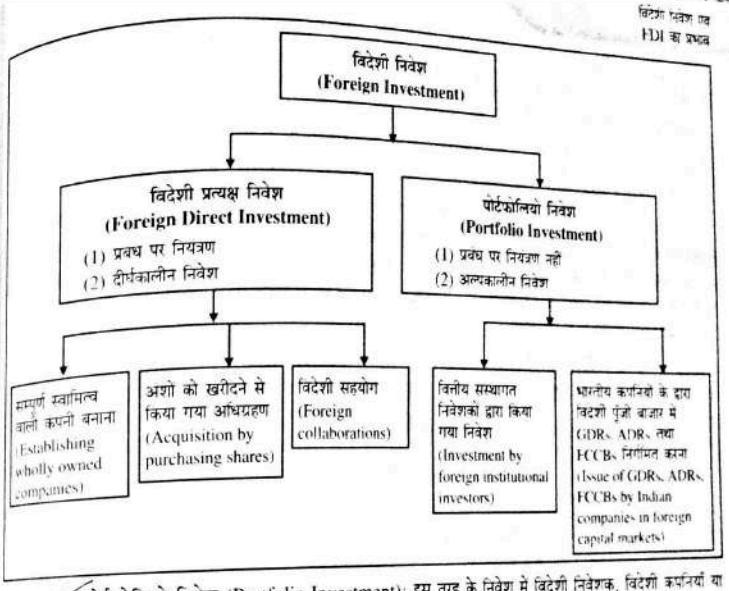

(2) **पोर्टफोलियो निवेश** (Portfolio Investment): इस तरह के निवेश मे विदेशी निवेशक, विदेशी कंपनियाँ या विदेशी संस्थागत निवेशक (foreign institutional investors) अन्य देशो की कंपनियो के अंशो या ऋणपत्रो में निवेश करते हैं। इस तरह के निवेश में विदेशी निवेशक इकाई का प्रबंध अपने हाथो मे नहीं लेते बल्कि, उस इकाई का प्रबंध एवं नियंत्रण घरेलू देश पर ही छोड़ दिया जाता है। यदि यह निवेश ऋणपत्रो में किया जाए तो विदेशी निवेशक को एक निश्चित ब्याज मिलता है और यदि यह निवेश अंशो में किया जाए तो निश्चित लाभांश की कोई गारण्टी नहीं होती। पोर्टफोलियो निवेश में निवेशकर्ता प्रबंध में भाग नहीं लेता है। पोर्टफोलियो निवेश का एक अन्य रूप घरेलू कंपनियो द्वारा विदेशी पूँजी बाजारों मे विश्व जमा प्राप्तियाँ [Global Depository Receipts (GDRs)], अमेरिकन जमा प्राप्तियाँ [American Depository Receipts (ADRs)], या विदेशी मुद्रा परिवर्तनशील बॉण्डों [Foreign Currency Convertible Bonds (FCCBs)] को निर्गमित करना है। इस तरह से इन GDRs, ADRs और FCCBs को निर्गमित करके विभिन्न देशो की कंपनियाँ विदेशी पूँजी प्राप्त करती है। कंपनियो को कुछ शर्तें पूरी करने पर विदेशी पूँजी बाजारों मे यूरो इशु (Euro Issue) निर्गमित करने की अनुमति है। यूरो इशु मे हमारा अभिप्राय भारतीय कंपनियो द्वारा विदेशी पूँजी बाजारों से पूँजी एकत्रित करने से है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा पोर्टफोलियो निवेश में मुख्य अंतर यह है कि प्रत्यक्ष निवेश की दशा में विदेशी कंपनी उस उद्यम का प्रबंध भी करती है जबकि पोर्टफोलियो निवेश में ये केवल पूँजी का निवेश करती है, प्रबंध नही करती। इसके अलावा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को दीर्घकालीन लाभ कमाने के उद्देश्य से निवेशित किया जाता है, क्योंकि इन निवेशो को आसानी से बेचा नही जा सकता। इसलिए कुछ दीर्घकालीन तत्त्व जैसे राजनीतिक स्थिरता, देश की औद्योगिक व निवेश नीति, अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थितियाँ, माँग का स्तर आदि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रभावित करते है। दूसरी ओर पोर्टफोलियो निवेश अल्पकालीन लाभ कमाने के उद्देश्य से अधिकतर कंपनी के अंशो में निवेश के रूप में किये जाते हैं, जिन्हे शेयर बाजारों में आसानी से बेचा जा सकता है। अप्रैल, 2013 में सरकार ने FDI के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा कि यदि किसी विदेशी निवेशक का किसी व्यावसायिक इकाई की समता अंश पूँजी में 10 प्रतिशत या इससे कम के निवेश को पोर्टफोलियो निवेश माना जाएगा। समता अंश पूँजी में 10 प्रतिशत या इससे अधिक निवेश है तो इसे FDI माना जाएगा।

विश्व के विभिन्न देशों में विदेशी निवेश का योगदान बढ़ता जा रहा है। विश्व के विभिन्न देशों की उदार निवेश नीति के कारण विदेशी निवेश में तेजी आई है। उदाहरण के तौर पर, अगस्त 1991 से जनवरी 2014 तक की अवधि में भारत सरकार ने ₹ 10,09,781 करोड़ के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की स्वीकृति दी।

■ 4. मेजबान देशों में विदेशी पूँजी/विदेशी निवेश की आवश्यकता/उद्देश्य (Need/Objectives of Foreign Capital or Foreign Investment for Host Nations)

भारत के भूतपूर्व उद्योग मन्त्री श्री एम० मारन के अनुसार, **''विदेशी निवेश केवल पूँजी का स्टॉक नहीं है। बल्कि यह वह साधन है, जो आधुनिक तकनीक, प्रबंधकीय ज्ञान, रोजगार के अवसर तथा भारत में उत्पादित वस्तुओं के लिए नया बाजार उपलब्ध कराता है। इनके अतिरिक्त यह हमारे लिए आवश्यक है क्योंकि हमारे देश में निवेश की आवश्यकता से बचत कम है। बचत तथा निवेश के इस अंतर को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के द्वारा पूरा किया जा सकता है।''** मेजबान देशों के आर्थिक विकास के लिए निम्नलिखित कारणों से विदेशी निवेश की आवश्यकता होती है:

(i) घरेलू निवेश के साथ मिलकर, अर्थव्यवस्था में कुल निवेश में वृद्धि करना।

(ii) आधारभूत उद्योगों (Basic Industries) को विकसित करना।

(iii) अधोसरचना (Infrastructure) का विकास करना।

(iv) प्रतिकूल भुगतान शेष के कारण विदेशी मुद्रा में हुई कमी को दूर करना।

(v) प्रबंधकीय तथा उद्यमशीलता योग्यता में सुधार लाना।

(vi) प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग करना।

(vii) जोखिमपूर्ण (Risky) तथा पूँजी प्रेरक उद्योगों को स्थापित करना।

(viii) तकनीक में सुधार लाना।

(ix) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

■ 5. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Influencing FDI)

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह को प्रभावित करने वाले घटकों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

■ 5.1 पूर्ति पक्षीय घटक (Supply Side Factors)

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाइयाँ अन्य देशों में उपलब्ध आगतों व संसाधनों का लाभ उठाने के लिए वहाँ पूँजी निवेश करती है, जैसे कम श्रम लागत, सस्ता कच्चा माल आदि। जब FDI निर्णय कच्चे माल की उपलब्धता, संभार तंत्र (Logistics), कुशल मानवीय संसाधनों आदि से प्रभावित होते है, तो उन्हें पूर्ति घटक कहा जाता है। मुख्य पूर्ति घटक निम्नलिखित हैं:

(1) **श्रम की कम लागत पर उपलब्धता** (Availability of Labour at Low Cost): विकसित देशों में श्रम लागत अधिक होती है। जबकि विकासशील देशों में जनसंख्या की अधिकता के कारण श्रम लागत कम होती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कम श्रम लागत के कारण अपनी उत्पादन इकाई को विकसित देश से विकासशील देश में हस्तांतरित करना पसंद करती है। बहुत से उद्योगों में श्रम लागत उत्पादन लागत का मुख्य तत्त्व होती हैं। इससे कुल उत्पादन लागत कम होती है। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विकासशील देशों में प्रत्यक्ष निवेश द्वारा अपनी सहायक कंपनियाँ स्थापित करती हैं।

(2) **कच्चे माल की उपलब्धता** (Availability of Raw Material): बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी उत्पादन इकाई ऐसे देश में स्थापित करना पसंद करती है, जहाँ अच्छी क्वालिटी का कच्चा माल कम लागत पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, जैसे USA ने अपनी तेल शोधन इकाइयाँ (Oil-Refineries) साऊदी अरब व अन्य खाड़ी देशों में स्थापित की है क्योंकि वहाँ कच्चा तेल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। प्रायः कच्चा माल बहुत भारी होता है तथा इनकी परिवहन लागत बहुत अधिक होती है। यदि उत्पादन आधार ऐसे स्थान पर स्थापित किया जाता है जहाँ कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में कम

लागत पर उपलब्ध है, तो इससे न केवल परिवहन लागत में बचत होती है, बल्कि कच्चा माल भी नियमित रूप से मिलता रहता है। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना उत्पादन आधार ऐसे स्थान पर स्थापित करती है।

(3) **लंबी दूरी** (Long Distance): बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विश्वभर में अपने उत्पाद बेचती है। यदि ये कंपनियाँ निर्यात रूट अपनाती है, अर्थात उत्पादन आधार एक स्थान पर केंद्रित करके अन्य सभी देशों में उत्पाद को इस स्थान से निर्यात किया जाता है, तो इससे विभिन्न देशों में लंबी दूरी के कारण परिवहन व्यय बहुत अधिक हो जाता है। यदि उत्पाद बहुत भारी होते है, तो परिवहन व्यय उत्पाद मूल्य का एक मुख्य तत्त्व बन जाते है। ऐसी दशा में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश रूट अपना कर विभिन्न देशों में उत्पादन आधार स्थापित करती है, जैसे कोका कोला के विश्व में 150 से भी अधिक देशों में बोटलिंग प्लांट है।

(4) **कुशल कार्यबल की उपलब्धता** (Availability of Skilled Workforce): कुछ उद्योगों जैसे सूचना तकनीक उद्योग में कुशल, प्रशिक्षित, पेशेवर श्रम बल जैसे सॉफ्टवेयर इंजीनियर, IT इंजीनियर, हार्डवेयर इंजीनियर की आवश्यकता होती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी सहायक कंपनियाँ ऐसे स्थानों पर स्थापित करती है, जहाँ पेशेवर कुशल कर्मचारी तुलनात्मक रूप से कम वेतन पर उपलब्ध होते है, जैसे बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपनी सूचना तकनीक आधारित सेवाओं (IT Enabled Services) का आधार भारत में स्थापित किया है, क्योंकि यहाँ तुलनात्मक रूप से कम वेतन पैकेज पर कुशल इंजीनियर मिल जाते है।

(5) **आधुनिकतम टेक्नोलॉजी पर पहुँच बनाना** (Access to Advanced Technology): अन्य देशों में उपलब्ध विकसित टेक्नोलॉजी का लाभ उठाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ FDI रूट अपनाती है। इसके लिए दो देशों की व्यावसायिक इकाइयों के मध्य सहयोग समझौते (Collaboration Agreements) किए जाते है। जिसमें एक देश की कंपनी वित्त प्रदान करती है तथा दूसरे देश की व्यावसायिक इकाई टेक्नोलॉजी उपलब्ध करवाती है, जैसे USA की इकाइयाँ जापान की विकसित टेक्नोलॉजी पर पहुँच बनाने के लिए जापान से सहयोग समझौते करती है।

■ 5.2 माँग पक्षीय घटक (Demand Side Factors)

(1) **विशाल ग्राहक आधार** (Large Customer Base): बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ऐसे देश में प्रवेश करना पसंद करती है, जहाँ अधिक जनसंख्या आकार के कारण ग्राहकों की संख्या अधिक होने की संभावना होती है, जैसे मैकडोनाल्ड, जो अमेरीका मूल की कंपनी है, ने भारत में विशाल ग्राहक आधार से आकर्षित होकर यहाँ अपने केंद्र स्थापित किए है।

(2) **अंतर्राष्ट्रीय छवि** (International Image): कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की छवि विश्वव्यापी होती है। इनके पास वित्तीय संसाधन भी विशाल मात्रा में होते है, तथा टेक्नोलॉजी भी बहुत विकसित होती है। ऐसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी क्षमताओं का पूर्ण लाभ उठाने के लिए विदेशों में प्रत्यक्ष निवेश द्वारा अपनी इकाइयाँ स्थापित करती है।

(3) **कम विपणन लागत** (Lower Marketing Cost): यदि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ निर्यात रूट अपना कर अन्य देशों में अपने उत्पाद बेचती है तो इस व्यवस्था में विपणन मध्यस्थों की कमीशन के कारण उत्पाद की कीमत बढ़ जाती है। इसके अलावा निर्यात-रूट अपनाने पर विपणन मध्यस्थ उत्पादक पर हावी (Dominate) होते है। वे उत्पादक पर अपनी शर्तें थोपते हैं। परंतु यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी FDI-रूट अपना कर विदेशी बाजारों में अपनी विपणन इकाइयाँ स्थापित करती हैं, तो इससे विपणन-मध्यस्थों की कमीशन का भार कम हो जाता है। उन्हें विदेशी बाजारों में विपणन मध्यस्थ व डीलर भी सरलता से उपलब्ध हो जाते है। इससे विपणन लागत कम करने में सहायता मिलती है।

(4) **बेहतर ग्राहक सेवाएँ** (Better Customer Services): यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी विदेशों में अपने उत्पाद बेचने के लिए निर्यात-रूट को अपनाती है, तो विदेशी ग्राहकों को विक्रय-उपरांत-सेवाएँ लेने में अत्यधिक कठिनाई होती है। अतः वे आयातित उत्पाद खरीदने में हिचकिचाते है। परंतु यदि बहुराष्ट्रीय कंपनी विदेशी बाजारों में अपनी विपणन इकाई स्थापित करती है तो इससे विदेशी ग्राहकों को विक्रय-उपरांत सेवाएँ सरलता से प्राप्त हो जाती है। वे विदेशी उत्पाद खरीदने में हिचकिचाते नहीं है। इसके अलावा विदेशी ग्राहकों की प्रतिक्रिया को भी समझा जा सकता है। विदेश में स्थापित

विपणन इकाइयों में नियुक्त स्थायी विक्रयकर्ताओं को स्थानीय पसंद, रुचि, प्राथमिकता, फैशन आदि के बारे में अच्छी जानकारी होती है।

(5) **कम टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ** (Less Tariff and Non-tariff Barriers): बहुत से देशों में सरकार ने भुगतान शेष की समस्या के कारण आयातों पर टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ लगा रखी है। यदि कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी निर्यात द्वारा अपने उत्पाद विदेशों में बेचती है तो इसे बहुत सी टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जैसे आयात कर, आयात कोटा, आयात लाइसेंस आदि। परंतु ऐसी दशा में FDI रूट अपनाने पर इन रुकावटों से बचा जा सकता है। FDI रूट में MNC विदेशी में उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करती है। जिन पर आयात कर, आयात कोटा, लाइसेंस के प्रावधान लागू नहीं होते। इससे विदेशी बाजारों में इन उत्पादों की कीमतें कम हो जाती है तथा माँग में वृद्धि होती है।

■ 5.3 अन्य घटक (Other Factors)

(1) **मेजबान देश की सरकार द्वारा उपलब्ध करवाए गए प्रोत्साहन** (Incentives Offered by Government of Host Nation): मेजबान देश में विदेशी इकाई स्थापित होने पर विदेशी मुद्रा के प्रवाह में वृद्धि होती है, वहाँ रोजगार के अवसर बढ़ते है। इससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है। मेजबान देश की सरकार विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए इसे विभिन्न प्रोत्साहन देती है, जैसे अनुदान, करों में छूट आदि। इन प्रोत्साहनों को प्राप्त करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विदेशों में FDI रूट अपना कर अपनी इकाइयाँ स्थापित करती है।

(2) **मुख्य औद्योगिक ग्राहक का स्थानांतरण** (Shift of Main Industrial Customer): प्रायः सहायक इकाइयाँ (Ancillary Units) अपने उत्पाद को एक या दो बड़ी औद्योगिक कंपनियों को बेचती है। यदि ये बड़ी औद्योगिक कंपनियाँ अपने उत्पादन आधार को किसी अन्य देश में स्थानांतरित कर देती है तो ऐसी स्थिति में इन सहायक इकाइयों को भी इन औद्योगिक कंपनियों के हस्तांतरित उत्पादन आधार पर जाना पड़ता है क्योंकि ये सहायक इकाइयाँ अपने विक्रय के लिए इन बड़ी औद्योगिक कंपनियों पर ही निर्भर करती है। अतः इस स्थिति में सहायक इकाई भी FDI रूट को अपनाती है।

■ 6. मेजबान देशों के आर्थिक विकास में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का योगदान या विदेशी निवेश के लाभ (Contribution of Foreign Direct Investment in the Economic Development of Host Nations or Advantages of Foreign Investment)

(1) **पूँजी की उपलब्धता** (Availability of Capital): विश्व के बहुत से देशों में पूँजी की कमी है। विकास की गति को तीव्र करने के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। विदेशी पूँजी ने इस कमी को पूरा किया है। अतएव पूँजी की उपलब्धता को आवश्यकतानुसार बढ़ाने में विदेशी पूँजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

(2) **आधुनिक तकनीक की उपलब्धता** (Availability of Modern Technology): तीव्र विकास के लिए आधुनिक तकनीक का बहुत अधिक महत्त्व है। परंतु कुछ देशों में उपलब्ध तकनीक पुरानी तथा अकुशल है। विदेशी पूँजी तथा सहायता के फलस्वरूप आधुनिक तकनीक प्राप्त करना संभव हो सका है। विदेशी पूँजी के साथ तकनीकी जानकारी, व्यापारिक अनुभव तथा ज्ञान भी प्राप्त होते है। आधुनिक तकनीक के प्रयोग से अर्थव्यवस्था में उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(3) **प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग** (Exploitation of Natural Resources): विभिन्न देशों में प्राकृतिक साधन जैसे खनिज, जल संसाधन आदि पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। लेकिन पूँजी तथा तकनीकी ज्ञान के अभाव में उनका उचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। विदेशी पूँजी के फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग सम्भव हो सका है।

(4) **विदेशी विनिमय की उपलब्धता** (Availability of Foreign Exchange): कुछ देशों का भुगतान शेष असंतुलित है तथा निर्यात की तुलना में आयात बढ़ते जा रहे है। इसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय की बहुत कमी महसूस होती है। विदेशी पूँजी के कारण विदेशी विनिमय की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। इससे भुगतान शेष की समस्या के समाधान में सहायता मिली है।

(5) **पूँजीगत पदार्थों की उपलब्धता** (Availability of Capital Goods): विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को अपने उद्योगीकरण का विस्तार करने के लिए विदेशों से पूँजीगत पदार्थों जैसे मशीनों, विभिन्न यंत्रों का आयात करना आवश्यक हो जाता है। परंतु विदेशी विनिमय की कमी के कारण इन आवश्यक पदार्थों के आयात में कठिनाई उत्पन्न होती है। विदेशी पूँजी इस कठिनाई का समाधान करके आयातित पूँजी पदार्थों की उपलब्धता में सहायक सिद्ध हुई है।

(6) **जोखिम वाली पूँजी की उपलब्धता** (Availability of Risk Capital): घरेलू निजी निवेशक **आधारभूत उद्योगों** (Basic Industries) तथा नये क्षेत्रों में जहा जोखिम अधिक होता है पूँजी निवेश करना पसन्द नहीं करते। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश जोखिम वाले क्षेत्रों में प्रवेश करके इस कमी को पूरा कर रहे है। विदेशी पूँजी के फलस्वरूप आधारभूत एवं अधिक जोखिम वाले उद्योगों जैसे इस्पात उद्योग, कोयला उद्योग, तेल शोधन उद्योग आदि का विकास हुआ है।

(7) **आर्थिक और सामाजिक उपरि पूँजी की उपलब्धता** (Availability of Economic and Social Overheads): कुछ देशों में आर्थिक तथा सामाजिक उपरि पूँजी; जैसे- रेलों, सड़कों, नहरों, उर्जा, संचार व्यवस्था की उपलब्धता अपर्याप्त है। विदेशी पूँजी इन परियोजनाओं के विकास में सहायक सिद्ध हुई। इसका इन देशों की कृषि एवं उद्योगों के विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। इसके फलस्वरूप आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सकी है।

(8) **रोजगार में वृद्धि** (Increase in Employment): विदेशी निवेश तथा विदेशी सहयोग की सहायता से मेजबान देशों में बहुत-सी औद्योगिक इकाइयां लगी है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने बहुत से देशों में अपनी शाखाएं/सहायक कंपनियां लगाई है। इन सबसे मेजबान देशों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है।

(9) **मुद्रा स्फीति में कमी** (Reduction in Inflation): विदेशी पूँजी के फलस्वरूप देश में आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त मात्रा में आयात करना संभव हुआ है। इससे इन वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि होती है तथा मुद्रा स्फीति की दर में कमी आती है। विदेशी पूँजी के अंतरप्रवाह के फलस्वरूप देश के उत्पादन में वृद्धि हुई है तथा माँग के बढ़ने के बावजूद, कीमतों में अधिक वृद्धि नहीं हुई है।

(10) **निर्यात संवर्धन में सहायक** (Helpful in Export Promotion): कुछ देशों के निर्यात उसके द्वारा किये जाने वाले आयात की तुलना में कम है। इसलिए निर्यात में वृद्धि की जानी आवश्यक है। निर्यात में वृद्धि करने के लिए विदेशी पूँजी का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। मेजबान देश की सरकार कई विदेशी कंपनियों को देश में कारखाने स्थापित करने की स्वीकृति इसी शर्त पर देती है कि वे अपने उत्पादन के कुछ प्रतिशत हिस्से का निर्यात करेंगे। इस प्रकार विदेशी पूँजी निर्यात वृद्धि में सहायक सिद्ध हुई है।

(11) **आधुनिकतम प्रबंध कौशल का ज्ञान** (Knowledge of Latest Managerial Skills): प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अपने साथ मूल देश के आधुनिकतम प्रबंध कौशल को भी मेजबान देश में लेकर आता है। मेजबान देश के प्रबंधक मूल देश के प्रबंधकों, तकनीकी विशेषज्ञों के संपर्क में आते है, तथा वे उनसे उनके प्रबंध कौशल, कार्य शैली, तकनीकी ज्ञान से अवगत होते है। इससे उनकी सोच व दृष्टिकोण अधिक व्यापक हो जाते है। मेजबान देश के वितरक, पूर्तिकर्ता, विपणन मध्यस्थ भी प्रबंध-विशेषज्ञों से काम करने के बेहतर तरीके सीखते है।

(12) **प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा** (Promotes Competition): प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से मेजबान देश में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलता है। MNCs के उत्पाद मेजबान देश के उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करते है। प्रतिस्पर्धा के बढ़ने से कीमतों में गिरावट आती है, जैसे-भारत में दूर संचार उद्योग में विदेशी उत्पादों/सेवाओं जैसे-वोडाफोन, नोकिया के प्रवेश से इस उद्योग में प्रतिस्पर्धा में बहुत वृद्धि हुई है। इससे भारतीय उपभोक्ताओं को बहुत लाभ हुआ है क्योंकि अब घरेलू कंपनियों ने भी दूरसंचार सेवाओं में बहुत सुधार किया है तथा अपने उत्पादों/सेवाओं की कीमतें कम कर दी है। विदेशी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा के बढ़ने से उपभोक्ता-वर्ग के कल्याण में वृद्धि हुई है।

(13) **आर्थिक विकास को बढ़ावा** (Promotes Economic Growth): बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कम श्रम लागत व कच्चे माल की कम लागत के कारण अपना उत्पादन आधार मेजबान देश में हस्तांतरित करती है। उत्पादन आधार की स्थापना

से सहायक इकाइयाँ (Ancillary Units) भी आस-पास के क्षेत्रों में स्थापित होने लगती हैं। इससे मेजबान देश में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिलता है जिससे आर्थिक विकास की गति में वृद्धि होती है।

■ 7. मेजबान देशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश/विदेशी निवेश की सीमाएं या दोष (Limitations or Shortcomings of FDI/Foreign Investment for Host Nations)

(1) प्रतिस्पर्धा पर कुप्रभाव (Adverse Effect on Competition): विकासशील देशों व अल्पविकसित देशों में स्थापित विदेशी कंपनियां मेजबान देश की घरेलू औद्योगिक इकाइयों को कुप्रभावित करती हैं। ये घरेलू इकाइयाँ विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियों की उच्च टेक्नोलॉजी, प्रबंधकीय श्रेष्ठता, विश्व-व्यापी ब्रांड-छवि, सुदृढ़ वित्तीय आधार से प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पाती। इसके अलावा विकासशील व अल्पविकसित देशों के लोग विदेशी ब्राडों को खरीदने में बड़े गर्व की बात मानते हैं। इससे घरेलू इकाइयों को हानि होती है। कई बार बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मेजबान देश की घरेलू कंपनियों को अधिग्रहण करके मेजबान देश में एकाधिकार वाली स्थिति उत्पन्न करके प्रतिस्पर्धा को बहुत कम कर देती हैं। जैसे-भारत में हिंदुस्तान यूनीलीवर (जो विदेशी कंपनी यूनीलीवर की सहायक कंपनी है) ने बहुत सी भारतीय घरेलू कंपनियों का अधिग्रहण कर लिया है।

(2) विदेशों पर निर्भरता में वृद्धि (Increase in Foreign Dependence): विदेशी निवेश के कारण विदेशों पर निर्भरता में वृद्धि होती है। विदेशों से जो मशीनें, कच्चा माल, तकनीक आदि आयात की जाती हैं। उनके कल पुर्जे टेक्नीशियन्स आदि के लिए उन्हीं देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। अर्थात् विदेशी तकनीक के रख-रखाव के लिए भी हमें विदेशों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(3) विदेशी विनिमय का बाहरी प्रवाह (Outflow of Foreign Exchange): मूल देश में स्थापित सहायक कंपनी को रॉयल्टी, तकनीकी फीस, लाभ, पूँजी पर ब्याज आदि के रूप में मूल कंपनी को भुगतान विदेशी मुद्रा में करना पड़ता है। दीर्घकाल में यह भुगतान (Repatriated Amount) निवेश की गई पूँजी से कहीं अधिक होता है। इससे मेजबान देश से विदेशी विनिमय का बाहरी प्रवाह बहुत बढ़ जाता है। इसके अलावा मेजबान देश को मूल देश से पूँजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों का भी आयात करना पड़ता है क्योंकि घरेलू पूँजी उत्पाद व मध्यवर्ती उत्पाद विदेशी टेक्नोलॉजी से मेल नहीं खाते। इससे भी विदेशी विनिमय के बाहरी प्रवाह में वृद्धि होती है।

(4) आंतरिक वित्तीय साधनों का अपर्याप्त विकास (Insufficient Development of Internal Financial Resources): विदेशी पूँजी का आंतरिक वित्तीय साधनों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारत में नियोजन के प्रारम्भिक काल में आंतरिक बचतों की दर बहुत कम रही। इसका कारण विदेशी सहायता का उपलब्ध होना था। देश में आंतरिक बचत बढ़ाने के पूर्ण प्रयास नहीं किये गये क्योंकि जरूरत पड़ने पर विदेशी पूँजी का ही प्रयोग किया जाता है।

(5) अनिश्चितता (Uncertainty): विदेशी निवेश के संबंध में सदैव अनिश्चितता बनी रही है। यह कभी भी विदेशों में वापिस जा सकती है। विदेशी पूँजी कभी भी किसी अर्थव्यवस्था का स्थायी अंग नहीं बन सकती। आपातकाल में उस विदेशी पूँजी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, इसकी उपलब्धता बहुत कम हो जाती है। वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान में विदेशी संस्थागत निवेशक पोर्टफोलियो निवेश को वापस ले जाते हैं। इससे घरेलू अर्थव्यवस्था में पूँजी की कमी हो जाती है, शेयरों की कीमतों में गिरावट आ जाती है, जिससे शेयर बाजार में संकट आ जाता है। इसके अलावा इससे घरेलू करेंसी के बाहरी मूल्य में कमी आ जाती है, क्योंकि विदेशी संस्थागत निवेशक अपनी पूँजी को अपने मूल देश में वापस ले जाते हैं, जिससे विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जाती है। वर्ष 2008-09 में ऐसी स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था में तथा विश्व की अधिकतर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में आई। इस तरह पोर्टफोलियो निवेश केवल अच्छे समय का साथी (Fair Weather Friend) है तथा बहुत अनिश्चित है।

(6) घरेलू उत्पादकों के लिए हानिकारक (Harmful For Domestic Producers): विदेशी पूँजी के द्वारा स्थापित उद्योगों के कारण घरेलू उत्पादकों को हानि उठानी पड़ सकती है। वे विदेशी उद्यमों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते। उनके लाभ में कमी होती है। इसका उनके विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कई बार उन्हें उत्पादन ही बन्द करना पड़ता है।

(7) असंतुलित विकास (Imbalanced Development): विभिन्न देशों में विदेशी पूँजी का निवेश उन्हीं उद्योगों में किया गया है जिनमें लाभ की मात्रा अधिक है। इसके फलस्वरूप मेजबान देशों में आवश्यक तथा आधारभूत उद्योगों का उचित विकास नहीं हो पाया है। परिणामस्वरूप मेजबान देशों का औद्योगिक विकास संतुलित ढंग से नहीं हो पाया।

(8) घरेलू तकनीक के विकास में बाधा (Hindrance in the Development of Domestic Technology): विदेशी पूँजी के साथ-साथ विदेशी तकनीक भी आयात की जाती है। इसका घरेलू तकनीक तथा अनुसंधानों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब हम कोई तकनीक विदेशों से आयात कर लेते हैं तो उस तकनीक का घरेलू अनुसंधान व विकास छोड़ देते हैं। इससे स्वदेशी आधुनिक तकनीक का विकास नहीं हो पाता। इससे मेजबान देशों के उद्योग विदेशों पर निर्भर हो जाते हैं।

■ 8. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से मूल देश को लाभ (Benefits of FDI to Home Nation)

(1) विदेशी विनिमय का प्रवाह (Inflow of Foreign Exchange): यद्यपि विदेशी सहायक कंपनी की स्थापना करने में MNC को प्रारंभ में बहुत अधिक निवेश करना पड़ता है, परंतु स्थापित होने के बाद सहायक कंपनी मूल देश के लिए बहुत लाभप्रद हो सकती है। मूल कंपनी को सहायक कंपनी से लाभ, रॉयल्टी, तकनीकी फीस, पूँजी पर ब्याज आदि विदेशी मुद्रा में होता है। इससे मूल देश में विदेशी विनिमय के अंतर्प्रवाह में बहुत वृद्धि होती है। मूल देश में आय का यह प्रवाह भुगतान शेष की समस्या के समाधान में सहायता मिलती है; जैसे-यूनीलीवर ने विदेशों में सहायक कंपनियाँ स्थापित करके लाभ, पूँजी पर ब्याज, रॉयल्टी आदि के रूप में बहुत धन कमाया है।

(2) पूँजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों के निर्यात में वृद्धि (Increase in Export of Capital Goods and Intermediate Goods): बहुराष्ट्रीय कंपनी मेजबान देश में स्थापित अपनी सहायक कंपनी को अपनी विकसित टेक्नोलॉजी उपलब्ध करवाती है। सहायक कंपनी इस टेक्नोलॉजी से मेल खाते पूँजी उत्पाद व मध्यवर्ती उत्पाद बहुराष्ट्रीय कंपनी के मूल देश से ही आयात करती है। इससे मूल देश के पूँजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों के निर्यात में वृद्धि होती है। इससे मूल देश में पूँजी उत्पाद बनाने वाले व मध्यवर्ती उत्पाद बनाने वाले उद्योगों के विकास को बढ़ावा मिलता है। औद्योगिकीकरण से मूल देश में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। पूँजी उत्पादों व मध्यवर्ती उत्पादों के निर्यात से मूल देश में विदेशी विनिमय के अंतर्प्रवाह में वृद्धि होती है।

(3) विपरीत ज्ञान हस्तांतरण (Reverse Knowledge Transfer): जब कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी मेजबान देश में अपनी सहायक कंपनी स्थापित करती है, तो इसके उत्प्रवासी (Expatriates) मेजबान देश के प्रबंधकों, तकनीकी विशेषज्ञों के संपर्क में आते हैं तथा उनकी कार्यशैली की अच्छी बातों को सीखते हैं; जैसे-US में आधारित जनरल मोटर्ज़ ने जापान में अपने ऑटोमोबाइल विनिर्माण उद्योग स्थापित किए। इससे उन्हें जापान की ऑटोमोबाइल विनिर्माण से संबंधित टेक्नोलॉजी, कार्यशैली, अनुभव आदि को समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इस ज्ञान से उन्होंने USA में स्थापित अपने ऑटोमोबाइल विनिर्माण उद्योग में बहुत सुधार किया है।

■ 9. मूल देश को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से नुकसान (Loss to Home Nation Due to FDI)

मूल देश को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से निम्न प्रकार से हानि होती है:

(1) भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव (Negative Effect on Balance of Payments): (i) मूल देश मेजबान देश में प्रारंभ में पूँजी की बहुत बड़ी राशि निवेश करता है। इस विशाल पूँजी निवेश से विदेशी विनिमय का बाहरी प्रवाह होता है, जो भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। (ii) यदि FDI रूट ने निर्यात रूट को प्रतिस्थापित किया है, तो इससे मूल देश के निर्यातों में कमी आती है। पहली स्थिति में मूल देश मेजबान देश को निर्यात करके विदेशी विनिमय अर्जित करता था, परंतु अब विदेशी पूँजी के बाहरी प्रवाह द्वारा मेजबान देश में विनिर्माण इकाई स्थापित की जाती है। (iii) यदि मेजबान देश में कम श्रम लागत व कच्चे माल की कम लागत के कारण विनिर्माण इकाई मेजबान देश में स्थापित की गई है, तो ऐसा संभव है कि मेजबान देश में स्थापित निर्माणी इकाई उत्पादों को मूल देश में भी बेचे। अर्थात्

मूल देश भी विदेशी सहायक कंपनी से अपने लिए उत्पाद आयात करे। इससे मूल देश के आयात बढ़ जाते हैं व भुगतान शेष को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते है।

(2) **रोजगार सृजन पर प्रतिकूल प्रभाव** (Negative Effect on Employment Generation): यदि FDI रूट निर्यात रूट को प्रतिस्थापित किया है, तो इससे मूल देश में रोजगार अवसरो में कमी आती है। पहले ये उत्पाद मूल देश में बनाए जाते थे जिससे मूल देश में रोजगार का सृजन होता था। परंतु FDI रूट अपनाने पर निर्माणी क्रियाएँ मेजबान देश में हस्तांतरित हो जाती है, इससे रोजगार सृजन भी मेजबान देश में ही होता है। अब विकसित देश FDI व आउटसोर्सिंग (Outsourcing) को विकसित देशो में बेरोजगारी के लिए दोष देते है।

■ 10. विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की प्रवृत्तियाँ (Trends in Global FDI)

वर्ष 1990 से विश्व मे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश मे काफी तेजी आई है। विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के आँकड़ों को तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 1. विश्व मे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की प्रवृत्तियाँ (बिलियन US डॉलर में)

Year	FDI in World	FDI in Developing Economies
1990	2,081.8	524.5
2000	7,442.5	1,728.5
2008	15,491.1	4,213.7
2009	17,950.4	5,060.1
2010	19140.6	5,951.2
2011	15244.2	6,844.0

(Source: UNCTAD Online Handbook of Statistics, 2012)

तालिका 1 से स्पष्ट है कि विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई है। FDI की मात्रा विकासशील देशों में और भी तेजी से बढ़ी है। वर्ष 2008 में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश मे कमी का कारण वैश्विक वित्तीय संकट था। 2010 में FDI में पुनः तेजी आई। वर्ष 2011 में वैश्विक FDI में कमी के बावजूद विकासशील देशों में FDI बढ़कर 6,844 बिलियन अमेरिकन डॉलर हो गई।

● चुने हुए विकासशील देशो में FDI प्राप्तियाँ (FDI Inflow in Select Developing Countries)

चुने हुए विकासशील देशो में FDI प्राप्तियों को तालिका 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 2. चुने हुए विकासशील देशो में FDI प्राप्तियाँ (2012)

देश (Country)	FDI की राशि (Amount of FDI in US $ billion)	विश्व की FDI में प्रतिशत अंश (% Share of FDI in World)
चीन	253.5	16.79
हांगकांग, चीन	78.8	5.22
ब्राजील	76.1	5.04
रूस	50.7	3.36
भारत	24.0	1.59
मैक्सिको	15.5	1.03
विश्व	1509.6	100

(Source: World Development Indicators, 2014)

सभी विकासशील देशों मे से सबसे अधिक FDI प्राप्तियाँ चीन को हुई है। भारत में FDI की राशि चीन की तुलना मे बहुत कम है। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि भारत में FDI की मात्रा मे आने वाले समय में बढ़ोतरी की उम्मीद की जा सकती है।

■ 11. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का नियमन (Regulation of Foreign Direct Investment)

मेजबान देश व मूल देश की सरकारें तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को नियमित करती है। मेजबान देश की सरकार का FDI के प्रति दृष्टिकोण धनात्मक भी हो सकता है तथा नकारात्मक भी हो सकता है। मेजबान देश की सरकार को ऐसा प्रतीत होता है कि FDI के आगमन से घरेलू अर्थव्यवस्था को लाभ अधिक तथा हानि कम होगी, तो यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रति सहयोगपूर्ण व उदार दृष्टिकोण अपनाती है। दूसरी ओर, यदि FDI के आगमन से घरेलू अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव, धनात्मक प्रभाव से अधिक होंगे, तो सरकार FDI के प्रति प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण अपनाती है। कई बार, कुछ विदेशी व्यावसायिक इकाइयाँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का रूट केवल इसलिए अपनाती है, ताकि निर्यात रूट पर लगने वाले टैरिफ से बचा जा सके। तब मेजबान देश की सरकार ऐसी FDI को अनुमति नहीं देती, क्योंकि इससे सरकार को राजस्व की हानि होती है। राष्ट्रीय सुरक्षा के महत्व वाले क्षेत्रों में भी सरकार FDI को अनुमति नही देती। इसके अलावा, मूल देश (Parent Nation) की सरकार भी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रभावित करती है। यदि मूल देश की आर्थिक स्थितियाँ; जैसे- बचत दर, निवेश दर, पूँजी निर्माण दर, विदेशी मुद्रा की उपलब्धता आदि सुदृढ़ है तथा मेजबान देश व मूल देश के मध्य राजनीतिक संबंध मधुर है तो मूल देश की सरकार का विदेशी निवेश के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण होता है। इस तरह राष्ट्रीय स्तर पर मेजबान देश व मूल देश की सरकारें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह व बाहरी प्रवाह को नियमित करती है। इसके अलावा, वैश्विक स्तर पर कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएँ, जैसे- विश्व व्यापार संगठन, अंकटाड FDI को नियमित करते है। विश्व व्यापार संगठन ने सदस्य देशों के मध्य विदेशी निवेश के प्रवाह को बढ़ाने के लिए 'व्यापार संबंधी निवेश उपाय' (Trade Related Investment Measures - TRIMs) किए है। इसके अंतर्गत विदेशी निवेशकों के हितों की सुरक्षा के लिए विशेष उपाय किए गए हैं। निवेश पर लाभ, लाभांश, ब्याज, रॉयल्टी, तकनीकी फीस, मूल पूँजी आदि के प्रत्यावर्तन पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त किया गया है।

■ 11.1 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के नियमन के प्रारूप/तकनीकें (Modalities for Regulation of FDI)

(1) **स्वामित्व** (Ownership): कुछ देशों में सरकार, विदेशी निवेशकों के समता अंश के स्वामित्व पर अधिकतम सीमा (Ceiling on Ownership of equity shares) निर्धारित कर देती है। प्रायः यह अधिकतम सीमा 26 प्रतिशत, 49 प्रतिशत, 51 प्रतिशत, 74 प्रतिशत आदि होती है। कुछ व्यूहरचनात्मक क्षेत्र, जो देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, उन पर वहाँ की सरकार विदेशी निवेशकों के स्वामित्व पर रोक (Ban) लगा देती है। अन्य क्षेत्रों में से जो कम महत्वपूर्ण है, वहाँ विदेशी निवेशकों के समता अंश के स्वामित्व की सीमा अधिक होती है, जैसे– 100 प्रतिशत, 74 प्रतिशत, 51 प्रतिशत, आदि। जहाँ सरकार ने कठोर दृष्टिकोण अपनाना होता है, वहाँ यह सीमा 26 प्रतिशत, 49 प्रतिशत या मनाही हो सकती है।

(2) **प्रत्यावर्त्तन पर प्रतिबंध** (Restriction on Repatriation): यदि मेजबान देश की सरकार का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के प्रति कठोर दृष्टिकोण है, तो विदेशी निवेशकों द्वारा लाभ, लाभांश (Dividend), ब्याज, रॉयल्टी, तकनीकी फीस, मूल पूँजी आदि अपने मूल देश में वापस ले जाने पर प्रतिबंध लगाए जाते है। यदि मेजबान देश की सरकार का दृष्टिकोण उदार है, तो प्रत्यावर्त्तन की स्वतंत्रता होती है।

(3) **निर्यात की अनिवार्यता** (Export Obligation): कुछ मेजबान देशों की सरकार विदेशी कंपनियों पर अनिवार्य निर्यात की बाध्यता लगा देती है। अर्थात् इन्हें मेजबान देश में किए गए कुल उत्पादन का निश्चित प्रतिशत मेजबान देश में न बेचकर निर्यात करना होता है। इससे मेजबान देश के निर्यात बढ़ते है, तथा घरेलू व्यावसायिक इकाइयों को भी इन विदेशी कंपनियों से कम खतरा होता है क्योंकि ये विदेशी कंपनियाँ अपना सारा उत्पादन मेजबान देश के बाजार में नहीं बेचतीं।

(4) **वित्तीय प्रोत्साहन** (Financial Incentives): कुछ देशों की सरकार विदेशी निवेश को मेजबान देश में ऐच्छित स्थानों व ऐच्छित क्षेत्रों में आकर्षित करने के लिए विभिन्न वित्तीय प्रोत्साहन देती है; जैसे- करों में रियायतें, अनुदान, ऋणों पर ब्याज की कम दर, आदि। इसी तरह यदि सरकार घरेलू निवेशकों को विदेशों में निवेश (Overseas Investment) के लिए प्रोत्साहित करना चाहती है, तो यह ऐसे निवेश के लिए भी विभिन्न प्रोत्साहन देती है;

जैसे विदेशों में किए निवेश पर गारंटी आवरण (Guarantee Cover), बीमा आवरण (Insurance Cover), लाभांश, लाभ, रॉयल्टी, तकनीकी फीस के देश में अंतर्प्रवाह पर कर में छूट, आदि।

■ 12. अच्छे निवेश वातावरण के लिए सुझाव
(Suggestions Towards Better Investment Climate)

विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए यह जरूरी है कि देश में निवेश-वातावरण को उदार बनाया जाये और विदेशी निवेश के आने वाली रुकावटों को दूर किया जाये। आज सभी विकासशील देशों में से चीन, सबसे अधिक मात्रा में विदेशी पूँजी को आकर्षित कर रहा है। इसके मुख्य कारण है-वहां का अच्छा निवेश-वातावरण, बड़ा घरेलू बाजार, बढ़ती हुई प्रति व्यक्ति आय, औद्योगिक अधोसंरचना का विकास, अच्छे औद्योगिक संबंध आदि शामिल है। निम्न सुधार करके निवेश-वातावरण को अच्छा बनाया जा सकता है:

(i) सरकार को **विदेश-निवेश-नीति को सरल एवं स्पष्ट करना चाहिए,** और विदेशी-निवेशक के हित को ध्यान में रखना चाहिये। विदेशी निवेशक कुछ देशों के निवेश-वातावरण को काफी जटिल मानते हैं। उदाहरण के लिए, मोटोरोला कंपनी ने अपनी कुछ परियोजनाओं जिन्हें भारत के लिए नियोजित किया गया था, उन्हें भारत की जगह चीन में लगाया क्योंकि मोटोरोला कंपनी को चीन की सरकार का विदेशी पूँजी के प्रति दृष्टिकोण भारत की तुलना में अधिक स्पष्ट लगा।

(ii) विकासशील देशों में आधारभूत संरचना की कमी, विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने में बहुत बड़ी रुकावट है। इसलिए जरूरी है कि इन देशों में **आधारभूत संरचना के विकास** (Infrastructural Development) की ओर अधिक ध्यान दिया जाये।

(iii) खराब **औद्योगिक संबंध** भी विदेशी निवेशक को आकर्षित करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। कुछ देशों में हड़ताल, तालाबन्दी जैसी समस्याएं अक्सर देखने को मिलती है। अतः जरूरी है कि इन बिगड़ते औद्योगिक संबंधों (Industrial relations) को ठीक किया जाये, ताकि विदेशी निवेशक इन देशों में उद्योग लगाने के लिए आकर्षित हो।

(iv) पूँजी-बाजार की अकुशलता, अनियमितता तथा अनुशासनहीनता भी विदेशी निवेश को आकर्षित करने में बाधा है। स्टॉक एक्सचेंज के घोटालों से भी विदेशी निवेशक निरुत्साहित होते है। अतः यह जरूरी है कि **वित्तीय ढांचे को सुदृढ़** बनाया जाये। और पूँजी बाजारों को कार्यकुशल बनाया जाए तथा सरकार इस बात पर ध्यान दे कि पूँजी बाजारों में घोटाले न हो।

(v) राजनीतिक-अस्थिरता भी विदेशी निवेशक को आकर्षित करने में बाधा है। सरकार के बदलने से आर्थिक नीतियों में बार-बार बदलाव आने की संभावना रहती है। ऐसे वातावरण में विदेशी निवेशक अपने निवेश को सुरक्षित नहीं समझते अतः विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए **राजनीतिक स्थिरता** अनिवार्य है।

विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए विदेशी पूँजी को बढ़ावा देना जरूरी है। लेकिन साथ में यह भी जरूरी है कि विदेशी निवेश पर नियन्त्रण रखा जाये। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों (Priority-areas) जैसे तेल निकालना, तेल-शोधन, पेट्रोकेमिकल्स, ऊर्जा-उत्पादन, दूरसंचार, पर्यटन आदि में विदेशी निवेश को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से विकासशील देशों के निर्यात बढ़ेंगे, आयात कम होंगे, तथा भुगतान शेष का घाटा कम होगा। और इससे लघु-उद्योगों को भी नुकसान नहीं होगा। उपभोग-वस्तुओं के स्थान पर विदेशी निवेश को पूँजी प्रधान उद्योग लगाने के लिए आकर्षित किया जाना चाहिये। इससे इन देशों के आर्थिक विकास में तेजी आयेगी।

■ 13. विदेशी निवेश नीति, 1991/भारत की नई विदेशी निवेश नीति
(Foreign Investment Policy, 1991/ New Foreign Investment Policy of India)

1991 की विदेशी पूँजी नीति या नई विदेशी निवेश नीति में विदेशी निवेश को उदार बना दिया गया तथा विदेशी पूँजी के अंतरप्रवाह (Inflow) पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया गया। पहले विदेशी पूँजी हिस्सेदारी 40% तक सीमित थी, अब इसे बढ़ाकर 100% कर दिया गया है। 1991 से पहले सभी विदेशी निवेशों तथा तकनीकी सहयोगों को पूर्व अनुमति लेनी होती थी पर नई निवेश नीति में इसे स्वतः स्वीकृति (Automatic Approval) दे दी गई है। विदेशी निवेश की स्वतः स्वीकृति में सरकार या रिजर्व बैंक से किसी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं पड़ती। निवेशकों को केवल निवेश करने के 30 दिनों के बीच निवेश की सूचना, रिजर्व बैंक को देनी पड़ती है। पहले विदेशी पूँजी का प्रयोग पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण तथा उच्च प्राथमिकताओं वाले उद्योगों तक सीमित था

लेकिन अब इसे लगभग हर तरह के उद्योगों के लिए खुली छूट दे दी गई है। इसके अलावा अधिक विदेशी पूँजी आकर्षित करने के लिए विदेशी पूँजी को बहुत-सी रियायतें तथा प्रोत्साहन दिये गये है। अब विदेशी निवेश नीति को अधिक व्यावहारिक और सरल बना दिया गया है। नई विदेश पूँजी नीति की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है:

(1) **उदारवादी दृष्टिकोण** (Liberal Approach): वर्तमान निवेश नीति में विदेशी पूँजी के अंतरप्रवाह को बढ़ावा दिया जाएगा। अब विदेशी पूँजी का प्रयोग हर तरह के उद्योगों के लिए खोल दिया गया है। इस निवेश नीति में विदेशी निवेशकों को निवेश करने के लिए स्वतः स्वीकृति (Automatic Approval) दे दी गई है अर्थात् उन्हें निवेश करने से पहले अब सरकारी अनुमति नहीं लेनी पड़ती। विदेशी पूँजी की भागेदारी को भी बढ़ाकर 100% कर दिया गया है अर्थात् अब विदेशी निवेशक किसी इकाई के 100% अंश खरीद सकते है। इन सभी प्रावधानों से स्पष्ट है कि नई निवेश नीति में सरकार का दृष्टिकोण काफी उदार है।

(2) **विदेशी पूँजी के विभिन्न रूप** (Various forms of Foreign Capital): पहले विदेशी पूँजी के मुख्य प्रारूप विदेशी सहायता और व्यापारिक ऋण थे, लेकिन अब इसके अनेक प्रारूप है जैसे-

(i) **विदेशी सहयोग** (Foreign Collaboration): विदेशी सहयोग से हमारा अभिप्राय किसी इकाई को भारत में विदेशी कंपनियों तथा भारतीय उद्यमियों द्वारा मिलकर चलाने से है।

(ii) **विदेशी समता हिस्सेदारी** (Foreign Equity Participation): विदेशी समता हिस्सेदारी में विदेशी निवेशकों द्वारा भारतीय उद्यमों के समता अंशों में निवेश किया जाता है। इसमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment) तथा पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investment) को शामिल किया जाता है।

(iii) **विदेशी संस्थागत निवेशकों, अनिवासी भारतीयों तथा अन्य विदेशी निवेशकों द्वारा निवेश** (Investment by Foreign Institutional Investors, Non-Resident Indians and Other Foreign Investors): इन सभी को भारतीय पूँजी बाजार से, पोर्टफोलियो निवेश के रूप में अंशों, ऋणपत्रों तथा बॉण्डों को खरीदने की अनुमति दे दी गई है।

(iv) **भारतीय निगम क्षेत्र द्वारा विदेशी बाजारों में प्रतिभूतियाँ जारी करना** (Issue of Securities by Indian Corporate Sector in Foreign Markets): कुछ शर्तें पूरी करने पर भारतीय कंपनियों को विदेशी पूँजी बाजारों में GDRs, ADRs तथा FCCBs जारी करने की अनुमति दे दी गई है। इस तरह की प्रतिभूतियों को निर्गमित करने से भारतीय निगम क्षेत्र, विदेशी पूँजी के अंतरप्रवाह में सहायक होता है।

(3) **अनिवासी भारतीयों को कर में रियायतें** (Tax Concessions to NRIs): नई निवेश नीति में अनिवासी भारतीयों से अधिक धन भारत में आकर्षित करने के लिए उन्हें कर से रियायतें दी गई है। जैसे-कुछ क्षेत्रों में नई औद्योगिक इकाई लगाने पर उन्हें निश्चित अवधि के लिए कर मुक्त करना या कर की दर कम करना, पूँजी लाभ पर कर की दर कम करना इत्यादि।

(4) **तकनीकी सहयोग** (Technological Collaborations): तकनीक के अंतरप्रवाह को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी सहयोग को विभिन्न रियायतें दी गई हैं। नई नीति के अनुसार विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त करने अथवा देश में विकसित तकनीकों का विदेशों में परीक्षण कराने के लिए विदेशी मुद्रा भुगतान की इजाजत लेने की आवश्यकता समाप्त कर दी गई है।

(5) **बोर्डों का गठन** (Organisation of Boards): इस नीति में यह प्रावधान भी किया गया है कि चुनिंदा क्षेत्रों में सीधे विदेशी पूँजी निवेश के लिए विशेषाधिकार प्राप्त बोर्डों का गठन किया जायेगा जो भारत में उपक्रम लगाने के बारे में बड़ी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के साथ सारी बातें तय करेगा। यह एक विशेष कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जायेगा ताकि भारी मात्रा में विदेशी पूँजी निवेश को आकर्षित किया जा सके तथा आधुनिकतम तकनीक प्राप्त की जा सके।

(6) **लघु उद्योगों में विदेशी निवेश** (Foreign Investment in Small Industries): नई लघु औद्योगिक नीति के अनुसार विदेशी उद्यमकर्ता बिना किसी इजाजत के लघु उद्योगों में उनकी कुल पूँजी का 24 प्रतिशत तक निवेश कर सकते हैं।

(7) **संयुक्त उद्यम** (Joint Ventures): एक जनवरी सन् 1997 से भारतीय तथा विदेशी उद्योगपतियों द्वारा आरम्भ किये जाने वाले संयुक्त उद्यमों की शर्तों को अधिक सरल तथा उदारवादी बना दिया गया है। विदेशी उद्योगपति अब संयुक्त उद्यमों में 51% से अधिक शेयरों का स्वामित्व प्राप्त कर सकते हैं।

(8) **पूर्ण स्वामित्व वाले विदेशी उद्यम** (Wholly Owned Foreign Enterprises): नई विदेशी पूँजी नीति के अनुसार यदि विदेशी कंपनियां भारत में स्थित संयुक्त उद्यमों का पूर्ण स्वामित्त्व प्राप्त करना चाहती है या पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियां (Subsidiaries) स्थापित करना चाहती हैं तो उन्हें इसके लिए पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

(9) **अधोसंरचना के विकास के लिए विदेशी पूँजी** (Foreign Capital for Infrastructural Development): देश में अधोसरचना जैसे सड़के, बिजली, टेलीकम्यूनिकेशन्स, बन्दरगाहों आदि के विकास के लिए सरकार ने विदेशी पूँजी को कई रियायतें प्रदान की है। इन क्षेत्रों में विदेशी पूँजी निवेशकर्ताओं को कई सुविधाएं प्रदान की जाएगी, उन्हें अपनी आय विदेशों में विदेशी मुद्रा के रूप में हस्तान्तरित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। आधारभूत अधोसंरचना के विकास के लिए विदेशी पूँजी की सहायता से संयुक्त उद्यम भी लगाये जा सकते है। इनके लिए विदेशी पूँजी की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी गई है। उदाहरण के लिए, ऊर्जा (बिजली), तेल निकालना, तेल साफ करना, सड़कें, बन्दरगाहों, हवाईअड्डों में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गई है। बैंकिंग तथा माल विमान सेवाओं (Cargo Airlines) क्षेत्र में 74 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गई है।

(10) **विदेशी निवेश लागूकरण प्राधिकरण** (Foreign Investment Implementation Authority – FIIA): इस प्राधिकरण की स्थापना 1999 में उद्योग मत्रालय के अतर्गत की गई। यह प्राधिकरण इस बात पर ध्यान देगा कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अनुमोदनों (Approvals) को शीघ्रता से वास्तविक अतरप्रवाह (Actual Realisation) में बदला जाए। इसके लिए विदेशी विनियोग सवर्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board) की स्थापना की गई है। यह प्राधिकरण विदेशी निवेशकों की समस्याओं का समाधान करता है। इनका कार्य अधिक विदेशी निवेश आकर्षित करना है।

(11) **उच्च तकनीक तथा उच्च प्राथमिकता वाले उद्योग** (High Technology and High Priority Industries): इन क्षेत्रों में निवेश को बढ़ावा देने के लिए स्वत: स्वीकृति (Automatic Approval) को अपनाया गया है। अर्थात उच्च तकनीक एवं उच्च प्राथमिकता क्षेत्रों में निवेश करते समय सरकार से अलग अनुमति लेना आवश्यक नहीं है। इन्हें विदेशी निवेशकों की हिस्सेदारी 100% तक हो सकती है। तथा विदेशी निवेशकों को कभी भी पूँजी और लाभ वापिस ले जाने की अनुमति होगी। ये क्षेत्र हैं– ऊर्जा, फार्मास्यूटिकल, एयरपोर्ट, पोर्ट, तेल व प्राकृतिक गैस अन्वेषण (Oil and Natural Gas Exploration), इत्यादि।

(12) **निर्यात संवर्धन** (Export Promotion): निर्यात क्षेत्र में विदेशी निवेश को बढ़ाने के लिए इनमें 100% विदेशी निवेश की अनुमति दी गई है। तथा कर में भी इस निवेश पर बहुत सी रियायतें दी गई हैं। निर्यात क्षेत्र में निर्यात प्रोत्साहन इकाइयाँ, निर्यात गृहों, स्टार व्यापार गृहों को शामिल किया गया है।

(13) **विदेशी निवेशकों द्वारा विनिवेश** (Disinvestment by Foreign Investors): नई नीति से पहले विदेशी निवेशकों द्वारा भारत में किए गए निवेश को रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित मूल्य पर बेचना पड़ता था, लेकिन अब नई नीति के विदेशी निवेशकों को अपना निवेश शेयर बाजार में बाजार मूल्य पर बेचने की अनुमति दे दी गई है। और ये विदेशी निवेशक अपने धन को वापिस ले जा सकते है।

(14) **विदेशी संस्थागत निवेशक** (Foreign Institutional Investors – FIIs): पोर्टफोलियो विनियोग में विदेशी संस्थागत निवेशकों को अधिक निवेश के लिए रियायतें दी गई हैं। पहले ये निवेशक 24% से अधिक निवेश नहीं कर

सकते थे पर अब कंपनी के अंशधारियों के विशेष प्रस्ताव द्वारा अनुमति देने पर ये निवेशक किसी कंपनी में इस उद्योग के लिए निर्धारित वैधानिक ऊपरी सीमा तक निवेश कर सकते हैं। लेकिन एक अकेला विदेशी संस्थागत निवेशक किसी कंपनी की कुल प्रदत्त पूँजी का 10% से अधिक निवेश नहीं कर सकता। विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा निर्गमित बॉडों व सरकारी प्रतिभूतियों में अधिकतम निवेश सीमा को बढ़ाकर क्रमश: 51 बिलियन अमेरिकन डॉलर व 30 बिलियन अमेरिकन डॉलर कर दिया गया है। वर्ष 2006-07 में विदेशी संस्थागत निवेशकों की पजीकरण फीस को 5,000 US डॉलर से बढ़ाकर 10,000 US डॉलर कर दिया गया है। वर्ष 2013 के अत तक भारत में पजीकृत FIIs की सख्या बढ़कर 1,767 हो गई।

(15) **निवेश आयोग** (Investment Commission): भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अतरप्रवाह को बढ़ावा देने के लिए दिसम्बर 2004 में निवेश आयोग की स्थापना की गयी है। यह आयोग विदेशी निवेशकों को भारत में निवेश करने के लिए प्रेरित करता है तथा उन्हें निवेश करने से संबंधित आवश्यक सहयोग देता है। यह आयोग विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के प्रस्तावों में सरकार की तरफ से लगने वाली देरी को भी कम करने का प्रयास करता है। विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए 'भारत निवेश' (Invest India) परियोजना शुरू की गई है।

(16) **विदेशी निवेश के साथ उचित-व्यवहार** (Fair Treatment to Foreign Investment): सरकार ने नई नीति में स्पष्ट किया कि विदेशी निवेश के साथ कोई भेदभावपूर्ण नीति नहीं अपनाई जाएगी, और इन्हें घरेलू निवेशों पर दी जाने वाली सभी रियायतें उपलब्ध होंगी।

(17) **ई-बिज परियोजना की स्थापना** (Setting up of e-biz Project): विदेशी निवेश के अतर्प्रवाह को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने ई-बिज़ परियोजना चलाने की घोषणा की है। इसके अंतर्गत सभावी विदेशी निवेशकों को भारत में निवेश करने के लिए ऑनलाइन एकल खिड़की सुविधा प्रदान की जाएगी। अर्थात उन्हें निवेश के लिए केवल एक ही स्थान से स्वीकृति लेनी होगी। इससे विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह में प्रशासनिक रुकावटों में कमी आएगी तथा विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह में वृद्धि होगी।

(18) **धन वापिस ले जाने की सुविधा** (Facility of Repatriation): विदेशी निवेशक अपनी पूँजी, लाभाश, रॉयल्टी, तकनीकी सेवाओं की फीस आदि अपने देश में लेकर जा सकते हैं। इससे विदेशी निवेश में काफी तेजी आई है।

(19) **भारतीय कंपनियों द्वारा GDRs, ADRs तथा FCCBs को जारी करना** (Issue of GDRs, ADRs, and FCCBs by Indian Companies): भारतीय कपनियों को कुछ शर्तें पूरी करने पर विदेशी पूँजी बाजारों में विश्व जमा प्राप्तियाँ (Global Depository Receipts - GDRs), अमेरिकन जमा प्राप्तियाँ, (American Depository Receipts - ADRs), विदेशी मुद्रा परिवर्तनशील बॉण्ड (Foreign Currency Convertible Bonds - FCCBs) जारी करने की अनुमति दी गई है।

(20) **विदेशी निवेश के लिए स्वीकृति** (Clearance for Foreign Investment): यदि किसी परियोजना में ₹ 3,000 करोड़ तक के विदेशी निवेश लगाए जाने हैं, तो इसकी स्वीकृति वित्त मत्रालय के अटर कार्यरत 'विदेशी निवेश सवर्द्धन बोर्ड' से लेनी होगी। यदि विदेशी निवेश की राशि ₹ 3,000 करोड़ से अधिक है तो इसके लिए आर्थिक मामलों की कैबिनेट कमेटी से स्वीकृति लेनी पड़ती है। वर्ष 2007 में सरकार ने विदेशी पेंशन फंडों, चेरिटेबल संस्थाओं तथा विश्वविद्यालय फंडों को भारत में FII के रूप में पजीकरण की अनुमति दे दी है।

संक्षेप में, भारतीय नई निवेश नीति काफी उदार है तथा विदेशी निवेशकों के पक्ष में है। इससे भारत में निवेश को बढ़ावा मिला है, लेकिन अभी भी भारत में विदेशी निवेश काफी कम है। विदेशी निवेशकों का विश्वास प्राप्त करने के लिए विदेशी निवेश नीति को और भी सरल, स्पष्ट तथा उदार बनाना चाहिए।

■ 13.1 भारत की सम्मिलित विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, 2014
(Consolidated FDI Policy, 2014 of India)

औद्योगिक नीति व सवर्धन विभाग ने सम्मिलित विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति जारी की है। यह नीति 17 अप्रैल 2014 से लागू की गई है। सम्मिलित नीति में सरकार द्वारा पहले से जारी की गई सभी नीतियों/प्रेस नोटों/नियमो/पत्रो (Circulars) को शामिल किया गया है। इस नीति में सरकार द्वारा FDI से सबंधित अप्रैल 16, 2014 तक जारी की गई सभी विज्ञप्तियों (Notification) को शामिल किया गया है। नयी FDI नीति का मुख्य उद्देश्य सरल, स्पष्ट, पारदर्शी सयुक्त नीति द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को बढ़ावा देना है तथा प्रावधानों व औपचारिकताओं को कम करना है। वर्तमान नीति विदेशी निवेशकों के लिए हितकारी है क्योंकि अब निवेशकों को केवल एक ही नीति को समझना होगा। वैश्विक FDI में भारत का हिस्सा 2.10 प्रतिशत से बढ़ा कर वर्ष 2017 तक 5 प्रतिशत लाने का लक्ष्य है. इस नीति के मुख्य प्रावधान/विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **1. भारत में निवेश का मूल (Origin of Investment in India)**

  (i) **गैर-निवासी व्यक्ति** (Non-Resident Entity), अर्थात् किसी भी देश के नागरिक/समामेलित इकाइयां भारत की FDI नीति के प्रावधानों के अनुसार भारत में निवेश कर सकती है। पाकिस्तान व बाग्लादेश के नागरिक तथा इन देशों में समामेलित इकाइयाँ केवल सरकारी रूट से भारत में निवेश कर सकती है।

  (ii) **प्रवासी निगमित इकाइयाँ** (Overseas Corporate Bodies) यदि भारत में सरकारी रूट (Route) से निवेश करती है, तब इन्हें अपने निवेश से पहले भारतीय सरकार से पूर्वानुमति लेनी होगी। यदि ये इकाइयाँ स्वचालित रूट से निवेश करती है तो इन्हे रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति लेनी होगी।

  (iii) **विदेशी संस्थागत निवेशक** (FII) भारतीय कपनियो की पूँजी में निवेश कर सकते है। लेकिन एक व्यक्तिगत विदेशी संस्थागत निवेशक की अधिकतम सीमा 10 प्रतिशत तथा सभी विदेशी सस्थागत निवेशकों की सयुक्त अधिकतम सीमा 24 प्रतिशत होगी।

  (iv) **एक योग्य** (Qualified) **विदेशी निवेशक का** (सस्थागत विदेशी निवेशको को छोड़कर) किसी भारतीय कम्पनी के समता अशो में अधिकतम 5 प्रतिशत तथा सभी योग्य विदेशी निवेशकों का सामूहिक निवेश अधिकतम 10 प्रतिशत तक हो सकता है।

  (v) **विदेशी जोखिम पूँजी निवेशक** (Foreign Venture Capital Investor) SEBI व RBI के प्रावधानों के अनुसार भारतीय जोखिम पूँजी इकाइयो मे निवेश कर सकते है।

- **FDI की रिपोर्टिंग (Reporting of FDI)**

  (i) कोई भी भारतीय कपनी जो FDI योजना के अतर्गत भारत से बाहर अंश/परिवर्तनशील ऋणपत्र/अधिमान अश जारी करती है, उसे इस निर्गमन से प्राप्त राशि के बारे मे विस्तृत जानकारी भारतीय रिजर्व बैंक को राशि प्राप्ति के 30 दिनों के अदर देनी होगी।

  (ii) यदि कोई भारतीय कपनी अमेरिकन जमा प्राप्तियाँ (ADRs)/विश्व जमा प्राप्तियाँ (GDRs) जारी करती है, तो इसे निर्गमन समाप्ति दिवस (Closing Date of Issue) के 30 दिनों के अंदर निर्गमन के बारे में विस्तृत जानकारी भारतीय रिजर्व बैंक को देनी होगी।

- **2. निवेश सयत्रों के प्रकार (Types of Investment Instruments)**

  (i) भारतीय कपनियाँ विदेशी निवेशकों को समता अश, पूर्ण परिवर्तनशील ऋणपत्र, पूर्ण परिवर्तनशील अधिमान अश जारी कर सकती है. विदेशी निवेशको से निवेश राशि प्राप्त करने के 180 दिनों के अतर्गत पूँजी सयत्र जारी करने होंगे।

  (ii) भारतीय कपनियाँ विदेशी पूँजी बाजारो में विदेशी मुद्रा परिवर्तनशील बॉण्ड (FCCBs), अमेरिकन जमा प्राप्तियाँ (ADRs), विश्व जमा प्राप्तिया (GDRs) जारी कर सकती है।

- **3. निवासी इकाइयों में FDI की पात्रता (Eligibility of FDI in Resident Entities)**

  विदेशी निवेशक केवल निम्न निवासी इकाइयो में ही निवेश कर सकते है, किसी अन्य में नहीं:

  (i) भारतीय कपनियों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI)।

  (ii) साझेदार फर्मों, सीमित दायित्व वाली साझेदारी फर्मों, की पूँजी में व एकल स्वामित्व इकाइयों की पूँजी में निवेश। लेकिन यह निवेश कृषि बागानों, भूमि सम्पदा या प्रिंट मीडिया में नहीं होना चाहिए।

  (iii) जोखिम पूजी कोष (Venture Capital Fund) में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश।

  (iv) जोखिम पूंजी कोषों को छोड़कर किसी अन्य ट्रस्ट में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) की अनुमति नहीं है।

- **4. भारतीय कंपनियों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश की गणना (Calculation of Direct and Indirect Foreign Investment in Indian Companies)**

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का तात्पर्य अप्रवासी व्यक्तियों द्वारा भारतीय कंपनियों में निवेश से है। दूसरी तरफ, यदि एक ऐसी भारतीय कपनी जिसकी पूँजी में विदेशी निवेश है, किसी अन्य भारतीय कंपनी में निवेश करती है, तो इसे अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहते है।

12 फरवरी, 2009 को सरकार ने भारतीय कंपनियों में विदेशी पूँजी समता निवेश की गणना से सबंधित दिशा-निर्देश जारी किए है इन नए दिशा-निर्देशों से भारतीय कंपनियों में विदेशी पूँजी के अंतरप्रवाह का क्षेत्र बढ़ा है। इससे उन सभी कंपनियों को लाभ होगा, जिनमें विदेशी निवेश निर्धारित सीमा तक पहुँच चुके है। नए नियमों के आधार पर, यदि निवेश करने वाली कपनी में अधिकतर अश (Majority Shares) भारतीयों के पास हों या कपनी का नियत्रण (अधिकतर सचालकों की नियुक्ति का अधिकार) भारतीयों के पास हो व यदि यह कपनी किसी अन्य कपनी में निवेश करती है तो इस नए निवेश को पूर्णतया भारतीय माना जाएगा। उदाहरण के तौर पर, यदि कपनी A जिसमें विदेशी निवेश 50% से कम है, वह कपनी यदि कपनी B में निवेश करती है तब कपनी B में किया गया निवेश FDI नहीं माना जाएगा। यदि कपनी A में विदेशी निवेश 50% से अधिक है और वह कपनी, B कपनी में मान लो 26% निवेश करती है तो यह सारा 26% निवेश अप्रत्यक्ष FDI माना जाएगा। इन नए नियमों से पहले आनुपातिक निवेश को अप्रत्यक्ष FDI माना जाता था।

यदि ऐसा निवेश उन क्षेत्रों में किया जा रहा हो, जिनमें विदेशी निवेश की अधिकतम सीमा (Cap/Ceiling) निर्धारित की गई हो, तब इस निवेश की स्वीकृति सरकार तथा विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड से भी लेनी होगी। विदेशी सस्थागत निवेशको द्वारा किए गए निवेश/ADRs/GDRs/NRI निवेश तथा विदेशी मुद्रा परिवर्तनशील बॉण्डों (FCCBs) में किए गए निवेश को विदेशी निवेश की गणना में शामिल किया जाएगा।

- **5. विदेशी निवेश का प्रवेश स्रोत (Entry Route for Foreign Investment)**

भारत में विदेशी निवेश के दो रास्ते हैं: (i) प्रत्यक्ष रूट, (ii) सरकारी रूट। प्रत्यक्ष रूट में विदेशी निवेशकों को निवेश के लिए सरकार या रिजर्व बैंक से किसी प्रकार की कोई अनुमति नहीं लेनी पड़ती। यदि विदेशी निवेश ₹ 3,000 करोड़ तक है, तो विदेशी निवेश सवर्धन बोर्ड की पूर्व अनुमति लेनी होती है। यदि विदेशी निवेश ₹ 3,000 करोड़ से अधिक है, तो 'आर्थिक मामलों पर कैबिनेट समिति' की स्वीकृति लेनी होती है। FIPB या सरकार से अनुमति लेने के लिए, अब विदेशी निवेशक आवेदन ऑनलाइन भी दे सकते है।

- **6. FDI के प्रवेश पर शर्तों व अधिकतम सीमा संबंधी नीति (Policy on Caps and Entry Conditions of FDI)**

- **6.1 भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर प्रतिबंध (Prohibition of FDI in India)**

निम्न क्षेत्रों/क्रियाओं में FDI प्रतिबंधित है:

(i) लॉटरी व्यवसाय
(ii) जुआ, शर्तें, कसीनों (Casinos)
(iii) चिट फंड व निधि कंपनियाँ
(iv) भूमि संपदा व्यवसाय (Real Estate Business)

(v) सिगार, सिगरेट व अन्य तबाकू उत्पाद का निर्माण
(vi) ऐसी क्रियाएँ/क्षेत्र जो निजी क्षेत्र द्वारा निवेश के लिए वर्जित हैं, अर्थात् अणु ऊर्जा तथा रेलवे (सामूहिक तीव्र परिवहन व्यवस्था, जैसे- दिल्ली मेट्रो को छोड़कर)।

● 6.2 कृषि क्षेत्र में विदेशी निवेश (Foreign Investment in Agriculture Sector)

(i) फूलो की खेती, बागवानी, पशुपालन, मछली पालन, सब्जियों व मशरूमों की खेती।	100%
(ii) चाय बागान।	100%
(iii) बीजों तथा पौध-सामग्री का उत्पादन तथा विकास।	100%

● 6.3 उद्योग क्षेत्र में विदेशी निवेश (Foreign Investment in Industry Sector)

(i) खनन	100%
(ii) कोयला व लिगनाइट, कोयला प्रोसेसिंग प्लांट	100%
(iii) एल्कोहल का निर्माण	100%
(iv) कॉफी व रबड़ प्रोसेसिंग	100%
(v) ड्रग्ज व फार्मास्यूटिकल्ज (Drugs and Pharmaceuticals)	100%
(vi) खतरनाक रसायन, औद्योगिक विस्फोटक	100%
(vii) ऊर्जा का सृजन, वितरण व ट्रेडिंग	100%
(viii) सुरक्षा उपकरण (Defence Equipments)	49%
(ix) सूक्ष्म व लघु उपक्रमो के लिए आरक्षित मदों का निर्माण (परंतु सरकार से मंजूरी लेकर यह निवेश 24% से भी अधिक हो सकता है।)	24%

● 6.4 सेवा क्षेत्र मे विदेशी निवेश (Foreign Investment in Service Sector)

(i) विज्ञापन व फिल्में	100%
(ii) ग्रीन-फील्ड हवाई अड्डा परियोजनाएँ	100%
(iii) डाँटा प्रोसेसिंग, सॉफ्टवेयर विकास, कंसलटेंसी सेवाएँ, अनुसधान सेवाएँ	100%
(iv) सडकों, पुलो, सुरगो, टॉऊनशिप, अस्पताल, होटलो आदि का निर्माण	100%
(v) स्वास्थ्य व मेडिकल सेवाएँ	100%
(vi) होटल व पर्यटन	100%
(vii) औद्योगिक पार्क	100%
(viii) गैर-बैंकिंग वित्त कंपनियाँ	100%
(ix) जोखिम पूँजी कोष (Venture Capital Funds)	100%
(x) तेल व प्राकृतिक गैस निकालना	100%
(xi) स्टोरेज व वेयर हाउसिंग सेवाएँ	100%
(xii) कोरियर सेवाएँ	100%
(xiii) थोक व्यापार (Wholesale Trading)	100%
(xiv) एकल ब्राड रिटेलिंग (Single Brand Retailing)	100%
(xv) ई-कामर्स (E-commerce)	100%
(xvi) परिवहन सेवाएँ (Transport Services)	100%
(xvii) दूरभाष सेवाएँ	100%
(xviii) रेलवे अधोसंरचना	100%
(xix) गैर-अनुसूचित वायु परिवहन, चार्टर्ड एयरलाइस, कार्गो एयरलाइस में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश	
(a) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश सीमा	74%
(b) गैर निवासी भारतीय सीमा (NRI Limit)	100%

(xx) इंटरनेट सर्विस प्रोवाईडर (Internet Service Providers)	74%
(xxi) निजी क्षेत्र बैंक	74%
(xxii) डायरेक्ट टू होम (Direct to Home – DTH), केबल नेटवर्क	74%
(xxiii) अनुसूचित वायु परिवहन सेवाओं/घरेलू अनुसूचित यात्री एयरलाइन में FDI:	
(a) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश सीमा	49%
(b) गैर निवासी भारतीय सीमा (NRI Limit)	100%
(xxiv) बहुब्राड रिटेलिंग (Multibrand Retailing)	51%
(xxv) सिविल एविएशन (Civil Aviation)	49%
(xxvi) कोमोडिटी एक्सचेंज (Commodity Exchange) (FDI - 26% व FPI - 23%)	49%
(xxvii) निजी सुरक्षा एजेन्सियां	49%
(xxviii) बीमा	49%
(xxix) प्रिंट मीडिया	26%
(xxx) FM रेडियो प्रसारण	26%
(xxxi) सार्वजनिक क्षेत्र बैंक	20%

● 7. विदेशी निवेश की मूल देश को वापसी (Remittance and Repatriation of Foreign Investment)

(i) यदि विदेशी निवेश वापसी आधार (Remittance and Repatriation of Foreign Investment) पर किया गया है तो विदेशी निवेशक भारत में खरीदी गयी प्रतिभूतियों को बेचकर विक्रय से प्राप्त राशि को अपने मूल देश में बिना रोक-टोक (आय कर का भुगतान करके) वापिस ले जा सकता है।
(ii) अंशों पर लाभाश को स्वतंत्रता से मूल देश में वापिस ले जाया जा सकता है।
(iii) परिवर्तनशील ऋणपत्रों पर ब्याज को स्वतंत्रता से मूल देश में वापिस ले जाया जा सकता है।
सभी वापसियो पर विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम (FEMA) के प्रावधान लागू होते है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. विदेशी निवेश का क्या अर्थ है? विदेशी निवेश को प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन करें।
What is meant by foreign investment? Discuss the factors influencing foreign investment.
2. विदेशी निवेश निर्णयों को प्रभावित करने वाले तत्त्व क्या हैं? विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के मूल देश पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा करें। (M.D.U. 2011, 2014)
What are the factors that affect foreign investment decisions? Explain the impact of Foreign Direct Investment on home country.
3. अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तेज करने में विदेशी निवेश के महत्त्व तथा सीमाओं की विवेचना कीजिए।
Explain the importance and limitations of foreign investment in accelerating the process of economic development of underdeveloped nations.
4. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश क्या है? विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या करें। (M.D.U. 2013)
What is foreign direct investment? Explain factors influencing FDI.
5. भारत में विदेशी निवेश की जरूरत क्या है ? विदेशी निवेश के बारे में भारतीय सरकार की वर्तमान नीति का वर्णन करें। (M.D.U. 2012)
What is the need of foreign investment in India? Discuss present government policy regarding foreign investment in India.

विदेशी सहयोगों के प्रकार एवं उद्देश्य
(Types and Motives for Foreign Collaborations)

पिछले कुछ वर्षों से विश्व के विभिन्न देशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मात्रा बहुत बढ़ रही है। विभिन्न देश पिछले कुछ दशकों से विशेषकर भारत 1991 से विदेशी निवेश को आकर्षित कर रहे है। वर्ष 1991 से भारत-सरकार उदारीकरण व वैश्वीकरण की नीति को अपना रही है। इसके बाद से बहुत अधिक विदेशी निवेश भारत में आ रहा है।

■ 1. विदेशी सहयोग का अर्थ (Meaning of Foreign Collaborations)

विदेशी-सहयोग में विदेशी उद्यमी व भारतीय उद्यमी मिलकर संयुक्त रूप से उपक्रम की स्थापना करते है। विदेशी सहयोग मुख्य रूप से तीन तरह के होते है: (i) विदेशी निजी कंपनियों का घरेलू निजी कंपनियों के साथ सहयोग, (ii) विदेशी निजी कंपनियों का मेजबान देश की सरकार के साथ सहयोग, (iii) विदेशी सरकार का मेजबान देश की सरकार के साथ सहयोग।

यद्यपि विदेशी-निवेश व विदेशी सहयोग परस्पर संबंधित है, तथापि इन दोनों में कुछ अंतर है। विदेशी-सहयोग बिना विदेशी निवेश के भी हो सकता है। विदेशी-सहयोग के दो प्रारूप हो सकते है: (i) **तकनीकी सहयोग** (ii) **वित्तीय सहयोग**। तकनीकी-विदेशी सहयोग में टेक्नोलॉजी, कॉपीराइट (Copyright), तकनीकी ज्ञान, पेटेन्ट आदि विदेशी साझेदार द्वारा उपलब्ध करवाए जाते है। इसके लिये भारतीय उद्यमी द्वारा विदेशी साझेदार को रॉयल्टी या फीस एक मुश्त राशि के रूप में या एक निश्चित समय के लिए निश्चित दर से दी जाती है। अत: तकनीकी-विदेशी-सहयोग बिना वित्तीय-निवेश के होते है, जबकि वित्तीय-सहयोग में विदेशी उद्यमी वित्तीय-निवेश करते है। वित्तीय-सहयोग की दशा में विदेशी निवेश, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के रूप में या पोर्टफोलियो-निवेश के रूप में हो सकता है। प्राय: सहयोग शब्द का प्रयोग विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए ही किया जाता है क्योंकि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को दीर्घकालीन उत्पादक-संपत्तियों में लगाया जाता है। जैसे - मेजबान देश में नयी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करना, मेजबान देश की विद्यमान औद्योगिक इकाइयों से सहयोग करना आदि। ऐसे विदेशी सहयोग जिसमें ₹ 3,000 करोड़ तक की समता पूजी लगायी जानी है, उन्हें विदेशी निवेश-संवर्धन-बोर्ड (Foreign Investment-Promotion-Board) से स्वीकृति लेनी पड़ती है। जिन विदेशी सहयोगों में ₹ 3,000 करोड़ से अधिक समता पूंजी लगायी जाती है, उन्हें आर्थिक मामलों के लिये बनायी गयी कैबिनेट-कमेटी से स्वीकृति लेनी पड़ती है।

■ 2. विदेशी-सहयोग के प्रकार/प्रारूप (Types/Forms of Foreign Collaboration)

बहुराष्ट्रीय निगम/उपक्रम बहुत से देशों में कार्यरत है। भारत में, बहुराष्ट्रीय निगम (MNC) सामान्य रूप से भारतीय उद्योगपतियों के साथ या भारतीय सरकार के साथ सहयोग स्थापित करते है। विदेशी सहयोग समझौते निम्नलिखित तरह के हो सकते है: (i) विदेशी- निजी इकाई का घरेलू-निजी इकाई के साथ, (ii) विदेशी-निजी इकाई का मेजबान देश की सरकार के साथ, (iii) विदेशी सरकार का मेजबान देश की सरकार के साथ।

ये सहयोग निम्न प्रकार के हो सकते है:

(1) **तकनीकी सहयोग** (Technological Collaboration): सहयोग के इस रूप में बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा टेक्नोलॉजी लगायी जाती है, और मेजबान देश के उद्यमियों द्वारा अन्य साधन लगाये जाते है। अच्छी अनुसंधान-सुविधाओं तथा अच्छी तकनीकी-विकास-सुविधाओं के कारण MNCs की टेक्नोलॉजी मेजबान देश की टेक्नोलॉजी से अच्छी होती है।

(2) **वित्तीय सहयोग** (Financial Collaboration): सहयोग के इस रूप में, बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा वित्तीय संसाधन अर्थात् पूँजी लगायी जाती है। निवेश के इस रूप को विदेशी प्रत्यक्ष-निवेश कहा जाता है। इस तरह के विदेशी सहयोग से मेजबान देश को आवश्यक पूँजी की प्राप्ति हो जाती है। इससे मेजबान देश के उद्योगीकरण को बढ़ावा मिलता है।

(3) **तकनीकी तथा वित्तीय सहयोग** (Technological and Financial Collaboration): यह सहयोग अल्पविकसित देशों में देखने को मिलता है। इस तरह के सहयोग में, MNC द्वारा दोनों टेक्नोलॉजी व वित्तीय संसाधन लगाये जाते हैं। इस तरह का सहयोग विकासशील देशों के उत्पादन तथा सकल घरेलू उत्पाद के विकास दर में वृद्धि करता है। क्योंकि अधिकतर विकासशील देशों में तकनीक तथा वित्तीय दोनों साधनों की कमी पायी जाती है। यह सहयोग इन दोनों कमियों को पूरा करता है।

(4) **मेजबान देश में सहायक-कम्पनियां स्थापित करना** (Setting up Subsidiary Companies in Host Nation): इस दशा में विदेशी कंपनियाँ मेजबान देश में अपनी सहायक कंपनियां स्थापित करती हैं। और इसका प्रबंध व नियंत्रण पूर्ण रूप से अपने पास रखती हैं। उदाहरण के तौर पर भारत में विदेशी कंपनी यूनीलीवर ने अपनी सहायक कंपनी हिन्दुस्तान यूनीलीवर को स्थापित किया है। यह भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का एक सामान्य रूप है। ऐसी बहुत सी सहायक कंपनियां भारत में कार्यरत हैं।

(5) **घरेलू कंपनी के अंश खरीदकर नियंत्रण प्राप्त करना** (Acquiring a Domestic Company by way of Purchasing Controlling Shares): नयी विदेश-निवेश-नीति में विदेशी निवेशकों को भारतीय कंपनियों के अंश खरीदने की अनुमति दे दी गयी है। विदेशी निवेशक ये अंश शेयर बाजार से या प्रवर्तकों से खरीद सकते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी निवेशकों को 100% समता अंश खरीदने की अनुमति है; जैसे- विज्ञापन, ऊर्जा, तेल-शोधन, दवाइयां, कोरियर सेवाएं, चाय पौधारोपण, होटल, भ्रमण स्थान (Resorts), फिल्म-क्षेत्र आदि।

■ 3. विदेशी सहयोग के उद्देश्य (Motives for Foreign Collaboration)

विदेशी सहयोग समझौतों से दोनों व्यावसायिक साझेदार – घरेलू कंपनी व विदेशी कंपनी लाभान्वित होते हैं। विदेशी सहयोगों के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं:

(1) **लागत में कमी लाना** (To Reduce Cost): कई बार एक कंपनी के पास उत्पादन क्षमता या विपणन क्षमता का आधिक्य हो सकता है। ऐसी कंपनी अपने संसाधनों का अधिकतम प्रयोग करने के लिए विदेशी कंपनी से सहयोग समझौता कर लेती है। इससे कंपनी के स्थायी व्ययों का पूर्ण उपयोग हो पाता है, तथा इससे प्रति इकाई लागत में कमी आती है। दूसरी कंपनी भी इस समझौते से लाभान्वित होती है, क्योंकि उसे निर्माणी क्रियाएँ या विपणन क्रियाएँ करने के लिए अतिरिक्त स्थिर व्यय (Additional Fixed Expenses) नहीं करने पड़ते क्योंकि सहयोगी समझौते का दूसरा साझेदार इन क्रियाओं का बोझ अपने पर ले लेता है।

(2) **प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए या प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए** (To Avoid or to Counter Competition): परस्पर प्रतियोगी इकाइयाँ सहयोग समझौते द्वारा आपसी प्रतिस्पर्धा को समाप्त कर सकती है। इससे उनके मध्य गलाकाट प्रतिस्पर्धा को समाप्त करके व्यर्थ संवर्धन व्ययों को कम किया जा सकता है। इसके अलावा सहयोग के बाद ये प्रतियोगी इकाइयाँ इतनी सुदृढ़ हो जाती हैं कि ये किसी अन्य बाजार नेता (Market-Leader) से भी प्रतिस्पर्धा का सामना कर सकती हैं, जो अलग-अलग इकाई होने पर संभव नहीं था।

(3) **लंबवत् व समानांतर संबंधों के लाभ उठाने के लिए** (To Get Benefit from Vertical and Horizontal Links): लंबवत् समझौते में पीछे की ओर या आगे की ओर एकीकरण किया जाता है। यदि सहयोग समझौता पूर्तिकर्ता के साथ किया किया जाता है, तो इसे पीछे की ओर लंबवत सहयोग (Backward Vertical Collaboration) कहते हैं। यदि यह समझौता विपणन एजेंसियों के साथ किया जाता है, तो इसे आगे की ओर लंबवत सहयोग (Forward Vertical Collaboration) कहते हैं। लंबवत् सहयोग समझौतों से पूर्तिकर्ताओं व विपणन द्वारों पर बेहतर नियंत्रण संभव हो पाता है। समानांतर समझौते में दो व्यावसायिक इकाइयों के मध्य सहयोग समझौता होता है। ये

व्यावसायिक इकाइयाँ एक समान स्तर पर कार्यरत हो सकती हैं, एक जैसा उत्पाद बनाने वाली या संबंधित उत्पाद बनाने वाली या बिलकुल अलग प्रकृति का उत्पाद बनाने वाली हो सकती हैं; जैसे- Duracell बैटरी उत्पादक व Gillette Razor ब्लेड उत्पादक के मध्य सहयोग समझौता किया गया है, जिसके अंतर्गत ये दोनों इकाइयाँ अपने विक्रयबल (Salesforce) का विश्वभर में संयुक्त रूप से प्रयोग करेंगी।

(4) **सांस्कृतिक बाधाओं के समाधान के लिए** (To Overcome Cultural Barriers): यदि विदेशी कंपनी मेजबान देश की संस्कृति को समझ नहीं पा रही है तो यह मेजबान देश की किसी घरेलू इकाई के साथ सहयोग समझौता कर लेती है। घरेलू इकाई मेजबान देश के उपभोक्ताओं की पसंद, रुचि, नापसंद, फैशन, प्राथमिकताओं, रीति-रिवाजों आदि के बारे में आवश्यक जानकारी सहयोग समझौते के दूसरे साझेदार को उपलब्ध करवाती है। इससे प्रभावकारी उत्पादन नियोजन, विकास व सुधार में सहायता मिलती है।

(5) **भौगोलिक विस्तार के लिए** (For Geographical Expansion): विदेशी बाजारों में प्रवेश लेने व भौगोलिक विस्तार का बहुत सरल तरीका सहयोग समझौता करना है। इसमें भौगोलिक विस्तार के लिए मेजबान देश के विपणन वातावरण का विस्तृत अध्ययन करने की जरूरत नहीं होती, और न ही इसे विदेशों में अपनी विशाल विपणन अद्योसंरचना स्थापित करने की आवश्यकता होती है। ये सुविधाएँ सहयोग समझौते का साझेदार उपलब्ध करवा देता है।

(6) **जोखिम को न्यूनतम करने के लिए** (To Minimise Risk): सहयोग समझौते में व्यावसायिक जोखिम का वहन दो व्यावसायिक इकाइयों के मध्य किया जाता है। इससे जोखिम का भार बट जाता है। विदेशी सहयोग समझौता दो अनुभवी, सुव्यवस्थित प्रख्यात व्यावसायिक इकाइयों के मध्य होता है। सहयोग करने वाली इकाई के लिए विदेश में अपनी सहायक कंपनी की स्थापना करना कोई जरूरी नहीं होता। इसका विदेशी बाजार में संपत्ति आधार भी अधिक नहीं होता। कई बार तो यह कंपनी विदेश में स्थापित कंपनी को केवल अपना ब्राड, मुख्य तकनीकी व प्रबंधकीय कौशल (Core Competence) या केवल वित्तीय पूँजी ही प्रदान करती है। अतः व्यावसायिक इकाई का जोखिम पूर्ण न होकर आंशिक ही होता है।

(7) **छोड़ना आसान** (Easy Exit): सहयोग समझौतों में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में प्रवेश व बाहर आना दोनों ही बहुत सरल हैं। पूर्ण स्वामित्व वाली विदेश में स्थापित व्यावसायिक इकाई को बंद करने में समापन संबंधी बहुत सी औपचारिकताएँ होती हैं, परंतु सहयोग समझौते में समापन की जटिल प्रक्रियाओं से बचा जा सकता है। यदि सहयोग समझौता सुचारू रूप से कार्य नहीं करता, तो इस समझौते को रद्द करना मुश्किल नहीं है।

(8) **सरकारी प्रतिबंधों से समाधान** (To Overcome Government Restrictions): कुछ देशों में सरकार 100 प्रतिशत स्वामित्व वाली सहायक कंपनियों की स्थापना पर मनाही लगाती है या उन पर अत्यधिक प्रतिबंध होते हैं, परंतु सहयोग समझौतों की ओर सरकार का दृष्टिकोण उदार होता है; जैसे- भारत में 100 प्रतिशत बहु ब्राण्ड-रिटेलिंग (Multi-brand-Retailing) पर रोक (Ban) है। परंतु इस क्षेत्र में भारतीय कंपनी के साथ सहयोग समझौते पर रोक नहीं है। जैसे- वॉल मार्ट (Wal Mart) जो एक विदेशी रिटेल कंपनी है, ने भारतीय रिटेल कंपनी 'भारती' के साथ सहयोग समझौता किया है तथा भारत में भारती वाल-मार्ट प्राइवेट लिमिटेड की शुरुआत की है।

(9) **नयी योग्यताएँ सीखने व अधिक कुशल बनने के लिए** (To Learn New Skills and Become More Competent): विदेशी कंपनी के साथ सहयोग समझौता करने पर उस कंपनी के नए विचार, कार्यशैली, तकनीकी ज्ञान, अनुभवी ज्ञान को सीखने में सहायता मिलती है। इससे दोनों सहयोगी इकाइयाँ पहले से अधिक योग्य, कुशल व उत्पादक हो जाती है।

(10) **कम पूर्ति वाले घटकों की उपलब्धता** (Availability of Deficient Factors): सहयोग समझौते द्वारा साझेदार कंपनियाँ कम मात्रा में उपलब्ध घटकों की कमी को पूरा कर सकती है; जैसे- यदि कंपनी के पास टेक्नोलॉजी की कमी है, तो यह टेक्नोलॉजी समझौते द्वारा इस कमी को पूरा कर सकती है। इसी तरह एक कंपनी जिसके पास अच्छी क्वालिटी की टेक्नोलॉजी व प्रबंधकीय कुशलता तो है परंतु वित्तीय संसाधनों की कमी है, तो यह वित्तीय सहयोग द्वारा इस कमी को पूरा कर सकती है।

(11) **अभौतिक सम्पत्तियों की चोरी को रोकना (To Check Piracy of Intangible Assets):** यदि एक पूर्ण कंपनी विदेश में अपनी सहायक कंपनी की स्थापना करके उसे अपनी नवीनतम टेक्नोलॉजी हस्तान्तरित करती है तो उस टेक्नोलॉजी का दुरुपयोग व चोरी की अधिक सम्भावना है। परन्तु यदि सहयोग समझौते द्वारा टेक्नोलॉजी, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क आदि दूसरी व्यावसायिक इकाई (सहयोग-साझेदार - Collaborating Partner) को उपलब्ध कराए गए हैं तो वह साझेदार इकाई विदेशी बाजार में इसके दुरुपयोग व चोरी पर अधिक नजर रखेगी। इससे अभौतिक सम्पत्ति के चोरी की सम्भावना में कमी आएगी।

(12) **मेजबान देश में आर्थिक विकास को बढ़ावा (Promotes Economic Development in the Host Nation):** (i) विदेशी सहयोग समझौतों से विकासशील देश व अल्पविकसित देशों में औद्योगीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे आर्थिक विकास की गति में वृद्धि होती है। (ii) इससे मेजबान देश में रोजगार के अवसर बढ़ते है। (iii) इससे मेजबान देश के निर्यात में वृद्धि होती है। इससे मेजबान देश के भुगतान शेष की समस्या का समाधान करने में सहायता मिलती है। सहयोग करने वाली कंपनियों के कर्मचारी कार्य करने के नए तरीके सीखते है। दूसरी कंपनी की संस्कृति (Corporate Culture) से अच्छी बातें सीख कर वे अधिक कुशल बन जाते है।

■ 4. बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा सहयोग/संयुक्त-उपक्रम (Collaboration/Joint-Ventures Through Multinational Corporations)

बहुत से बहुराष्ट्रीय निगमों ने मेजबान देशों में नये स्तर से निर्माणी इकाइयां शुरू करने की बजाय मेजबान देशों में विद्यमान प्रख्यात कंपनियों के साथ सहयोग करने को प्राथमिकता दी है। अर्थात् ये बहुराष्ट्रीय निगम मेजबान देश के उपक्रमों के साथ संयुक्त उपक्रम स्थापित करके निवेश करना पसंद करते है। ऐसा करने से ये नयी औद्योगिक इकाई की स्थापना में आने वाली मुश्किलों से बच सकते है। इन संयुक्त उपक्रमों के मेजबान देश के साझेदार क्रियात्मक कार्यों को कर लेते है, जैसे-कर्मचारियों की नियुक्ति करना, सम्पत्तियों को खरीदना, उद्योग-स्थापना का स्थान चुनना आदि। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा घरेलू कंपनियों के साथ संयुक्त उपक्रम लगाने को सहयोग कहा जाता है। ये सहयोग तकनीकी सहयोग या वित्तीय सहयोग या दोनों के रूप में हो सकते हैं। भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों के वित्तीय सहयोग (Financial Collaboration) अधिक प्रचलित है। इनके अंतर्गत बहुराष्ट्रीय निगम विदेशी-प्रत्यक्ष निवेश लाते है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने बहुत सी प्रचलित भारतीय व्यावसायिक इकाइयों/डिविजनों को क्रय किया है; जैसे-(i) सूजुकी ने मारुति उद्योग को क्रय किया है। (ii) T.V.S.-Suzuki ने हीरो-होन्डा को क्रय किया है। (iii) हिन्दुस्तान यूनीलीवर ने टोमको व लक्मे (Lakme) को क्रय किया है। (iv) व्हर्लपूल ने T.V.S. व्हर्लपूल को क्रय किया है। (v) Peugeot ने प्रीमियर ऑटोमोबाइल की दो इकाइयों को क्रय किया। (vi) वोडाफोन ने हच इण्डिया को क्रय किया। इसी तरह भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत से अन्य सहयोग स्थापित किये गये है।

■ 4.1 बहुराष्ट्रीय निगमों का अर्थ (Meaning of Multinational Corporations)

बहुराष्ट्रीय निगम वे निगम है जिनका कार्यक्षेत्र एक से अधिक देश में फैला हुआ है, इन्हें कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे **ट्रांसनेशनल निगम** (Transnational Corporation), **अंतर्राष्ट्रीय निगम** (International Corporation) या **विश्वव्यापी निगम** (Global Corporation)। वर्तमान समय में **बहुराष्ट्रीय निगम** नाम अधिक प्रचलित शब्द है। भारत में बहुत से बहुराष्ट्रीय निगम जैसे हिन्दुस्तान यूनीलीवर, प्रोक्टर एण्ड गैम्बल, जॉन्सन एण्ड जॉन्सन, फिलिप्स, कोलगेट, सियेट, M.R.F., कोका-कोला, पेप्सी, L.G., नेस्ले, सैमसंग, हुंडई, कैडबरी, जिलेट, टाइमेक्स, वोडाफोन, इक्सन मोबिल आदि कार्यरत हैं।

आई० बी० एम० कॉरपोरेशन के अध्यक्ष के अनुसार, "एक बहुराष्ट्रीय निगम वह है जो (i) अनेक देशों में कार्य करता है। (ii) उन देशों में अनुसंधान, विकास तथा निर्माण का कार्य करता है। (iii) जिसका बहुराष्ट्रीय प्रबंध होता है तथा (iv) जिसकी शेयर पूँजी का स्वामित्व बहुराष्ट्रीय होता है।" (Multinational Corporation is one that (i) operates in many countries, (ii) carries out research, development and manufacturing in those countries, (iii) has a multinational management and (iv) has a multinational stock ownership. — **President I. B.M.**)

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, "बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐसे उपक्रम है, जिसके कार्य क्षेत्र, कारखाने, खाने, विक्रय-कार्यालय आदि दो या दो से अधिक देशों में हैं।" (The United Nations defines MNCs as enterprises whose area of working, factories, mines, sales offices and the like are in two or more countries.)

संक्षेप में, बहुराष्ट्रीय निगम विशाल आकार के होते है, जिनका प्रधान कार्यालय एक देश में स्थित होता है परन्तु वे अपनी व्यापारिक और निर्माणी क्रियाओं को बहुत से अन्य देशों में फैला लेती है।

■ 4.2 बहुराष्ट्रीय निगमों के विकास के कारण (Reasons for Growth of MNCs)

विश्व निवेश रिपोर्ट 2012 के अनुसार, विश्व में लगभग 82,000 MNCs कार्यरत है। इनकी वार्षिक बिक्री 27,877 बिलियन US डॉलर है। ये MNCs 69 मिलियन लोगों को रोजगार दे रही है। इससे पता चलता है कि MNCs का आकार बहुत बड़ा है। MNCs के तेजी से हुए विकास के निम्नलिखित कारण है:

(1) **अंतर्राष्ट्रीय ख्याति** (International Image): अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कारण MNCs के उत्पाद पूरे विश्व में बिकते है। बहुराष्ट्रीय निगम आसानी से बड़े औद्योगिक घरानों, राष्ट्र की सरकार के साथ सहयोग (Collaboration) कर सकते है। अर्थात् ये निगम किसी भी देश में, जहां भी ये उत्पादन करना चाहते है, वहां की सरकार या वहां के बड़े उद्योगपतियों के साथ सहयोग कर लेते हैं।

(2) **वित्तीय श्रेष्ठता** (Financial Superiority): अपने बड़े आकार के कारण इन निगमों के पास बहुत अधिक वित्तीय संसाधन होते हैं। इससे ये निगम ऐसा कोई भी कार्य शुरू कर सकते है जिसमें अधिक पूंजी की आवश्यकता हो। जबकि घरेलू उद्योग, पूँजी की कमी के कारण अधिक पूंजी की आवश्यकता वाले उद्योग शुरू नहीं कर पाते। इसके अलावा अपनी अंतर्राष्ट्रीय छवि के कारण ये निगम राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजारों से वित्तीय संसाधन इकट्ठा कर लेते है। अच्छी ख्याति के कारण MNCs को अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेने में मुश्किल नहीं आती।

(3) **तकनीकी श्रेष्ठता** (Technological Superiority): घरेलू उद्यमियों की तुलना में MNCs के पास ज्यादा अच्छी तकनीक होती है। अतः MNCs उच्च व जटिल तकनीक वाले उद्योग भी लगा सकते है। अच्छी तकनीक के अभाव में, विकासशील देशों में प्राकृतिक, भौतिक, मानवीय साधनों का अल्प-उपयोग (Under-utilization) होता है। इसके अतिरिक्त विकासशील देशों के निर्यात बढ़ाने के लिये यह जरूरी है कि इनके उत्पादों की क्वालिटी में सुधार लाया जाये, अच्छी किस्म के उत्पाद व साधनों का प्रयोग, बिना अच्छी तकनीक के सम्भव नहीं है। विकासशील देशों को अच्छी तकनीक MNCs से मिल सकती है।

(4) **विपणन श्रेष्ठता** (Marketing Superiority): निम्न कारणों से MNCs के पास अच्छी विपणन सुविधाएं है: (i) अंतर्राष्ट्रीय-छवि, (ii) अच्छी तकनीक के कारण अच्छी किस्म के उत्पाद, (iii) बहुत प्रसिद्ध ब्रांड, (iv) भरोसेमंद बाजार-सूचना-व्यवस्था, (v) विभिन्न देशों में नये उत्पाद शुरू करने का अनुभव, (vi) प्रभावी विक्रय-संवर्धन कार्यक्रम।

(5) **अच्छी अनुसंधान व विकास सुविधाएँ** (Better Research and Development Facilities): MNCs अपनी इकाई में अनुसंधान व विकास कार्यों के लिए एक विभाग बनाते है। इस विभाग का कार्य नये उत्पादों में निरन्तर सुधार करना है। इस विभाग के कारण MNCs अपनी टेक्नोलॉजी में सुधार करते रहते है, और उत्पादन के नये तरीके खोज लेते हैं। ऐसा करने से उनकी प्रति इकाई लागत कम हो जाती है, और उत्पाद के किस्म में सुधार होता रहता है। अनुसंधान और विकास कार्य में किये गये निवेश से यह निगम अन्य प्रतियोगी इकाइयों से कहीं आगे निकल जाते है।

■ 4.3 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएं (Features of Multinational Corporations)

(1) **विशाल आकार** (Giant Size): बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विशाल आकार की होती है। इनकी सम्पत्तियाँ, बिक्री तथा लाभ खरबों रुपये के होते हैं। विश्व की 100 बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बिक्री वर्ष 2011 में 8,774 बिलियन US डॉलर थी। कुछ बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों; जैसे - फुटकर श्रृंखला स्टोर वॉल मार्ट, इक्सन मोबिल कॉरपोरेशन, जनरल मोटर्स, फोर्ड मोटर्स, वोडाफोन आदि की विक्रय राशि, कुछ देशों के सकल घरेलू उत्पाद से भी अधिक है।

(11) **अभौतिक संपत्तियों की चोरी को रोकना** (To Check Piracy of Intangible Assets): यदि एक मूल कंपनी विदेश में अपनी सहायक कंपनी की स्थापना करके उसे अपनी नवीनतम टेक्नोलॉजी हस्तान्तरित करती है तो इस टेक्नोलॉजी का दुरुपयोग व चोरी की अधिक संभावना है। परन्तु यदि सहयोग समझौते द्वारा टेक्नोलॉजी, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क आदि दूसरी व्यावसायिक इकाई (सहयोग साझेदार - Collaborating Partner) को उपलब्ध कराए गए हैं तो यह साझेदार इकाई विदेशी बाजार में इसके दुरुपयोग व चोरी पर अधिक नजर रखेगी। इससे अभौतिक संपत्ति की चोरी की संभावना में कमी आएगी।

(12) **मेजबान देश में आर्थिक विकास को बढ़ावा** (Promotes Economic Development in the Host Nation): (i) विदेशी सहयोग समझौतों से विकासशील देश व अल्पविकसित देशों में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे आर्थिक विकास की गति में वृद्धि होती है। (ii) इससे मेजबान देश में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। (iii) इससे मेजबान देश के निर्यातों में वृद्धि होती है। इससे मेजबान देश के भुगतान शेष की समस्या का समाधान करने में सहायता मिलती है। सहयोग करने वाली कंपनियों के कर्मचारी कार्य करने के नए तरीके सीखते हैं। दूसरी कंपनी की संस्कृति (Corporate Culture) से अच्छी बातें सीख कर वे अधिक कुशल बन जाते हैं।

■ 4. बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा सहयोग/संयुक्त-उपक्रम

(Collaboration/Joint-Ventures Through Multinational Corporations)

बहुत से बहुराष्ट्रीय निगमों ने मेजबान देशों में नये स्तर से निर्माणी इकाइयां शुरू करने की बजाय मेजबान देशों में विद्यमान प्रख्यात कंपनियों के साथ सहयोग करने को प्राथमिकता दी है। अर्थात् ये बहुराष्ट्रीय निगम मेजबान देश के उपक्रमों के साथ संयुक्त उपक्रम स्थापित करके निवेश करना पसंद करते हैं। ऐसा करने से ये नयी औद्योगिक इकाई की स्थापना में आने वाली मुश्किलों से बच सकते हैं। इन संयुक्त उपक्रमों के मेजबान देश के साझेदार क्रियात्मक-कार्यों को कर लेते है, जैसे-कर्मचारियों की नियुक्ति करना, संपत्ति को खरीदना, उद्योग स्थापना का स्थान चुनना आदि। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा घरेलू कंपनियों के साथ संयुक्त उपक्रम लगाने को सहयोग कहा जाता है। ये सहयोग तकनीकी सहयोग या वित्तीय-सहयोग या दोनों के रूप में हो सकते है। भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों के वित्तीय सहयोग (Financial Collaboration) अधिक प्रचलित है। इनके अंतर्गत बहुराष्ट्रीय निगम विदेशी-प्रत्यक्ष निवेश लाते है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने बहुत सी प्रचलित भारतीय व्यावसायिक इकाइयों/डिविजनों को क्रय किया है; जैसे-(i) सुजुकी ने मारुति उद्योग को क्रय किया है। (ii) T.V.S.-Suzuki ने हीरो-होन्डा को क्रय किया है। (iii) हिन्दुस्तान यूनीलीवर ने टोमको व लक्मे (Lakme) को क्रय किया है। (iv) व्हर्लपूल ने T.V.S. व्हर्लपूल को क्रय किया है। (v) Peugeot ने प्रीमियर ऑटोमोबाइल की दो इकाइयों को क्रय किया। (vi) वोडाफोन ने हच इण्डिया को क्रय किया। इसी तरह भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत से अन्य सहयोग स्थापित किये गये है।

■ 4.1 बहुराष्ट्रीय निगमों का अर्थ (Meaning of Multinational Corporations)

बहुराष्ट्रीय निगम वे निगम है जिनका कार्यक्षेत्र एक से अधिक देश में फैला हुआ है, इन्हें कई नामों से पुकारा जाता है; जैसे ट्रांसनेशनल निगम (Transnational Corporation), **अंतर्राष्ट्रीय निगम** (International Corporation) या विश्वव्यापी निगम (Global Corporation)। वर्तमान समय में **बहुराष्ट्रीय निगम** नाम अधिक प्रचलित शब्द है। भारत में बहुत से बहुराष्ट्रीय निगम जैसे हिन्दुस्तान यूनीलीवर, प्रोक्टर एण्ड गैम्बल, जॉन्सन एण्ड जॉन्सन, फिलिप्स, कोलगेट, सियेट, M.R.F., कोका-कोला, पेप्सी, L.G., नेस्ले, सैमसंग, हुडई, कैडबरी, जिलेट, टाइमेक्स, वोडाफोन, इक्सन मोबिल आदि कार्यरत हैं।

आई० बी० एम० कॉरपोरेशन के अध्यक्ष के अनुसार, "एक बहुराष्ट्रीय निगम वह है जो (i) अनेक देशों में कार्य करता है। (ii) उन देशों में अनुसंधान, विकास तथा निर्माण का कार्य करता है। (iii) जिसका बहुराष्ट्रीय प्रबंध होता है तथा (iv) जिसकी शेयर पूँजी का स्वामित्व बहुराष्ट्रीय होता है।" (Multinational Corporation is one that (i) operates in many countries, (ii) carries out research, development and manufacturing in those countries, (iii) has a multinational management and (iv) has a multinational stock ownership. — **President I. B.M.**)

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, **"बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐसे उपक्रम हैं, जिसके कार्य क्षेत्र, कारखाने, खाने, विक्रय-कार्यालय आदि दो या दो से अधिक देशों में है।"** (The United Nations defines MNCs as enterprises whose area of working, factories, mines, sales offices and the like are in two or more countries.)

संक्षेप में, बहुराष्ट्रीय निगम विशाल आकार के होते है, जिनका प्रधान कार्यालय एक देश में स्थित होता है परन्तु वे अपनी व्यापारिक और निर्माणी क्रियाओं को बहुत से अन्य देशों में फैला लेती है।

■ 4.2 बहुराष्ट्रीय निगमों के विकास के कारण (Reasons for Growth of MNCs)

विश्व निवेश रिपोर्ट 2012 के अनुसार, विश्व में लगभग 82,000 MNCs कार्यरत है। इनकी वार्षिक बिक्री 27,877 बिलियन US डॉलर है। ये MNCs 69 मिलियन लोगों को रोजगार दे रही है। इससे पता चलता है कि MNCs का आकार बहुत बड़ा है MNCs के तेजी से हुए विकास के निम्नलिखित कारण है:

(1) **अंतर्राष्ट्रीय ख्याति** (International Image): अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के कारण MNCs के उत्पाद पूरे विश्व में बिकते है। बहुराष्ट्रीय निगम आसानी से बड़े औद्योगिक घरानों, राष्ट्र की सरकार के साथ सहयोग (Collaboration) कर सकते है। अर्थात् ये निगम किसी भी देश में, जहां भी ये उत्पादन करना चाहते है, वहां की सरकार या वहां के बड़े उद्योगपतियों के साथ सहयोग कर लेते हैं।

(2) **वित्तीय श्रेष्ठता** (Financial Superiority): अपने बड़े आकार के कारण इन निगमों के पास बहुत अधिक वित्तीय संसाधन होते है। इससे ये निगम ऐसा कोई भी कार्य शुरू कर सकते है जिसमें अधिक पूँजी की आवश्यकता हो जबकि घरेलू उद्योग, पूँजी की कमी के कारण अधिक पूंजी की आवश्यकता वाले उद्योग शुरू नहीं कर पाते। इसके अलावा अपनी अंतर्राष्ट्रीय छवि के कारण ये निगम राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजारों से वित्तीय संसाधन इकट्ठा कर लेते है। अच्छी ख्याति के कारण MNCs को अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेने में मुश्किल नहीं आती।

(3) **तकनीकी श्रेष्ठता** (Technological Superiority): घरेलू उद्यमियों की तुलना में MNCs के पास ज्यादा अच्छी तकनीक होती है। अतः MNCs उच्च व जटिल तकनीक वाले उद्योग भी लगा सकते है। अच्छी तकनीक के अभाव में, विकासशील देशों में प्राकृतिक, भौतिक, मानवीय साधनों का अल्प-उपयोग (Under-utilization) होता है। इसके अतिरिक्त विकासशील देशों के निर्यात बढ़ाने के लिये यह जरूरी है कि इनके उत्पादों की क्वालिटी में सुधार लाया जाये, अच्छी किस्म के उत्पाद व साधनों का प्रयोग, बिना अच्छी तकनीक के संभव नहीं है। विकासशील देशों को अच्छी तकनीक MNCs से मिल सकती है।

(4) **विपणन श्रेष्ठता** (Marketing Superiority): निम्न कारणों से MNCs के पास अच्छी विपणन सुविधाएं हैं: (i) अंतर्राष्ट्रीय-छवि, (ii) अच्छी तकनीक के कारण अच्छी किस्म के उत्पाद, (iii) बहुत प्रसिद्ध-ब्रांड, (iv) भरोसेमंद बाजार-सूचना-व्यवस्था, (v) विभिन्न देशों में नये उत्पाद शुरू करने का अनुभव, (vi) प्रभावी विक्रय-संवर्धन कार्यक्रम।

(5) **अच्छी अनुसंधान व विकास सुविधाएँ** (Better Research and Development Facilities): MNCs अपनी इकाई में अनुसंधान व विकास कार्यों के लिए एक विभाग बनाते है। इस विभाग का कार्य नये उत्पादों में निरन्तर सुधार करना है। इस विभाग के कारण MNCs अपनी टेक्नोलॉजी में सुधार करते रहते है, और उत्पादन के नये तरीके खोज लेते हैं। ऐसा करने से उनकी प्रति इकाई लागत कम हो जाती है, और उत्पाद के किस्म में सुधार होता रहता है। अनुसंधान और विकास कार्य में किये गये निवेश से यह निगम अन्य प्रतियोगी इकाइयों से कहीं आगे निकल जाते है।

■ 4.3 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएं (Features of Multinational Corporations)

(1) **विशाल आकार** (Giant Size): बहुराष्ट्रीय कम्पनिया विशाल आकार की होती है। इनकी सम्पत्तियाँ, बिक्री तथा लाभ खरबों रुपये के होते है। विश्व की 100 बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बिक्री वर्ष 2011 में 8,774 बिलियन US डॉलर थी। कुछ बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों; जैसे - फुटकर श्रृंखला स्टोर वॉल मार्ट, इक्सन मोबिल कॉरपोरेशन, जनरल मोटर्स, फोर्ड मोटर्स, वोडाफोन आदि की विक्रय राशि, कुछ देशों के सकल घरेलू उत्पाद से भी अधिक है।

(2) **अंतर्राष्ट्रीय कार्यकरण** (International Operations): [illegible] एक देश तक सीमित न होकर कई देशों में फैले होते हैं। इनकी मुख्य कंपनी (Parent company) एक देश में होती है तथा इनकी सहायक कंपनियां (Subsidiaries) संसार के अनेक देशों में फैली होती हैं। इन सहायक कंपनियों की पूंजी में मुख्य कम्पनी का 51 प्रतिशत से 100 प्रतिशत तक हिस्सा हो सकता है। मुख्य कम्पनी का सहायक कम्पनी पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

(3) **साधनों का हस्तांतरण** (Transfer of Resources): इन निगमों की मुख्य कंपनी (Parent Company) अपने साधनों, तकनीक, प्रबंधकीय योग्यता, कच्चे तथा तैयार माल को अपनी सहायक कंपनियों में हस्तांतरित करती है।

(4) **विविध क्रियाएं** (Varied Activities): बहुराष्ट्रीय निगम विभिन्न प्रकार की क्रियायें करती है। ये निगम पूंजी तथा तकनीकों का हस्तांतरण करती है। वस्तुओं की बिक्री, विदेशी व्यापार, पैकिंग और अनुसंधान व विकास से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराती है। ऐतिहासिक दृष्टि से अल्पविकसित देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों ने प्रारंभ में खनिज तथा कच्चे माल के उत्पादन से संबंधित क्रियाओं का विकास किया था। आजकल ये निगम मुख्य रूप से उद्योगों के विकास में कार्यरत है। इनके भारत में कुल निवेश का 19 प्रतिशत हिस्सा सेवा क्षेत्र में, 11 प्रतिशत निर्माणी क्रियाओं में, 6 प्रतिशत हिस्सा कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर एवं हार्डवेयर में, 6 प्रतिशत दूरसंचार में, 6 प्रतिशत हिस्सा ड्रग्ज एवं फार्मास्यूटिकल्स में तथा 5 प्रतिशत हिस्सा रसायनों में लगा हुआ है।

(5) **अल्पाधिकारी बाजार** (Oligopolistic Market): इस बाजार में विक्रेताओं की संख्या कम तथा क्रेताओं की संख्या अधिक होती है। ये निगम उन वस्तुओं का उत्पादन करती है जिनमें विक्रेताओं की संख्या कम होती है अर्थात् अल्पाधिकार की स्थिति होती है। इससे ये निगम अधिक कीमतें निर्धारित करके अधिक लाभ कमाती हैं तथा नई फर्मों को बाजार में आने से रोकती हैं।

(6) **बहुराष्ट्रीय स्वामित्व** (Multinational Ownership): बहुराष्ट्रीय निगमों की पूँजी में कई देशों के नागरिकों का हिस्सा होता है। उनके शेयर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खरीदे और बेचे जाते हैं।

(7) **बहुराष्ट्रीय प्रबंध** (Multinational Management): बहुराष्ट्रीय निगमों का प्रबंध अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। इनके प्रबंधक मण्डल में कई देशों के विशेषज्ञ व्यक्ति होते है।

(8) **विशाल वित्तीय साधन** (Huge Financial Resources): बहुराष्ट्रीय निगमों के पास बहुत अधिक वित्तीय साधन होते हैं। उनका पूंजी-आधार बहुत ही विशाल होता है। इनकी पूंजी करोड़ों-अरबों में होती है।

(9) **आधुनिक तकनीक का प्रयोग** (Use of Advanced Technology): बहुराष्ट्रीय निगम आधुनिक व नवीनतम टेक्नोलॉजी का प्रयोग करते हैं। ये अनुसंधान क्रियाओं में निरन्तर लगे रहते हैं। कुछ बहुराष्ट्रीय निगमों; जैसे-फोर्ड, फाइजर, टोयोटा, जनरल मोटर्स का अनुसंधान पर वार्षिक खर्च 5 बिलियन डॉलर से भी अधिक है। ये पूंजी-प्रधान-तकनीक का प्रयोग करते हैं।

(10) **विपणन-श्रेष्ठता** (Marketing Superiority): बहुराष्ट्रीय निगमों के ब्रांड बहुत प्रसिद्ध होते हैं। इन ब्रांडों की अंतर्राष्ट्रीय छवि बहुत अच्छी होती है। इन निगमों को विभिन्न देशों में उत्पाद शुरू करने का अच्छा अनुभव होता है। इन सब कारणों से बहुराष्ट्रीय निगमों के पास अच्छी विपणन सुविधाएं होती हैं।

4.4 बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लाभ/महत्त्व/योगदान/पक्ष में तर्क

(Advantages/Significance/Role/Arguments in Favour of MNCs)

(1) **पूँजी की उपलब्धता** (Availability of Capital): MNCs अल्पविकसित देशों की पूंजी संबंधी समस्या के समाधान में सहायक होते है। अल्पविकसित देशों में पूँजी की उपलब्धता अपर्याप्त होती है। इससे उनके आर्थिक विकास की दर कम रहती है। MNCs अल्पविकसित देशों में पूँजी का निवेश करके उन्हें अपने आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

(2) **आधुनिक तकनीक एवं प्रबंध की उपलब्धता** (Availability of Modern Techniques and Management): बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा स्थापित उद्यमों में आधुनिक तकनीकें तथा प्रबंधकीय सेवाएं उपलब्ध कराई जाती है। इसके फलस्वरूप उन उद्यमों की उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा साधनों का कुशल प्रयोग किया जाने लगता है। बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से तकनीक का हस्तांतरण विभिन्न देशों में हुआ है। बहुत से क्षेत्रों जैसे - पेट्रोलियम, रसायन, खनिज आदि में इन निगमों ने जटिल तथा अति-आधुनिक तकनीक को लगाया है, इससे इन उद्योगों की उत्पादकता में सुधार आया है।

(3) **विपणन सेवाओं की उपलब्धता** (Availability of Marketing Services): MNCs अल्पविकसित देशों को विपणन सेवाएं विशेष रूप से निर्यात विपणन सेवाएं भी उपलब्ध कराते है। विपणन सेवाओं में निर्यात विपणन, बाजार संबंधी शोध, विज्ञापन, यातायात, भंडारण-सुविधाएं, पैकेजिंग, ब्रांडिंग आदि सम्मिलित है। ये सारे कार्य MNCs अधिक कुशलतापूर्वक करते हैं।

(4) **विदेशी विनिमय की उपलब्धता** (Availability of Foreign Exchange): बहुराष्ट्रीय निगम अपनी पूंजी को विदेशी करेन्सी में लाते हैं। इससे घरेलू देश में विदेशी मुद्रा अंतर प्रवाह (Inflow) बढ़ता है। इससे विदेशी मुद्रा की उपलब्धता में वृद्धि होती है। इस विदेशी मुद्रा से आवश्यक आयातों का भुगतान करने में सहायता मिलती है।

(5) **रोजगार में वृद्धि** (Increase in Employment): बहुराष्ट्रीय निगम जिन देशों में अपनी सहायक कम्पनियां स्थापित करते है उनमें रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। ये कंपनियां निवेश बढ़ा कर नये उद्यम स्थापित करती है। इससे रोजगार में वृद्धि होती है।

(6) **ज्ञान में वृद्धि** (Increase in Knowledge): MNCs स्थानीय कर्मचारियों को आधुनिक प्रबंध, विपणन, वित्त, निर्यात आदि क्रियाओं की ट्रेनिंग देने की व्यवस्था करती है। इसके फलस्वरूप व्यवसाय का आधुनिक ढंग से संगठन तथा संचालन करने की उनकी योग्यता में वृद्धि होती है।

(7) **निर्यातों में वृद्धि** (Increase in Exports): MNCs भारत के सस्ते श्रम तथा अपनी पूंजी की उपलब्धता से, प्रबंधकीय ज्ञान से, आधुनिक तकनीक से उत्पादन करती हैं। अपनी प्रबंधकीय कार्यकुशलता व आधुनिक तकनीक के कारण ये इकाइयां संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग कर रही हैं। इन निगमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत कम व किस्म अच्छी होती है। इस कारण इनके द्वारा बनाये गये उत्पाद विदेशों में बेचे जा सकते है। अतः ये निगम निर्यातों को बढ़ाने में मदद करते हैं।

(8) **प्रतिस्पर्धा में वृद्धि** (Increase in Competition): बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश से घरेलू अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है। प्रतिस्पर्धा के बढ़ने से कीमतों में कमी आती है। जिससे उपभोक्ता लाभान्वित होता है। उदाहरण के तौर पर L.G., सैमसंग के इलेक्ट्रॉनिक क्षेत्र में प्रवेश से भारत में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है। इससे इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों की कीमतों में कमी आयी है।

(9) **उद्योगीकरण को बढ़ावा** (Increase in Industrialisation): किसी देश के औद्योगिक विकास में बहुराष्ट्रीय निगमों का बहुत योगदान होता है। किसी भी उद्योग को लगाने के लिये प्रबंधकीय योग्यता, तकनीकी-ज्ञान और वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है। बहुराष्ट्रीय निगम के पास ये सारे साधन उपलब्ध होते हैं। अतः ये निगम विकासशील देशों में नये उद्योग लगाकर देश के औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में कई औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित की हैं; जैसे- फिलिप्स, ग्लैक्सो, कॉलगेट, युनीलीवर, प्रोक्टर एन्ड गैम्बल, नेस्ले, बी. पी. एल., सीएट, एम. आर. एफ., सैमसंग, आदि।

4.5 बहुराष्ट्रीय निगमों के दोष या विपक्ष में तर्क

(Disadvantages of Multinational Corporations or Arguments Against MNCs)

(1) **मेजबान देश से धन का बाहरी प्रवाह** (Outflow of Funds from Host Country): मेज़बान देश उस देश को कहा जाता है जहाँ बहुराष्ट्रीय निगम अपनी सहायक कम्पनियां स्थापित करती है। इन निगमों का मुख्य उद्देश्य अधिक से

अधिक लाभ प्राप्त करना होता है। इसके लिये वे मेजबान देशों का विकास करने के स्थान पर उनका शोषण ही करते है। बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा मेजबान देशो मे पूँजी का निवेश सबसे लाभदायक धंधा साबित होता है। ये निगम लाभ, ब्याज, रॉयल्टी, प्रबंध फीस आदि के रूप मे काफी धन देश से बाहर ले जाते है। इस प्रकार दीर्घकाल में MNCs अपने द्वारा लायी गई पूँजी से कही अधिक धन बाहर ले जाते है। इससे दीर्घकाल मे भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(2) **देशी उत्पादको के लिये हानिकारक** (Harmful for Indigenous Producers): बहुराष्ट्रीय निगम स्थानीय उत्पादको के लिये हानिकारक सिद्ध होते है। अपनी उत्पादन प्रणाली मे उन्नत तकनीक का प्रयोग करके ये कम्पनियां पहले कम मूल्य निर्धारित कर स्थानीय उद्योगो के विकास को रोक देती है। ये निगम अपनी शक्ति का प्रयोग करके सर्वाधिक लाभप्रद तथा प्रगतिशील क्षेत्रो और आर्थिक दृष्टि से विकसित प्रदेशो से स्थानीय उत्पादको को बाहर कर देते है। ये निगम विशाल पूंजी, उच्च तकनीक, योग्य प्रबंधकों तथा अन्य साधनो की सहायता से स्थानीय उद्योगो को बाजार से निकालने मे सफल हो जाते है।

(3) **असंतुलित क्षेत्रीय विकास** (Unbalanced Regional Development): विदेशी निवेशक अधिकतर, ऐसे बड़े शहरो मे ही उद्योग लगाते है, जहा पर्याप्त मात्रा मे अधोसरचना सुविधाए (Infrastructural Facilities) उपलब्ध हो, अर्थात् ये निगम देश के पिछड़े क्षेत्रो मे उद्योग नही लगाते। इससे क्षेत्रीय असमानता और बढ़ जाती है।

(4) **आधुनिक तकनीक का कम प्रयोग** (Less Use of Modern Technology): बहुराष्ट्रीय निगम नए उपकरणो तथा टेक्नोलॉजी को नियमित रूप से तभी इस्तेमाल में लाते है जब वे उत्पादन की लागत को घटाने तथा लाभो को बढ़ाने मे सहायक हो। परतु वे अल्पविकसित देशो के लिये उपयुक्त तकनीक के विकास मे कोई दिलचस्पी नही रखते क्योंकि वे उन पर अतिरिक्त व्यय किये बिना ही अपने लाभो को बढाना चाहते है।

(5) **कर की चोरी** (Tax Evasion): मेजबान देश की सरकार करो से अपनी आय बढाने के लिये कपनियो व निगमों के लाभ पर निगम कर लगाती है। MNCs निगम कर से बचने के लिये अपने लाभ मे **कीमत अंतरण** (Transfer Pricing) की विधि अपना कर कमी कर लेती है। इस विधि के अनुसार वे विदेशो मे स्थित अपनी अन्य सहायक कपनियो से ऊची कीमत पर मध्यवर्ती वस्तुए खरीदकर अपने स्थानीय लाभ को कम कर लेती है। ये निगम आयात के बिलो का अधिक मूल्याकन (Over Invoicing) तथा निर्यात का कम मूल्याकन (Under Invoicing) करके अपनी वास्तविक आय को छुपा लेती है इससे करो की चोरी होती है।

(6) **नैतिकता तथा ईमानदारी की कमी** (Lack in Morality and Ethics): कुछ बहुराष्ट्रीय निगम व्यवसाय में अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते है। ये निगम अपने स्वार्थ के लिये विदेशो मे उच्च पदस्थ अधिकारियों और राजनीतिज्ञो को रिश्वत देती है तथा उन्हे ऐसे निर्णय लेने के लिए बाध्य करती है जो केवल इन निगमो के हित में होते है।

(7) **राजनीतिक हस्तक्षेप** (Political Interference): बहुराष्ट्रीय निगम मेजबान देशो की आर्थिक तथा राजनीतिक स्वतत्रता के लिये हानिकारक सिद्ध होते है। ये निगम मेजबान देश की राजनीति मे हस्तक्षेप करते है। ये निगम ऐसे राजनीतिक दलों को सत्ता में लाने का प्रयास करते है जो इनके अनुसार कार्य करते हैं।

(8) **प्रदर्शन प्रभाव को प्रोत्साहन** (Encourage Demonstration Effect): बहुराष्ट्रीय निगम विज्ञापन पर बहुत अधिक धन खर्च करती है। इसके फलस्वरूप प्रदर्शन, उपभोग तथा फालतू खर्च को प्रोत्साहन मिलता है। इन निगमों द्वारा कोल्ड ड्रिक्स, जैम, आइसक्रीम, तैयार खाद्य पदार्थों, टेलीविजन, कपडे धोने की मशीनो, कारों आदि के उत्पादन को अधिक महत्व दिया जा रहा है। अल्पविकसित देशो के लोग इन उत्पादों का प्रयोग करने के लिए उतावले (Crazy) होते है अत बहुराष्ट्रीय निगमो के कारण आवश्यक वस्तुओं के स्थान पर दिखावे मात्र के सामान का उत्पादन बढ़ रहा है।

(9) **लघु उद्योगो से प्रतिस्पर्धा** (Competition with Small Scale Industries): MNCs कई ऐसी वस्तुओं जैसे– आलू चिप्स, वैफर्स, बेकरी उत्पादन आदि का उत्पादन करने लगी है। जिनका उत्पादन पहले से ही लघु उद्योगों में किया जा रहा था। छोटी इकाइया बहुराष्ट्रीय निगमो के विरुद्ध प्रतिस्पर्धा मे नही टिक सकती क्योंकि लघु उद्योगो द्वारा बनाई गई उत्पाद की उत्पादन लागत अधिक होती है। और सिवाय उत्पादन बंद करने के उनके पास कोई रास्ता नही रह जाता। इससे उन उद्योगों में काम कर रहे मजदूर बेरोजगार हो जाते है। अत MNCs के कारण लघु औद्योगिक इकाइयों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(10) **प्रतिबंधित वस्तुओ का उत्पादन** (Production of Prohibited Goods): बहुराष्ट्रीय निगमो का उद्देश्य लाभ की प्राप्ति करना है। इसके लिये वे लोगों के स्वास्थ्य एव कल्याण का भी ध्यान नही रखते। भारत मे बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा बनाये जा रहे रसायनो एवं दवाइयो में से बहुत से उत्पाद उनके अपने देश मे ही प्रतिबन्धित (Prohibited) है। इससे सिद्ध होता है कि बहुराष्ट्रीय निगम अपने लाभो को बढाने की दृष्टि से स्वास्थ्य के लिये हानिकारक वस्तुओं का उत्पादन तथा बिक्री कर रही है।

(11) **ब्रेन-ड्रेन की समस्या** ((Problem of Brain Drain): बहुराष्ट्रीय कपनिया भारत के कुशल व योग्य इन्जीनियरों, तकनीशियनो, विशेषज्ञो को नियुक्त करती है, लेकिन कुछ समय के बाद उन्हे विदेशो मे इन निगमो की सहायक कपनियो मे तबादला करके भेज देती है। इस तरह ये कपनिया भारत के विशेषज्ञों को विदेशों में भेज रही है।

(12) **अनावश्यक उत्पाद** (Non-Essential Products): बहुराष्ट्रीय निगम बहुत-सी ऐसी वस्तुएं बना रही है जिनका उत्पादन देश के आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य नही है या जिन वस्तुओं को स्थानीय टेक्नोलॉजी से भी बनाया जा सकता है। ये निगम अधिकतर उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन मे लगे है, जैसे- लिपस्टिक, टूथपेस्ट, कॉस्मेटिक्स, आइसक्रीम, बिस्कुट, चिप्स, कोल्ड-ड्रिक्स इत्यादि। अधिकतर MNCs उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन कर रही है, इनका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है। ये इकाइयाँ पूँजीगत सामान (Capital Goods) के निर्माण पर ध्यान नही देती और न ही देश के आर्थिक विकास में योगदान देती है।

(13) **एक ही क्षेत्र में एक से अधिक सहयोग/बहुगुणी सहयोग** (Multiple Collaborations): इस तरह के सहयोग मे एक ही उत्पाद से सबधित एक से अधिक टेक्नोलॉजी सहयोग किए जाते है, अर्थात् यदि हम एक उत्पाद को बनाने के लिए तकनीकी सहयोग पहले से कर चुके है और बाद में दोबारा उसी उत्पाद के लिए फिर किसी अन्य विदेशी कपनी से तकनीकी सहयोग करें तो इसे **बहुगुणी सहयोग** कहा जाता है। इससे उसी तरह की तकनीक को प्राप्त करने पर फिर से विदेशी मुद्रा में भुगतान करना होगा। इससे हमारी अर्थव्यवस्था पर अतिरिक्त बोझ पड़ता है। विकासशील देशों में यह समस्या आम देखने को मिलती है।

(14) **अनुपयुक्त तकनीक** (Unsuitable Technology): MNCs द्वारा लाया गया तकनीकी ज्ञान भारत के लिए अनुपयुक्त होता है। यह तकनीक हमारी अर्थव्यवस्था से मेल नहीं खाती क्योंकि हमारा देश एक श्रम प्रधान देश है और यहाँ पूँजी की कमी है। इसके अलावा भारत में बेरोजगारी की समस्या काफी गभीर है, इन बातो का ध्यान रखते हुए हमें श्रम प्रधान तकनीकों का ही प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् MNCs द्वारा लाई गई पूँजी प्रधान तकनीक भारत के लिए उपयुक्त नहीं है।

(15) **भारतीय उद्यमियों की मोल-तोल की कम क्षमता** (Less Bargaining Capacity of Indian Entrepreneurs): विदेशी सहयोग में भारतीय इकाइयाँ और विदेशी इकाइयां मिलकर उद्योग लगाती है। लेकिन भारतीय उद्यमियों में मोल-तोल की कम क्षमता के कारण विदेशी सहयोग की अधिकतर शर्तें विदेशी निवेशकों के हित मे जाती है, इससे भारतीय सहयोग देने वाली इकाइयों को अधिक लाभ नही होता।

(16) **एकाधिकारी शक्तियों का विकास** (Growth of Monopoly Powers): MNCs अपना सहयोग बड़े औद्योगिक घरानों (Big industrial houses) से ही करते है। इससे अर्थव्यवस्था मे एकाधिकारिक प्रवृत्तियाँ बढ़ती है।

(17) **ग्राहकों के लिए हानिकारक** (Harmful for Consumers): MNCs ग्राहकों के लिए इस प्रकार से हानिकारक है: (i) अत्यधिक विज्ञापन करवाकर ग्राहकों से अधिक कीमत लेना। (ii) अनुचित व्यापार व्यवहारों को अपनाना-जैसे धोखेपूर्ण विज्ञापन।

(18) **कच्चे माल और मध्यस्थ वस्तुओं को विदेशी सहायक कंपनियों से खरीदना** (Purchase of Raw Material and Intermediate Goods from Foreign Subsidiaries): MNCs प्राय: अपना कच्चा माल तथा

उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग में आने वाली मध्यस्थ वस्तुएँ अपनी विदेशी सहायक कंपनियों से ही खरीदती है। इससे घरेलू कच्चा माल पूर्तिकर्ताओं को तथा मध्यस्थ वस्तुएं निर्माताओं को नुकसान होता है।

संक्षेप में, बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभ तथा हानियाँ दोनों ही है। इनकी हानियों से बचने के लिये सरकार को विशेष ध्यान रखना चाहिए। उन बहुराष्ट्रीय निगमों की स्थापना को अधिक सुविधा देनी चाहिये जो अपने उत्पादन के अधिक भाग का निर्यात करें तथा उच्च तकनीक का प्रयोग करें।

■ 4.6 बहुराष्ट्रीय निगमों के नियमन के लिए सुझाव (Suggestions for Regulating MNCs)

(1) सरकारी हस्तक्षेप (Government Interference): बहुराष्ट्रीय निगमों के नियंत्रण के लिए यह आवश्यक है कि इनके प्रबंध संचालन में सरकारी प्रतिनिधियों को होना चाहिए। इन प्रतिनिधियों का हस्तक्षेप ऐसे मामलों में आवश्यक है जो मेजबान देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हों अथवा भविष्य में प्रभावित करने वाले हों। इन निगमों को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिये कि यदि ये मेजबान देश के हित में कार्य नहीं करेंगे तो इनका राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) किया जा सकता है। राष्ट्रीयकरण का डर बहुराष्ट्रीय निगमों को अपनी अनुचित कार्यवाहियां करने से रोकने में सहायक सिद्ध होगा।

(2) स्थापन स्थान (Location): बहुराष्ट्रीय निगमों को पिछले इलाकों (Backward Areas) में स्थापित करने की प्रेरणा दी जानी चाहिए। इससे क्षेत्रीय असमानताओं में कमी आयेगी और देश का सन्तुलित क्षेत्रीय विकास होगा।

(3) पर्यवेक्षण (Supervision): सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) को बहुराष्ट्रीय निगमों के कार्य कलापों पर अधिक सतर्कता से नजर रखनी चाहिए, ताकि उनके द्वारा गलत दिशा में की जाने वाली क्रियाओं को समय पर ही रोका जा सके।

(4) लाभप्रद सहयोग (Beneficial Collaborations): बहुराष्ट्रीय निगमों को नियंत्रित करने के लिये सरकार को इन क्षेत्रों में इन निगमों की स्वीकृति देनी चाहिए, जिनमें घरेलू क्षेत्र पीछे है।

(5) अनुसंधान एवं विकास (Research and Development): MNCs के लिये यह अनिवार्य किया जाना चाहिये कि वे अपने लाभ का एक हिस्सा घरेलू देश में अनुसंधान व विकास कार्यों पर खर्च करें, जिससे घरेलू देश में तकनीकी सुधार हो सके।

(6) आधारभूत एवं भारी उद्योगों की स्थापना (Setting up Basic and Heavy Industries): बहुराष्ट्रीय निगमों को भारी व आधारभूत उद्योगों को स्थापित करने के लिये प्रेरित करना चाहिये। उपभोक्ता उद्योगों की स्थापना के लिये बहुराष्ट्रीय निगमों को अधिक प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। इन उपभोक्ता उद्योगों को स्थानीय उद्यमियों द्वारा उत्पादित किया जाना चाहिये।

(7) एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक (Check on Monopolistic Tendencies): सरकार को बहुराष्ट्रीय निगमों की बाजार पर नियंत्रण की एकाधिकारी तथा अल्पाधिकारी प्रवृत्तियों पर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए। इन निगमों को उपभोक्ताओं तथा स्थानीय उत्पादकों का शोषण नहीं करने देना चाहिये।

(8) कम निर्भरता (Less Dependence): बहुराष्ट्रीय निगमों पर निर्भरता को यथासंभव कम किया जाना चाहिये। इसके लिये उचित आर्थिक नीति अपनाई जानी चाहिये।

संक्षेप में, बहुराष्ट्रीय निगमों की स्थापना आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिये तभी एक महत्त्वपूर्ण प्रेरक शक्ति बन सकती है जब बहुराष्ट्रीय निगमों तथा मेजबान देश के हित में एकरूपता पाई जाए। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हो पाता। अल्पविकसित देशों की सरकारों को MNCs द्वारा किए गए निवेशों पर नियंत्रण रखना चाहिए। इससे अल्पविकसित देशों में विदेशी निवेश की मात्रा तो कम हो सकती है परन्तु इसका दीर्घकालीन प्रभाव इन देशों के आर्थिक विकास के अनुकूल होगा। अत: MNCs को आकर्षित करने के साथ-साथ इन निगमों पर प्रभावी नियंत्रण होना भी आवश्यक है।

• निष्कर्ष (Conclusion)

बहुराष्ट्रीय कंपनियां केवल अर्थव्यवस्था का शोषण ही नहीं करती, बल्कि अर्थव्यवस्था के विकास में भी योगदान देती है। भारत में MNCs से संबंधित समस्या यह है कि इन्हें किस तरह से नियन्त्रित किया जाये, जिससे इनके हानिकारक प्रभावों में कमी आ सके और देश के अधिकतम लाभ के लिये उनका योगदान लिया जाये। ऐसा हम इन इकाइयों को उन क्षेत्रों में आमंत्रित करके कर सकते हैं जो पूंजी प्रेरक है, जिनमें उच्च तकनीक की आवश्यकता है, जिनका विकास हमारे लिए अनिवार्य है, जैसे ऊर्जा, दूरसंचार, इलेक्ट्रॉनिक्स इत्यादि। इससे हम भारत के आर्थिक विकास की गति को बढ़ा सकते हैं। वैश्विक मंदी की वर्तमान स्थिति में विकासशील देश, जैसे चीन, भारत, कोरिया, आदि की MNCs वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी पकड़ मजबूत कर सकते हैं।

विश्व की सर्वोच्च वित्तीय एवं गैर-वित्तीय MNCs (वर्ष 2012)
World's Top Financial and Non-Financial MNCs (Year 2012)

Rank	Financial MNCs	Home Country	Rank	Non-Financial MNCs	Home Country
1.	J. P. Morgan	USA	1.	Exxon Mobil	USA
2.	ICBC	China	2.	General Electric	USA
3.	HSBC Holdings	UK	3.	Royal Dutch/Shell	Netherlands
4.	Berkshire Hathaway	USA	4.	Perto China	China
5.	Wells Fargo	USA	5.	Petrobras	Brazil

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. **विदेशी सहयोग से आपका क्या अभिप्राय है? विदेशी सहयोग के विभिन्न रूपों तथा विदेशी सहयोग के उद्देश्यों की व्याख्या करें।**
What do you mean by the term foreign collaboration? Explain the types and motives of foreign collaboration.
2. **भारत में विदेशी सहयोगों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें। अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में विदेशी सहयोगों का क्या योगदान है?** (M.D.U. 2012)
Explain various forms of foreign collaborations. How far foreign collaborations have been beneficial for promoting economic development of underdeveloped nations?
3. **बहुराष्ट्रीय निगमों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें। उनके लाभ तथा हानियाँ कौन-सी है?**
Discuss the main features of multinational corporations. What are their advantages and disadvantages?
4. **अल्पविकसित देशों के विशेष संदर्भ में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका की विवेचना करें। बहुराष्ट्रीय निगमों को नियमित करने के लिए सुझाव भी दें।**
Examine the role of multinational corporations with special reference to underdeveloped economies. Also give suggestions for regulating multinational corporations.
5. **बहुराष्ट्रीय निगम क्या है? बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभकारी व हानिकारक प्रभावों का वर्णन कीजिए।**
What is multinational corporation? Discuss the beneficial and harmful effects of multinational corporations.
6. **बहुराष्ट्रीय निगमों से क्या अभिप्राय है? बहुराष्ट्रीय निगमों के वैश्विक अर्थव्यवस्था में विकास के कारण बताएँ।**
What is meant by multinational corporations? Explain the reasons for growth of multinational corporations in world economy. (M.D.U. 2013)
7. **बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बारे में अपना दृष्टिकोण बतायें।**
Give your view points about multinational corporations.
[संकेत: MNCs के पक्ष व विपक्ष में तर्क दें।]

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में नियंत्रण संयंत्र
(Control Mechanism for International Business)

1. नियंत्रण का अर्थ (Meaning of Controlling)

प्रबंध में नियंत्रण का अभिप्राय इच्छित उद्देश्यों को कुशलता, किफायत तथा सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए वास्तविक कार्य प्रगति की समय-समय पर समीक्षा करने से है ताकि वास्तविक कार्य प्रगति अपेक्षित प्रगति के अनुरूप हो सके। नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक प्रगति व निर्धारित प्रमापों के बीच विचलनों (Deviations) का पता लगाया जाता है, विचलनों के कारणों की खोज की जाती है तथा उन्हें दूर करने के लिए सुधारात्मक कार्यवाही (Corrective Action) की जाती है ताकि भविष्य में गलतियों की पुनरावृत्ति से बचा जा सके। संक्षेप में, उद्देश्यों के अनुरूप वास्तविक प्रगति को सुनिश्चित करना ही नियंत्रण का प्रमुख उद्देश्य है। विभिन्न विद्वानों ने नियंत्रण को अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है। नियंत्रण की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं:

(i) **फिलिप कोटलर** के अनुसार, **"नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के निकट लाने के प्रयास किये जाते हैं।"** (Control is the process of taking steps to bring actual results and desired results closer together. – **Philip Kotler**)

(ii) **डेल हेनिंग** के शब्दों में, **"नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यों को योजना के अनुरूप किया जाता है।"** (Control is the process of bringing about conformity of performance with planned action. **–Dale Henning**)

(iii) **जार्ज आर० टेरी** के अनुसार, **"नियंत्रण प्रक्रिया में यह निर्धारित किया जाता है कि हमने क्या प्राप्त किया है, अर्थात् नियंत्रण में निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है और यदि आवश्यक हो तो सुधारात्मक तरीके अपनाये जाते हैं, जिससे निष्पादन योजनाओं के अनुसार हो सके।"** (Controlling is determining what is being accomplished, i.e. evaluating the performance and if necessary, applying corrective measures so that the performance takes place according to plans. – **George R. Terry**)

(iv) **जॉर्डन** के अनुसार, **"नियंत्रण व्यावसायिक क्रियाओं की कमियों को पहचानना, इन कमियों के कारणों को ढूँढना और इन कमियों को शीघ्रता से सुधारना है, जिससे प्रति डॉलर खर्च किये गये व्ययों से अधिकतम विक्रय स्तर को प्राप्त किया जा सके और विक्रय उद्देश्यों को पूरा किया जा सके।"** (Controlling is to identify weaknesses in the business efforts, to determine their causes and to correct them quickly, with the objective of securing the greatest possible amount of profitable business for each dollar of business expense. – **Zordon**)

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नियंत्रण प्रबंध का वह कार्य है जो योजनाओं के अनुसार कार्य निष्पादन को सम्भव बनाता है। ऐसा करने के लिए नियंत्रण के अंतर्गत समय-समय पर वास्तविक एवं इच्छित कार्य प्रगति की तुलना करके विचलनों का पता लगाया जाता है और इससे पहले कि कमियों के विपरीत परिणाम सामने आए, कमियों को दूर करने के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। अतः नियंत्रण वह प्रबंधकीय कार्य है जो वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के निकट लाने का प्रयास करता है।

नियंत्रण प्रक्रिया में मुख्यतया चार चरणों को शामिल किया जाता है:

(i) निष्पादन से संबंधित प्रमाप निर्धारित करना (Setting performance standards)

(ii) वास्तविक निष्पादन को मापना (Measuring actual performance)

(iii) वास्तविक निष्पादन की प्रमापों के साथ तुलना करना (Comparing actual performance with standards)

(iv) आवश्यक सुधारात्मक कार्य करना (Taking necessary corrective action)

नियंत्रण प्रक्रिया के पहले तीन चरण कर्मचारियों की कमियों और शक्तियों को जानने में सहायक होते हैं। इस प्रक्रिया के चौथे चरण में सुधारात्मक कार्यवाही करके कर्मचारियों की कमियों व कमजोरियों को दूर किया जाता है। ऐसा करने से उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और पूरे संगठन की कार्यकुशलता व उत्पादकता में सुधार होता है। कमियों व दुर्बलताओं को जानने के बाद उन्हें दूर करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाता है और अधिक उत्तरदायित्व एवं योग्यता वाले पदों पर अधिक कुशल कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता है। नियंत्रण प्रक्रिया से मिली जानकारी को नियोजन व नीतियों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है।

घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में नियंत्रण प्रक्रिया अधिक जटिल होती है। मूल कंपनी व मेजबान देश में स्थापित सहायक कंपनियों में भौगोलिक दूरी अत्यधिक होती है। अतः इनके मध्य प्रत्यक्ष संचार (Face to Face Communication) और प्रत्यक्ष मेल-जोल कम समय अंतराल पर (Frequent interaction) नहीं हो पाता। इसके अलावा विभिन्न देशों में सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण कार्य शैली व कार्य पद्धति में अत्यधिक अंतर पाया जाता है। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विदेशी सहायक कंपनियों पर नियंत्रण करने में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय पर प्रभावी नियंत्रण के लिए यह अनिवार्य है कि मूल देश के मुख्यालय व सहायक कंपनियों के मध्य नियमित रूप से सूचनाओं का अनप्रवाह हो। ये सूचनाएँ विश्वसनीय, व्यापक व उचित समय पर उपलब्ध होनी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय पर नियंत्रण दो प्रकार का हो सकता है:

(i) **आंतरिक नियंत्रण** (Internal Control): आंतरिक नियंत्रण में बहुराष्ट्रीय कंपनी का मुख्यालय मूल कंपनी व सहायक कंपनी के कार्यों पर नियंत्रण करता है। इससे संसाधनों की कार्य-कुशलता, लाभदायकता, उत्पादकता में वृद्धि होती है। आंतरिक नियंत्रण से व्यर्थता व अनुत्पादक व्ययों में कमी आती है तथा उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम प्रयोग सम्भव हो पाता है।

(ii) **बाहरी नियंत्रण** (External Control): बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कार्यकरण पर विभिन्न बाहरी एजेंसियाँ भी नियंत्रण करती हैं; जैसे-मूल देश व मेजबान देश की सरकारें, अंतर्राष्ट्रीय संगठन; जैसे-विश्व व्यापार संगठन, अंकटाड, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, क्षेत्रीय आर्थिक समूह; जैसे-यूरोपियन यूनियन, नाफ्टा (NAFTA), सार्क (SAARC), एसियन (ASEAN), आदि। कई बार बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने लाभों को बढ़ाने के लिए उत्पादों की क्वालिटी की अवहेलना करती हैं, जिससे उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य पर व मेजबान देश के वातावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बार गैर-सरकारी-संगठन (NGOs) तथा मीडिया भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अपनाए गए गलत तरीकों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं ताकि जन-सामान्य को इनके अनुचित व्यापार व्यवहारों के बारे में जागरूक किया जा सके।

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में नियंत्रण में कठिनाइयाँ

(Difficulties in Control over International Business)

घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय पर नियंत्रण अधिक जटिल व कठिन है। अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाइयों को नियंत्रण प्रक्रिया में निम्न मुख्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है:

(1) **व्यापक भौगोलिक क्षेत्र** (Wide Geographic Area): घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय बहुत विशाल भौगोलिक क्षेत्र में फैला होता है। कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की व्यावसायिक क्रियाएँ 150 से भी अधिक देशों में फैली हुई हैं। अत्यधिक दूरी के कारण परस्पर मेल-जोल बहुत अधिक समय अंतराल पर ही होता है। मूल कंपनी व सहायक कंपनियों के अधिकारियों के मध्य प्रत्यक्ष सभाएँ बहुत कम बार होती हैं। आधुनिक संचार संयंत्रों; जैसे-वीडियो कान्फ्रेंसिंग, ई-मेल के बावजूद भी प्रभावी नियंत्रण में संचार की कमी की समस्या का समाधान नहीं हो पाया है।

(2) **संस्कृति में विभिन्नता** (Diversity in Culture): मेजबान देश व घरेलू देश में सांस्कृतिक विभिन्नताएँ बहुत अधिक हो सकती हैं। इस कारण घरेलू देश व मेजबान देश में कार्य पद्धतियाँ, कार्य शैली, मूल्य नीति शास्त्र में बहुत अधिक भिन्नता हो सकती है। अत्यधिक सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण सहायक कंपनियों पर नियंत्रण करने में बहुत कठिनाई आती है।

(3) **अनिश्चितता** (Uncertainty): अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक वातावरणीय घटकों का पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को मेजबान देश के व्यावसायिक वातावरण की अनिश्चितताओं को समझने में बहुत कठिनाई आती है। इससे विभिन्न प्रमाप (Standard) निर्धारित करने में त्रुटि हो जाती है। अनिश्चितता के कारण वास्तविक निष्पादन भी प्रमापों से बहुत भिन्न होता है।

(4) **भाषाओं में विभिन्नता** (Diversity in Language): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में भाषा संबंधी विभिन्नता के कारण बहुत कठिनाई आती है। भाषाओं में विभिन्नता के कारण मूल देश व सहायक कंपनियों में संचार की समस्या आती है। न केवल लिखित भाषा में अपितु मौखिक भाषाओं में भी विभिन्न देशों में बहुत विभिन्नता पायी जाती है। यहाँ तक कि एक ही भाषा में भी विभिन्न देशों में विभिन्न शब्दों का अर्थ अलग-अलग तरह से निकाला जाता है। भाषा में विभिन्नता के कारण संचार में समस्या आती है। प्रभावी संचार के बिना प्रभावकारी नियंत्रण नहीं हो सकता।

■ 3. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में आंतरिक नियंत्रण संयंत्र

(Internal Control Mechanism in International Business)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में मूल कंपनी (Parent Company) मेजबान देश में स्थापित सहायक कंपनियों की व्यावसायिक क्रियाओं पर व मूल कंपनी की घरेलू व्यावसायिक क्रियाओं पर नियंत्रण करती है। बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मेजबान देश में व्यावसायिक नियंत्रण के लिए प्रभावकारी आंतरिक नियंत्रण व्यवस्था डिजाइन करती हैं। आंतरिक नियंत्रण से लाभदायकता, उत्पादकता, कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव होता है, व्यर्थता में कमी आती है, उपभोक्ता संतुष्टि में वृद्धि होती है तथा बाजार अंश में बढ़ोतरी होती है। आंतरिक नियंत्रण से व्यवसाय की शक्तियों व कमजोरियों का पता चलता है। कमजोरियों का पता चलने पर उचित रणनीति बनाकर इन कमजोरियों को दूर किया जा सकता है। आंतरिक नियंत्रण के मुख्य संयंत्र/तकनीक निम्नलिखित हैं:

(1) **आंतरिक रिपोर्टिंग** (Internal Reporting): सहायक कंपनियाँ मूल कंपनी को विभिन्न सामयिक रिपोर्टें भेजती हैं, जैसे-रोकड़ प्रवाह विवरण, क्षमता उपयोग का प्रतिशत, कुल विक्रय मात्रा, विक्रय मात्रा में वृद्धि, डूबत ऋण, कार्यशील पूँजी, आवर्तन दर अनुपात, लाभदायकता आदि के बारे में सामयिक रिपोर्ट भेजी जाती है। इसके अलावा सहायक कंपनी विभिन्न त्रैमासिक रिपोर्टें; जैसे-लाभ-हानि खाता, स्थिति विवरण/चिट्ठा मूल कंपनी को भेजती है। इन रिपोर्टों में उचित समय पर सही व व्यापक सूचनाएँ दी जानी चाहिए। मूल कंपनी इन रिपोर्टों के आधार पर सहायक कंपनी के निष्पादन का मूल्यांकन करती है।

(2) **मेजबान देश में कार्य कर रहे प्रबंधकों के निष्पादन पर नियंत्रण** (Control over Performance of Managers Working in Host Nations): सहायक कंपनियों के कार्यों पर नियंत्रण के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मेजबान देशों में कार्यरत प्रबंधकों के निष्पादन का समय-समय पर मूल्यांकन करती हैं। विभिन्न मेजबान देशों में कार्य शैली, कार्य-पद्धति, मूल्यनीति-शास्त्र, संस्कृति आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनी के लिए विभिन्न सहायक कंपनियों के प्रबंधकों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन बहुत कठिन होता है। इस समस्या के समाधान हेतु बहुराष्ट्रीय कंपनी साझी निगमित संस्कृति (Common Corporate Culture) विकसित करती है, जिसमें साझी कार्य शैली, कार्य पद्धति, कार्य सिद्धांत, मूल्य नीति शास्त्र, कार्य दशाएँ, काम करने के घंटे, सभाएँ आयोजित करने का तरीका, दैहिक भाषा (Body language), शिष्टाचार संबंधी आयाम निर्धारित किए जाते हैं। साझी निगमित संस्कृति से मूल देश से मेजबान देश में, मेजबान देश से मूल देश में, एक मेजबान देश से अन्य मेजबान देशों में सर्वोत्तम कार्य पद्धतियाँ हस्तांतरित करने में सहायता मिलती है। इस साझी निगमित संस्कृति के आधार पर विभिन्न प्रबंधकों के निष्पादन संबंधी प्रमाप निर्धारित करने में सहायता मिलती है। वास्तविक निष्पादन को माप कर इसकी प्रमापित निष्पादन से तुलना की जाती है। यदि वास्तविक निष्पादन प्रमापित निष्पादन से कम है, तो यह कमजोरियों की ओर संकेत करता है।

(3) **सहायक कंपनियों में जाकर जांच पड़ताल** (Official Visits to Subsidiaries): मूल कंपनी के उच्च अधिकारी सामयिक अंतराल पर सहायक कंपनियों की जांच पड़ताल के लिए जाते हैं। वहाँ के अधिकारियों से प्रत्यक्ष मेल-जोल, बातचीत द्वारा वहाँ के कार्यों का निरीक्षण करते हैं। वे सहायक कंपनी की कार्य पद्धति, कार्य शैली, लेखांकन रिकार्ड का विश्लेषण करते हैं। उत्पादन प्लांट, विपणन विभाग, वित्त विभाग आदि में जाकर उनके कार्यों का निरीक्षण करते हैं। विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रहे कर्मचारियों व अधिकारियों से बातचीत करके उनकी शिकायतों, कठिनाइयों, सुझावों को सुनते व समझते हैं। इससे उनके मनोबल, उत्पादकता व कुशलता में भी वृद्धि होती है तथा नियंत्रण करने में सहायता मिलती है। परन्तु यह विधि बहुत खर्चीली है तथा इसमें समय भी बहुत लगता है।

(4) **मुख्य निष्पादन सूचकों का वित्तीय विश्लेषण** (Financial Analysis of Key Performance Indicators): सहायक कंपनियों की वित्तीय कुशलता के विश्लेषण व मूल्यांकन के लिए विभिन्न वित्तीय संयंत्रों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis), रोकड़ प्रवाह विश्लेषण, कोष प्रवाह विश्लेषण, कार्यशील पूँजी विश्लेषण, बजटरी नियंत्रण आदि। विदेशी सहायक कंपनियों के वित्तीय विश्लेषण व नियंत्रण के लिए निम्न अनुपातों का प्रयोग किया जाता है:

(i) **लाभदायकता** (Profitability): Net Profit Ratio, Gross Profit Ratio, Return on Investment, Return on Equity, Earning Per Share.

(ii) **कार्य-क्षमता** (Activity): Inventory Turnover Ratio, Debtors Turnover Ratio, Creditors Turnover Ratio, Working Capital Turnover Ratio.

(iii) **शोधन-क्षमता** (Solvency): Debt Equity Ratio, Debt to Total Funds Ratio, Current Ratio, Quick Ratio, Interest Coverage Ratio.

(5) **कार्यात्मक कुशलता सूचक** (Operational Efficiency Indicators): (i) निर्माणी इकाइयों की कार्यात्मक कुशलता के मूल्यांकन के लिए समविच्छेद बिंदु (Break-even Analysis), स्थापित उत्पादन क्षमता का प्रतिशत प्रयोग, प्रति इकाई लागत में कमी आदि सूचकों का प्रयोग किया जाता है, (ii) मानव संसाधन प्रबंध के मूल्यांकन के लिए कर्मचारियों की उत्पादकता, श्रम आवर्तन दर (Labour Turnover Ratio), हड़ताल, तालाबंदी के कारण व्यर्थ हुए मानव दिवस आदि सूचकों का प्रयोग किया जाता है, (iii) विपणन डिविजन की कार्यकुशलता के लिए बाजार अंश, विक्रय मात्रा, विक्रय में वृद्धि दर, विक्रय व्ययों का विक्रय से अनुपात, प्रतिदिन विक्रय पुकार, आदेश पुकार अनुपात, औसतन आदेश आकार (Market share, sales volume, growth rate in sales, selling expense to sales ratio, number of sales call per day, order call ratio, average order size), आदि सूचकों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न सहायक कंपनियों के निष्पादन के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए उनकी प्रति इकाई उत्पादन लागत, प्रति इकाई विपणन लागत, प्रति इकाई कुल लागत आदि की परस्पर तुलना की जाती है। इसके अलावा विभिन्न परिमाणात्मक व गुणात्मक संयंत्रों का प्रयोग करके भी विदेशी सहायक कंपनियों के निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है, जैसे-उपभोक्ताओं, डीलरों, कर्मचारियों की प्रतिक्रिया द्वारा, सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिए की गई विभिन्न गैर-क्रियाओं, आदि द्वारा मूल्यांकन किया जाता है।

(6) **आंतरिक अंकेक्षण/कार्यात्मक अंकेक्षण** (Internal Audit or Operational Audit): आंतरिक अंकेक्षण भी नियंत्रण का महत्वपूर्ण संयंत्र है। आंतरिक अंकेक्षक सहायक कंपनियों के वित्तीय व अन्य पहलुओं की स्वतंत्र रूप से जांच करता है, कमियों को ढूंढता है तथा इन्हें दूर करने के लिए सुझाव देता है। यह एक निरंतर प्रक्रिया है जिसके द्वारा आंतरिक अंकेक्षक सहायक कंपनी व मूल कंपनी में वित्तीय गबनों, कोषों के अकुशल प्रयोग व अन्य त्रुटियों का पता लगाने व उचित समय पर सुधार करने में सहायता करता है।

(7) **विलयन व अधिग्रहण की दशा में नियंत्रण** (Control in Case of Mergers and Acquisitions): विलयन के अंतर्गत दो या दो से अधिक विद्यमान कंपनियाँ मिलकर एक कंपनी बन जाती हैं। विलयन में विद्यमान कंपनियों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और उनके स्थान पर एक नयी कंपनी का जन्म होता है। अधिग्रहण के अंतर्गत एक कंपनी जो

तुलनात्मक रूप से कमजोर है, किसी अन्य कंपनी जो तुलनात्मक रूप से सुदृढ़ है, में मिल जाती है। अधिग्रहण में अवशोषित कंपनी (Absorbed Company) का अस्तित्व समाप्त हो जाता है जबकि अवशोषक कंपनी (Absorbing Company) का अस्तित्व बना रहता है। जब बहुराष्ट्रीय कंपनी मेजबान देश की किसी विद्यमान कंपनी से विलयन या अधिग्रहण संबंधी समझौता करती है, तो नियंत्रण की साधारण तकनीकों द्वारा प्रभावी नियंत्रण नहीं हो सकता क्योंकि दोनों कंपनियों की निगमित संस्कृति (Corporate Culture) में बहुत भिन्नता होती है। दो विभिन्न देशों में कार्य कर रही कंपनियों की कार्य पद्धति, कार्य शैली, लेखांकन सिद्धांतों, मूल्यांकन [illegible] में बहुत भिन्नता होती है। उनके निष्पादन संबंधी प्रमापों (Performance Standard) में भी बहुत भिन्नता होती है। अतः एक कंपनी के नियंत्रण तकनीकों का दूसरी कंपनी पर प्रयोग नहीं किया जा सकता। जब तक दोनों कंपनियों का पूर्ण रूप से विलय नहीं हो जाता, तब तक केवल सभाएँ आयोजित करके चर्चाओं द्वारा व वैयक्तिक पर्यवेक्षण (Observation) द्वारा ही नियंत्रण संभव होता है।

- **प्रभावी आंतरिक नियंत्रण के उपाय (Measures for Effective Internal Control)**

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में आंतरिक नियंत्रण व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्न कदम उठाए जाने चाहिए:

(a) मूल कंपनी व सहायक कंपनी के मध्य, तथा एक सहायक कंपनी व दूसरी सहायक कंपनी के मध्य, **स्टाफ के कार्यों की अदला-बदली** (Job-rotation of staff) की जानी चाहिए। इससे विभिन्न सहायक कंपनियों व मूल कंपनी के मध्य कार्य पद्धति व कार्य शैली में एकरूपता आएगी। ये कंपनियाँ एक-दूसरे के निकट आएंगी, स्टाफ अन्य स्थानों पर जाकर वहाँ की कुछ अच्छी कार्य आदतें ग्रहण करेगा। इसके अलावा इससे आंतरिक जांच पड़ताल व नियंत्रण (Internal Check and Control) में सहायता मिलेगी। जब एक सहायक कंपनी या मूल कंपनी का स्टाफ दूसरी सहायक कंपनी में काम करने जाएगा, तो वहाँ के कार्यों में त्रुटियाँ, कमजोरियाँ, गबन आदि सामने उभरेंगे। इससे उचित समय पर इनके निवारण के लिए सुधारात्मक कदम उठाए जा सकेंगे।

(b) मूल कंपनी के उच्च अधिकारियों को मेजबान देश में सहायक कंपनी में **संचालकों के रूप में नियुक्त** किया जाना चाहिए। इससे सहायक कंपनियों पर अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रण रखा जा सकेगा।

(c) विभिन्न सहायक कंपनियों के उच्च **अधिकारियों की टीम** बनाई जानी चाहिए। इनकी समय-समय पर सभाएँ आयोजित की जानी चाहिए। इससे वे परस्पर बातचीत व चर्चा द्वारा एक-दूसरे के अनुभव से अच्छी कार्य पद्धतियाँ सीखते हैं। इनका मूल कंपनी के मुख्यालय से संपर्क भी बढ़ाया जाना चाहिए। इससे मूल कंपनी व सहायक कंपनी के मध्य एकीकरण को बढ़ावा मिलता है।

4. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में बाहरी नियंत्रण संयंत्र (External Control Mechanism in International Business)

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने लाभ अधिकतम करने के लिए अनुचित व्यापार व्यवहारों में संलग्न हो जाती हैं। वे अपने मूल देश में [illegible] क्वालिटी के उत्पाद बनाती हैं, परन्तु मेजबान देशों में, विशेषकर जब वह अल्पविकसित या विकासशील देश हो, क्वालिटी का ध्यान नहीं देतीं, सुरक्षा उपाय नहीं करतीं, प्रदूषण नियंत्रण संयंत्रों का प्रयोग नहीं करतीं, जैसे-यूनियन कार्बाइड (Union Carbide) कंपनी, जो अमेरिका मूल देश की बहुराष्ट्रीय कंपनी थी, ने अमेरिका में तो सुरक्षा संबंधी सभी उपाय किए हुए थे, परन्तु भारत में भोपाल शहर में इसके प्लांट में सुरक्षा उपायों की अवहेलना की गई थी। इसकी लापरवाही व गलती के कारण भोपाल में हजारों लोगों की मृत्यु हो गई तथा हजारों की संख्या में लोग शारीरिक या मानसिक रूप से विकलांग हो गए। इससे स्पष्ट है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर [illegible] नियंत्रण अति आवश्यक है। मेजबान देश की सरकार को इन कंपनियों पर नियंत्रण करने के लिए ठोस कदम उठाने पड़ते हैं, ताकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने निजी स्वार्थ अर्थात् अधिकतम लाभोपार्जन के लिए अनुचित व्यापार व्यवहारों में संलग्न न हों। बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर बाहरी नियंत्रण निम्न द्वारा हो सकता है: (i) मेजबान देश की सरकार द्वारा, (ii) अंतर्राष्ट्रीय संगठन, जैसे-विश्व व्यापार संगठन, अंकटाड, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, क्षेत्रीय आर्थिक समूह, जैसे-यूरोपियन यूनियन, नाफ्टा (NAFTA), ऐफ्टा (EFTA), सार्क (SAARC), एसियन (ASEAN) आदि के द्वारा। (iii) सामाजिक संगठनों/गैर सरकारी संगठनों (NGOs) द्वारा।

सरकार द्वारा नियंत्रण (Control by Government)

घरेलू देश की सरकार व मेजबान देश की सरकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर नियंत्रण करती है। सरकार विदेशी व्यवसाय को बढ़ावा भी दे सकती है या उस पर रोक भी लगा सकती है। विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए सरकार निर्यातों व आयातों पर लगे विभिन्न प्रतिबंधों को कम करती है व इन पर प्रोत्साहन देती है। आयात उदारीकरण में– टैरिफ में कटौती, आयात कोटा, परमिट, लाइसेंस की समाप्ति, आयात अनुदान, आयात मदों को प्रतिबंधित सूची से सामान्य सूची में हस्तांतरित करना आदि शामिल है। निर्यात उदारीकरण में निर्यातकों को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध करवाना, निर्यात पर अनुदान, निर्यात करों को समाप्त करना, निर्यात प्रोसेसिंग क्षेत्र (Export Processing Zone), विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zones) स्थापित करना, निर्यात लाइसेंस में मुक्ति आदि शामिल है। दूसरी ओर, यदि सरकार विदेशी व्यापार पर रोक लगाना चाहती है, तो विभिन्न **टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं** को बढ़ाया जा सकता है, जैसे टैरिफ की ऊँची दरें निर्धारित करना, आयात कोटा, लाइसेंस, परमिट आदि निर्धारित करना शामिल है। इसके अलावा विभिन्न प्रशासनिक औपचारिकताओं को भी जटिल बनाया जाता है। सरकार विदेशी व्यापार के रास्ते में **तकनीकी बाधाएँ** भी लगा सकती है, जैसे स्वास्थ्य व सुरक्षा संबंधी सख्त प्रावधान, पैकिंग-लेबलिंग संबंधी सख्त प्रावधान, बंदरगाहों पर उत्पादों विशेषकर खाद्य उत्पादों की पैकिंग संबंधी सख्ती व निरीक्षण आदि। सरकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर नियंत्रण के लिए विभिन्न नीतियाँ, जैसे– निर्यात-आयात नीति, विदेशी निवेश नीति व अन्य प्रावधान आदि भी बनाती है। इनकी चर्चा निम्नलिखित है:

● **(1) निर्यात-आयात नीति/कामर्शियल नीति [Export-Import (EXIM) Policy/Commercial Policy]**

निर्यात-आयात नीति देश के निर्यातों और आयातों के नियमन व नियंत्रण के लिये नियम व प्रावधान बनाती है। इस नीति को **विदेशी व्यापार नीति** भी कहा जाता है। इस नीति में सरकार द्वारा निर्यातों को बढ़ावा देने व आयातों को नियमित करने के दिशा-निर्देश तय किए जाते हैं। इस नीति में घरेलू वातावरण व वैश्विक वातावरण में आ रहे बदलावों के साथ-साथ, समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं। इस नीति के द्वारा सरकार के आयात-निर्यात के प्रति दृष्टिकोण की जानकारी निर्यातकों व आयातकों को दी जाती है। निर्यात-आयात नीति देश के निर्यातों व आयातों को नियमित करती है। वैश्वीकरण के युग में आज विश्व का कोई भी देश अन्य देशों से अलग-थलग नहीं रह सकता। निर्यात व आयात किसी भी देश, चाहे वह विकसित हो या विकासशील, के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के बढ़ने से विश्व-व्यापार में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है।

आयात व निर्यातों को ऐच्छिक दिशा में नियमित करने के लिए सरकार कुछ नियम निर्धारित करती है। भारत जैसे विकासशील देश को पूंजीगत सामान, आधुनिक तकनीक व अन्य आवश्यक मदों का आयात करना पड़ता है। इन आवश्यक मदों के आयात का भुगतान करने के लिए निर्यातों को बढ़ाया जाना आवश्यक है, जिससे निर्यातों व आयातों में संतुलन स्थापित किया जा सके। यदि आयात निर्यातों से अधिक हो, तो विदेशी ऋणों की आवश्यकता पड़ती है, जो वांछनीय नहीं है। अतः निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए सरकार समय-समय पर बहुत सी निर्यात-संवर्धन-योजनाएं जारी करती रहती है।

अल्पविकसित देशों की सरकार आयात-लाइसेंसिंग, आयात-कोटा, आयात-शुल्क, आदि के द्वारा आयात को नियंत्रित करती है। आयात लाइसेंस से अभिप्राय सरकार से आयात के लिए अनुमति प्राप्त करने से है। आयात-कोटा में एक निश्चित अवधि में आयात की जाने की अधिकतम मात्रा को निर्धारित किया जाता है। आयात-करों से अभिप्राय सीमा-शुल्क से है। यह एक प्रकार का कर है, जिसे आयातक को चुकाना पड़ता है। आयात-कर से आयातित वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होती है। सरकार ने कुछ विशिष्ट उत्पादों के आयात पर पूर्ण प्रतिबंध (ban) भी लगाये हैं। इन सबका उद्देश्य अवांछित आयातों को कम करना है। लेकिन सरकार पूंजी उत्पादों, टेक्नोलॉजी तथा अनिवार्य उत्पादों के आयात पर छूट भी देती आई है। निर्यात बढ़ाने के लिये सरकार ने विभिन्न निर्यात-प्रेरक योजनाएं चलाई हैं, जैसे- निर्यात-नियंत्रण को कम करना, निर्यात-शुल्क कम करना, निर्यातकों को रियायती दरों पर ऋण उपलब्ध करवाना आदि। पिछले कुछ वर्षों में बहुत से देशों की सरकार ने खुली सामान्य सूची (Open General List) अर्थात् बिना प्रतिबंधों वाले आयातों की सूची को बढ़ा दिया है। अन्य शब्दों में, सरकार ने अधिक उत्पादों पर आयात प्रतिबंध हटा दिये हैं। बहुत से देशों की सरकारों ने कच्चे माल, टेक्नोलॉजी, पूंजीगत उत्पादों के आयात को सरल बना दिया है और निर्यात-प्रेरक उत्पादों को बहुत रियायतें दी हैं; जैसे- भारत की नई विदेशी व्यापार नीति, 2009-14 बहुत उदार नीति है। इसमें निर्यातों को बढ़ाने के लिए बहुत प्रोत्साहन दिए गए हैं, तथा कुछ आयातों को भी उदार बना दिया गया है।

● **(2) विदेशी निवेश नीति (Foreign Investment Policy)**

यह नीति अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेश के अन्तर्प्रवाह व बाहरी प्रवाह को नियमित करती है। यह विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी निवेश की उच्चतम सीमा संबंधी नियम बनाती है। यह बहुराष्ट्रीय कंपनी से ब्याज, रॉयल्टी, तकनीकी फीस की पुनः वापसी (Repatriation) संबंधी नियम तथा घरेलू अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेश के प्रवेश के तरीकों संबंधी प्रावधान भी निर्धारित करती है। सभी विदेशी निवेश व तकनीकी समझौतों पर यह नीति लागू होती है। वर्तमान में लगभग सभी देशों में विदेशी निवेश नीति को उदार बना दिया गया है। तथा विदेशी निवेश के अन्तर्प्रवाह पर लगी उच्चतम सीमा को हटा दिया गया है, जैसे-भारत में पहले विदेशी पूंजी हिस्सेदारी 40% तक सीमित थी, अब इसे बढ़ाकर 100% कर दिया गया है। 1991 से पहले सभी विदेशी निवेशों तथा तकनीकी सहयोगों की पूर्व अनुमति लेनी होती थी, पर नई निवेश नीति में इसे स्वतः स्वीकृति (Automatic Approval) दे दी गई है। विदेशी निवेश की स्वतः स्वीकृति में सरकार या रिजर्व बैंक से किसी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं पड़ती। निवेशकों को केवल निवेश करने के 30 दिनों के बीच निवेश की सूचना, रिजर्व बैंक को देनी पड़ती है। पहले विदेशी पूंजी का प्रयोग पूंजीगत वस्तुओं के निर्माण तथा उच्च प्राथमिकताओं वाले उद्योगों तक सीमित था, लेकिन अब अधिकतर देशों में इसे लगभग हर तरह के उद्योगों के लिए खुली छूट दे दी गई है। इसके अलावा अधिक विदेशी पूंजी आकर्षित करने के लिए विदेशी पूंजी को बहुत सी रियायतें तथा प्रोत्साहन दिये गये हैं। अब विदेशी निवेश नीति को अधिक व्यावहारिक और सरल बना दिया गया है।

वर्तमान में, अधिकतर देशों में विदेशी निवेश नीति में विदेशी पूंजी के प्रति सरकार का दृष्टिकोण काफी उदार है तथा विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह में आने वाली रुकावटों को दूर किया जा रहा है। उच्च तकनीक तथा उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में निवेश को बढ़ावा देने के लिए स्वतः स्वीकृति को अपनाया गया है। अर्थात् उच्च तकनीक एवं उच्च प्राथमिकता क्षेत्रों में निवेश करते समय सरकार से अलग अनुमति लेना आवश्यक नहीं है। ये क्षेत्र हैं– ऊर्जा, फार्मास्यूटिकल, एयरपोर्ट, पोर्ट, इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर इत्यादि। इनमें विदेशी निवेशकों की हिस्सेदारी 100% तक हो सकती है। तथा विदेशी निवेशकों को कभी भी पूंजी और लाभ वापिस ले जाने की अनुमति होगी। बहुराष्ट्रीय निगमों को मेजबान देशों में अपनी संपूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियों को लगाने की अनुमति दे दी गई है।

● **(3) बहुराष्ट्रीय निगमों/उपक्रमों का नियमन**

(Regulation of Multinational Corporations/Enterprises)

बहुराष्ट्रीय निगमों के गुण तथा दोषों के विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये निगम तभी अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के प्रेरक बन सकते हैं जब इनके तथा मेजबान देश के हितों में समानता उत्पन्न हो जाये। इनके गुणों का लाभ विभिन्न प्रकार की नीतियों का निर्माण करके तथा इनके स्वतंत्र प्रसार पर नियंत्रण करके ही उठाया जा सकता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर नियंत्रण की चर्चा निम्नलिखित है:

(a) बहुराष्ट्रीय निगमों पर सरकारी नियंत्रण (Government Control over MNCs)

MNCs की विभिन्न आलोचनाओं के कारण इन निगमों पर नियंत्रण रखना अनिवार्य है। भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के नियंत्रण की जिम्मेवारी निम्नलिखित सरकारी विभागों/मंत्रालयों पर है:

(i) **कम्पनियों के मामले का विभाग** (Department of Company Affairs), (ii) **उद्योग मंत्रालय** (Ministry of Industry), (iii) **वित्त मंत्रालय** (Ministry of Finance), (iv) **आर्थिक मामलों पर कैबिनेट समिति** (Cabinet Committee on Economic Affairs), (v) **विदेशी मुद्रा प्रबन्ध अधिनियम** [Foreign Exchange Management Act (FEMA)], (vi) **विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड** (Foreign Investment Promotion Board), (vii) **केन्द्रीय बैंक** (Central Bank)।

भारत में, इन मंत्रालयों, विभागों ने बहुराष्ट्रीय निगमों को नियमित व नियन्त्रित करने के लिये निम्न मुख्य प्रावधान बनाए हैं:

(1) अनावश्यक मदों के उत्पादन के लिये तथा जिन क्षेत्रों में घरेलू-तकनीक का स्तर पहले से ही अच्छा है, उन पर विदेशी तकनीक के आयात पर रोक लगाई गई है।

(2) रॉयल्टी के भुगतान की अधिकतम सीमा, निर्यात विक्रय का 8 प्रतिशत व घरेलू विक्रय का 5 प्रतिशत निर्धारित की गई है।

(3) बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ प्रारम्भिक समझौता पांच वर्ष की अवधि के लिये किया जाता है परन्तु सरकार यदि चाहे तो पांच वर्ष की समझौते की अवधि समाप्त होने पर, इस अवधि को बढ़ा सकती है।

(4) कुछ क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय निगमों की समता अंशों में भागेदारी (Equity Participation) को वर्जित किया गया है तथा कुछ क्षेत्रों में इनकी भागेदारी एक निर्धारित प्रतिशत मात्रा से अधिक नहीं हो सकती।

(5) बहुराष्ट्रीय कंपनियों को वांछित क्षेत्रों में निवेश करने के लिए आकर्षित करने हेतु विदेशी निवेश-सवर्धन बोर्ड की स्थापना की गयी है। यह बोर्ड समय-समय पर कुछ निर्देश जारी करता है। MNCs को इन निर्देशों का पालन करना होता है।

(6) कुछ पर निर्यात सबंधी शर्त लगायी गयी है अर्थात् कुछ विशेष क्षेत्रों में कार्यरत MNCs को अपने कुल उत्पादन का निर्धारित प्रतिशत अनिवार्य रूप से निर्यात करना होगा।

(7) MNCs द्वारा बनाये गये उत्पादों के विज्ञापन, विपणन व पैकिंग सबंधी कुछ प्रावधान बनाये गये है। MNCs को इन प्रावधानों का पालन करना होगा।

(8) MNCs को विदेशी निवेश सवर्धन बोर्ड तथा आर्थिक मामलों की कैबिनेट समिति की अनुमति लेनी होगी।

(9) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को औद्योगिक नीति व विदेशी निवेश नीति द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन करना होगा।

(b) बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए नैतिक आचार संहिता (Ethical Code of Conduct for MNCs)

U.N.General Assembly ने भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिये नैतिक आचार संहिता बनायी है। इसे मानना वैधानिक नहीं है, परन्तु फिर भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे मेजबान देश के हितों की रक्षा के लिए इस आचार संहिता का पालन करें। इस आचार-संहिता के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित है:

(i) मेजबान देश के घरेलू कानूनों व नियमों का पालन करना।

(ii) अनुचित व्यापार-व्यवहार में संलग्न न होना, जैसे- धोखे-धडी वाले विज्ञापन न देना, कार्टल (Cartel) का निर्माण न करना, अर्थात् निगमों को ऐसे सामूहिक समझौते नहीं करने चाहिए, जिनका उद्देश्य कीमतें बढ़ाना, प्रतिस्पर्धा को कम करना आदि हो।

(iii) तकनीकी सुधारों के लिये अनुसंधान व शोध का कार्य करना।

(iv) करों का समय पर भुगतान करना।

(v) कर्मचारियों को उचित वेतन, अच्छी कार्यदशाएं देना तथा उनके साथ अच्छा बर्ताव करना।

(vi) एकाधिकार व्यवहारों (Monopolistic-Practices) में संलग्न न होना।

(vii) मेजबान देश के राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध कार्य न करना।

(viii) मेजबान देश के सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के विरुद्ध न जाना।

(ix) मेजबान देश के राजनीतिक मुद्दों में दखलअंदाजी न करना।

(c) बहुराष्ट्रीय निगम संबंधी नीति (Policy Regarding Multinational Corporations)

पहले, अधिकतर देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रति बहुत सख्त नीति अपनायी जाती थी। विदेशी उपक्रमों के निवेश पर लगभग 26%, 40% व 49% की सीमा लगायी गयी थी। बदलते अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में, अब अधिकतर देशों ने उदार औद्योगिक नीति और उदार विदेशी निवेश नीति को अपना लिया है। इससे इन देशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में बहुत वृद्धि हुई है। नयी नीति में MNCs इकाइयों को कुछ उद्योगों में 100% तक निवेश करने की अनुमति दे दी गयी है। बहुत से देशों में, विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिये एक उच्चस्तरीय विदेशी निवेश सवर्धन बोर्ड भी गठित किया गया है, जो बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को निवेश करने के लिये प्रोत्साहित करेगा। नई उदारवादी नीति के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा किये गये निवेश में काफी वृद्धि हुई है।

14.2 अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं/संगठनों द्वारा नियंत्रण (Control by International Institutions/Organisations)

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ अंतर्राष्ट्रीय संगठन व क्षेत्रीय आर्थिक समूह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण करते है। ये संस्थाएं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को नियमित करने के लिए व बढावा देने के लिए विभिन्न उपाय करती है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमन व नियंत्रण में मुख्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ/अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

- **(1) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष [International Monetary Fund (IMF)]**

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना 27 दिसम्बर, 1945 को हुई। इसकी स्थापना विश्व व्यापार के संतुलित विकास, अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग तथा सदस्य देशों के भुगतान शेष की अस्थायी असंतुलन की समस्या को सुलझाने के उद्देश्य से की गई। अप्रैल, 2014 में IMF के सदस्य देशों की संख्या 188 थी। IMF का मुख्यालय वाशिंगटन डी०सी०, यू० एस०ए० में है।

- **(2) विश्व बैंक (World Bank)**

इस बैंक ने जून 1945 से अपना कार्य आरंभ किया। विश्व बैंक का उद्देश्य विभिन्न देशों को विकासात्मक कार्यों के लिए वित्त उपलब्ध करवाना तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि करना है। कोई भी देश जो मुद्रा कोष का सदस्य है, वह विश्व बैंक का भी सदस्य स्वतः ही बन जाता है। जिन देशों ने 31 दिसम्बर, 1945 को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता स्वीकार कर ली थी, वे सभी विश्व बैंक के मूल सदस्य (Founder Member) माने जाते है। इस समय विश्व बैंक के 188 देश सदस्य है। कोई भी देश विश्व बैंक की सदस्यता त्याग सकता है। यदि कोई देश विश्व बैंक के नियमों का पालन नहीं करता तो उसे इसकी सदस्यता से हटाया जा सकता है।

- **(3) विश्व व्यापार संगठन [World Trade Organisation (WTO)]**

विश्व व्यापार संगठन ने 1 जनवरी, 1995 से अपना कार्य शुरू किया। यह एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है, जो बहुपक्षीय व्यापार (बहुत देशों के मध्य व्यापार) को तथा स्वतंत्र विश्व-व्यापार को बढ़ावा देता है। इसके द्वारा टैरिफ-बाधाओं में कमी व निर्यात प्रतिबंधों की समाप्ति पर जोर दिया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य स्वतंत्र विश्व-व्यापार, निवेश के स्वतंत्र प्रवाह, वस्तुओं व सेवाओं का सदस्य देशों के मध्य स्वतंत्र व्यापार तथा बौद्धिक संपत्ति को पेटेन्ट द्वारा सुरक्षित करना है। अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष व विश्व बैंक के अलावा विश्व व्यापार संगठन भी एक बहुत महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संगठन है। मई, 2014 में विश्व व्यापार संगठन के 159 सदस्य देश थे।

- **(4) संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन (अंकटाड) [United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD)]**

विकासशील देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए और आर्थिक विकास को तेज करने के लिए 1964 में अंकटाड की स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O) द्वारा की गई। अब तक अंकटाड के 13 सम्मेलन हो चुके है। अंकटाड के मुख्य उद्देश्य है: (i) विकासशील देशों के आर्थिक विकास में वृद्धि, (ii) विकासशील देशों के निर्यात में बढ़ोतरी, (iii) विकासशील देशों को विकास के लिए अधिक वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाना, (iv) अति-अल्पविकसित देशों के विकास के लिए विशेष कार्यक्रम चलाना।

- **(5) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते (International Trade Agreements)**

समय-समय पर विदेशी व्यापार को ऐच्छिक दिशा में निर्देशित करने के लिये विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापारिक समझौते किये जाते है। ये समझौते कुछ पड़ोसी देशों के मध्य, विभिन्न विकासशील देशों के मध्य या विकासशील व विकसित देशों के मध्य हो सकते है। इन समझौतों में विदेशी व्यापार से संबंधित शर्तें तय की जाती है जो सभी सदस्य देशों को मान्य हो। इन समझौतों का उद्देश्य विदेशी व्यापार को बढ़ाना व विदेशी व्यापार की रुकावटों को दूर करना है। मुख्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते निम्नलिखित है:

(i) **सामान्यकृत अधिमान व्यवस्था** [Generalised System of Preferences (GSP)]: यह विकसित व विकासशील देशों के मध्य व्यापारिक समझौता है। इसके द्वारा विकसित देश विकासशील देशों को विदेशी व्यापार पर विभिन्न टैरिफ व गैर-टैरिफ-रियायतें प्रदान करते है।

(ii) **व्यापारिक अधिमानों की विश्व व्यवस्था** [Global System of Trade Preferences (GSTP)]: यह विकासशील देशों के मध्य किया गया व्यापारिक समझौता है। इसके द्वारा विकासशील देश अन्य विकासशील देशों को विदेशी व्यापार पर टैरिफ व गैर-टैरिफ-रियायतें प्रदान करते हैं।

(iii) **प्रति-व्यापार समझौता** (Counter-Trade Agreements): प्रति व्यापार ऐसा अनुबंध है जिसमें निर्यात करने के लिए उसी मूल्य की वस्तुओं का आयात करना होता है। जब यह समझौता दो राष्ट्रों के बीच होता है तब एक देश, दूसरे देश से इस शर्त पर आयात करता है कि दूसरा देश भी एक निश्चित समयावधि के अंतर्गत पहले देश से बराबर मूल्य की वस्तुओं का आयात करेगा। इस तरह के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती और देश के भुगतान शेष पर कोई भार नहीं पड़ता। यह एक तरह का वस्तु विनिमय व्यापार (Barter trade) है।

(iv) **क्षेत्रीय आर्थिक समूह/क्षेत्रीय व्यापारिक समझौते** (Regional Economic Groups/Regional Trade Agreements): क्षेत्रीय आर्थिक समूह एक तरह की आर्थिक एकीकरण व्यवस्था है जिसमें सदस्य देशों के साथ व्यापार के लिए उदार नियम बनाए जाते हैं। ये समझौते विकसित देशों के मध्य, विकासशील देशों के मध्य तथा विकसित व विकासशील देशों के मध्य हो सकते हैं। क्षेत्रीय आर्थिक समूहों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: यूरोपियन यूनियन (EU), नाफटा (NAFTA), एसियन (ASEAN), सार्क (SAARC), एफ्टा (EFTA), ब्रिक्स (BRICS) आदि। वर्तमान में कुल विश्व व्यापार का एक तिहाई से भी अधिक व्यापार क्षेत्रीय व्यापारिक समझौतों द्वारा किया जाता है। वर्ष 2005 में इन समझौतों की संख्या 211 थी। जनवरी, 2014 के अंत तक अधिसूचित (Notified) क्षेत्रीय व्यापार समझौतों की संख्या बढ़कर 583 हो गयी, जिनमें से लगभग 377 समझौते क्रियाशील हैं। इन समझौतों का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय सदस्य देशों में आर्थिक सहयोग व व्यापार को बढ़ावा देना है।

■ 4.3 सामाजिक संगठनों द्वारा नियंत्रण (Control by Social Organisations)

कुछ सामाजिक संगठन भी विदेशी कंपनियों द्वारा अपनाए अनुचित व्यापार व्यवहारों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं; जैसे-घटिया क्वालिटी के उत्पाद बनाना, प्रदूषण नियंत्रण संयंत्रों का प्रयोग न करना, राशिपातन में संलग्न होना, उचित सुरक्षा उपाय न करना, आदि के विरुद्ध समय-समय पर ये संगठन मीडिया के माध्यम से जन-साधारण व सरकार तक अपनी आवाज पहुँचाते हैं। कुछ सामाजिक संगठनों ने कोका कोला, पेप्सी कोला में कीटनाशक दवाइयों के अत्यधिक प्रयोग के विरुद्ध बहुत रोष प्रकट किया। कुछ सामाजिक संगठनों ने, चीन में निर्मित खिलौनों [जिनमें लैड (Lead) का बाहरी परत में अत्यधिक प्रयोग किया गया था, जो कि बच्चों के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है] के विरुद्ध आवाज उठायी। इसी तरह अमेरिका में लोग भारत में निर्मित दरियों (Carpets) के प्रयोग का बहिष्कार करते हैं क्योंकि भारत में गरीब लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने के स्थान पर दरियों की फैक्ट्रियों में भेजते हैं। ताकि वे अपने परिवार के लिए धन कमा सकें। इस तरह विभिन्न सामाजिक संगठन इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के गलत व्यवहारों के विरुद्ध आवाज उठाकर जन सामान्य को जागरूक करते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सामाजिक विरोध के डर से आवश्यक सुधारात्मक कदम उठाती हैं।

वैश्विक निर्माणी क्रियाएँ, बाहरी स्रोत क्रियाएँ व वैश्विक पूर्ति शृंखला प्रबंध

(Global Manufacturing, Outsourcing and Global Supply Chain Management)

■ 1. वैश्विक स्तर पर निर्माणी क्रियाओं का परिचय व अर्थ

(Introduction and Meaning of Global Manufacturing)

[illegible] जैसे- निर्माणी क्रियाओं का आधार कहाँ स्थापित किया जाए, [illegible] वैश्विक इकाई को [illegible] अन्य शब्दों में निर्माण या क्रय निर्णय (Make or Buy Decision) [illegible] आजकल बहुत-सी वैश्विक कम्पनियाँ उत्पाद का निर्माण स्वयं न करके [illegible] (Outsourcing) है, जैसे- नाइक (Nike) व रीबॉक (Reebok) की कोई अपनी निर्माणी इकाई नहीं है। [illegible] (Logistics) [illegible] वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ निर्माणी क्रियाएँ स्वयं करती हैं, वे निर्माणी आधार हेतु देश का चयन [illegible] जैसे- विभिन्न देशों में साधन लागत (Factor Cost), योग्य श्रम की उपलब्धता, [illegible] राजनीतिक [illegible] टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ, [illegible] सरकारी नीतियाँ, तकनीकी घटक आदि।

जब किसी उत्पाद या इसके [illegible] कलपुर्जों (Components) का उत्पादन-आधार दो या दो से अधिक देशों में स्थापित किया जाता है, तो इसे वैश्विक निर्माणी क्रियाएँ कहा जाता है। इसके [illegible] उत्पादन संबंधी [illegible] क्रियाओं को मूल देश तथा एक या एक से अधिक मेजबान देशों में या केवल मेजबान देशों में ही किया जाता है। निर्माणी क्रियाओं को अन्य देशों में हस्तांतरित करके उत्पादन लागत व [illegible] लागत को कम करने का प्रयास किया जाता है तथा व्यावसायिक क्रियाओं को वैश्विक स्तर पर फैलाया जाता है।

■ 2. वैश्विक स्तर पर निर्माणी क्रियाओं संबंधी व्यूहरचनाओं के उद्देश्य

(Objectives of Global Manufacturing Strategies)

(1) निर्माण लागत में कमी (Reduction in Manufacturing Cost): वैश्विक इकाई निर्माणी आधार के लिए उचित देश का चयन करके तथा वैश्विक पूर्ति शृंखला के कुशल प्रबंध द्वारा निर्माण लागत को कम कर सकती है।

(2) क्वालिटी में सुधार (Quality Improvement): इसमें उत्पाद की क्वालिटी, विक्रय उपरान्त सेवाएँ, शीघ्र सुपुर्दगी (Speedy Delivery), उपभोक्ता शिकायतों का शीघ्र निवारण, आदि शामिल हैं। इसे संपूर्ण क्वालिटी प्रबंध (Total Quality Management) व कर्मचारियों की संगठन के प्रति निष्ठा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(3) स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादों का निर्माण करना (Manufacturing Customised Products): वैश्विक व्यावसायिक इकाइयाँ अपने उत्पाद विश्व के विभिन्न देशों में बेचती हैं। विभिन्न देशों के उपभोक्ताओं की पसंद, फैशन, स्वाद, रुचि, प्राथमिकताओं में विभिन्नता होती है। अतः संपूर्ण विश्व में एक ही तरह का

(Demand): वैश्विक [illegible] इकाइयाँ [illegible] (Quick Responding to Customer) [illegible] इससे ग्राहकों की [illegible] पूरा हो जाते हैं।

वैश्विक निर्माणी क्रियाओं के आधार देश के चयन को प्रभावित करने वाले घटक

(Factors Affecting Location of Global Manufacturing)

[illegible] निर्माणी क्रियाओं के आधार देश का चयन एक [illegible] निर्णय है। [illegible] मुख्य घटक निम्नलिखित हैं:

(1) साधन लागत में अंतर (Difference in Factor Cost): [illegible] कुछ देशों में श्रम लागत अन्य देशों की तुलना में [illegible] कम होती है, जबकि कुछ अन्य देशों में उपरिव्यय (Overhead Cost) [illegible] श्रम लागत, उत्पादन लागत का मुख्य घटक है [illegible] विकासशील देशों में जनसंख्या अधिक होने के कारण [illegible] अधिक होने के कारण श्रम लागत कम है, इसलिए बहुत सी वैश्विक कम्पनियों ने [illegible] स्थापित किया है। वैश्विक कम्पनियाँ निर्माणी क्रियाओं के आधार के स्थान का चयन करने के लिए [illegible] (Total Cost Analysis) करती हैं [illegible] श्रम लागत कुल लागत का [illegible] अन्य लागतें अधिक महत्वपूर्ण होती हैं [illegible] किया जाता है, जैसे- नाइक ने अपने उत्पाद बनाने का कार्य चीन [illegible] सैन-फ्रांसिस्को (San Francisco) की एक कम्पनी को दिया, [illegible] क्योंकि इसके उत्पाद की कुल निर्माणी लागत में श्रम लागत का [illegible] अधिक था तथा सैन फ्रांसिस्को में उपरिव्यय लागतें चीन से कम थीं।

(2) सहायक उद्योगों व कुशल श्रम की उपलब्धता (Availability of Supporting Industries and Skilled Labour): वैश्विक कम्पनियाँ अपने उत्पादन आधार हेतु देश का चयन करते समय सहायक इकाइयों (Ancillary Units) की व कुशल श्रम की उपलब्धता को भी ध्यान में रखती हैं। [illegible] विकसित है, तथा उस उद्योग हेतु कुशल श्रमिक उपलब्ध हैं वहाँ वैश्विक [illegible] आधार स्थापित करते हैं।

(3) व्यापार में बाधाएँ (Trade Barriers): वैश्विक कम्पनियाँ अपना उत्पादन आधार स्थापित करने हेतु [illegible] का चयन करती हैं, जहाँ टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ न्यूनतम हों। यदि किसी देश में श्रम लागत [illegible] कम है परन्तु व्यापार बाधाएँ, जैसे-टैरिफ दरें, अधिक हैं, तो कम श्रम लागत संबंधी लाभ [illegible] अधिक टैरिफ दरों के कारण समाप्त हो जाते हैं।

(4) परिवहन लागत (Transportation Cost): उत्पादन आधार स्थापित करने हेतु [illegible] चाहिए, जहाँ पूर्तिकर्ता के स्थान से उत्पादन केंद्र तक कच्चा माल व कलपुर्जों को ढोने [illegible] उत्पाद उपभोक्ताओं तक ढोने संबंधी परिवहन लागत न्यूनतम हो।

(5) सरकारी नीति (Government Policy): वैश्विक कम्पनियाँ निर्माणी आधार संबंधी स्थान का चयन करते समय [illegible] मेजबान देश की विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) संबंधी नीति, श्रम प्रावधान, [illegible] भी ध्यान में रखती हैं। मेजबान देश की सरकार का विदेशी कम्पनियों के प्रति दृष्टिकोण [illegible]

स्थापित करना है। [illegible] देश का चयन किया जाना चाहिए जहाँ श्रम कानून लोचशील व अधिक सख्त नहीं है तथा [illegible] का विदेशी इकाइयों के प्रति [illegible] दृष्टिकोण है।

(6) **विनिमय दर में निकट भविष्य में परिवर्तन की उम्मीद** (Expected Future Movement in Exchange Rate): वैश्विक कम्पनियाँ अपनी निर्माणी इकाइयाँ स्थापित करने हेतु उस देश का चयन करती है, जहाँ निकट भविष्य में विनिमय दर स्थिर रहने की या कम होने की उम्मीद है। यदि उत्पादन-आधार स्थापित करने हेतु चुने गए देश में विनिमय दर बढ़ (Appreciates) जाती है तो वहाँ निम्न साधन लागत (Low Factor Cost) सम्बन्धी [illegible] हो जाता है। वहाँ विनिमय दर बढ़ने पर, वह स्थान उत्पादन आधार स्थापना हेतु आकर्षण का केन्द्र नहीं रहता।

(7) **उच्च स्थिर लागत** (Higher Fixed Cost): यदि निर्माणी संयंत्र की स्थापना में स्थिर लागत बहुत अधिक आती है, तो उत्पादन क्रियाएँ एक ही देश में केंद्रित की जानी चाहिए, परन्तु यदि संयंत्र स्थापना में स्थायी लागत कम आती है तो निर्माणी इकाइयाँ विभिन्न देशों में लगाई जा सकती हैं। इससे एक ही देश पर निर्भरता कम हो जाती है।

(8) **न्यूनतम कुशलता स्तर** (Minimum Efficiency Scale): कुछ उद्योगों में प्रति इकाई न्यूनतम लागत का स्तर तभी प्राप्त किया जा सकता है जब उत्पादन एक विशेष स्तर से ऊपर किया जाता है। उत्पादन के इस स्तर से नीचे प्रति इकाई उत्पादन लागत बहुत अधिक होती है। यदि उत्पादन का कुशलतम स्तर बहुत अधिक है तो उत्पादन क्रियाएँ एक ही स्थान पर केंद्रित की जानी चाहिए, परन्तु यदि यह स्तर निम्न है तो उत्पादन क्रियाएँ विभिन्न स्थानों पर विकेंद्रित की जानी चाहिए।

(9) **लोचशील निर्माणी तकनीकी से** (Flexible Manufacturing Technology): लोचशील निर्माणी तकनीकी के प्रयोग से संयंत्र में सूक्ष्म परिवर्तन करके स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न तरह के उत्पाद बनाए जा सकते हैं। ऐसी दशा में केंद्रित निर्माणी इकाई स्थापित की जानी चाहिए, परन्तु यदि तकनीकी में लोचशीलता नहीं है तो ग्राहकीय उत्पाद (Customised Products) बनाने के लिए विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न तरह के संयंत्र स्थापित किए जाने हैं ताकि विभिन्न ग्राहक बाजारों की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न तरह के उत्पाद बनाए जा सकें।

(10) **मूल्य भार अनुपात** (Value to Weight Ratio): कुछ उत्पादों का मूल्य भार अधिक होता है, अर्थात् वे उत्पाद महँगे होते हैं परन्तु उनका भार कम होता है, जैसे- जेवरात (Jewellery)। ऐसे उत्पादों की परिवहन लागत कम होती है अतः ऐसे उत्पादों का निर्माण एक ही स्थान पर करके उत्पाद का विभिन्न स्थानों पर परिवहन किया जा सकता है, परन्तु यदि 'मूल्य भार अनुपात' कम है अर्थात् उत्पाद भारी है, परन्तु इसका मूल्य कम है तो ऐसे उत्पादों की परिवहन लागत अधिक होती है। ऐसे उत्पादों का निर्माण कई स्थानों (Multiple Location) पर किया जाना चाहिए ताकि इनका परिवहन कम दूरी पर ही करना पड़े जिससे परिवहन लागतों का न्यूनतम किया जा सके।

(11) **सार्वभौमिक आवश्यकता वाले उत्पाद** (Universal Need Products): कुछ उत्पाद सार्वभौमिक प्रकृति के होते हैं अर्थात् विश्व के सभी देशों में लगभग एक ही तरह के उत्पाद प्रयोग किए जाते हैं, जैसे- कैलकुलेटर, घड़ियाँ, लैपटॉप आदि। ऐसे उत्पादों का एक ही स्थान पर बनाया जाना चाहिए, ताकि बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त हो सकें।

(12) **आधारसंरचना** (Infrastructure): वैश्विक इकाइयाँ ऐसे स्थान पर उत्पादन आधार स्थापित करना पसन्द करती हैं, जहाँ उच्च क्वालिटी की आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध हों, जैसे- परिवहन सुविधाएँ, नियमित ऊर्जा पूर्ति, वेयरहाउसिंग, बैंकिंग व बीमा सुविधाएँ, संचार सुविधाएँ, विज्ञापन एजेंसियाँ, विपणन अनुसंधान एजेंसियाँ, सुविकसित पूँजी बाजार व मुद्रा बाजार आदि।

(13) **देश संबंधी जोखिम व राजनीतिक जोखिम** (Country Risk and Political Risk): वैश्विक कम्पनियाँ उन देशों में उत्पादन आधार स्थापित करना पसन्द करती है, जहाँ देश संबंधी जोखिम व राजनीतिक जोखिम न्यूनतम हों। इसमें कानून व्यवस्था, राजनीतिक स्थिरता, सकारात्मक सांस्कृतिक दशाएँ, अनुकूल भौगोलिक वातावरण आदि शामिल हैं।

(14) **राष्ट्रीय छवि** (National Image): कुछ देशों के उत्पादों की [illegible] कुछ देशों की उत्पाद-गुणवत्ता के संबंध में अच्छी छवि नहीं होती [illegible] क्वालिटी के लिए सुप्रसिद्ध है, जबकि [illegible] क्वालिटी के होते हैं। [illegible] का चयन करते समय राष्ट्रीय छवि को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

14. केंद्रित व विकेंद्रित स्थापना स्थान (Concentrated and Dispersed Location)

[illegible] कम्पनियों का उत्पादन-आधार केंद्रित या विकेंद्रित हो सकता है। [illegible] उत्पादन-आधार स्थापित किया जाता है और इस प्रकार उत्पादन [illegible] विकेंद्रित स्थापना स्थान की दशा में निर्माणी क्रियाएँ विभिन्न देशों में [illegible]

- **केंद्रित स्थापना स्थान के लाभ (Benefits of Concentrated Location)**

(i) इस दशा में उच्च पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं, क्योंकि उत्पादन क्रियाएँ एक ही स्थान पर [illegible] बहुत अधिक मात्रा में किया जाता है।

(ii) स्थिर लागतें (Fixed Cost) का सर्वोत्तम प्रयोग हो जाता है [illegible]

(iii) उत्पादन क्रियाएँ एक ही स्थान पर होने से प्रमापित उत्पाद (Standardised Products) [illegible] उत्पादन व वितरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

(iv) उत्पादन क्रियाएँ एक ही स्थान पर केंद्रित होने से [illegible] नियंत्रण बेहतर हो सकता है।

(v) उत्पादन क्रियाएँ एक ही स्थान पर होने से टेक्नोलॉजी पर बेहतर नियंत्रण संभव हो जाता है।

(vi) उत्पादों की गुणवत्ता पर बेहतर नियंत्रण संभव हो जाता है।

(vii) वैश्विक पूर्ति प्रबंध का प्रशासन अधिक सरल होता है, क्योंकि [illegible] होते हैं। इससे स्कन्ध में न्यूनतम निवेश राशि (Minimum Investment in Inventory) [illegible] स्थान से उत्पादों का वितरण किया जाता है।

(viii) निर्माणी क्रियाएँ केंद्रित होने के कारण उत्पादन क्रियाओं का बेहतर [illegible] (Scheduling) हो जाता है।

- **विकेंद्रित (बिखरे हुए) स्थापना स्थान के लाभ (Benefits of Dispersed Location)**

(i) स्थानीय आवश्यकताओं, पसन्द, प्राथमिकताओं के अनुसार उत्पादन।

(ii) विपणन क्रियाओं; जैसे- कीमतों, संवर्धन कार्यक्रमों, वितरण, विक्रय [illegible]

(iii) राजनीतिक जोखिम, प्राकृतिक जोखिम, विपणन जोखिम का विविधीकरण (Diversification) [illegible] कोई समस्या; जैसे- प्राकृतिक आपदा, श्रम समस्या, आर्थिक संकट, [illegible] आदि आ जाती है, तो इससे अन्य देशों में व्यावसायिक क्रियाओं पर कुप्रभाव नहीं पड़ता। [illegible] मुद्रा के मूल्य में वृद्धि (Appreciation in Currency) होती है, तो इससे अन्य देशों में उत्पादन [illegible] पड़ने से जोखिम न्यूनतम हो जाता है।

15. बनाओ या क्रय करो निर्णय [Make or Buy Decision (Sourcing vs. Outsourcing)]

वैश्विक निर्माणी क्रियाओं में यह निर्णय लेना होता है कि व्यावसायिक इकाई सम्पूर्ण निर्माणी क्रियाएँ स्वयं करे या कुछ कलपुर्जे [illegible] (Components) बाहरी स्रोतों से बनवा कर बाहर से ही खरीद लिए जाएँ। यदि वैश्विक इकाई [illegible] उपकरण स्वयं बनाती है [illegible] आन्तरिक संसाधनों से कार्य करवाना (Domestic Sourcing) कहते हैं। यदि व्यावसायिक इकाई कुछ कलपुर्जे, उपकरण [illegible] बाहर से लेती है, तो इसे आउटसोर्सिंग (Outsourcing) कहते हैं।

[illegible] व्यावसायिक इकाई [illegible] (Vertical Forward Integration) [illegible] (Vertical Backward Integration) [illegible] (Vertical Forward Integration) [illegible]

[illegible] कम्प्यूटर [illegible] (Assemble) [illegible] कम्प्यूटर निर्माता [illegible]

Outsourcing by a Computer Manufacturer

वर्तमान में अधिकतर वैश्विक कम्पनियाँ बाहरी स्रोतों से विभिन्न क्रियाएँ करवाती है, तथा ये स्वयं व्यूहरचनात्मक क्रियाओं व मुख्य टेक्नोलॉजी पर ही अपना ध्यान केंद्रित करती है। इससे लागत कम करने में भी सहायता मिलती है। घरेलू साधनों से सभी क्रियाएँ करवाना महंगा सिद्ध हो सकता है या उच्च क्वालिटी की आगतों के अभाव में यह संभव नहीं भी हो सकता; जैसे- ऑटोमोबाइल उद्योग का निर्माता स्वयं केवल मुख्य कलपुर्जे/उपकरण (Strategic Components) ही बनाता है जबकि अन्य निर्माणी क्रियाएँ कम लागत पर बाहरी स्रोतों से करवाई जाती है। कंपनी स्वयं डिजाइनिंग, विपणन क्रियाओं, अनुसंधान व विकास क्रियाओं पर ही ध्यान केंद्रित करती है। इसी तरह कम्प्यूटर निर्माता; जैसे- Dell, Apple, Compac आदि कम्प्यूटर के विभिन्न पुर्जे, उपकरण बाहरी स्रोतों से बनवाते है।

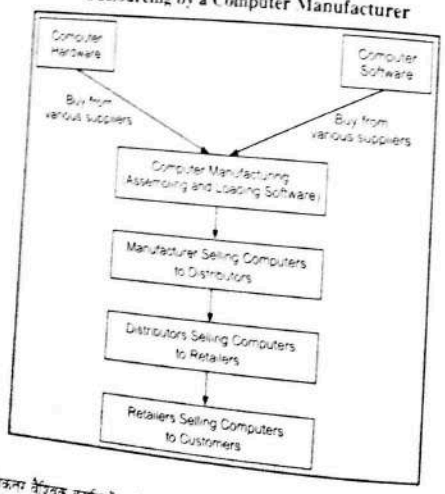

[illegible] औद्योगिक समूहों (Industrial Clusters) [illegible] सहायक इकाइयाँ (Ancillary Units) [illegible] जैसे- Dell Computer Corporation [illegible] (Assembly Operation Unit) [illegible] (Stealth Manufacturing) [illegible] कलपुर्जे, उपकरण (Components) [illegible] (Final Product) [illegible]

इसके अलावा [illegible] (Customer Care Centre) [illegible] (Financial Statements) बनवाना आदि सभी कार्य बाहरी स्रोतों से करवाए जाते है। [illegible] उपभोक्ताओं की शिकायतें सुनना, उनका निवारण करना आदि भी बाहरी स्रोतों से करवाए जाते है।

- **स्वयं निर्माणी क्रियाएँ (घरेलू स्रोतों से क्रियाएँ) करने के लाभ**
  [Advantages of Make (Domestic Sourcing) Decision]

(i) प्रति इकाई **उत्पादन लागत में कमी** आती है क्योंकि व्यावसायिक इकाई स्वयं निर्माणी कार्य करने में अधिक सक्षम होती है।

(ii) टेक्नोलॉजी पर **बेहतर नियंत्रण** संभव हो पाता है।

(iii) उत्पादन, वितरण व सुपुर्दगी संबंधी समय-सारणी (Production and Delivery Schedule) पर बेहतर नियंत्रण संभव हो पाता है।

(iv) क्वालिटी पर बेहतर नियंत्रण संभव हो जाता है क्योंकि वैश्विक कंपनी अपने ब्रांड का ध्यान में रखते हुए उत्पाद की क्वालिटी के बारे में अधिक सचेत होती है।

(v) घरेलू स्रोतों से व्यावसायिक क्रियाएँ करवाने से विभिन्न समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो जाता है, जैसे- लंबी भौगोलिक दूरी, जटिल पूर्ति श्रृंखला, विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव, [illegible] टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाएँ, राजनीतिक जोखिम व देश संबंधी जोखिम आदि संबंधी समस्याएं।

- **आंतरिक स्रोतों से निर्माणी क्रियाएँ करने के दोष**
  [Disadvantages of Make (Domestic Sourcing) Decision]

(i) प्रति इकाई **लागत में वृद्धि** क्योंकि व्यावसायिक इकाई सभी उपकरण, कलपुर्जे बनाने में सक्षम नहीं हो सकती।

(ii) सभी कलपुर्जे स्वयं बनाने में प्लांटों में **अधिक निवेश** करना पड़ता है।

(iii) **श्रम प्रबंध** (Labour Management) में कठिनाई।

(iv) सभी क्रियाएँ स्वयं करने के लिए **अधिक विशेषज्ञों** की नियुक्ति करनी पड़ती है। **बाहरी स्रोतों**, जिनके पास अधिक विशिष्टता व विशेषज्ञता हो सकती है, की सुविधाओं से लाभ नहीं उठाया जा सकता।

(v) व्यवसाय की सभी क्रियाएँ, जैसे- उत्पादन, वितरण, विज्ञापन, विक्रय संवर्धन, विक्रय उपरांत सेवाएं आदि स्वयं करना बहुत की जटिल कार्य है।

(vi) ये सभी क्रियाएँ स्वयं करने हेतु बहुत विशाल व **जटिल संगठनात्मक संरचना** की आवश्यकता होती है।

- **बाहरी स्रोतों से क्रय निर्णय के लाभ [Advantages of Buy Decision (Outsourcing)]**

(i) व्यावसायिक इकाई, विभिन्न देशों में सर्वोचित देश, जहाँ व्यापार बाधाएँ न्यूनतम हो, जहाँ विनिमय दर प्रतिकूल हो, के पूर्तिकर्ता का चयन कर सकती है। व्यावसायिक इकाई विभिन्न देशों के पूर्तिकर्ताओं के साथ मोलभाव (Bargain) करके सर्वोपयुक्त पूर्तिकर्ता का चयन कर सकती है।

(ii) व्यावसायिक इकाई को विश्व के विभिन्न देशों की टेक्नोलॉजी प्रयोग करने का अवसर मिलता है। व्यावसायिक क्रियाएँ बाहरी स्रोतों से करवाने में श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण के लाभ उठाए जा सकते है। इससे प्रति इकाई लागत में कमी आती है।

(iii) संगठनात्मक संरचना अधिक विशाल न होने के कारण कम पूंजी की आवश्यकता होती है।

(iv) व्यावसायिक क्रियाएँ बाहरी स्रोतों से करवाकर कपनी व्यूहरचनात्मक व मूल क्रियाओं पर अधिक ध्यान दे सकती है।

(v) वैश्विक इकाई को श्रम संबधी कम समस्याओं का सामना करना पड़ता है, क्योंकि व्यावसायिक क्रियाएँ बाहरी स्रोतों से करवाने पर कपनी को कम कर्मचारियों व श्रमिकों की नियुक्ति करनी पड़ती है।

(vi) पूर्तिकर्ता के संबध में अधिक लोचशीलता होती है। यदि कोई एक पूर्तिकर्ता निर्धारित समय व कीमत पर उचित क्वालिटी का सामान उपलब्ध नहीं करवाता, तो वैश्विक कपनी किसी अन्य बाहरी स्रोत को क्रय आदेश दे सकती है।

(vii) आउटसोर्सिंग में व्यावसायिक जोखिम कम होता है। सभी व्यावसायिक क्रियाएँ स्वय करने पर उत्पादन कार्यों से जुड़े जोखिम का सामना कपनी को स्वय ही करना पड़ता है। परंतु यदि उत्पादन कार्य बाहरी स्रोतों से करवाए जाते है, तो उत्पादन कार्यों से जुड़े जोखिम का कुछ अंश बाहरी स्रोतों को हस्तान्तरित हो जाता है। इससे कुल व्यावसायिक जोखिम कम हो जाता है।

(viii) आऊटसोर्सिंग से ऐसे कच्चे माल का लाभ उठाया जा सकता है, जो केवल अन्य देशों में ही उपलब्ध है।

- **बाहरी स्रोतों से क्रय निर्णय/आउटसोर्सिंग के दोष [Disadvantages of Buy Decision (Outsourcing)]**

(i) **लागत पर कम नियंत्रण** (Less Control on Cost): व्यावसायिक इकाई का उत्पाद निर्माण की लागत पर नियंत्रण कम हो जाता है क्योंकि उत्पादन क्रियाएँ बाहरी स्रोतों से करवाई जाती है। वैश्विक इकाई स्वय लागत में कमी करने हेतु उपाय नहीं कर सकती।

(ii) **पूर्ति मे अनिश्चितता** (Uncertainty in Supply): यदि बाहरी पूर्तिकर्ता समय पर माल की सुपुर्दगी नहीं करता तो वैश्विक कपनी उचित समय पर अपने ग्राहकों को सामान नहीं दे पाएगी, इससे कपनी की छवि पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(iii) **क्वालिटी व सुरक्षा संबंधी चुनौतियाँ** (Quality and Safety Threats): बाहरी स्रोतों से उत्पाद बनवाने पर भी उत्पाद की क्वालिटी व सुरक्षा संबधी जिम्मेवारी वैश्विक कपनी की ही होती है। यदि बाहरी स्रोतों ने घटिया क्वालिटी का उत्पाद दिया है, या उसमें सुरक्षा संबधी जोखिम अधिक है तो अंतिम उपभोक्ता वैश्विक कपनी के विरुद्ध ही कानूनी कार्यवाही करेगा, न कि उस बाहरी स्रोत के विरुद्ध जिसने घटिया क्वालिटी का उत्पाद बना कर वैश्विक कपनी को दिया है। इससे वैश्विक कपनी की छवि पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे- एक अमेरिकन कंपनी ने कुत्ते व बिल्लियों का भोजन बनवाने का कार्य चीन की एक कपनी से करवाया। परंतु चीन की कंपनी द्वारा निर्मित यह पशु-भोजन बहुत ही घटिया क्वालिटी का निकला, जिससे अमेरिका में उस पशु-भोजन का सेवन करने वाले बहुत से कुत्ते, बिल्लियों की मौत हो गई। इस घटना के कारण अमेरिकन कपनी को पशु-मालिकों को बहुत हर्जाना (Compensation) भी देना पड़ा और अमेरिकन कंपनी की छवि भी बहुत खराब हो गई, जबकि संपूर्ण दुर्घटना में चीन की कंपनी की ही गलती थी।

(iv) **पूर्तिकर्ता का हावी होना** (Dominance of Supplier): यदि उत्पाद के मुख्य उपकरण (Strategic Component) के निर्माण का कार्य किसी बाहरी स्रोत को दे दिया जाता है तथा वह बाहरी स्रोत उस उपकरण का अकेला ही पूर्तिकर्ता है, तो वह अपनी एकाधिकारिक स्थिति का लाभ उठाते हुए कंपनी पर हावी हो सकता है तथा उस उपकरण की मनचाही कीमत वैश्विक कपनी से वसूल कर सकता है।

(v) **अप्रचलित टेक्नोलॉजी से जुड़ जाने की संभावना** (Possibility of being Tied to Obsolete Technology): कई बार बाहरी स्रोत अप्रचलित टेक्नोलॉजी से निर्मित उत्पाद या अप्रचलित टेक्नोलॉजी वाले उपकरण (Components) बनाते हैं। इससे वैश्विक कंपनी के तैयार माल की क्वालिटी व प्रमाप पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(vi) आऊटसोर्सिंग में परिवहन लागत व संचार लागत बहुत अधिक पड़ती है।

घरेलू सोर्सिंग व आऊटसोर्सिंग के गुणों व दोषों का विश्लेषण करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि वैश्विक कंपनी को इन दोनों के बीच का रास्ता अपनाना चाहिए। इसे मुख्य व्यूहरचनात्मक उपकरण स्वयं बनाने चाहिए जबकि गैर-व्यूहरचनात्मक क्रियाएँ बाहरी स्रोतों से करवानी चाहिए। बाहरी स्रोतों का चयन करते समय उनकी साख-क्षमता, छवि, अनुभव, टेक्नोलॉजी स्तर, वित्तीय स्थिति, पिछले रिकार्ड आदि का गहन विश्लेषण कर लेना चाहिए। आऊटसोर्सिंग से जुड़ी समस्याओं के समाधान हेतु बहुत सी वैश्विक कंपनियाँ पूर्तिकर्ताओं के साथ लंबवत् एकीकरण करती हैं। पूर्तिकर्ताओं से दीर्घकालीन संबंध स्थापित करने हेतु वैश्विक कंपनियाँ पूर्तिकर्ता की कंपनी के कुछ अंश स्वयं खरीद लेती हैं।

6. वैश्विक पूर्ति शृंखला प्रबंध (Global Supply Chain Management)

वैश्विक पूर्ति शृंखला प्रबंध एक ऐसी प्रक्रिया है जो कच्चे माल के पूर्तिकर्ता से प्रारंभ होकर अंतिम उपभोक्ता पर समाप्त होती है। यह विभिन्न एजेंसियों जैसे- कच्चे माल व उपकरणों के पूर्तिकर्ताओं, उत्पादकों, वितरकों व ग्राहकों के मध्य समन्वय स्थापित करता है। इसमें संभार-तंत्र (Logistics) जिसे सामग्री-प्रबंध (Material Management) भी कहते हैं, भी शामिल है। पूर्ति शृंखला प्रबंध का क्षेत्र संभार-तंत्र से अधिक व्यापक है तथा इसमें पूर्तिकर्ताओं व उपभोक्ताओं के साथ संबंध स्थापित करना भी शामिल है। वैश्विक व्यवसाय में पूर्ति शृंखला का प्रबंध करना बहुत जटिल कार्य है क्योंकि इसमें पूर्तिकर्ता विभिन्न देशों में बिखरे होते हैं, उत्पादन क्रियाएँ केवल एक ही देश में सीमित न होकर विभिन्न देशों में की जाती है। विभिन्न देशों में वेयरहाउस भी स्थापित करने पड़ते हैं ताकि अंतिम उत्पाद सरलता से उपलब्ध हो सकें। अधिकतर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विश्वभर में फैले हुए पूर्तिकर्ताओं, उत्पादकों, उपभोक्ताओं व मध्यस्थों के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए सूचना-तकनीकी का प्रयोग करती हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों, जैसे- एप्पल (Apple), टैस्को, नोकिया, टोयोटा, डेल (Dell), सेमसंग आदि ने वैश्विक पूर्ति शृंखला नेटवर्क के सफल प्रबंध से व्यवसाय को वैश्विक स्तर पर बहुत सफल बनाया है।

कुशल पूर्ति शृंखला प्रबंध से कच्चे माल, उपकरणों, तैयार उत्पादों के स्टॉक में फंसी राशि को न्यूनतम किया जा सकता है। इससे स्कंध आवर्तन दर (Stock Turnover Ratio) में कमी आती है, दोषपूर्ण (Defective) कच्चे माल का परित्याग करके उत्पाद की क्वालिटी में सुधार लाया जा सकता है। कुशल पूर्ति शृंखला प्रबंध से परिवहन लागत व संग्रहण (Storage) लागत में कमी आती है व उपभोक्ताओं के क्रय-आदेशों की सुपुर्दगी शीघ्रता से की जा सकती है। इन सबसे कंपनी की लागतों में कमी व लाभों में वृद्धि होती है। न केवल निर्माणी इकाइयों अपितु सेवाएं प्रदान करने वाली व्यावसायिक इकाइयों के लिए भी प्रभावकारी पूर्ति शृंखला प्रबंध का बहुत महत्त्व है।

जे० बी० हाऊलीहेन (J.B. Houlihen) के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय पूर्ति शृंखला प्रबंध में निम्न शामिल हैं

(i) इसमें अंतिम उपभोक्ताओं को उत्पाद व सेवाएँ उपलब्ध कराने की संपूर्ण प्रक्रिया शामिल होती है।

(ii) इसके अंतर्गत सभी पक्षों तथा पूर्तिकर्ताओं व ग्राहकों के मध्य संचार तंत्र के कार्यों को एक ही व्यवस्था माना जाता है।

(iii) पूर्ति शृंखला प्रबंध के क्षेत्र में खरीदने, उत्पादन करने, व वितरण करने से संबंधित सभी क्रियाएँ शामिल होती है।

(iv) पूर्ति शृंखला संगठनात्मक सीमाओं से आगे तक फैली होती है।

(v) इसे सभी सदस्यों को प्राप्त होने वाली सूचना के माध्यम से समन्वित किया जाता है।

(vi) पूर्ति शृंखला का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को बेहतर सेवाएं उपलब्ध कराना है। इसमें लागतों व लाभों के मध्य संतुलन स्थापित किया जाता है।"

निर्माणी इकाई व सेवा इकाई के पूर्ति श्रृंखला नेटवर्क को निम्न चार्टों में दर्शाया गया है:

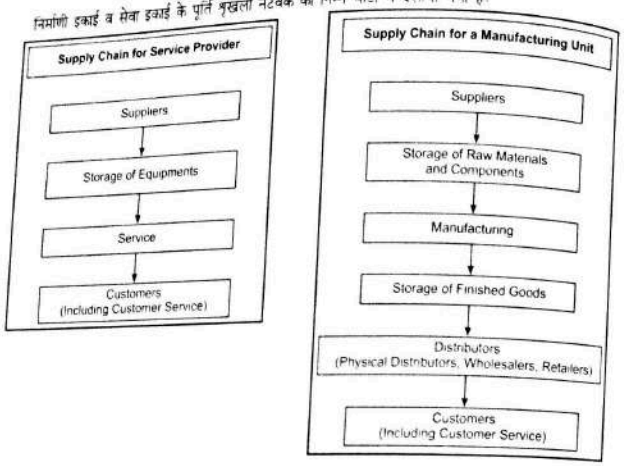

■ 6.1 अंतर्राष्ट्रीय संभार तंत्र प्रबंध (International Logistics Management)

वैश्विक पूर्ति श्रृंखला प्रबंध प्रक्रिया में अंतर्राष्ट्रीय संभार तंत्र प्रबंध एक मुख्य तत्व है। **डी॰ डेनियल व ली** (D. Daniel and Lee) के अनुसार, **''संभार तंत्र पूर्ति श्रृंखला प्रक्रिया का एक तत्व है, जो उत्पादन-केंद्र से उपभोग-केंद्र तक उत्पादों, सेवाओं व सूचनाओं के प्रवाह को सुचारू बनाता है तथा इन्हें नियोजित व नियंत्रित करता है जिससे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।''** संभार तंत्र पूर्ति श्रृंखला प्रबंध का ऐसा अंग है जो कच्चे माल, कलपुर्जों व उपकरण तथा निर्मित माल के परिवहन व संग्रहण से संबंधित है। पूर्ति श्रृंखला प्रबंध का क्षेत्र संभार तंत्र के क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। इसमें पूर्तिकर्ताओं व ग्राहकों के साथ संबंध भी शामिल है। यदि पूर्ति के स्रोत व मुख्य ग्राहक निर्माण स्थान के समीप ही उपलब्ध हों, तब संभार तंत्र नेटवर्क साधारण होता है। यदि पूर्तिकर्ताओं की संख्या बहुत अधिक हो तथा पूर्तिकर्ता निर्माण स्थान से अधिक दूरी पर स्थित हों तथा विभिन्न देशों में फैले हों तथा इसी तरह यदि ग्राहक भी निर्माण स्थान से बहुत दूरी पर तथा विभिन्न देशों में फैले हों, तब अंतर्राष्ट्रीय संभार तंत्र बहुत जटिल होता है। इसमें विभिन्न देशों के मध्य परिवहन सेवाओं जैसे शिपिंग, वायु यातायात की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न देशों में पैकेजिंग संबंधी नियमों में विभिन्नता होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय संभार तंत्र में पैकेजिंग में भी जटिलता आती है।

आजकल संभार तंत्र में सूचना तकनीक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। बहुत सी वैश्विक कंपनियाँ इलेक्ट्रॉनिक डाटा इंटरचेंज द्वारा पूर्तिकर्ताओं, निर्माताओं, ग्राहकों तथा मध्यस्थों आदि के बीच संबंध स्थापित कर रही हैं। वॉलमार्ट (रिटेल स्टोर) के 70 देशों में 60,000 से भी अधिक पूर्तिकर्ता हैं, यह कंपनी सूचना तकनीकी का प्रयोग करके अपने संभार तंत्र को प्रबंधित कर रही है। इलेक्ट्रॉनिक डाटा इंटरचेंज का प्रयोग सीमा शुल्क संबंधी औपचारिकताओं का शीघ्र निपटारा करने तथा विभिन्न देशों में उत्पादों को ग्राहकों को शीघ्र उपलब्ध करवाने में भी किया जा रहा है। इससे सामग्री प्राप्त करने की अवधि (Procurement time/Lead time) को कम किया जा सकता है, अर्थात् सामग्री के लिए क्रय आदेश देने व सामग्री भौतिक रूप से प्राप्त करने के मध्य समय में कमी आती है।

सूचना तकनीकी के प्रयोग से पूर्तिकर्ताओं, निर्माताओं तथा ग्राहकों के बीच एक नेटवर्क विकसित कर लिया जाता है। जब ग्राहक इंटरनेट के प्रयोग से, कंपनी से उत्पाद क्रय करने का आदेश देता है तब यह आदेश निर्माता, पूर्तिकर्ताओं, संग्रहण इकाई आदि के पास बिना किसी विलंब के पहुँच जाता है। इससे सभी संबंधित पक्ष अपना-अपना कार्य शुरू कर देते है। इससे निर्माता को कच्चे माल,

कलपुर्जों आदि का अधिक स्टॉक भी नहीं रखना पड़ता तथा ग्राहकों का आदेश शीघ्रता से पूरा हो जाता है। आधुनिक वेब (Web) पर आधारित सूचना व्यवस्था संभार तंत्र के प्रबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

■ अंतर्राष्ट्रीय सामग्री प्रबंध (International Material Management)

निर्माणी इकाइयों में सामग्री की लागत कुल लागत का एक महत्वपूर्ण तत्व है। बहुत से उद्योगों में, सामग्री लागत कुल उत्पाद लागत का 50 प्रतिशत से भी अधिक होता है। अतः कुशल सामग्री प्रबंध से सामग्री लागत में थोड़ी सी बचत भी कुल लागत में कमी लाने में बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है। घरेलू व्यवसाय की तुलना में वैश्विक व्यवसाय में सामग्री प्रबंध बहुत अधिक जटिल होता है। सामग्री प्रबंध, संभार तंत्र प्रबंध का मुख्य संघटक है। इसमें कच्चे माल, कलपुर्जों, उपकरणों, अर्धनिर्मित माल, तैयार माल का प्रबंध शामिल है। सामग्री प्रबंध का उद्देश्य सामग्री को उचित समय पर उपलब्ध करवाना तथा सामग्री में निवेश को न्यूनतम करना है। परंतु ये दोनों उद्देश्य परस्पर विरोधी हैं क्योंकि जरूरत पड़ने पर सामग्री की शीघ्र उपलब्धता हेतु सामग्री के अधिक भंडार रखने पड़ते हैं, जिससे स्कंध (Inventory) में निवेश राशि बढ़ जाती है, जिससे स्कंध-लागत में वृद्धि होती है। अतः इन दो विरोधाभासी उद्देश्यों में संतुलन स्थापित करना पड़ता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सामग्री के पूर्तिकर्ता विभिन्न देशों में फैले होते है। इसके अलावा यह भी संभव है कि उत्पादन आधार तो किसी एक देश में है जबकि सामग्री उपलब्ध करवाने वाले पूर्तिकर्ता किसी अन्य देश में हों। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में घरेलू व्यवसाय की तुलना में सामग्री के परिवहन में अधिक समय लगता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सामग्री के एक देश से दूसरे देश में परिवहन में टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं का सामना करना पड़ता है। सामग्री के एक देश से दूसरे देश में प्रवाह में दस्तावेजी औपचारिकताएँ अत्यधिक होती है। इन सब कारणों से अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सामग्री प्रबंध का कार्य बहुत जटिल हो जाता है।

अतः सामग्री प्रबंध का उद्देश्य जरूरत पड़ने पर अच्छी क्वालिटी की सामग्री, कम लागत पर, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवाना है। इसमें सामग्री का उचित संग्रहण भी शामिल है ताकि गोदाम में सामग्री की चोरी, रिसाव (Leakage), कपट, धोखा धड़ी आदि कुप्रयोगों को रोका जा सके। यह सामग्री की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करता है ताकि स्कंध समाप्ति (Stock-Out) की समस्या न आए। **बायर्स व होम्स** के अनुसार, **"सामग्री प्रबंध एक ऐसी व्यवस्था है जो आवश्यक क्वालिटी की आवश्यक सामग्री को उचित समय पर, उचित कीमत पर, आवश्यक मात्रा में उपलब्ध करवाती है।"** (Material management is the system that ensures the availability of the required quantity of material, of the required quality, at the required time with the minimum amount of capital tied up. – **Buyers and Holmes**)। स्कंध के संग्रहण में स्कंध का वर्गीकरण व कोड निर्धारित करना (Classification and Codification of Inventory), बिन कार्ड (Bin Card) व स्टोर बही-खाते बनाना, निरंतर स्कंध व्यवस्था (Perpetual Inventory System) स्थापित करना, आदि शामिल है: विभिन्न स्कंध स्तर जैसे- न्यूनतम स्तर, अधिकतम स्तर, पुनः आदेश स्तर (Re-order Level), खतरा स्तर (Danger Level), आदि निर्धारित किए जाते है। सामग्री को क्रय करते समय पूर्तिकर्ता का चयन बहुत सोच समझ कर किया जाता है। सामग्री क्रय प्रबंधक (Material Purchase Manager) को सामग्री का क्रय आदेश देते समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि क्रय आदेश उचित मात्रा मे दिया गया है जिससे सामग्री की आदेश लागत व स्टोरेज लागत (Ordering Cost and Carrying Cost) को न्यूनतम किया जा सके। इसके अलावा कीमती स्कंध पर सख्त नियंत्रण, दैनिक प्रयोग के स्कंध पर साधारण नियंत्रण तथा सस्ती मदों के स्कंध पर न्यूनतम नियंत्रण किया जाता है। इसके लिए स्कंध नियंत्रण की ABC प्रणाली (Always Better Control System) को अपनाया जाता है। इसे निम्न चार्ट मे दर्शाया गया है।

ABC System of Inventory Control

Stock Category	% of Total Value	% of Total Quantity
A	70 - 80	5 - 10
B	20 - 25	20 - 25
C	5 - 10	70 - 80

उपरोक्त चार्ट से स्पष्ट है कि A वर्ग की मदों की कीमत सर्वाधिक, B वर्ग की मध्यम तथा C वर्ग की मदों की कीमत कम होती है।

निष्कर्ष में, स्कन्ध प्रबंध में मुख्यतया निम्न शामिल हैं:

(i) सामग्री को खरीदना (Procurement of Material)
(ii) सामग्री का संग्रहण (Storage of Material)
(iii) सामग्री को जारी करना (Issue of Material)
(iv) सामग्री की हानि पर नियंत्रण (Control over Material Loss)

● **सामग्री प्रबंध के उद्देश्य/लाभ (Objectives/Advantages of Material Management)**

(i) यह कच्चे माल, कलपुर्जों, उपकरणों की बिना रुकावट के नियमित पूर्ति सुनिश्चित करता है।
(ii) यह तैयार उत्पादों का पर्याप्त स्कन्ध सुनिश्चित करता है ताकि स्कन्ध समाप्ति (Stock-Out) की समस्या न आए।
(iii) यह स्कन्ध में निवेश को न्यूनतम करता है। इससे स्कन्ध रखाव लागत (Inventory Carrying Cost) में कमी आती है। इससे न केवल कुल उत्पादन लागत में कमी आती है, बल्कि स्कन्ध में लगे हुए निवेश की राशि (Blockage of Funds in Inventory) में भी कमी आती है।
(iv) इससे सामग्री के क्रय व संग्रहण की व्यर्थता में कमी आती है। सामग्री क्रय करते समय, अच्छी क्वालिटी की सामग्री, उचित कीमत, उचित आदेश-आकार (Optimum Order Size) आदि को ध्यान में रखा जाता है। उचित आदेश-आकार के लिए आर्थिक आदेश मात्रा तकनीक (Economic Order Quantity Technique) का प्रयोग किया जाता है। संग्रहण अवस्था में, सामग्री की चोरी, रिसाव, कपट, गबन, अप्रचलन आदि के कारण व्यर्थता को न्यूनतम किया जाता है।
(v) यह पूर्तिकर्ताओं, उत्पादन इकाई, स्कन्ध प्रबंधकों, विश्वभर में फैले ग्राहकों के मध्य सूचनाओं का स्वतंत्र प्रवाह सुनिश्चित करता है। विश्वभर में फैले व्यवसाय में सूचनाओं के स्वतंत्र प्रवाह का विशेष महत्त्व है।
(vi) यह प्रभावी सामग्री रिपोर्टिंग व्यवस्था सुनिश्चित करता है ताकि सामग्री प्रबंध में त्रुटियों की सही समय पर जानकारी मिल सके तथा उचित समय पर सुधारात्मक उपाय किए जा सकें।
(vii) यह 'अपवाद से प्रबंध' (Management by Exception) के लाभ सुनिश्चित करता है। इसमें कीमती मदों पर सख्त नियंत्रण तथा सस्ती मदों पर कम नियंत्रण किया जाता है।

■ 7. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सामग्री प्रबंध/पूर्ति शृंखला प्रबंध/संभार तंत्र की आधुनिक तकनीकें (Modern Techniques of Material Management/Logistics/Supply Chain Management in International Business)

वैश्विक व्यावसायिक इकाई का आकार बहुत बड़ा होता है। इसके पूर्तिकर्ता व ग्राहक विश्वभर में फैले होते हैं। जैसे- वाल मार्ट के 60,000 पूर्तिकर्ता हैं जो 70 देशों में स्थित हैं। वैश्विक कंपनियाँ वैश्विक पूर्ति शृंखला प्रबंध के लिए सूचना-तकनीकी का प्रयोग करती हैं। वैश्विक पूर्ति शृंखला प्रबंध की मुख्य तकनीकें निम्नलिखित हैं:

(1) उसी समय स्कन्ध व्यवस्था (Just-in-Time Inventory System): आजकल कंपनियाँ स्कन्ध प्रबंध की 'उसी समय स्कन्ध व्यवस्था' का प्रयोग करती हैं। इस विधि में उत्पादन प्लांट पर आवश्यक सामग्री उसी समय ही आती है, जब उसका निर्माण प्रक्रिया में प्रयोग किया जाना है न कि इससे पहले। इससे स्कन्ध रखाव लागत व भंडारण लागत (Inventory Carrying and Storage Cost) में कमी आती है। इससे स्कन्ध आवर्तन में सुधार आता है। इसमें क्रय की गई सामग्री में खराबी का उसी समय ही पता चल जाता है, अतः खराब सामग्री को साथ ही प्रतिस्थापित करवाया जा सकता है। इससे व्यावसायिक इकाई के उत्पादों की क्वालिटी में सुधार करने में सहायता मिलती है; जैसे-टोयोटा ऑटोमोबाइल कंपनी ने 'उसी समय स्कन्ध व्यवस्था' को अपना कर अपनी प्रतिद्वंद्वी अमेरिकन ऑटोमोबाइल कंपनियों को पीछे कर दिया है, जबकि अमेरिकन ऑटोमोबाइल कंपनियाँ बहुत पहले से बाजार में स्थापित थीं।

(2) इलेक्ट्रॉनिक डाटा इंटरचेंज [Electronic Data Interchange (EDI)]: EDI एक इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है, जिसके द्वारा एक कम्प्यूटर से अन्य कम्प्यूटर तक आँकड़े/फाइलें भेजी जाती हैं। इसकी सहायता से पूर्तिकर्ताओं, उत्पादकों, ग्राहकों व सहायक इकाइयों (Ancillary Units) के मध्य इलेक्ट्रॉनिक ढंग से संपर्क स्थापित किया जाता है। इसमें दस्तावेजों की शीघ्र प्रोसेसिंग, कच्चे माल, कलपुर्जों व उपकरणों की पूर्तिकर्ताओं से उत्पादकों को शीघ्र

सुपुर्दगी, तथा निर्मित उत्पादों की उत्पादकों से ग्राहकों को शीघ्र सुपुर्दगी में सहायता मिलती है। इससे सीमा शुल्क संबंधी औपचारिकताओं का शीघ्र निपटारा (Fast Custom Clearance) करने में तथा स्कन्ध में निवेश कम करने में सहायता मिलती है। सुप्रसिद्ध वैश्विक फुटकर (Retail) स्टोर वॉल मार्ट (Wal Mart) वैश्विक पूर्ति शृंखला प्रबंध में EDI प्रणाली का प्रयोग करता है।

(3) सामग्री आवश्यकता नियोजन [Material Requirement Planning (MRP)]: इसे उद्यम संसाधन नियोजन (Enterprise Resource Planning - ERP) भी कहते हैं। आजकल सामग्री आवश्यकता नियोजन में तथा उचित स्कन्ध प्रबंध में सूचना-तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। सामग्री की आवश्यकताओं के नियोजन हेतु MRP सॉफ्टवेयर विकसित किया गया है, जो कंपनी के सूचना तंत्र के विभिन्न तत्त्वों के मध्य इलेक्ट्रॉनिक कड़ी (Electronic Linkage) स्थापित करता है, जिससे वैश्विक कंपनी के विभिन्न स्थानों के ग्राहकों से प्राप्त क्रय आदेशों, उत्पादन इकाई व पूर्तिकर्ताओं के मध्य सूचनाओं का शीघ्र प्रवाह इलेक्ट्रॉनिक विधि से होता है। इससे पूर्तिकर्ताओं को कंपनी के उत्पादन कार्यक्रम व सामग्री की आवश्यकता का पता चल जाता है।

(4) रेडियो आवृत्ति पहचान [Radio Frequency Identity (RFID)]: यह एक इलेक्ट्रॉनिक टैग (Tag) है, जिससे उत्पाद के स्थिति-स्थान व मात्रा का शीघ्र पता लग जाता है। इलेक्ट्रॉनिक कार्ड रीडर (Card Reader) की मदद से रेडियो तरंगों द्वारा, इलेक्ट्रॉनिक टैग पर दी गई सूचनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। यह व्यवस्था निर्माताओं, पूर्तिकर्ताओं, वितरकों को निर्माणी प्रक्रिया में अपने उत्पाद के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करने में सहायता करती है। कुछ बड़ी वैश्विक इकाइयाँ जैसे- वॉल मार्ट, प्रोक्टर व गैम्बल इस विधि का प्रयोग करती हैं। अब कुछ हवाई अड्डों पर भी यात्रियों का सामान ढूंढने के लिए इलेक्ट्रॉनिक टैग का प्रयोग किया जाने लगा है।

(5) ई-कॉमर्स (E-Commerce): ई-कॉमर्स में वैश्विक पूर्ति शृंखला को इंटरनेट के माध्यम से प्रबंधित किया जाता है। इसमें पूर्तिकर्ताओं व निर्माताओं के मध्य तथा निर्माताओं व उपभोक्ताओं के मध्य सूचनाओं के शीघ्र प्रवाह को संभव बनाया जाता है। यह कच्चे माल, उपकरणों, कलपुर्जों व तैयार माल के स्टॉक को कम करने में सहायक होता है। इसमें निर्माता द्वारा पूर्तिकर्ताओं को दिए क्रय आदेशों तथा ग्राहकों द्वारा निर्माता को दिए गए क्रय आदेशों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

● **अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में पूर्तिकर्ताओं व निर्माताओं के मध्य संबंध (Linkages between Suppliers and Manufacturers in International Business)**

एक वैश्विक व्यावसायिक इकाई के पूर्तिकर्ताओं, निर्माताओं व इसके बाजारों के मध्य संबंध को निम्न चित्र में दिखाया गया है:

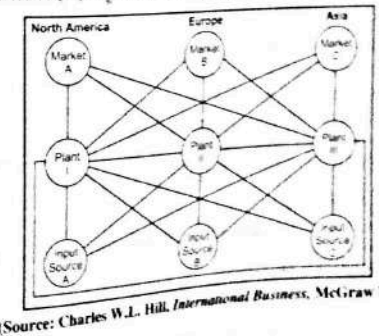

(Source: Charles W.L. Hill, *International Business*, McGraw Hill)

इस चित्र में आगत स्रोतों, विभिन्न निर्माणी प्लांट तथा विभिन्न बाजारों के मध्य संबंध को दिखाया गया है। इस नेटवर्क से ज्ञात होता है कि विभिन्न निर्माणी प्लांट विभिन्न आगत स्रोतों से सामग्री प्राप्त कर रहे हैं व विभिन्न बाजारों को उत्पाद उपलब्ध करवा रहे हैं व प्लांट आपस में भी संबंधित हैं। पूर्तिकर्ताओं, बाजारों व प्लांटों की संख्या बढ़ने पर यह नेटवर्क बहुत जटिल हो जाता है। इसे सूचना तकनीकी साफ्टवेयरों की सहायता से प्रबंधित किया जाता है।

■ 8. वैश्विक पूर्ति शृंखला प्रबंध/अंतर्राष्ट्रीय संभार तंत्र के समक्ष चुनौतियाँ/कठिनाइयाँ

(Challenges Before/Difficulties in Global Supply Chain Management/International Logistics Management)

(1) जटिल प्रकृति (Complex Nature): वैश्विक व्यवसाय में पूर्तिकर्ता, निर्माणी इकाई, डीलर, उपभोक्ता आदि विश्व के विभिन्न देशों में फैले होते हैं। पूर्तिकर्ताओं व डीलरों की संख्या हजारों में तथा ग्राहकों की संख्या लाखों में होती है। अतः घरेलू व्यवसाय की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में पूर्ति शृंखला प्रबंध अधिक जटिल होता है।

(2) अधिक परिवहन लागत (More Transportation Cost): वैश्विक व्यवसाय में पूर्तिकर्ता, निर्माणी इकाइयाँ व ग्राहक विभिन्न देशों में फैले होते हैं। अतः पूर्तिकर्ताओं से कच्चे माल, कलपुर्जों, उपकरणों के निर्माणी इकाई तक प्रवाह में परिवहन लागत अत्यधिक आती है तथा समय भी बहुत लगता है। इसी तरह निर्मित उत्पादों के निर्माणी इकाइयों से डीलरों तक तथा डीलरों से अंतिम उपभोक्ताओं तक प्रवाह में परिवहन लागत बहुत अधिक आती है तथा समय भी बहुत अधिक लगता है।

(3) टैरिफ व गैर-टैरिफ वाधाएँ (Tariff and Non-tariff Barriers): कुछ देश विदेशी उत्पादों के अंतर्प्रवाह पर विभिन्न टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाएँ; जैसे- आयात कर, आयात कोटा, लाइसेंस, परमिट आदि लगाते हैं। इससे कच्चे माल व निर्मित उत्पादों के विभिन्न देशों के मध्य स्वतंत्र प्रवाह में रुकावट आती है।

(4) देशीय जोखिम व राजनीतिक जोखिम (Country Risk and Political Risk): वैश्विक व्यवसाय में पूर्ति शृंखला व्यवस्था बहुत से देशों में फैली होती है। किसी भी देश में कभी भी कानून व्यवस्था या कोई अन्य समस्या आ सकती है जिससे पूर्ति शृंखला व्यवस्था में रुकावट आ सकती है। इसके अलावा मेजबान देश में या पूतिकर्ता के देश में राजनीतिक अस्थिरता के कारण राजनीतिक जोखिम उत्पन्न हो सकता है। सरकार के बदलने से आर्थिक नीतियों में आकस्मिक परिवर्तन आ सकता है। इससे पूर्ति शृंखला प्रबंध में बाधा आती है।

(5) विनिमय दर में उतार-चढ़ाव (Fluctuations in Exchange Rate): विभिन्न देशों के मध्य विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। यदि पूर्तिकर्ता के देश की मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है तो आयातक देश के लिए सामग्री की कीमत बढ़ जाती है। ऐसी दशा में व्यावसायिक इकाई को किसी अन्य देश से सामग्री क्रय करनी पड़ती है।

(6) आऊटसोर्सिंग से जुड़ा जोखिम (Risk related to Outsourcing): यदि वैश्विक व्यावसायिक इकाई अपनी कुछ निर्माणी क्रियाएँ या अन्य क्रियाएँ बाहरी स्रोतों से करवाती हैं तो उत्पादों की क्वालिटी घटिया होने पर या उत्पादों की पूर्ति में विलम्ब होने पर जिम्मेवारी वैश्विक इकाई को ही उठानी पड़ती है। यदि उत्पादों की क्वालिटी घटिया होने के कारण उपभोक्ताओं को कोई हानि होती है तो उपभोक्ता वैश्विक कंपनी के विरुद्ध ही कार्यवाही करते हैं। इसी तरह यदि बाहरी पूर्तिकर्ता कच्चा माल, कलपुर्जे व उपकरण देरी से भेजते हैं तो इससे वैश्विक कंपनी की पूर्ति शृंखला में रुकावट आती है।

अंतर्राष्ट्रीय विपणन
(International Marketing)

■ 1. भूमिका एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

वैश्विक व्यवसाय की सफलता केवल उत्पाद की अच्छी क्वालिटी पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि वैश्विक बाजार में उत्पाद बेचने के लिए अपनायी गई विपणन नीतियों पर भी निर्भर करती है। अंतर्राष्ट्रीय विपणन विश्लेषण से ही वैश्विक कंपनियाँ ये निर्णय ले पाती है कि उन्हे वैश्विक प्रमापित उत्पाद (Globally Standardised Products) बनाने है या स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार भिन्न भिन्न तरह के उत्पाद (Customised Products) बनाने है। अधिकतर वैश्विक कंपनियाँ भिन्न-भिन्न देशों में वहाँ के विपणन वातावरण को ध्यान में रखते हुए विपणन-सम्मिश्र के तत्वों को बदल देती है। प्रायः विभिन्न देशो में आर्थिक विकास का स्तर, शिक्षा का स्तर, पैकेजिंग संबंधी नियम, संस्कृति, भौगोलिक दशाएँ आदि भिन्न-भिन्न होती है। बाजार वातावरण में विभिन्नता के कारण वैश्विक कंपनियाँ पूरे वैश्विक बाजार के लिए एक ही बाजार रणनीति नहीं बना सकतीं।

विपणन का तात्पर्य उन व्यावसायिक क्रियाओं के निष्पादन से है जो उत्पाद व सेवाओं के प्रवाह को उत्पादक से उपभोक्ता की ओर निर्देशित करती है। विपणन की आधुनिक विचारधारा ग्राहक अभिमुखी है। इसमें उपभोक्ता सन्तुष्टि की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, उपभोक्ता की पसंद, रुचि, प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए उत्पाद बनाया जाता है। उपभोक्ता को बाजार-केंद्रीय-बिंदु माना जाता है। विपणन में उपयोगिता का सृजन (Creation of Utility) होता है। इससे समाज के लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है।

(i) **रिचर्ड बुसक्रिक** के अनुसार, **"विपणन एक ऐसी संगठित प्रणाली है, जो रूप, स्थान, समय एवं स्वामित्व उपयोगिताओं के सृजन द्वारा वस्तुओं में मूल्य उत्पन्न करती है।"** (Marketing is an integrated system of action that creates value in goods through creation of form, place, time and ownership utilities. **–Richard Buskrik**)

(ii) **फिलिप कोटलर** के अनुसार, **"विपणन एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति एवं समूह, उत्पाद द्वारा या दूसरों के साथ उत्पादों व मूल्यों के हस्तांतरण द्वारा, उन वस्तुओं को प्राप्त करते हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता है।"** (Marketing is a social process by which individuals and groups obtain what they need and want through creating and exchanging products and values with others. **– Philip Kotler**)

(iii) **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन** के अनुसार, **"विपणन का अर्थ उन व्यावसायिक क्रियाओं को करने से है, जो वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह को उत्पादक से उपभोक्ता तक निर्देशित करती है।"** (Marketing is the performance of business activities that direct the flow of goods and services from producer to consumer or user. **–American Marketing Association**)

विपणन क्रियाओं को जब विश्व स्तर पर किया जाता है, तो इसे वैश्विक विपणन कहते है। जब कोई व्यावसायिक इकाई अपने विपणन क्रियाओं को एक से अधिक देश में करती है, तो यह अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में संलग्न है। अब बढ़ते वैश्वीकरण के कारण बहुत अन्तर्राष्ट्रीय विपणन से टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाएँ समाप्त हो रही है। परिवहन व संचार के तेज साधनों से दूरियाँ कम हो गई है। अब उपभोक्ता सारा विश्व को एक विपणन इकाई के रूप में देखते है। बहुत से ब्रांड; जैसे- कोका-कोला, पेप्सी, लोरियल, मैगी, नोकिया, डव, रानबैक्सी, एप्पल कम्प्यूटर, मैकडोनल्ड, लेवाइस जीन्स, L.G., सोनी, वोडाफोन आदि विश्वभर में प्रसिद्ध है।

बहुत सी बड़ी कंपनियों का मूल देश, एक छोटा देश है। बिना विदेशी बाजारों के ये बड़ी कंपनियाँ अपने उत्पादन की विशाल मात्रा को अपने ही देश में नहीं बेच सकती; जैसे- नेसले का मूल देश स्विट्ज़रलैंड है, जो एक बहुत ही छोटा देश है। नोकिया का मूल देश फिनलैंड है जो एक बहुत छोटा देश है। यूनिलीवर का मूल देश नीदरलैंड है, वह भी एक छोटा देश है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय विपणन न होता तो ये कंपनियाँ आज इतनी विशाल कंपनियाँ न बन पातीं। वैश्विक विपणन के कारण ही छोटे देश में बनी ये कंपनियाँ इतने विशाल आकार में विकसित हो पाई है। अंतर्राष्ट्रीय विपणन की परिभाषाएँ इस प्रकार है :

(i) **हेरोल्ड वर्सन** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय विपणन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे विभिन्न देशों में भौतिक वितरण माध्यम स्थापित किए जाते हैं तथा विभिन्न देशों में उत्पाद व सेवाएँ बेचने के लिए क्रियाएँ की जाती हैं।"** (International marketing is the process of establishing multinational physical distribution channels and to undertake various activities for selling the products and services in different nations. **–Harold Barson**)

(ii) **वन टर्पेस्ट्रा** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय विपणन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमे विभिन्न देशों में विपणन उद्देश्य प्राप्त करने के लिए विपणन रणनीतियाँ नियोजित की जाती हैं, बनायी जाती है तथा इन रणनीतियों को लागू किया जाता है।"** (International marketing is a process of planning, designing, executing marketing strategies to achieve marketing objectives in the markets of other countries **–Van Terpestra**)

(iii) **हैस एवं कटेओरा** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय विपणन से अभिप्राय कंपनी के उत्पादों तथा सेवाओं को एक से अधिक देशों में उपभोक्ताओं के प्रयोग के लिए उपलब्ध करवाने से है।"** (To make available company's products and services to more than one country's customers for use, is known as international marketing. **–Hess and Cateora**)

(iv) **वेकमेन एवं डेविडसन** के अनुसार, **"अंतर्राष्ट्रीय विपणन से अभिप्राय उन सभी क्रियाओं के निष्पादन से है जो एक से अधिक देशों में उनके बाजारों की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं को जानने, उत्पाद उपलब्धता की योजना बनाने, उत्पादों का स्वामित्व हस्तांतरित करने, उनका भौतिक वितरण करने तथा अन्य आवश्यक विपणन क्रियाओं को करने से है।"** (International marketing refers to the performance of all activities necessary for ascertaining the needs and wants of markets, planning product availability, effecting transfers in ownership of products, providing for their physical distribution and facilitating the entire marketing process in more than one country. **–Backman, T.N. Davidson**)

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि केवल घरेलू विपणन सम्मिश्र को विभिन्न देशों में विस्तृत कर लेना ही अन्तर्राष्ट्रीय विपणन नहीं है बल्कि इसमें विपणन सम्मिश्र के विभिन्न तत्वों को विभिन्न देशों के विपणन वातावरण के अनुसार समायोजित करना पड़ता है। विपणन रणनीतियों को विभिन्न देशो की स्थानीय आवश्यकताओं, संस्कृति, आर्थिक दशाओं, भौगोलिक दशाओं, सरकारी अधिनियमों के अनुसार ढालना पड़ता है, जैसे-मैकडोनल्ड ने अपने मैन्यू (Menu) को विभिन्न देशों के लोगों की भोजन आदतों के अनुरूप बदल रखा है। विभिन्न देशों में व्यंजनों के नाम भी वहाँ की भाषा के अनुसार रखे गए है। वितरण व संवर्धन कार्यक्रम भी स्थानीय विशेषताओं व जरूरतों के अनुसार बनाए गए हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय विपणन निर्यात विपणन (Export Marketing) से भिन्न है। निर्यात-विपणन में कंपनी अपने मूल देश में ही वस्तुओं का उत्पादन एवं अन्य विपणन क्रियाएँ करती है। यह केवल अपने अतिरिक्त उत्पादन (Surplus Production) को दूसरे देशों में निर्यात करती है। अन्य देशों में अपने अतिरिक्त उत्पादन बेचने के लिए कोई संगठन या इकाई नहीं बनाती, अर्थात् उत्पादन या विपणन की कोई व्यवस्था प्रायः दूसरे देश में नहीं की जाती बल्कि, किसी मध्यस्थ की सहायता से मूल देश के अतिरिक्त उत्पादन को अन्य देशों में बेचा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय विपणन एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें निर्यात विपणन के अलावा विदेशी बाजारों में प्रत्यक्ष विपणन भी शामिल है। प्रत्यक्ष विदेशी विपणन में अन्य देशों में संपूर्ण विपणन क्रियाएँ भी की जाती है, जैसे-वितरण व्यवस्था करना,

विज्ञापन कार्यक्रम बनाना, [illegible] विक्रय संवर्धन कार्यक्रम बनाना, आदि। कई बार विदेशों में सहायक इकाइयाँ (Subsidiary Units) स्थापित की जाती हैं, जो वहाँ के बाजार में सम्पूर्ण विपणन क्रियाएँ करती हैं।

2. अन्तर्राष्ट्रीय विपणन की प्रकृति (Nature of International Marketing)

(i) **जटिल प्रकृति** (Complex): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में विभिन्न देशों के विपणन वातावरण का विश्लेषण करना पड़ता है, जो बहुत जटिल कार्य है। इन सभी देशों में विपणन वातावरण के किसी न किसी घटक में भिन्नताएँ पाई जाती हैं।

(ii) **व्यापक क्षेत्र** (Wide Scope): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में बाजार बहुत विस्तृत होता है, क्योंकि उत्पाद देश के बाहर भी [illegible] बेचा जा सकता है। बाजार की सीमा किसी एक देश तक सीमित नहीं होती, जैसे कोका कोला [illegible] बहुत अधिक देशों में बिक रहे हैं।

(iii) **नियंत्रणीय व गैर-नियंत्रणीय चर** (Controllable and Uncontrollable Variables): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन वातावरण में नियंत्रणीय व गैर-नियंत्रणीय दोनों तरह के चर शामिल हैं। विपणन मिश्रण के तत्व [4Ps उत्पाद, कीमत, वितरण (स्थान), संवर्धन (Product, Price, Place, Promotion)] नियंत्रणीय चर हैं, जबकि घरेलू देश व विदेशों के बाहरी विपणन वातावरण के घटक, जैसे प्रतिस्पर्धी इकाइयाँ, सरकारी नीति, तकनीकी वातावरण आदि अनियंत्रणीय चर हैं।

(iv) **अधिक जोखिमपूर्ण** (More Risky): विभिन्न देशों के [illegible] जोखिम व राजनैतिक जोखिम के कारण अन्तर्राष्ट्रीय विपणन अधिक जोखिम वाला है। विदेशी विपणन वातावरण में अधिक अनिश्चितताएँ हैं।

(v) **विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता** (Requires Services of Experts): विदेशी विपणन बहुत जटिल कार्य है। इसके लिए विशेषज्ञ, जैसे निर्यात एजेंट, बैंकिंग कम्पनियाँ, जहाजरानी कम्पनियाँ (Shipping Companies), सूचना तकनीकी विशेषज्ञ, आदि की सेवाएँ लेनी पड़ती हैं।

(vi) **अधिक प्रतिस्पर्धा** (More Competition): घरेलू विपणन की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा होती है। विदेशी विपणन में अन्य वैश्विक कम्पनियों से, मूल देश के घरेलू निर्यातकों से व मेजबान राष्ट्र (Host Nation) अर्थात जिस देश में अन्तर्राष्ट्रीय विपणन किया जाता है, वहाँ की घरेलू इकाइयों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय विपणन के लाभ/आवश्यकता/महत्त्व (Benefits/Need/Importance of International Marketing)

- **निर्माता को लाभ (Benefits to Manufacturer)**

(i) **बाजार क्षेत्र में वृद्धि** (Increase in Market Area): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन से बाजार आकार में अत्यधिक वृद्धि होती है। अब व्यावसायिक इकाई सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी अपने उत्पाद बेच सकती है, जैसे फिलिप्स, नेस्ले, [illegible], टोयोटा आदि अपने उत्पाद बहुत से देशों में बेच रहे हैं, जबकि इनके मूल देश बहुत ही छोटे हैं।

(ii) **विक्रय व लाभों में वृद्धि** (Increase in Sales and Profits): वैश्विक कम्पनियों के बाजार क्षेत्र विशाल होने के कारण इनकी बिक्री व लाभ बहुत अधिक होते हैं। कुछ वैश्विक कम्पनियों की बिक्री बहुत से देशों के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) से भी अधिक है।

(iii) **जोखिम का विविधीकरण** (Diversification of Risk): वैश्विक कम्पनियाँ विशाल बाजार आकार होने के कारण जोखिम का विविधीकरण कर सकती हैं। वैश्विक कम्पनियाँ केवल एक ही देश के बाजार पर निर्भर नहीं करतीं। यदि किसी एक देश में कोई समस्या जैसे प्राकृतिक आपदा, मंदी, दंगे-फसाद, खराब कानून व्यवस्था आदि की समस्या आ जाती है तो वह वैश्विक कम्पनी दूसरे देश के बाजार में अधिक ध्यान केंद्रित कर सकती है। इस प्रकार वैश्विक कम्पनियाँ देशीय जोखिम, राजनैतिक जोखिम, प्राकृतिक जोखिम आदि का विविधीकरण कर सकती हैं।

(iv) **बड़े पैमाने की बचतें** (Economies of Large Scale): वैश्विक कम्पनियाँ अपने उत्पादों का बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन करती हैं। ये कम्पनियाँ आधुनिकतम उत्पादन तकनीक का प्रयोग करती हैं, श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण के लाभ उठाती हैं। इनकी उत्पादन लागत कम होती है तथा उत्पाद की क्वालिटी अधिक बेहतर होती है। इस तरह वैश्विक कम्पनियाँ अधिक उत्पादन के कारण बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त करती हैं।

(v) **वैश्विक छवि** (Global Image): वैश्विक कम्पनियाँ अपने उत्पाद विश्व भर में बेचती हैं। इससे इनकी ख्याति [illegible] व ब्रांड छवि में बहुत सुधार आता है। इनके ब्रांड विश्वभर में बहुत प्रसिद्ध होते हैं। इन कम्पनियों के लिए नए उत्पाद व विद्यमान उत्पाद को नए बाजार में बेचना मुश्किल नहीं होता। ब्रांड प्रसिद्धि के कारण लोग इनके उत्पाद के लिए अधिक कीमत भी देने को तैयार होते हैं। वैश्विक छवि के कारण इन्हें घरेलू उत्पाद से प्रतिस्पर्धा का सामना करने में अधिक कठिनाई नहीं होती।

- **अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्व (Importance for the Nation)**

(i) **मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण** (Control over Inflation): वैश्विक कम्पनियाँ अर्थव्यवस्था में उत्पादों की पूर्ति बढ़ाती हैं। उत्पादों की पूर्ति बढ़ने से कीमत-वृद्धि को रोकने में सहायता मिलती है। यदि किसी अर्थव्यवस्था में किसी उत्पाद की कीमत बढ़ रही है, तो इसे विदेशों से आयात करके घरेलू अर्थव्यवस्था में इसकी पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है, जिससे इसकी कीमत-वृद्धि को नियंत्रित किया जा सकता है।

(ii) **रोजगार में वृद्धि** (Increase in Employment): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार को बढ़ावा देता है। बहुत से व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में उत्पादों के भौतिक वितरण, वैयक्तिक विक्रय, परिवहन, बैंकिंग/बीमा आदि में संलग्न हैं। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय विपणन से माँग में वृद्धि होती है। माँग बढ़ने से उत्पादन में वृद्धि होती है। इस तरह जो व्यक्ति उत्पादन क्रियाओं में संलग्न हैं, वे भी अप्रत्यक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय विपणन के कारण ही रोजगार प्राप्त करते हैं। विकासशील देशों में बेरोजगारी की समस्या बहुत गंभीर है। इसे कुछ सीमा तक निर्यात विपणन द्वारा हल किया जा सकता है, जैसे- चीन में निर्मित उत्पाद पूरे विश्व में बेचे जा रहे हैं। इससे चीन में रोजगार के अवसर बढ़े हैं।

(iii) **निर्यातों में वृद्धि** (Increase in Exports): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन द्वारा निर्यातों में वृद्धि होती है। इससे विदेशी मुद्रा अर्जित होती है, तथा भुगतान शेष की समस्या के समाधान में सहायता मिलती है।

(iv) **जीवन-स्तर में वृद्धि** (Increase in Standard of Living): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन से एक देश उन उत्पादों का प्रयोग भी कर सकता है जिनका उत्पादन उसके देश में नहीं हो रहा। विकासशील देशों के लोग विकसित देशों में बने उच्च क्वालिटी के व आधुनिकतम उत्पाद खरीद सकते हैं। इससे उनके जीवन-स्तर में वृद्धि होती है।

(v) **तीव्र आर्थिक विकास** (Rapid Economic Growth): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आर्थिक क्रियाओं को बढ़ावा देता है। इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तथा आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है, जैसे चीन में अन्तर्राष्ट्रीय विपणन के कारण आर्थिक विकास की दर में बहुत वृद्धि हुई है।

(vi) **वैश्विक प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग** (Optimum Utilisation of Global Natural Resources): ऐसा सम्भव है कि किसी देश में प्राकृतिक संसाधन घरेलू आवश्यकताओं से अधिक हों, जबकि किसी अन्य देश में उस प्राकृतिक संसाधन की कमी हो। अन्तर्राष्ट्रीय विपणन द्वारा पहला देश दूसरे देश को यह संसाधन निर्यात कर सकता है। इससे प्राकृतिक संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग हो सकता है, जैसे अरब देशों में कच्चे तेल के विशाल भंडार पाए जाते हैं, जबकि अन्य कई देशों में कच्चे तेल की कमी है। अरब देश अन्य देशों को कच्चे तेल का निर्यात करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विपणन के अभाव में अरब देशों के तेल भंडारों का पूर्ण रूप से प्रयोग नहीं हो पाता।

(vii) **अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सुदृढ़ता** (Strengthens International Ties): अन्तर्राष्ट्रीय विपणन से विभिन्न देश एक दूसरे के नजदीक आते हैं। उनकी परस्पर निर्भरता बढ़ती है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व संबंधों में सुधार आता है।

- **उपभोक्ताओं को लाभ (Benefits to Consumers)**

(i) **चयन में व्यापकता (Wider Choice)** अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में विदेशी उत्पादों की उपलब्धता में वृद्धि होने [illegible] विकासशील व अल्प-विकसित देशों के लोग विकसित देशों द्वारा निर्मित आधुनिक उत्पादों का उपभोग कर सकते हैं [illegible] उत्पाद अपने बाजार में उपलब्ध हो जाते हैं। इससे उपभोक्ता को उत्पाद चयन करने में वृद्धि होने [illegible] आधुनिकतम उत्पादों के उपभोग से उपभोक्ताओं के जीवन-स्तर में वृद्धि होती है।

(ii) **बेहतर क्वालिटी के उत्पाद (Better Quality Goods)** अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में [illegible] व्यावसायिक इकाइयों के मध्य प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होती है। प्रतिस्पर्धा बढ़ने से बाजार [illegible] में वृद्धि होने [illegible] प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए व्यावसायिक इकाइयाँ बेहतर क्वालिटी के उत्पाद बनाते हैं, ताकि ग्राहक [illegible] आकर्षित किए जा सकें।

(iii) **कम कीमतों पर उत्पादों की उपलब्धता (Goods Available at Low Prices)** अन्तर्राष्ट्रीय विपणन के [illegible] उत्पाद का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। इससे बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं, जैसे- [illegible] उत्पादन लागत, कम वितरण लागत आदि। इससे उत्पाद की कीमत कम करने में सहायता मिलती है। इसके [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में प्रतिस्पर्धा बढ़ती है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए व्यावसायिक इकाइयाँ उत्पाद [illegible] कम कीमतों पर बेचती हैं।

■ 4. अन्तर्राष्ट्रीय विपणन संमिश्र (International Marketing Mix)

अन्तर्राष्ट्रीय विपणन मिश्र के मुख्य तत्व है– उत्पाद, कीमत, वितरण और संवर्धन (Product, Price, Place and Promotion – 4Ps)। इनकी चर्चा निम्नलिखित है:

■ 4.1 उत्पाद (Product)

उत्पाद विपणन क्रियाओं का प्रारंभिक बिंदु है। उत्पाद के बिना कोई भी विपणन क्रिया नहीं की जा सकती। उत्पाद में भौतिक उत्पाद व सेवाएँ भी शामिल की जाती हैं। इसमें उत्पाद के दृश्य व अदृश्य गुणों (Tangible and intangible attributes) को शामिल किया जाता है।

(i) विलियम जे॰ स्टैंटन के अनुसार, **''उत्पाद दृश्यगत व अदृश्यगत गुणों का सम्मिश्रण है। इसमें पैकेजिंग, रंग, कीमत, निर्माता व फुटकर विक्रेता की सेवाएँ शामिल हैं, जिन्हें उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए स्वीकार कर सकता है।''** (A product is a complex of tangible and intangible attributes including packaging, colour, price, manufacturer's and retailer's services which the buyer may accept as offering satisfaction of wants or needs. **–William J. Stanton**)

(ii) फिलिप कोटलर के अनुसार, **''उत्पाद क्रेता को संतुष्टि व सुविधाएँ प्रदान करने की क्षमता वाले भौतिक उत्पादों, सेवाओं व चिह्नित विशेषताओं का समूह (bundle) है।''** (A product is a bundle of physical objects, services and symbolic particulars expected to yield satisfaction or benefits to the buyer. **–Philip Kotler**)

(iii) रुस्तम एस॰ डावर के अनुसार, **''विपणन की दृष्टि से उत्पाद का अभिप्राय उपभोक्ताओं को दिए गए अनुलाभों व सेवाओं का समूह है।''** (A product may be regarded from the marketing view point as a bundle of benefits which are being offered to consumer. **–Rustom S. Davar**)

सभी विपणन क्रियाएँ जैसे कीमत निर्धारण, वितरण, विक्रय संवर्धन, विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय आदि उत्पाद की प्रकृति [illegible] व उत्पाद की अन्य विशेषताओं पर निर्भर करती है। उत्पाद पर ही व्यावसायिक इकाई का जीवन चक्र, लाभ, विक्रय आदि निर्भर [illegible]

[illegible] है। उत्पाद नियोजन व विकास में यदि कोई गलत निर्णय ले लिया जाता है, तो इससे व्यवसाय बंद होने की स्थिति भी आ सकती है। [illegible] विपणन में विभिन्न देशों के विपणन वातावरण में विभिन्नता होने के कारण उत्पाद नियोजन व विकास एक जटिल प्रक्रिया है। अब [illegible] कंपनियाँ विभिन्न देशों की स्थानीय आवश्यकताओं, पसंद, रुचि, फैशन, संस्कृति को ध्यान में रखते हुए अनुरूप उत्पाद (Customised/Localised Product) बनाती हैं।

■ 4.1 (1) अंतर्राष्ट्रीय उत्पाद रणनीतियाँ (International Product Strategies)

अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में उत्पाद रणनीतियों में सर्वाधिक [illegible] निर्णय लिए जाते हैं, एकरूपता बनाम अनुरूपता, [illegible], पैकेजिंग आदि। इनकी चर्चा निम्नलिखित है:

■ I. एकरूपता प्रमापरूपता बनाम अनुरूपता
[Standardisation vs. Customisation (Adaptation)]

कुछ वैश्विक कंपनियाँ सभी विदेशी के बाजारों के लिए एकरूप उत्पाद बनाती हैं। इसमें [illegible] विपणन रणनीतियाँ अपनाते [illegible] हैं। यह दृष्टिकोण संपूर्ण विश्व को एक 'एकाकी बाजार' मानता है। इसमें वैश्विक कंपनी वैश्विक बाजार के लिए प्रमापित उत्पाद (Standardised Product) का विपणन करती है। कंपनी अपने उत्पादों की एक समान छवि प्रस्तुत करते हुए [illegible] प्रमापित उत्पाद तैयार करती है। जैसे-कोका कोला, पेप्सी सॉफ्ट-ड्रिंक्स प्रमापित उत्पाद बनाते हैं। इस थोड़ा सा मिठास (Sweetness) के [illegible] में अंतर किया जाता है। परन्तु समय के साथ-साथ प्रतिस्पर्धा के बढ़ने से वैश्विक कंपनी [illegible] उत्पाद रणनीति को अपना रही है अर्थात् वैश्विक कंपनी विभिन्न देशों के विपणन वातावरण में भिन्नता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न विपणन रणनीतियाँ अपनाती है। इसमें विभिन्न देशों की स्थानीय आवश्यकताओं, रुचि, पसंद, फैशन में अन्तर को ध्यान में रखते हुए विभिन्न देशों के अनुरूप भिन्न-भिन्न उत्पाद बनाए जाते हैं अर्थात अनुरूप उत्पाद रणनीति (Customised Product Strategy) अपनाई जाती है; जैसे- मैकडोनल्ड, जो एक अमेरिकन कंपनी है, भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न तरह की खाद्य आदतों, संस्कृति, स्वाद को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न तरह के व्यंजन बनाती है। यूरोपियन देशों में यह मुख्य तौर पर मांसाहारी व्यंजन (Dishes) बेचती है, जबकि एशियन देशों में यह मुख्य तौर पर शाकाहारी व्यंजन बेचती है।

- **प्रमापरूपता के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Standardisation)**

(i) इस रणनीति में **उत्पादन लागत कम** होती है क्योंकि एक ही तरह के उत्पादों को बड़े पैमाने पर बनाया जाता है, जिससे बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं।

(ii) इस रणनीति में **विपणन लागत कम** आती है क्योंकि एक ही तरह का विज्ञापन कार्यक्रम सभी देशों में चलाया जाता है। वितरण रणनीति व वैयक्तिक विक्रय रणनीति भी एक जैसी होती है। विक्रयकर्ताओं को भिन्न-भिन्न उत्पादों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।

(iii) **ऐसी रणनीति में संगठनात्मक ढाँचा** (Organisational Structure) सरल होता है तथा इस रणनीति का प्रशासन भी कम जटिल होता है। एक जैसे उत्पाद होने के कारण वैश्विक कंपनी को भिन्न-भिन्न उत्पादों के लिए भिन्न-भिन्न उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करने की व अलग-अलग स्टॉक (Inventory) रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(iv) इस रणनीति में **कम निवेश** की आवश्यकता होती है।

(v) **औद्योगिक उत्पादों की दशा** में यह रणनीति बहुत उचित है क्योंकि प्रायः एक ही प्रकार के औद्योगिक उत्पाद विभिन्न देशों में बेचे जाते हैं।

(vi) **विश्वव्यापी उत्पादों** (Universal Products); जैसे- कैलकुलेटर, घड़ियाँ, कम्प्यूटर आदि के लिए यह रणनीति बहुत उचित है। यहाँ विश्वव्यापी उत्पादों का तात्पर्य ऐसे उत्पादों से है जो विश्व में एक समान विशेषताओं के साथ प्रयोग किए जाते हैं। सभी देशों में इन उत्पादों की आवश्यकताओं की प्रकृति एक जैसी होती है।

(vii) यदि मूल देश की किसी उत्पाद विशेष के लिए **विश्व में अच्छी छवि** है तो प्रमापरूप उत्पाद रणनीति बहुत उचित है, जैसे- जापान की इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों, जर्मनी की इंजीनियरिंग उत्पादों, फ्रांस की फैशन वाले उत्पादों के लिए अच्छी छवि है। अतः इन उत्पादों के निर्माणकर्ता इन उत्पादों के लिए प्रमापरूप उत्पाद रणनीति अपना सकते हैं।

- **अनुरूप उत्पाद रणनीति के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Customised Product Strategy)**

(i) प्राय: विभिन्न देशों के उपभोक्ताओं की पसंद, रुचि, प्राथमिकता में अंतर होता है। अतः वैश्विक कंपनियाँ इन विभिन्न देशों के उपभोक्ताओं की विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्पाद बनाती हैं। इससे **उपभोक्ता सन्तुष्टि-स्तर में वृद्धि** होती है।

(ii) यदि विभिन्न देशों में **सांस्कृतिक अंतर** बहुत अधिक है तो उत्पाद की विशेषताओं में समायोजन अत्यावश्यक है, जैसे- स्त्रियों के लिए सिले-सिलाए वस्त्र बेचने वाली वैश्विक कंपनी मुस्लिम देशों व यूरोपियन देशों में एक ही प्रकार के वस्त्र नहीं बेच सकती। इस कंपनी को इन दोनों प्रकार के देशों की संस्कृति को ध्यान में रखते हुए उनके अनुरूप उत्पाद रणनीति अपनानी होगी। इसी प्रकार विभिन्न देशों में जलवायवीय दशाएँ (Climatic Conditions) भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः इस वैश्विक कंपनी को इसके अनुरूप ही उत्पाद बनाने होंगे।

(iii) यदि विभिन्न देशों में **आर्थिक दशाएँ**, जैसे- प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय, जीवन-स्तर, क्रय क्षमता आदि एक समान नहीं हैं तो इन विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए अनुरूप उत्पाद रणनीति अपनानी होगी। जिस देश में आर्थिक समृद्धि अधिक है, क्रय क्षमता अधिक है, जीवन-स्तर ऊँचा है, वहाँ विलासितापूर्ण विशेषताओं वाले उत्पाद (Luxurious Products) बेचे जाएँगे, जबकि कम प्रति व्यक्ति आय वाले देशों में कम कीमत वाले उत्पाद बेचे जाएँगे।

(iv) कई बार कुछ देशों में सरकार किसी उत्पाद विशेष के **आयात पर प्रतिबंध** लगा देती है। ऐसे में वैश्विक कंपनी उस उत्पाद का निर्यात उस देश में नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में वैश्विक कंपनी उस देश में अपनी सहायक इकाई स्थापित करती है। वह सहायक कंपनी उस मेजबान देश की स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पाद बना कर वहाँ बेचती है अर्थात् ऐसी स्थिति में अनुरूप उत्पाद रणनीति अपनायी जाती है।

- **प्रमापरूपता व अनुरूपता के मध्य समायोजन**
(Trade-off between Standardisation and Customisation)

किसी भी वैश्विक कंपनी के लिए प्रमाप रूप या अनुरूप रणनीति संबंधी निर्णय लेना बहुत ही कठिन है। कई बार इन दोनों रणनीतियों के मध्य समायोजन भी करना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय विपणन प्रबंधकों के पास ऐसी स्थिति में तीन रास्ते होते हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित है:

(1) **एथनोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण** (Ethnocentric Approach): इस दृष्टिकोण में वैश्विक कंपनी ने अपने मूल देश में जो उत्पाद, कीमत, वितरण एवं संवर्धन रणनीतियाँ अपना रखी हैं, वही उसी रूप में विदेशी बाजार में भी लागू होती हैं। विदेशी बाजार को केवल घरेलू बाजार के विस्तार के रूप में ही देखा जाता है। सभी विदेशी बाजारों में घरेलू बाजार वाली रणनीतियाँ ही अपनायी जाती हैं।

(2) **पॉलीसेन्ट्रिक/रीजियोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण** (Polycentric/Regiocentric Approach): इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत वैश्विक कंपनी अपनी अन्तर्राष्ट्रीय विपणन क्रियाओं को भिन्न-भिन्न देशों के अनुसार संगठित करती है। प्रत्येक देश को एक पृथक बाजार माना जाता है। प्रत्येक देश के लिए अलग विपणन रणनीतियाँ बनायी जाती हैं। प्रत्येक देश में सहायक इकाइयाँ स्थापित की जाती हैं। प्रत्येक सहायक इकाई स्वतंत्र रूप से अपने विपणन कार्यक्रम बनाती है। प्रत्येक विदेशी बाजार में विपणन प्रबंधक स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार रणनीतियाँ बनाते हैं। इस दृष्टिकोण में वैश्विक कंपनी के पास विभिन्न देशों में दीर्घकालीन प्रबंध हेतु निवेश के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए।

(3) **जियोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण** (Geocentric Approach): इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत वैश्विक कंपनी विश्वव्यापी विपणन दृष्टिकोण अपनाती है। वैश्विक कंपनी विभिन्न देशों के उपभोक्ताओं की पसंद, रुचि, नापसंद, प्राथमिकताओं में समानता को ढूँढती है। इन समानताओं को ध्यान में रखते हुए ऐसे प्रमापित उत्पादों का विपणन करती है, जो सभी राष्ट्रीय बाजारों में बेचे जा सकते हैं। कोका कोला सॉफ्ट ड्रिंक इस विपणन रणनीति को अपनाती है। यह दृष्टिकोण समस्त विश्व को एक बाजार मानता है। इसमें प्रमापित विपणन सम्मिश्र अपनाया जाता है। अर्थात् सभी देशों में उत्पाद, कीमत, वितरण तथा संवर्धन संबंधी रणनीतियाँ एक जैसी होती हैं।

II. ब्रांड संबंधी निर्णय (Branding Decisions)

ब्रांड संबंधी निर्णय लेना भी अंतर्राष्ट्रीय विपणन में उत्पाद रणनीति का महत्त्वपूर्ण निर्णय है। ब्रांड के अन्तर्गत उत्पाद का नाम, उत्पाद की पहचान करवाने वाला कोई शब्द, डिजाइन, चिह्न, स्लोगन या इनका समूह शामिल किया जाता है, जिससे किसी विपणनकर्ता के उत्पाद को अन्य प्रतिस्पर्धी उत्पादों से भिन्न किया जा सके।

अमेरिकन विपणन संगठन के अनुसार, **"ब्रांड उत्पाद को इसकी पहचान के लिए दिया गया नाम, शब्द, चिह्न, डिज़ाइन या इनका मिश्रण है। इसमें एक विक्रेता के उत्पाद को अन्य प्रतिस्पर्द्धियों के उत्पादों से अलग पहचाना जा सकता है।"** (Brand is a name, term, symbol or design or a combination of them which is intended to identify the goods or services of one seller and to differentiate them from those of competitors. **-American Marketing Association**)

प्रसिद्ध ब्रांड द्वारा विपणनकर्ता ग्राहकों/डीलरों/एजेंटों को अपने उत्पाद की ओर आकर्षित कर सकता है, विक्रय बढ़ा सकता है, अपने उत्पाद का मूल्य अधिक निर्धारित कर सकता है। ब्रांड व्यवसाय की महत्त्वपूर्ण अभौतिक संपत्ति है। ब्रांड विज्ञापन कार्यक्रम का आधार है। बिना ब्रांड के विज्ञापन करवाया ही नहीं जा सकता। विज्ञापन ब्रांड-प्रसिद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। घरेलू बाजार में तो उत्पाद बिना ब्रांड के भी बेचे जा सकते हैं, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में बाजार का आकार बहुत विस्तृत होता है, प्रतिस्पर्धा का स्तर भी बहुत ज्यादा होता है। ऐसी स्थिति में बिना ब्रांड के उत्पाद बेचना बहुत ही मुश्किल है। सभी वैश्विक कंपनियाँ ब्रांड प्रसिद्ध व ब्रांड छवि पर बहुत अधिक खर्च करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में यदि एक बार ब्रांड को ठीक से स्थापित (Brand-positioning) कर दिया जाता है, तो विपणनकर्ता दीर्घकाल तक इससे अपने विक्रय व लाभों को बढ़ा सकता है। डेल (Dell) कम्प्यूटर, कोक, पेप्सी, सैमसंग, L.G., लॉरियल, ऐप्पल (Apple), रोलेक्स घड़ियाँ, गुक्की हैंडबैग, मर्सिडीज़ बेन्ज कार, BMW कार, मैकडोनाल्ड, KFC, टयोटा, सोनी, नोकिया, नेस्ले, पैनासोनिक, फिलिप्स, आदि वैश्विक ब्रांड के उदाहरण हैं।

- **ब्रांडिंग के कारण (Reasons for Branding)**

(i) यह उत्पाद अथवा सेवा की पहचान करने में सहायता करता है। (ii) यह विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय, विक्रय संवर्धन तथा प्रचार (Publicity) को आसान बनाता है। (iii) यह उत्पाद की प्रमापित क्वालिटी (Standard of Quality) को सुनिश्चित करता है। (iv) यह उत्पाद के प्रति उपभोक्ता की विशेष जिज्ञासा को उत्पन्न करता है। (v) अच्छे ब्रांड नाम वाले उत्पादों के विक्रयों व लाभों में निरन्तर वृद्धि होती है। (vi) इससे बाजार विभक्तिकरण (Market Segmentation) करना आसान हो जाता है। (vii) इससे नये उत्पादों को बाजार में उतारना आसान हो जाता है। (viii) मध्यस्थ भी ब्रांड नाम वाले उत्पादों में व्यापार करना पसंद करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में ब्रांडिंग विपणन क्रियाओं का एक अभिन्न अंग बनता जा रहा है।

- **सर्वश्रेष्ठ वैश्विक ब्रांड (Best Global Brands)**

ब्रांड प्रसिद्धि में कुछ कंपनियाँ अपने उत्पाद विश्व भर में बेच रही हैं। आगे तालिका में वर्ष 2012 के सर्वाधिक प्रसिद्ध ब्रांडों को दिखाया गया है।

Best Global Brands (Year 2012)

Rank	Brand	Country	Brand Value ($ Million)
1	Coca-Cola	US	77,839
2	Apple	US	76,568
3	IBM	US	75,532
4	Google	US	69,726
5	Microsoft	US	57,853
6	GE	US	43,682
7	McDonald's	US	40,062
8	Intel	US	39,385
9	Samsung	South Korea	32,893
10	Toyota	Japan	30,280

(Source www.interbrand.com)

- **विभिन्न ब्रांड रणनीतियाँ (Different Brand Strategies)**

विपणनकर्ता निम्न में से कोई ब्रांड रणनीति अपना सकते हैं:

(1) बहुमुखी ब्रांड रणनीति (Multiple Brand Strategy): इसमें विभिन्न उत्पादों के लिए भिन्न-भिन्न ब्रांड अपनाए जाते हैं, जैसे-हिंदुस्तान यूनीलीवर ने बहुमुखी ब्रांड रणनीति अपनाते हुए एक ही उत्पाद रेखा (Product-Line), जैसे-नहाने के साबुन के लिए भिन्न-भिन्न ब्रांड अपनाए हैं। इस कंपनी के नहाने के साबुन के मुख्य ब्रांड इस प्रकार हैं– लक्स, पॉण्ड्स, हमाम, पीयर्स, डव, लाइफबॉय, रेक्सोना, ब्रीज आदि। विपणनकर्ता इस ब्रांड रणनीति को तब अपनाता है जब वह अपने उत्पाद भिन्न-भिन्न बाजार खण्डों में बेचना चाहता है। विभिन्न बाजार खण्डों के लिए भिन्न-भिन्न ब्रांडों को अपनाया जाता है। यदि किसी कारणवश किसी एक ब्रांड की छवि खराब हो जाती है तो इसका कुप्रभाव अन्य ब्रांडों पर नहीं पड़ता। यह रणनीति उन बड़ी कंपनियों द्वारा अपनाई जाती है, जो विभिन्न ब्रांडों को लोकप्रिय बनाने के लिए विज्ञापन पर एक बड़ी धनराशि खर्च कर सकती हैं। विभिन्न बाजार खण्डों के ग्राहकों की विशेषताएँ, जैसे- क्रय-उद्देश्य, क्रय व्यवहार भिन्न-भिन्न होते हैं, अतः विभिन्न ब्रांडों के लिए भिन्न-भिन्न विज्ञापन कार्यक्रम चलाए जाते हैं।

- **बहुमुखी ब्रांड रणनीति के उदाहरण– हिंदुस्तान यूनिलीवर के विभिन्न ब्रांड**

(i) **Soaps:** Breeze, Denim, Dove, Hamam, Jai, Lifebuoy, Liril, Lux, Moti, Pears, Rexona, Savlon, Ponds.

(ii) **Detergents:** Rin, Super 501, Surf, Wheel, Sunlight, Comfort.

(iii) **Shampoos:** Clinic All Clear, Clinic Plus, Lux, Sunsilk.

(iv) **Skin Care:** Fair & Lovely, Pears Face Wash, Ponds Talc, Liril Talc, Vaseline.

(v) **Toothpaste:** Closeup, Pepsodent.

(vi) **Deodorants:** Axe, Rexona.

(vii) **Tea:** Brook Bond, Lipton, Red Label.

(viii) **Food Items:** Kissan, Annapurna, Knorr, Bru, Kwality Wall's.

(2) एकल ब्रांड रणनीति (Single Brand Strategy): इस रणनीति में विपणनकर्ता सभी उत्पादों के लिए एक ही ब्रांड का प्रयोग करता है; जैसे- L.G. Electronics अपने सभी उत्पादों के लिए एक ही ब्रांड अपनाता है। इस रणनीति में बहुमुखी ब्रांड रणनीति की तुलना में, विज्ञापन पर कम खर्च आता है क्योंकि केवल एक ही ब्रांड को लोकप्रिय बनाने के लिए विज्ञापन करवाना पड़ता है। परन्तु यदि किसी कारणवश किसी एक भी उत्पाद की छवि खराब हो जाती है, तो इसका प्रभाव अन्य उत्पादों पर भी पड़ता है, क्योंकि विपणनकर्ता के सभी उत्पादों का ब्रांड एक ही है।

(3) मध्यस्थ ब्रांड रणनीति के अंतर्गत विपणन (Marketing under Middlemen Brand Strategy): कई बार उत्पादक विपणन कार्य स्वयं नहीं करते। वे उत्पाद को बनाकर उसे मध्यस्थों को बेच देते हैं, मध्यस्थ स्वयं ब्रांड निर्धारित करके उस उत्पाद का विपणन करते हैं। उत्पादक इस रणनीति को तब अपनाता है, जब वह अपना ध्यान केवल उत्पादन क्रियाओं पर ही केंद्रित करना चाहता है, उसके पास उत्पाद के विपणन के लिए समय व अन्य साधन नहीं हैं। ब्रांड निर्धारण व ब्रांड को लोकप्रिय बनाने के लिए विज्ञापन कार्यक्रम मध्यस्थ द्वारा चलाया जाता है, जैसे- सिथॉल पाउडर (Cinthol Talc) हिमाचल प्रदेश की 'ईश्वर कंपनी' द्वारा बनाया जाता है, परंतु इसका विपणन कार्य गोदरेज कंज्यूमर प्रोडक्ट लि. द्वारा 'सिथॉल' (Cinthol) ब्रांड से किया जाता है। सिथॉल ब्रांड के लिए विज्ञापन कार्यक्रम भी गोदरेज लि. द्वारा ही चलाया जाता है।

(4) ट्रेडिंग अप व ट्रेडिंग डाउन ब्रांड रणनीति (Trading Up and Trading Down Brand Strategy): यदि कोई विपणनकर्ता जो निम्न स्तर के बाजार खण्डों के लिए व कम कीमत के उत्पाद बनाने के लिए प्रसिद्ध है और अब वह उच्च स्तरीय बाजार खण्डों के लिए, अच्छी क्वालिटी के व अधिक कीमत के उत्पाद किसी नए ब्रांड के अधीन बनाना शुरू करता है, तो इसे ट्रेडिंग अप ब्रांड रणनीति कहते हैं। इस नए उत्पाद के लिए नए ब्रांड का प्रयोग किया जाता है, ताकि पुराने निम्नस्तरीय ब्रांड की छवि नए उच्चस्तरीय ब्रांड को खराब न करे। दूसरी तरफ, जब कोई विपणनकर्ता उच्च बाजार खण्डों के लिए उच्च क्वालिटी का व ऊँची कीमत का उत्पाद बनाने के लिए प्रसिद्ध है, परंतु अब वह निम्नस्तरीय बाजार खण्ड के लिए कम कीमत के व कम क्वालिटी के उत्पाद किसी नए ब्रांड के अधीन शुरू करता है, तो इसे ट्रेडिंग डाउन ब्रांड रणनीति कहते हैं, जैसे- प्रोक्टर एवं गैम्बल कंपनी ने शुरू में उच्च आय वर्ग के लिए 'एरियल' नाम से वाशिंग पाउडर बनाना शुरू किया। बाद में निम्न-मध्यम-आय-वर्ग के लिए इसी कंपनी ने 'टाइड' नाम से वाशिंग पाउडर शुरू किया।

(5) सामूहिक या छतरी ब्रांड रणनीति (Umbrella Brand Strategy): इसमें विपणनकर्ता अपने विभिन्न उत्पादों के लिए चाहे भिन्न-भिन्न ब्रांडों का प्रयोग करे, परंतु इसके साथ-साथ वह अपने सभी उत्पादों के लिए एक साझा सामूहिक ब्रांड का भी प्रयोग करता है, जैसे- टाटा मोटर्स लि. भिन्न-भिन्न प्रकार की कारों के लिए भिन्न-भिन्न ब्रांड अपनाता है, जैसे टाटा इंडिका, टाटा-सूमो, टाटा-नैनो, टाटा-सफारी, टाटा इंडिगो, टाटा विस्टा, टाटा मांजा आदि, परंतु उन सभी कार ब्रांडों के साथ एक सामूहिक साझा ब्रांड 'टाटा' का भी प्रयोग करता है। इस रणनीति में साझे ब्रांड की अच्छी छवि का प्रभाव सभी उत्पादों व ब्रांडों पर पड़ता है। यदि विपणनकर्ता सामूहिक ब्रांड के अधीन कोई नया उत्पाद शुरू करता है तो सामूहिक ब्रांड की लोकप्रियता व छवि के कारण यह नया उत्पाद भी जल्दी लोकप्रिय हो जाता है। इस रणनीति में सभी ब्रांडों व उत्पादों के लिए साझा विज्ञापन कार्यक्रम भी चलाया जा सकता है। परंतु यदि किसी कारणवश, किसी एक उत्पाद की छवि खराब हो जाती है तो इसका बुरा प्रभाव कंपनी के अन्य उत्पादों पर भी पड़ता है।

- **अंतर्राष्ट्रीय विपणन में ब्रांड संबंधी मुख्य निर्णय (Main Branding Decisions in International Marketing)**

वैश्विक कंपनी को ब्रांडों की संख्या के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय लेना होता है। वैश्विक कंपनी एकल ब्रांड रणनीति या बहुल ब्रांड रणनीति अपना सकती है। इसके अलावा इसे यह भी निर्णय लेना होता है कि ब्रांड का स्वामित्व उत्पादक के पास हो या मध्यस्थ के पास हो। इनकी चर्चा निम्नलिखित है

- **(1) एकल ब्रांड बनाम बहुल ब्रांड (Single Brand vs. Multiple Brand)**

वैश्विक कंपनी एकल ब्रांड रणनीति या बहुल ब्रांड रणनीति अपना सकती है। इनकी उपयुक्तता की चर्चा निम्नलिखित है

- **एकल ब्रांड रणनीति के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Single Brand Strategy)**

(i) संवर्धन प्रयासों में दोहराव (Duplication in Promotional Efforts) को रोक सकते हैं, इसमें विज्ञापन व्ययों में बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं। इसके परिणामस्वरूप विज्ञापन व्ययों में कमी आती है। (ii) एक ही ब्रांड होने पर डीलरों, विक्रयकर्ताओं, ग्राहकों को ब्रांड को लेकर उलझन (Confusion) नहीं होती। (iii) अधिक केंद्रित विपणन प्रयास (Focussed Marketing)। (iv) स्कंध लागत (Inventory cost) व वितरण लागत में कमी। (v) बहुल ब्रांड रणनीति की तुलना में इसमें कम लागत आती है।

● बहुल ब्रांड रणनीति के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Multiple Brand Strategy)

(i) बहुल ब्रांड रणनीति अपनाकर वैश्विक कंपनी बाजार विभक्तिकरण (Market Segmentation) तकनीक अपना सकती है। (ii) यदि एक बाजार क्षेत्र में ब्रांड की [illegible] हो जाती है तो इससे अन्य बाजार क्षेत्रों की बिक्री पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। (iii) कंपनी के उत्पादों को फुटकर विक्रेता के स्टोर में प्रदर्शन के लिए अधिक स्थान (More Shelf Space) मिल जाता है। फुटकर विक्रेता उत्पादक के प्रत्येक ब्रांड के उत्पाद रिटेल स्टोर में प्रदर्शन के लिए प्रदर्शित करता है। (iv) इस ब्रांड रणनीति में ट्रेडिंग अप और ट्रेडिंग डाउन (Trading up and Trading down) की नीति को भी अपनाया जा सकता है।

यदि विभिन्न राष्ट्रीय बाजारों में भिन्नता पाई जाती है, जैसे आर्थिक दशाएँ, वातावरणीय दशाएँ, संस्कृति, सामाजिक मूल्यों, [illegible] आदि में अंतर है तो वैश्विक कंपनी को बहुल ब्रांड नीति अपनानी चाहिए। यदि विभिन्न राष्ट्रीय बाजारों में अंतर अधिक नहीं है तो वैश्विक कंपनी को एकल ब्रांड रणनीति अपनानी चाहिए। यदि वैश्विक कंपनी एथनोसेन्ट्रिक या जियोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण अपनाती है अर्थात् [illegible] दृष्टिकोण अपनाती है तो वैश्विक कंपनी को एकल ब्रांड रणनीति को अपनाना चाहिए। यदि वैश्विक कंपनी [illegible] दृष्टिकोण अपनाती है तो इसे बहुल ब्रांड रणनीति अपनानी चाहिए।

● (2) उत्पादक ब्रांड रणनीति बनाम मध्यस्थ ब्रांड रणनीति

(Manufacturer's Brand Strategy vs. Middlemen Brand Strategy)

वैश्विक कंपनी का अपना ब्रांड हो सकता है। इस दशा में मेजबान देशों में मध्यस्थ वैश्विक कंपनी के ब्रांड नाम से उत्पाद बेचते हैं। इसके अलावा कई बार वैश्विक कंपनी उत्पाद को बनाकर बिना ब्रांड निर्धारित किए मेजबान देश में मध्यस्थों को बेच देती है। इस दशा में मेजबान मध्यस्थ वैश्विक कंपनी के उत्पाद को अपने ब्रांड से बेच सकते हैं। इन रणनीतियों की उपयुक्तता की चर्चा निम्नलिखित है।

● उत्पादक ब्रांड रणनीति के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Manufacturer's Brand Strategy)

(i) उत्पादक का विपणन क्रियाओं पर अधिक नियंत्रण। (ii) उत्पादक की विपणन मध्यस्थों के साथ मोलभाव शक्ति में सुधार। (iii) वैश्विक कंपनी की ख्याति व छवि में सुधार। (iv) उपभोक्ता को यह पता होता है कि वह किस निर्माता का उत्पाद प्रयोग कर रहा है।

परन्तु इस रणनीति में उत्पादक को उत्पाद की क्वालिटी के बारे में बहुत सतर्क रहना पड़ता है। विक्रय संवर्धन, विज्ञापन व वैयक्तिक विक्रय पर बहुत ध्यान देना पड़ता है। ब्रांड से जुड़ी सारी जिम्मेदारियाँ उत्पादक को लेनी पड़ती है।

● मध्यस्थ ब्रांड रणनीति के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Middlemen's Brand Strategy)

(i) उत्पादक उत्पादन-क्रियाओं पर ध्यान केंद्रित कर सकता है। (ii) प्रायः उत्पादक ब्रांड रणनीति में उत्पाद की कीमत अधिक होती है, जबकि मध्यस्थ ब्रांड रणनीति में उत्पाद की कीमत कम होती है। उपभोक्ता को मध्यस्थ ब्रांड रणनीति में उत्पाद कम कीमत पर मिल जाता है। (iii) कुछ छोटे उत्पादक अपने उत्पाद को विदेशी बाजारों में बेचना तो चाहते हैं, लेकिन उनके पास इतने संसाधन नहीं होते कि वे विदेशी बाजारों में अपना विपणन ढाँचा स्थापित कर सकें तथा अपने ब्रांड को प्रसिद्ध कर सकें। ऐसे छोटे उत्पादक अपने उत्पाद को विदेशी मध्यस्थ को बेच देते हैं। उत्पाद को ब्रांड नाम मध्यस्थ ही देते हैं। उत्पादक ब्रांड से जुड़े दायित्वों से बच जाते हैं। (iv) छोटे उत्पादक यदि स्वयं अपने ब्रांड से उत्पाद को विदेशी बाजारों में बेचते हैं तो उनके लिए सुदृढ़ संवर्धन कार्यक्रमों (Promotional Campaigns) के अभाव में बड़े बाजार में उत्पाद बेचना मुश्किल होता है। परन्तु मध्यस्थों के ब्रांड से वे अपने विक्रय को बहुत बढ़ा सकते हैं।

परन्तु इस रणनीति में उत्पादक को मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़ता है। मध्यस्थ कभी भी उस उत्पादक को छोड़कर किसी अन्य उत्पादक का माल बेचना शुरू कर सकते हैं।

संक्षेप में, यदि उत्पादक के पास विशाल पूँजी साधन है, विशाल बाजार आधार है, तो उसे उत्पादक ब्रांड रणनीति को अपनाना चाहिए। परन्तु यदि वह उत्पादक विदेशी बाजारों में अपना विपणन ढाँचा स्थापित नहीं कर सकता, तो उसे मध्यस्थ ब्रांड रणनीति अपनानी चाहिए।

III. उत्पाद पैकेजिंग संबंधी निर्णय (Product Packaging Decision)

पैकेजिंग भी उत्पाद संबंधी एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है जो उत्पाद की पहचान, सुरक्षा व संवर्धन का संयत्र है। पैकेज उत्पाद का कंटेनर है। कोई भी पात्र या लपेटने वाला सामान (Wrapper) जिसमें उत्पाद को रखा जाता है, उसे पैकेज कहते हैं।

(i) **फिलिप कोटलर के अनुसार, "पैकेज कोई भी आकर्षक लपेटने वाला सामान, डिब्बा, केन, बोतल, जार, ट्यूब, बैरल, या ड्रम है जो उत्पाद के वितरण को सुविधाजनक बनाता है।"** (A package may be a specially designed wrapper, box, carton, can, crate, bottle, jar, tube, barrel, drum or pallet for convenient distribution of product. **–Philip Kotler**)

(ii) **विलियम जे॰ स्टैंटन के अनुसार, "पैकेजिंग से अभिप्राय उत्पाद नियोजन के अंतर्गत आने वाले उन कार्यों के सामान्य समूह से है जिनका संबंध किसी उत्पाद को लपेटने/पैक करने, कंटेनर का उत्पादन करने और इसका डिज़ाइन तैयार करने से संबंधित है।"** (Packaging may be defined as the general group of activities in product planning which involves wrapping/packing the product, designing and producing the containers or wrapper for a product. **–William J. Stanton**)

पैकेजिंग से उत्पाद को प्रतियोगी उत्पादों से अलग पहचानने में सहायता मिलती है। पैकेजिंग के बिना लेबलिंग संभव नहीं है। इससे उत्पाद की क्वालिटी व ताजगी बनी रहती है। पैकेजिंग मिलावट को रोकने में सहायक है। उत्पादों के परिवहन व हैंडलिंग में पैकेजिंग का बहुत महत्त्व है। अंतर्राष्ट्रीय विपणन में पैकेजिंग का विशेष महत्त्व है क्योंकि उत्पाद का अन्य देशों में निर्यात किया जाता है, इसकी हैंडलिंग अधिक होती है। इसे निर्यातक देश की बंदरगाह पर, समुद्री जहाज पर, फिर आयातक देश की बंदरगाह पर चढ़ाया-उतारा आदि जाता है। इसलिए पैकेज मजबूत एवं समुद्री वातावरण के अनुकूल होना चाहिए। विभिन्न देशों में पैकेजिंग संबंधी नियम भिन्न-भिन्न होते हैं। वैश्विक कंपनी को विभिन्न देशों के पैकेजिंग संबंधी अधिनियमों का पालन करना चाहिए, जैसे कुछ देशों में तंबाकू उत्पादों के पैकेज पर यह चेतावनी देना अनिवार्य है कि 'तंबाकू सेवन से कैंसर होता है।' कुछ देशों में किसी विशेष उत्पाद से निर्मित कंटेनर की मनाही है। जैसे डेनमार्क में एल्युमीनियम के कंटेनर के प्रयोग पर वैधानिक प्रतिबंध (ban) है। कुछ देशों में ऐसा नियम है कि पैकेजिंग में प्रयुक्त सामग्री बायो-डिग्रेडेबल (Bio-degradable) व पुनःचक्रीय (Recyclable) होनी चाहिए। विकासशील देशों में लोग ऐसा कंटेनर पसंद करते हैं, जिसे बाद में किसी घरेलू कार्य में प्रयोग किया जा सके। जापान तथा इटली में उपभोक्ता सुंदर व आकर्षक पैकेज को पसंद करते हैं। कुछ देशों में प्लास्टिक बैग का पैकेजिंग में प्रयोग वर्जित है। इसके अलावा पैकेजिंग संबंधी निर्णय लेते समय विदेशी बाजारों के जलवायु, भौगोलिक वातावरण, भौगोलिक संरचना, परिवहन माध्यम आदि, तत्वों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

4.2 कीमत निर्धारण (Pricing Decision)

कीमत उस मौद्रिक राशि को कहते है, जो उत्पाद व सेवाओं के विनिमय के बदले में क्रेता द्वारा विक्रेता को दी जाती है। यह उत्पाद/सेवा का विनिमय मूल्य है। कीमत विपणन मिश्रण के चार मुख्य संघटकों में से एक है, जिसे विपणन प्रबंधक विपणन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक प्रभावकारी संयत्र के रूप में प्रयोग करता है। कीमत संबंधी निर्णय विज्ञापन व विक्रय संवर्धन कार्यक्रमों को भी प्रभावित करता है। मूल्य संबंधी निर्णय प्रतिस्पर्धा का सामना करने, उपभोक्ता संतुष्टि बढ़ाने, बाजार अंश बढ़ाने, लाभ कमाने के उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं। कुछ कंपनियाँ मलाई उतारने वाली कीमत रणनीति (Skimming the Cream Price Strategy) अपनाती है, जिसमें उत्पाद जीवन चक्र की परिचय अवस्था में ही ऊँची कीमत निर्धारित की जाती है तथा इसके साथ-साथ विज्ञापन व संवर्धन के अन्य संयत्रों द्वारा उत्पाद के विक्रय को बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। इस तरह परिचय अवस्था में अधिकतम लाभ कमाए जाते है। फिर बाद में धीरे-धीरे मूल्यों को कम किया जाता है। यह रणनीति प्रायः नवाचारी उत्पादों (Innovative Products) के लिए अपनायी जाती है। इसके विपरीत बाजार प्रवेशक मूल्य रणनीति (Market Penetration Price Strategy) में उत्पाद की परिचय अवस्था में कम मूल्य निर्धारित किए जाते हैं। ताकि अधिक बाजार हिस्से में उत्पाद बेचा जा सके। जब नए उत्पाद का बाजार में विस्तार हो जाता है तो धीरे-धीरे उत्पाद के मूल्य में वृद्धि की जाती है। यह रणनीति प्रतियोगी इकाइयों से बचाव के लिए, बाजार अंश बढ़ाने के लिए व ब्रांड प्राथमिकता बढ़ाने के लिए बहुत प्रभावकारी है।

अंतर्राष्ट्रीय कीमत निर्धारण के अध्ययन में निम्नलिखित विषय शामिल है: (i) अंतर्राष्ट्रीय कीमत निर्धारण में बाधाएँ/संघटक, (ii) मूल्य नीतियाँ (Pricing Policies), (iii) कीमत क्वोटेशन (उद्धरण) (Price Quotations) तथा (iv) शाशपातन (Dumping)। इनकी चर्चा निम्नलिखित है:

- **I. अंतर्राष्ट्रीय कीमत निर्धारण में बाधाएँ संघटक (Obstacles/Factors in International Pricing)**

(1) सरकारी हस्तक्षेप (Government Intervention)

(i) बहुत से देशों में सरकार **न्यूनतम कीमतें तथा अधिकतम कीमतें** निर्धारित करती है। न्यूनतम कीमतें निर्धारित करने का उद्देश्य विदेशी कंपनियों द्वारा मेजबान देश के घरेलू बाजार में शाशपातन को रोकना है। कई बार विदेशी कंपनियाँ बहुत कम कीमतें निर्धारित करके मेजबान देश की घरेलू कंपनियों को बाजार से बाहर निकाल कर बाजार पर एकाधिकार (Monopoly Position) करना चाहती है। ऐसे व्यवहारों को रोकने के लिए सरकार न्यूनतम कीमत निर्धारित करती है।

(ii) कुछ देशों में सरकार **लाभ की अधिकतम दर** (Maximum Profit Margin) निर्धारित करती है।

(iii) **टैरिफ व उत्पादन कर**, विक्रय कर, कस्टम ड्यूटी, मूल्य वृद्धि कर व अन्य प्रकार के कर भी कीमत निर्धारण में ध्यान में रखे जाने चाहिए। कर व टैरिफ की दर बढ़ने पर कीमतें बढ़ जाती है।

(iv) सरकार द्वारा दिए गए **अनुदान** (Subsidies) भी अंतर्राष्ट्रीय कीमतों को प्रभावित करते है। यदि सरकार निर्यातों पर अनुदान देती है, तो इससे निर्यातित उत्पादों की कीमतें कम हो जाती है।

(v) कई देशों में सरकार निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए करों में **रियायतें व छूटें** देती है। ऐसी स्थिति में निर्यातक कम मूल्य पर अपना माल निर्यात कर सकते है।

(2) विनिमय दर (Exchange Rate): देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा से तुलनात्मक मूल्य विनिमय दर कहलाता है। विनिमय दर में उतार चढ़ाव भी अंतर्राष्ट्रीय कीमतों को प्रभावित करते है। यदि निर्यातक देश की मुद्रा आयातक देश की मुद्रा की तुलना में मजबूत (Appreciate) हो जाती है तो इससे निर्यातक को हानि होती है। इस हानि को पूरा करने के लिए वह निर्यात मूल्य को बढ़ा देता है, जैसे- यदि एक भारतीय निर्यातक अमेरिका में कुछ सामान निर्यात के लिए 1,000 अमेरिकन डॉलर मूल्य पर भेजता है तथा उस समय विनिमय दर $1 = ₹ 50 है। यहाँ भारतीय निर्यातक को इसके लिए ₹ 50,000 प्राप्त होंगे। मान लो अब विनिमय दर में बदलाव आ जाता है तथा भारतीय करेंसी अमेरिकन डॉलर की तुलना में सुदृढ हो जाती है तथा अब विनिमय दर $1 = ₹ 45 हो जाती है। अब निर्यातक को इसी निर्यात के लिए ₹ 45,000 मिलेंगे। इस ₹ 5,000 की हानि को पूरा करने के लिए वह निर्यात उत्पादों की कीमतें बढ़ा देगा। दूसरी ओर, यदि निर्यातक देश की मुद्रा का आयातक देश की मुद्रा की तुलना में ह्रास (Depreciation) हो जाता है, तो निर्यात उत्पादों की कीमतें कम हो सकती है।

(3) मेजबान देश की आर्थिक दशाएँ (Economic Conditions of Host Country): वैश्विक कंपनियाँ मूल्य निर्धारित करते समय मेजबान देश की आर्थिक दशाओं को भी ध्यान में रखती है, जैसे- मेजबान देश की राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, आयातक देश के लोगों की क्रय क्षमता, जीवन-स्तर आदि। यदि उत्पाद किसी निर्धन देश में बेचे जाने है तो वैश्विक कंपनी कम कीमतें निर्धारित करती है। दूसरी ओर, यदि उत्पाद किसी धनी देश में बेचे जाने है तो अधिक कीमतें निर्धारित की जाती है।

(4) मेजबान देश में प्रतिस्पर्धा का स्तर (Level of Competition in Host Nation): यदि मेजबान देश में प्रतिस्पर्धा का स्तर अधिक है, तो वैश्विक कंपनी कम मूल्य निर्धारित करेगी ताकि मेजबान देश में पर्याप्त बाजार हिस्सा प्राप्त हो सके। प्रतिस्पर्धा का स्तर कम होने पर अधिक मूल्य निर्धारित किए जाते है। प्रतिस्पर्धा का स्तर कम होने पर अधिक कीमतें निर्धारित की जाती है।

(5) उत्पाद विभिन्नता (Product Differentiation): यदि वैश्विक कंपनी का उत्पाद अन्य उपलब्ध उत्पादों से बहुत भिन्न है तथा इसमें कुछ नयी विशेषताएँ है, या यह नवाचारी उत्पाद है तो वैश्विक कंपनी प्रारंभ में ऊँचा मूल्य निर्धारित करेगी।

(6) लागत (Cost): लागत मूल्य निर्धारण में बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। लागत में स्थायी लागत व परिवर्तनशील लागत दोनों ही शामिल होती है। लागत में उत्पादन लागत, परिवहन लागत, संग्रहण लागत (Storage Cost), विज्ञापन लागत, बीमा व्यय, टैरिफ आदि सभी शामिल है। कई बार वैश्विक कंपनी अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रवेश लेने के लिए लागत से कम कीमत पर भी उत्पाद बेचने को तैयार हो जाती है परंतु यहाँ भी सीमांत/परिवर्तनशील लागत (Marginal/Variable Cost) तो पूरी की ही जाती है।

(7) अंतर्राष्ट्रीय समझौते (International Agreements): अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के संबंध में विभिन्न प्रकार के समझौते होते रहते है। ये समझौते द्विपक्षीय या बहुपक्षीय हो सकते है। कई बार इन समझौतों में अंतर्राष्ट्रीय कीमतों के बारे में भी कोई प्रावधान (Clause) हो सकता है। वैश्विक कंपनियाँ कीमतें निर्धारित करते समय इन समझौतों को भी ध्यान में रखती है।

(8) अंतर्राष्ट्रीय विपणन के उद्देश्य (International Marketing Objectives): अंतर्राष्ट्रीय विपणन के विभिन्न उद्देश्य हो सकते है, जैसे-अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रवेश, वहाँ के बाजार पर कब्जा करना, अपने फालतू उत्पादन के लिए बाजार ढूँढना, अपनी उत्पादन क्षमता का अधिकतम प्रयोग करना आदि। ये उद्देश्य कीमतों को प्रभावित करते है, जैसे- यदि कंपनी का उद्देश्य बाजार में प्रवेश लेना है, तो मूल्य कम निर्धारित किए जाते है। यदि उद्देश्य अपनी स्थापित उत्पादन क्षमता का अधिकतम प्रयोग करना है तो कीमत निर्धारण करते हुए यह सुनिश्चित किया जाता है कि सीमांत लागत/परिवर्तनशील लागत अवश्य पूरी हो।

(9) अन्य घटक (Other Factors): **(i) माँग लोच** (Demand Elasticity): यदि उत्पाद की माँग बेलोच है, तो ऊँची कीमत निर्धारित की जाएगी। **(ii) मूल कंपनी व देश की छवि** (Image of the Parent Company and the Country): वैश्विक कंपनी की सम्भागत छवि भी कीमत निर्धारण को प्रभावित करती है। इसके अलावा वैश्विक कंपनी के मूल देश की छवि भी कीमत निर्धारण को प्रभावित करती है। विकासशील व अल्पविकसित देशों की कंपनियाँ विकसित देशों की कंपनियों की तुलना में निम्न कीमत निर्धारित करती है, चाहे उनके उत्पाद विकसित देशों की कंपनियों से भी ज्यादा बेहतर क्यों न हो, क्योंकि विकासशील व अल्पविकसित देशों की वैश्विक छवि विकसित देशों की तुलना में कम अच्छी होती है।

- **II. मूल्य नीतियाँ (Pricing Policies)**

अंतर्राष्ट्रीय विपणनकर्ता निम्न में से कोई मूल्य नीति अपना सकता है।

(1) प्रमापित मूल्य नीति (Standard Price Policy): इस नीति में निर्यातक प्रत्येक प्रकार के आयातक के लिए केवल एक ही मूल्य रखता है। आयातक चाहे किसी भी देश का हो, मूल्य में भेदभाव नहीं किया जाता। कच्चा तेल निर्यातक इस मूल्य नीति को अपनाते है। प्रमापित उत्पाद बेचने वाले विपणनकर्ता इस मूल्य नीति को अपनाते है।

(2) दो प्रकार की मूल्य नीति (Two-tier Pricing Policy): इस नीति में कंपनी दो प्रकार के मूल्यों पर उत्पाद बेचती है। घरेलू बाजार में कम मूल्य पर उत्पाद बेचे जाते है जबकि विदेशों में उत्पाद अधिक कीमत पर बेचे जाते है। विदेशों में विक्रय करने पर अधिक खर्चा होता है; जैसे-अधिक परिवहन व्यय, आयात कर, बंदरगाह व्यय आदि। अतः विदेशों में ज्यादा कीमत ली जाती है।

(3) बाजार कीमत नीति (Market Pricing Policy): पोलिसेंट्रिक रणनीति अपनाने वाली कंपनियाँ इस कीमत नीति को अपनाती है। इसमें भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न कीमत लगायी जाती है। ऑटोमोबाइल निर्माता इस कीमत नीति को अपनाते है।

● III. कीमत उद्धरण [illegible] (Price Quotations)

[illegible] कीमत उद्धरण [illegible] मूल्य की जानकारी [illegible] दी जाती है। [illegible] भुगतान की शर्तें, विक्रय की शर्तें, छूट, मात्रा [illegible] की जानकारी दी जाती है। इस उद्धरण में [illegible] निर्यातक द्वारा [illegible] उद्धरण (Quotation) [illegible] कोड (Code) [illegible] कीमत उद्धरण निम्नलिखित है:

(1) फैक्टरी से बाहर (Ex-Works (EXW)): इस उद्धरण में उत्पादक की फैक्टरी में वस्तुओं की कीमत को [illegible] लिया जाता है। इस मूल्य में उत्पादक की फैक्टरी में [illegible] माल की कीमत ही बताई जाती है। इसे फैक्टरी [illegible] कीमत (Ex-factory Gate Price) भी कहते हैं। इसमें उत्पादन लागत व उत्पादक का लाभ शामिल किया जाता है। उत्पादक की फैक्टरी से आयातक के [illegible] तक के सारे व्यय आयातक को ही देने होंगे।

Ex-factory Gate Price = Cost of Production + Profit Margin of Producer

(2) जहाज तक का मूल्य या रेल तक का मूल्य (Free Alongside Ship (FAS) or Free on Rail (FOR)): इस उद्धरण में माल को निर्यातक के [illegible] से जहाज तक पहुँचाने के सारे व्यय शामिल हैं। माल को निर्यातक के फैक्टरी [illegible] से जहाज तक या रेलवे [illegible] तक लाने में किए गए परिवहन व्यय शामिल हैं परन्तु निर्यातक देश के जहाज तक माल पहुँचने के बाद के सारे व्यय व [illegible] क्रेता की जिम्मेदारी होगी। इस मूल्य में जहाज/रेल का भाड़ा एवं बीमा व्यय शामिल नहीं है। इसे भाड़ा रहित मूल्य (Cost Exclusive Freight–CEF) भी कहते हैं।

FAS/FOR/CEF = Ex-factory Gate Price + Packing charges + Loading charges at factory + Transportation charges to dock/airport/railway station + Cost of processing documents + Handling charges at sea port/airport/railway station + Export duty (if any)

(3) लागत एवं भाड़ा सहित मूल्य [C&F Price—Cost and Freight Price)]: इस मूल्य-उद्धरण में निर्यातक द्वारा आयातक को [illegible] माल को निर्यातक देश की बंदरगाह से क्रेता की बंदरगाह तक पहुँचाने में लगने वाले जहाज भाड़े की राशि को भी जोड़ दिया जाता है, परन्तु इसमें जहाज पर बीमा व्यय शामिल नहीं है।

C & F = FOR / FAS + Freight in Transit

(4) लागत, बीमा व भाड़े सहित मूल्य [CIF Price—Cost, Insurance and Freight Price]: इस क्वोटेशन में निर्यातक द्वारा वस्तु की कीमत में माल को भेजने का भाड़ा व बीमा-व्यय भी शामिल कर दिए जाते हैं। क्रेता की बंदरगाह पर माल पहुँचने के बाद के सभी व्ययों की जिम्मेदारी क्रेता की होगी।

CIF = Cost and Freight (C & F) + Insurance charges in transit

(5) आयात कर चुकता मूल्य [Delivery Duty Paid (DDP) Price]: इस क्वोटेशन का अभिप्राय है कि निर्यातक ने क्रेता के देश की सरकार द्वारा वस्तु के आयात पर लगाए जाने वाले आयात कर की राशि व आयातक देश की बंदरगाह पर सामान उतारने के खर्चे को भी शामिल कर दिया है। इसे आयातक देश की भूमि पर कीमत (Landed Price) भी कहते हैं।

DDP/Landed Price = CIF Price + Unloading charges at destination + Import duty + Fees paid to clearing agent.

(6) उपभोक्ता को अंतिम मूल्य फ्रेंको (Final Price to Consumer or Franco): यदि DDP कीमत में अंतिम क्रेता के गोदाम तक माल पहुँचाने के सभी व्ययों को शामिल कर दिया जाए तो इसे उपभोक्ता को अंतिम मूल्य फ्रेंको कहते हैं। इसमें DDP के अलावा अन्य व्यय, जैसे- आयातक एजेंट के गोदाम तक के परिवहन व्यय, आयातक एजेंट का लाभ मार्जिन, अन्य विपणन मध्यस्थों जैसे- थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता का लाभ मार्जिन भी शामिल है। अंतिम क्रेता को आयातित उत्पाद खरीदने के लिए यही कीमत चुकानी होती है।

Final Price to Consumer or **Franco** = DDP + Transportation charges to import agent's warehouse + Import agent's profit margin + Profit margin of other market intermediaries like wholesaler, retailer, etc.

● IV. राशिपातन (Dumping)

यह एक तरह की कीमत-भेदभावपूर्ण नीति है। इसके अन्तर्गत एक वैश्विक कम्पनी अपने उत्पाद को किसी देश में बहुत ही कम कीमत पर बेचती है। इसका उद्देश्य मेजबान देश के घरेलू उद्योगों को हानि पहुँचाना है। इसमें वैश्विक कम्पनी भिन्न-भिन्न देशों में अपने उत्पाद को भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचती है। राशिपातन के अन्तर्गत एक देश दूसरे देश में उत्पाद को बहुत ही कम कीमत पर बेचकर उस देश के घरेलू उद्योगों को नुकसान पहुँचाता है। जब उस उत्पाद के घरेलू उद्योग कमजोर पड़ जाते हैं या बंद हो जाते हैं, तो उस उत्पाद की कीमत को बढ़ा दिया जाता है। WTO द्वारा राशिपातन को रोकने के लिए सदस्य-देशों को यह निर्देश दिया गया है कि वे राशिपातन द्वारा किसी देश के घरेलू उद्योग को नुकसान नहीं पहुँचाएंगे। यदि कोई देश दूसरे देश के घरेलू बाजार में राशिपातन करता है, तो इसके विरुद्ध WTO में शिकायत की जा सकती है। यदि डम्प (Dump) किए गए आयात की मात्रा उस देश के घरेलू बाजार में बिकने वाले उस उत्पाद की कुल मात्रा के एक प्रतिशत से भी कम है, तो इस दशा में इस डम्पिंग को नगण्य ही माना जाएगा और WTO इसकी सुनवाई नहीं करेगा। वर्ष 2011 के आठवें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में राशिपातन को रोकने के लिए बहुत से [illegible] विश्व व्यापार संगठन के अनुसार, जब राशिपातन से मेजबान देश की व्यावसायिक इकाइयों को हानि होती है, तो इसे अनुचित व्यापार व्यवहार (Unfair Trade Practice) माना जाता है।

● राशिपातन के प्रकार (Types of Dumping)

(1) लुटेरा/प्रीडेटरी राशिपातन (Predatory Dumping): इस तरह के राशिपातन में विदेशी कम्पनियों का मुख्य उद्देश्य मूल देश की व्यावसायिक इकाइयों को नुकसान पहुँचा कर उन्हें बंद होने पर मजबूर करना है। इससे प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जाएगी तथा फिर विदेशी कम्पनी एकाधिकार स्थिति प्राप्त कर लेगी। इस प्रकार के राशिपातन को अल्पकाल के लिए ही अपनाया जाता है। जब वैश्विक कम्पनी मेजबान देश में एकाधिकारिक स्थिति प्राप्त कर लेती है, तो फिर कीमतों में वृद्धि कर दी जाती है।

(2) अनियमित/स्पोरेडिक राशिपातन (Sporadic Dumping): जब कोई उत्पादक मेजबान देश में बहुत कम कीमत पर अपना बेकार पड़ा या अनबिका माल (Unsold Stock) बेचता है तो इसे स्पोरेडिक राशिपातन कहते हैं। यह नीति सामान्यतया उन देशों में अपनायी जाती है, जहाँ वैश्विक कम्पनी सामान्यतया अपने उत्पाद नहीं बेचती।

(3) दीर्घकालीन/निरंतर राशिपातन (Persistent Dumping): इस प्रकार के राशिपातन में किसी एक देश में अन्य देशों की तुलना में उत्पाद लगातार दीर्घकाल तक बहुत ही कम कीमत पर बेचे जाते हैं। इसका उद्देश्य उस मेजबान देश में प्रतिस्पर्धा को पूर्ण रूप से समाप्त करके दीर्घकाल के लिए एकाधिकार प्राप्त करना है।

(4) विपरीत राशिपातन (Reverse Dumping): विपरीत राशिपातन में घरेलू बाजार में तो उत्पाद बहुत ही कम कीमत पर बेचा जाता है ताकि घरेलू बाजार से प्रतिस्पर्धा को समाप्त किया जा सके, परन्तु विदेशी बाजार में उत्पाद तुलनात्मक रूप में अधिक कीमत पर बेचा जाता है।

राशिपातन अवैधानिक है तथा इसे अनुचित व्यापार व्यवहार (Unfair Trade Practice) माना जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रतिस्पर्धा को समाप्त करके एकाधिकारिक स्थिति को प्राप्त करना है, ताकि बाद में ऊँची कीमतों पर उत्पाद बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सके। इससे उपभोक्ताओं के शोषण में वृद्धि होती है। कुछ देशों में सरकार राशिपातन-रोधक-कर (Anti-dumping Duties) लगाती है जिससे राशिपातन पर नियंत्रण पाने में सफलता मिलती है क्योंकि कर लगाने से उन विदेशी उत्पादों की कीमतें बढ़ जाती हैं। सरकार डम्प किए जा रहे उत्पादों के आयात को अनिवार्य लाइसेंसिंग सूची में शामिल कर लेती है। ऐसी विदेशी कम्पनियों को लाइसेंस नहीं दिया जाता जो राशिपातन व्यवहारों में संलग्न होती हैं। कुछ देशों में, सरकार विदेशी कम्पनियों द्वारा राशिपातन को रोकने के

लिए न्यूनतम कीमतों की सीमा (Floor Prices) निर्धारित कर देती है, अर्थात् इससे कम कीमत पर उत्पाद बेचे नहीं जा सकते। इससे राशिपातन व्यवहारों पर नियंत्रण करने में सहायता मिलती है।

■ 4.3 भौतिक वितरण [Placement (Physical Distribution)]

भौतिक वितरण का तात्पर्य उत्पादों व सेवाओं के उत्पादन-स्थान से उपभोग-स्थान तक प्रवाह से है। उत्पादों/सेवाओं के इस प्रवाह में जितनी भी क्रियाएँ शामिल होती है, उन्हें सामूहिक रूप से भौतिक वितरण कहते है। इसमें वितरण माध्यम, परिवहन एजेन्सियों, बैंकों, बीमा कंपनियों, वेयरहाउसों आदि की सेवाएँ ली जाती है। भौतिक वितरण के अंतर्गत विपणनकर्ता को अनेक प्रकार के निर्णय लेने होते है, जैसे-परिवहन के कुशल साधनों का चयन, उचित भंडारगृह का चयन, माल का रख-रखाव, आदेशों की मात्रा, आदेशों की पूर्ति प्रक्रिया आदि।

(i) **कण्डिफ** एवं **स्टिल** के अनुसार, **''वस्तुओं के उत्पादन के बाद लेकिन उपभोग से पहले उसे वास्तविक रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना तथा संग्रह करना भौतिक वितरण के अंतर्गत आता है।''** (Physical distribution involves the actual movement and storage of goods after they are produced and before they are consumed. **–Cundiff and Still**)

(ii) **विलियम जे॰ स्टेंटन** के अनुसार, **''उत्पादों के भौतिक वहाव का प्रबंध और वहाव प्रणाली की स्थापना एवं उसका संचालन भौतिक वितरण में शामिल है।''** (Physical distribution involves the management of the physical flow of products and the establishment and operation of flow system. **–William J. Stanton**)

● I. वितरण माध्यम का अर्थ (Meaning of Distribution Channel)

उत्पादों को उत्पादन केंद्रों से उपभोक्ताओं तक जिन माध्यमों से पहुँचाया जाता है, उन्हें वितरण माध्यम कहते है। अंतर्राष्ट्रीय विपणन में उत्पादक अपने उत्पादों को अंतिम उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए विशिष्ट मध्यस्थों की सहायता लेता है, जिन्हें उत्पाद वितरण का गहरा अनुभव होता है। इनकी सहायता से उत्पाद वितरण के कार्य को प्रभावशाली ढंग से संपन्न किया जा सकता है। वितरण माध्यम उत्पादक व उपभोक्ताओं के मध्य कड़ी का काम करता है। वितरण माध्यम द्वारा जैसा उत्पाद होता है, वह उसी रूप में उत्पादक से अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचाया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय विपणन में अनेक एजेंसियों; जैसे- बैंक, बीमा कंपनियों, परिवहन एजेंसियों, वितरण भंडार गृह, विज्ञापन एजेन्सियों आदि की सेवाएँ ली जाती है। परंतु यहाँ हम वितरण माध्यम के मुख्य भागीदार-थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता, निर्यात/विक्रय एजेंट आदि का ही अध्ययन करेंगे। यद्यपि विज्ञापन एजेंसियाँ, बीमा व बैंक कंपनियाँ भी उत्पादों के प्रवाह में सेवाएँ प्रदान करती है, तब भी उन्हें वितरण माध्यम की परिभाषा में शामिल नहीं किया जाता क्योंकि ये उत्पादों के क्रय विक्रय में भाग नहीं लेती।

विपणन मध्यस्थ जो उत्पादों को उत्पादक से क्रय करके अंतिम उपभोक्ताओं को ये उत्पाद बेचते हैं, उन्हें ही मुख्य तौर पर वितरण माध्यम में शामिल किया जाता है। यद्यपि सूचना-तकनीकी के विकास से ऑनलाइन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को काफी बढ़ावा मिला है, जिससे उत्पादक सीधे ही उत्पाद अंतिम उपभोक्ताओं को बेचते है, परंतु अभी ऑनलाइन विपणन अधिक प्रचलित नहीं है। अतः वितरण-माध्यमों का आज भी अंतर्राष्ट्रीय विपणन में बहुत महत्त्व है। विभिन्न विद्वानों द्वारा वितरण माध्यम के बारे में दी गई कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित है:

(i) **विलियम जे॰ स्टैंटन** के अनुसार **''उत्पादों के अधिकार स्वामित्व को अंतिम उपभोक्ता या औद्योगिक प्रयोगकर्ता तक पहुँचाने के लिए जो माध्यम अपनाया जाता है, वह वितरण माध्यम कहलाता है।''** (A channel of distribution for the product is the route taken by the title to the product as these move from producer to ultimate consumer or industrial user. **–William J. Stanton**)

(ii) **कण्डिफ, स्टिल** एवं **गोवोनी** के अनुसार **''विपणन माध्यम वह वितरण जाल हैं जिनके द्वारा उत्पादक उत्पादों को बाजार की ओर प्रवाहित करते है।''** (Marketing channels are the distribution networks through which producer's products flow to the market. **–Cundiff, Still and Govoni**)

वितरण माध्यम की लंबाई बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक मध्यस्थ के कमीशन/लाभ मार्जिन से उत्पाद की कीमत बढ़ती है। अतः वितरण माध्यम को छोटा रखने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। वितरण माध्यम की लंबाई के आधार पर यह शून्य स्तरीय, एकस्तरीय, द्विस्तरीय या बहुस्तरीय हो सकता है। शून्य स्तरीय वितरण माध्यम में उत्पादक सीधे अंतिम उपभोक्ता को उत्पाद बेचता है। इसे प्रत्यक्ष विपणन भी कहते है; जैसे- डेल कम्प्यूटर्स (Dell Computers) ऑनलाइन विपणन द्वारा अपना उत्पाद सीधे ही अंतिम उपभोक्ता को बेचता है। एक स्तरीय माध्यम में उत्पादक व अंतिम उपभोक्ता के मध्य केवल एक ही वितरण माध्यम होता है, जो थोक विक्रेता या फुटकर विक्रेता हो सकता है। द्विस्तरीय वितरण माध्यम में दो मध्यस्थ होते है– थोक विक्रेता व फुटकर विक्रेता। बहुस्तरीय माध्यम में उत्पादक व उपभोक्ता के मध्य दो से ज्यादा मध्यस्थ होते है।

Zero level	Manufacturer →	→	→	→	Consumers
One level	Manufacturer →	→	→	Retailers →	Consumers
One level	Manufacturer →	→	Wholesalers →	→	Consumers
Two level	Manufacturer →	→	Wholesalers →	Retailers →	Consumers
Multi level	Manufacturer →	Selling/Export Agent →	Wholesalers →	Retailers →	Consumers

● II. वितरण माध्यम नीतियाँ (Distribution Channel Policies)

वितरण माध्यमों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वितरण माध्यम नीतियाँ बनायी जाती है। अंतर्राष्ट्रीय विपणन प्रबंधक को अपनी वितरण माध्यम नीतियों का निरंतर अध्ययन करते रहना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्धारित वितरण माध्यम नीति वर्तमान परिस्थितियों में सर्वाधिक उचित नीति है। बाजार दशाओं में परिवर्तन होने पर वितरण नीतियों में भी परिवर्तन करने पड़ते है। वितरण माध्यम नीतियों का चयन विभिन्न घटकों पर निर्भर करता है; जैसे वितरण माध्यम के उद्देश्य, वितरित किए जाने वाले उत्पादों की प्रकृति, सरकारी नीति, आदि। प्रायः निम्नलिखित वितरण नीतियाँ अपनायी जाती है:

(1) **गहन वितरण नीति** (Intensive Distribution Policy): इस नीति में उत्पादक/विपणनकर्ता विभिन्न स्थानों पर अत्यधिक फुटकर स्टोर खोलकर बाजार में गहन प्रवेश लेता है। यह नीति सुविधाजनक उत्पादों के विक्रय के लिए बहुत उपयुक्त है; जैसे-टूथपेस्ट, पेन, साबुन, चाय, कॉफी, सॉफ्ट ड्रिंक, वाशिंग पाउडर आदि। अनेक स्थानों पर फुटकर स्टोर खोलने से उपभोक्ताओं को वे उत्पाद घर के पास ही उपलब्ध हो जाते है। गहन वितरण नीति उन उत्पादों के लिए उपयोगी है, जिनका इकाई मूल्य कम होता है। उपभोक्ता इन उत्पादों को थोड़ी थोड़ी मात्रा में क्रय करता है। ऐसे उत्पादों के उपभोक्ताओं की संख्या बहुत अधिक होती है।

(2) **चयनात्मक वितरण नीति** (Selective Distribution Policy): जब उत्पादक अपने उत्पादों का विक्रय कुछ चुने हुए मध्यस्थों से ही करवाता है, अर्थात् वितरकों (थोक विक्रेताओं व फुटकर विक्रेताओं) की संख्या बहुत कम है, तो इसे चयनात्मक वितरण रणनीति कहते है। यह नीति सौदा उत्पादों (Shopping Products) व विशिष्ट उत्पादों (Speciality Products) के लिए अपनायी जाती है, जैसे टेलीविजन, वाशिंग मशीन, एयर कंडीशनर, कम्प्यूटर, कपड़े, जूते, ब्रांडेड फर्नीचर आदि। सुविधाजनक उत्पादों की तुलना में इन्हें कम बार क्रय किया जाता है। उपभोक्ता इन्हें क्रय करने के लिए बाजार की अधिक छानबीन करता है। जिन उत्पादों में विक्रय उपरांत सेवाओं की आवश्यकता अधिक होती है, उन्हें भी चयनात्मक वितरण नीति द्वारा बेचा जाता है।

(3) **एकमात्र वितरण नीति** (Exclusive Distribution Policy): जब कोई उत्पादक अपने उत्पादों का वितरण केवल एक ही मध्यस्थ विक्रेता से करवाता है, तो उसे एकमात्र वितरण नीति कहते है। इस नीति के अंतर्गत जो मध्यस्थ नियुक्त किए जाते है, उन्हें एकमात्र विक्रय एजेंट (Sole Selling Agent) कहते है। यह नीति विशिष्ट उत्पादों के विक्रय के लिए अपनायी जाती है। इस नीति में एक क्षेत्र विशेष में उत्पाद बेचने का अधिकार एकमात्र विक्रय एजेंट को ही दिया जाता

है [illegible] बेचता, जैसे
[illegible] के अन्तर्गत आते हैं।

(4) प्रेषणी अथवा ब्रोकर द्वारा विक्रय (Consignment/Selling through Brokers): इस नीति के अन्तर्गत उत्पादक माल तैयार करके प्रेषणी (Consignee) को सुपुर्द कर देता है जो इसे निर्धारित मूल्यों पर बेचने का कार्य करता है। उत्पाद प्रेषणी के पास होता है, परन्तु इसका स्वामित्व तथा जोखिम विक्रय से पहले तक उत्पादक प्रेषक (Consignor) का होता है। प्रेषक प्रेषणी को डेल-क्रेडर (Del-Credere) कमीशन के रूप में कुछ अतिरिक्त कमीशन का भुगतान करके इधार का सारा जोखिम भी प्रेषणी को हस्तान्तरित कर सकता है। प्रेषणी उत्पादक के विक्रय प्रतिनिधि (Sales Representative) के रूप में कार्य करता है। प्रेषणी विक्रय पर कमीशन प्राप्त करता है। प्रेषणी विक्रय राशि में से अपना खर्च काटकर शेष विक्रय राशि को उत्पादक को भेज देता है।

- **III. अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में वितरण माध्यम (Distribution Channels in International Marketing)**

अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने उत्पादों को विदेशी बाजारों में प्रत्यक्ष माध्यम से या अप्रत्यक्ष माध्यम से बेच सकती है।

(1) **प्रत्यक्ष माध्यम** (Direct Channel): प्रत्यक्ष माध्यम में वैश्विक निर्माता विभिन्न देशों में अपने विपणन विभाग, सहायक कम्पनियाँ स्थापित करते है। ये सहायक कम्पनियाँ विदेशों में इन मूल कम्पनियों के उत्पाद बेचती है। इस व्यवस्था में उत्पादक अपने आन्तरिक संगठन की सहायता से सीधे ही विदेशी फर्मों को अपना उत्पाद बेचते है। इसमें घरेलू मध्यस्थ की सहायता नहीं ली जाती। प्रत्यक्ष माध्यम के एक अन्य प्रारूप में वैश्विक निर्माता विदेशी वितरकों, विदेशी थोक विक्रेताओं की नियुक्ति करता है या सीधे ही उत्पाद विदेशों में अन्तिम उपभोक्ताओं को बेचता है। महंगी औद्योगिक मशीनों की दशा में वैश्विक निर्माता सीधे ही इंटरनेट द्वारा अन्तिम ग्राहक के साथ संबंध स्थापित करता है। महंगे उत्पादों, भारी उत्पादों या ऐसे उत्पादों जिन्हें बहुत कम लोग खरीदते है, की दशा में प्रत्यक्ष माध्यम द्वारा उत्पाद बेचे जाते है। प्रत्यक्ष माध्यम में उत्पादक का विदेशी बाजार पर अधिक नियंत्रण होता है, वह अपनी सुविधा के अनुसार विपणन रणनीतियाँ अपना सकता है। परन्तु यह विधि अधिक महंगी है। सस्ते उत्पादों व तेजी से बिकने वाले उत्पादों (Fast Moving Goods) की दशा में यह विधि उपयुक्त नहीं है।

(2) **अप्रत्यक्ष माध्यम** (Indirect Channel): इसके अन्तर्गत वैश्विक उत्पादक घरेलू विपणन मध्यस्थों; जैसे-ब्रोकर, एजेंट, निर्यात प्रबंध कम्पनियों, निर्यात व्यापारियों आदि की सहायता से विदेशी बाजारों में उत्पाद बेचते है। विदेशों में उत्पाद मध्यस्थों की सहायता से बेचे जाते है। कुछ मध्यस्थ; जैसे- निर्यात व्यापारी, निर्यात प्रबंध कंपनी उत्पादों का स्वामित्व (Title) ग्रहण नहीं करते है। जबकि कुछ अन्य मध्यस्थ उत्पादों का स्वामित्व ग्रहण करते है। कम कीमत वाले उत्पादों, तेज गति से बिकने वाले उत्पादों की दशा में अप्रत्यक्ष माध्यम से विक्रय अधिक उचित रहता है। कई बार सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के कारण विदेश में सहायक कंपनी स्थापित करना या प्रत्यक्ष विक्रय करना संभव नहीं होता। इसी तरह कुछ देशों में सरकार की अपनी एजेंन्सियाँ होती है जो कुछ विशेष उत्पाद स्वयं ही वैश्विक उत्पादकों से खरीदती है। ऐसी दशा में भी वैश्विक निर्माता विदेशी बाजार में प्रत्यक्ष विक्रय नहीं कर सकता। वह अप्रत्यक्ष माध्यम द्वारा ही विदेशी बाजार में उत्पाद बेच सकता है। इसी तरह जब कोई वैश्विक निर्माता किसी नए देश में प्रवेश लेना चाहता है, जहाँ उसने पहले कभी उत्पाद नहीं बेचा है, और न ही इसे वहाँ का कोई अनुभव है, तो ऐसी स्थिति में स्वयं की सहायक कंपनी स्थापित करने के स्थान पर वैश्विक निर्माता को विदेशी बाजार के किसी मध्यस्थ की सहायता से उत्पाद बेचने चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में मुख्य अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम/मध्यस्थ निम्नलिखित हो सकते हैं:

(i) **विदेशी वितरक** (Foreign Distributor): विदेशी वितरक को विदेशी बाजार में वैश्विक कंपनी का उत्पाद बेचने का एकमात्र अधिकार (Exclusive Right) होता है। यह वैश्विक निर्माता के नियंत्रण में विदेशी बाजार में कार्य करता है। यह केवल उसी वैश्विक निर्माता के लिए ही कार्य करता है, जिसने इसे नियुक्त किया है। इसे विदेशी थोक विक्रेता भी कहते है।

(ii) **विदेशी फुटकर विक्रेता** (Foreign Retailer): इसे विदेशी वितरक/थोक विक्रेता द्वारा नियुक्त किया जाता है। यह विदेशी वितरक से अगला माध्यम है। यह विदेशी वितरक के नियंत्रण में कार्य करता है।

(iii) [illegible] Broker): वैश्विक निर्माता विदेशी बाजारों में उत्पाद बेचने के लिए निर्यात एजेंटों/ब्रोकरों की सहायता लेते है। इन एजेंटों/ब्रोकरों को विदेशी बाजारों के बारे में बहुत अनुभव व जानकारी होती है। ये वैश्विक उत्पादकों से उत्पाद लेकर सीधा विदेशी ग्राहकों को भी बेचते है या ये थोक विक्रेताओं व फुटकर विक्रेताओं की सहायता से विदेशी बाजारों में उत्पाद बेचते है।

(iv) **निर्यात प्रबंध कंपनी** (Export Management Company): कई बार कुछ वैश्विक उत्पादक विदेशी बाजार में उत्पाद बेचने का सम्पूर्ण कार्य किसी विशिष्ट निर्यात प्रबंध कम्पनी को दे देते है। यह कम्पनी अन्य निर्यातकों के लिए भी कार्य करती है, परन्तु यह वर्तमान क्लाइंट (Client) के निकटतम प्रतियोगी उत्पादकों का विक्रय कार्य नहीं लेती।

(v) **निर्यात ड्रोप शिपर** (Export Drop Shipper): यह निर्यातक व आयातक के मध्य कड़ी (link) स्थापित करता है। यह निर्यातक से उसके बेचे जाने वाले उत्पादों के बारे में जानकारी प्राप्त करके, उन उत्पादों के लिए विदेशी बाजार में उपयुक्त क्रेता ढूंढता है। उपयुक्त आयातक मिलने पर वह आयातक व निर्यातक को एक-दूसरे के बारे में आवश्यक जानकारी दे देता है। फिर उसके बाद निर्यातक सीधे आयातक को ही माल भेजता है। इसे डेस्क जॉबर या केबल व्यापारी (Desk Jobber or Cable Merchant) भी कहते है।

(vi) **निर्यात व्यापारी** (Export Merchant): यह निर्यातक से स्वय उत्पाद क्रय कर लेता है तथा फिर उपयुक्त क्रेता मिलने पर स्वयं उस उत्पाद को उस क्रेता को बेचता है। यह कमीशन पर नहीं बल्कि लाभ कमाने के लिए कार्य करता है। यह निर्यातक के अधीन न हो कर स्वतन्त्र रूप से अपने नाम से ही कार्य करता है।

(vii) **सरकार द्वारा नियंत्रित व्यापारिक कंपनी** (Government Controlled Trading Company): कुछ देशों में कुछ विशेष उत्पादों के आयात पर सरकार का सम्पूर्ण नियंत्रण होता है। ऐसे उत्पादों के सारे आयात सरकार द्वारा नियंत्रित व्यापारिक कंपनी ही करती है। वैश्विक उत्पादनकर्ता इन कंपनियों से संपर्क करके उन्हें अपने उत्पाद बेचते है। फिर ये व्यापारिक कंपनियाँ अपने देश में इन आयातित उत्पादों को बेचती है।

- **अंतर्राष्ट्रीय विपणन में वितरण नेटवर्क (Distribution Network in International Marketing)**

अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में वितरण नेटवर्क को निम्न चार्ट में दर्शाया गया है:

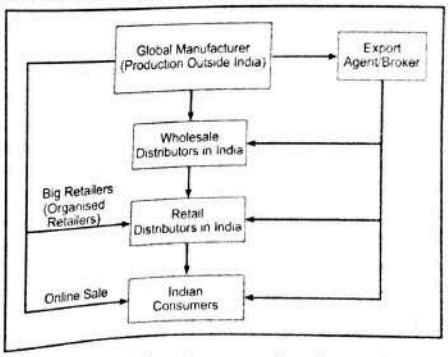

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के वितरण नेटवर्क में चार वितरण रूट दर्शाए गए है। (i) सर्वाधिक प्रचलित वितरण नेटवर्क है: **उत्पादक → थोक विक्रेता → फुटकर विक्रेता → उपभोक्ता।** इस नेटवर्क में उत्पादक उत्पाद को थोक-विक्रेताओं को बेचता है, जो

इन उत्पादो को फुटकर विक्रेताओ को बेचते है, फुटकर विक्रेता इन उत्पादो को अंतिम उपभोक्ताओं को बेचते है। (ii) बड़े फुटकर विक्रेताओ (संगठित फुटकर विक्रेता) की दशा मे, उत्पादक उत्पादो को सीधा ही बड़े फुटकर विक्रेता को बेचता है। इसमें थोक विक्रेताओं की सेवाएँ नही ली जातीं। (iii) ऑन लाइन विक्रय (Online Sales) की दशा में, उत्पादक ऑन लाइन पॉर्टल (Online Portals) की सहायता से उत्पादो को सीधे ही अंतिम उपभोक्ताओ को बेचता है। (iv) यदि वैश्विक उत्पादक को अन्य देशो के बाजार के बारे में अधिक समझ नही होती तो वह निर्यात एजेंटो/ब्रोकरो की सेवाए लेता है। इस दशा मे निर्यात एजेंट/ब्रोकर ही विदेशी बाजारों में वितरण मध्यस्थो, जैसे- थोक विक्रेताओ, फुटकर विक्रेताओं की व्यवस्था करता है। उत्पादक उत्पाद को निर्यात एजेंटो/ब्रोकरो को बेचकर, उत्पाद के वितरण का कार्य उन्ही पर छोड देता है।

वितरण माध्यम की लंबाई बहुत से तत्वो, जैसे-उत्पाद की कीमत, उत्पाद की प्रकृति, बाजार केंद्रीयकरण, व्यावसायिक इकाइयों के सुसंगठित होने आदि पर निर्भर करती है। सुसंगठित वैश्विक फुटकर स्टोर, जैसे-वाल-मार्ट स्टोर का वितरण माध्यम छोटा है, क्योंकि ये ग्राहको तक बिना मध्यस्थो के पहुँचते है। जिन देशों मे फुटकर व्यापार क्षेत्र अभी असंगठित है, उनमें विपणन मध्यस्थों की आवश्यकता पडती है। इसी तरह महंगे व कम बिकने वाले उत्पादो का वितरण नेटवर्क छोटा होता है जबकि सस्ते व अधिक बिकने वाले उत्पादो का वितरण नेटवर्क बड़ा होता है। यदि उत्पादों को ऑनलाइन बेचा जाता है, तब वितरण नेटवर्क छोटा होता है। औद्योगिक उत्पादो की दशा में वितरण नेटवर्क की लंबाई छोटी होती है, उपभोक्ता उत्पादो का वितरण नेटवर्क बड़ा होता है। यदि बाजार भौगोलिक रूप से केंद्रित है तो वितरण नेटवर्क की लंबाई कम होती है, भौगोलिक रूप से फैले हुए बाजार में वितरण नेटवर्क बड़ा होता है।

■ वितरण माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाले घटक

(Factors Affecting Selection of Channels of Distribution)

वितरण माध्यम का चयन बहुत से तत्वों पर निर्भर करता है। इसकी चर्चा निम्नलिखित है:

- **1. विदेशी बाजार संबंधी घटक (Factors Related to Foreign Market)**

  (i) **बाजार का भौगोलिक केंद्रीयकरण** (Geographical Concentration of Market): यदि वैश्विक उत्पादक के उत्पाद का बाजार भौगोलिक रूप से केंद्रित है, तो प्रत्यक्ष वितरण माध्यम उपयुक्त होगा। दूसरी तरफ, यदि बाजार अधिक बिखरा हुआ है, तो विपणन मध्यस्थों द्वारा वितरण अर्थात् अप्रत्यक्ष वितरण अधिक उपयुक्त होगा।

  (ii) **संभावित क्रेताओं की संख्या** (Number of Probable Buyers): यदि विदेशी बाजार में संभावित क्रेताओं की संख्या कम होने का अनुमान है, तो प्रत्यक्ष वितरण उपयुक्त होगा। परन्तु यदि संभावित क्रेताओं की संख्या अधिक होने का अनुमान है, तो अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम उपयुक्त होगा।

  (iii) **आदेशों का आकार** (Order Size): यदि विदेशी बाजार मे क्रय-आदेशों की संख्या तो कम है, परन्तु क्रय का आकार बहुत बड़ा है तो प्रत्यक्ष विक्रय अधिक उपयुक्त होगा। परन्तु यदि विदेशी बाजार में आदेशों की संख्या तो बहुत अधिक है, परन्तु आदेश की मात्रा कम है तो विदेशी बाजार में विपणन-मध्यस्थों द्वारा उत्पाद बेचा जाना अधिक उचित होगा।

- **2. उत्पाद संबंधी घटक (Factors Related to Product)**

  (i) **उत्पाद की प्रकृति** (Nature of Product): यदि उत्पाद उद्योगो मे प्रयोग होने वाला है व उसका वजन भारी है, तो प्रत्यक्ष वितरण माध्यम उपयुक्त होगा। सुविधाजनक उपभोक्ता उत्पादों (Convenience Consumer Goods) की दशा में विपणन मध्यस्थों द्वारा वितरण अर्थात् अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम का चयन अधिक उपयुक्त होगा।

  (ii) **उत्पाद की नाशवानता** (Perishability of the Product): यदि विदेशी बाजार में बेचा जाने वाला उत्पाद अधिक नाशवान है तो वितरण माध्यम अधिक लंबा नहीं होना चाहिए। ऐसे उत्पादो को प्रत्यक्ष वितरण द्वारा बेचना उचित होगा।

  (iii) **तकनीकी उत्पाद** (Technological Products): यदि विदेशी बाजारों में बेचा जाने वाला उत्पाद उच्च टेक्नोलॉजी से संबंधित है तो प्रत्यक्ष वितरण द्वारा विक्रय उचित होगा, क्योंकि इसमें विक्रय से पूर्व व विक्रय के बाद तकनीकी जानकारी व विक्रय उपरांत सेवाएँ देनी होती है।

  (iv) **प्रति इकाई लागत** (Per Unit Cost): महंगे उत्पादों की दशा मे वितरण माध्यम की लंबाई कम होती है, सस्ते उत्पादों में यह लंबाई अधिक होती है। महंगे उत्पादों की दशा में प्रत्यक्ष वितरण माध्यम तथा सस्ते उत्पादों की दशा में अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम अधिक उपयुक्त होगा।

  (v) **उत्पाद रेखाओं की संख्या** (Number of Product Lines): यदि वैश्विक कंपनी द्वारा बहुत से उत्पाद विदेशी बाजार में बेचे जाने है, अर्थात् कई तरह के उत्पाद है तो मध्यस्थों की संख्या अधिक होगी। इसके विपरीत, यदि एक या दो ही तरह के उत्पादों को विदेशी बाजार में बेचा जाना है तो प्रत्यक्ष वितरण उचित होगा या कम मध्यस्थों द्वारा भी उत्पाद को विदेशी बाजार में बेचा जा सकता है।

  (vi) **विक्रय उपरांत सेवाएँ** (After Sales Service): यदि विदेशी बाजार में बेचे जाने वाले उत्पादों पर विक्रय उपरांत सेवाओं की आवश्यकता अत्यधिक है तो प्रत्यक्ष वितरण या कम मध्यस्थों द्वारा वितरण उचित होगा।

  (vii) **उत्पाद का भार व आयतन** (Weight and Volume of Product): यदि उत्पाद भारी व बड़े आकार के है तो वितरण माध्यम छोटा होना चाहिए। अर्थात् मध्यस्थों की संख्या कम होनी चाहिए, क्योंकि भारी व बड़े उत्पादों की परिवहन लागत व माल को उतारने-चढ़ाने की लागत अधिक आती है।

- **3. निर्माता कंपनी संबंधी घटक (Factors Related to Manufacturing Company)**

  (i) **वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता** (Availability of Financial Resources): यदि वैश्विक कंपनी के पास वित्तीय संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो यह विदेशी बाजारों में स्वयं की बाजार अधोसंरचना (Market Infrastructure) स्थापित करके प्रत्यक्ष वितरण कर सकती है। परन्तु यदि इसके पास पर्याप्त मात्रा में वित्तीय संसाधन नहीं है तो इसे मध्यस्थों की सहायता से अर्थात अप्रत्यक्ष वितरण से ही उत्पाद बेचने होंगे।

  (ii) **विपणन अनुभव व प्रबंधकीय कौशल** (Marketing Experience and Managerial Expertise): यदि उत्पादनकर्ता को विपणन अनुभव कम है या इसके पास प्रबंधकीय कौशल का अभाव है, तो इसे विदेशी बाजारों में उत्पाद बेचने के लिए मध्यस्थों की आवश्यकता होगी अर्थात अप्रत्यक्ष वितरण उपयुक्त होगा, परन्तु यदि इसके पास अन्तर्राष्ट्रीय विपणन का अच्छा अनुभव है तथा इसके पास उच्चस्तरीय प्रबंधकीय कौशल है, तो वह प्रत्यक्ष विपणन द्वारा विदेशी बाजारों में उत्पाद बेच सकता है।

  (iii) **वितरण माध्यमो पर नियंत्रण की इच्छा** (Desire to have Control over Distribution Channels): यदि उत्पादक वितरण व्यवस्था पर अधिक नियंत्रण रखना चाहता है तो वितरण माध्यम की लंबाई कम होगी। यदि उसे नियंत्रण केंद्रित करने की इच्छा नही है तो वितरण माध्यम की लंबाई अधिक भी हो सकती है।

- **4. मध्यस्थों से संबंधित घटक (Factors Related to Middlemen)**

  (i) **मध्यस्थों की उपलब्धता** (Availability of Middlemen): कई बार विदेशी बाजार मे अच्छी सेवाएँ प्रदान करने वाले मध्यस्थ उपलब्ध ही नहीं होते। ऐसे मे वैश्विक कंपनी को प्रत्यक्ष वितरण व्यवस्था को अपनाना पड़ता है। दूसरी ओर, यदि विदेशी बाजारो में अच्छी सेवाएँ प्रदान करने वाले मध्यस्थ उपलब्ध है तो अप्रत्यक्ष वितरण अर्थात् मध्यस्थों की सहायता से उत्पाद बेचना उचित होगा।

  (ii) **लागत तत्व** (Cost Factor): यदि मध्यस्थो की कमीशन की दर अत्यधिक है तो प्रत्यक्ष वितरण अधिक उचित होगा। दूसरी ओर, यदि प्रत्यक्ष वितरण मे विदेशी बाजार मे अधोसरचना स्थापित करने मे अत्यधिक खर्चा आता है, तो मध्यस्थो द्वारा उत्पाद बेचना अर्थात अप्रत्यक्ष वितरण अधिक उपयुक्त होगा।

  (iii) **उत्पादकों की विपणन नीतियों के प्रति मध्यस्थो का दृष्टिकोण** (Attitude of Intermediaries towards Manufacturers' Policies): कई बार उत्पादकों की विपणन संबंधी नीतियाँ बहुत सख्त होती है, जो मध्यस्थो को पसंद नहीं आती, जैसे उत्पादक मध्यस्थो पर अत्यधिक शर्तें लगा देते है; ऐसे मे मध्यस्थ उत्पादक का सामान बेचना पसंद नहीं करते। विवश होकर उत्पादक को प्रत्यक्ष वितरण ही करना पड़ता है।

- **5. सरकार द्वारा बनाए गए प्रावधान (Government Regulations)**

कुछ देशों में सरकार कुछ विशेष उत्पादों के लिए केवल सरकार द्वारा नियंत्रित व्यापारिक कंपनियों को ही उत्पाद आयात करने की अनुमति देती है। इसी तरह कई बार कुछ विदेशी उत्पादों के प्रत्यक्ष वितरण पर सरकार प्रतिबंध लगा देती है। इसी तरह कुछ देशों में सरकार एकाधिकारी विक्रय एजेंट नियुक्त करने पर भी प्रतिबंध लगाती है। ये प्रावधान भी वितरण माध्यम को प्रभावित करते हैं।

उपरोक्त घटक वितरण माध्यम के चयन में केवल मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। ये घटक प्रत्येक उत्पाद, संस्था, समय, स्थान, परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। इसके अलावा यह भी कोई आवश्यक नहीं कि वितरण माध्यम की केवल एक ही विधि अपनाई जाए। आवश्यकता अनुसार वितरण के माध्यमों में परिवर्तन भी करना पड़ता है।

■ 4.4 अंतर्राष्ट्रीय संवर्धन-संमिश्र/संचार-संमिश्र (International Promotion Mix or Communication Mix)

- **I. अंतर्राष्ट्रीय संवर्धन-संमिश्र का अर्थ (Meaning of International Promotion Mix)**

व्यावसायिक इकाई और उसके वर्तमान व भावी उपभोक्ताओं के मध्य, विक्रय से पूर्व, विक्रय के दौरान या विक्रय के उपरान्त होने वाले वार्तालाप को विपणन संचार कहते हैं। कंपनी अपने उपभोक्ताओं, फुटकर व्यापारियों, थोक व्यापारियों, एजेन्सियों, पूर्तिकर्ताओं आदि से संचार करने हेतु संचार के विभिन्न तरीकों को अपनाती है। जब कोई संगठन अपने उत्पाद व सेवाओं के विपणन हेतु संचार के विभिन्न तत्वों का प्रयोग करती है, तो इन तत्वों के मिश्रण को संचार-संमिश्र कहा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय संवर्धन के विभिन्न तरीके इस प्रकार हैं- विज्ञापन, वैयक्तिक-विक्रय, पब्लिसिटी, प्रत्यक्ष विपणन, इंटरनेट विपणन, विक्रय-संवर्धन। कुछ उत्पादों के लिए इन सभी तत्वों का इस्तेमाल करना पड़ता है, जबकि कुछ अन्य उत्पादों की दशा में इन तत्वों में से कोई दो या तीन तत्वों का मिश्रण ही पर्याप्त होता है। विपणन-संचार में वस्तुओं व सेवाओं के विपणन हेतु भावी व वर्तमान उपभोक्ताओं को उत्पाद क्रय करने के लिए प्रेरित किया जाता है, उन्हें उत्पाद के बारे में सूचना (जानकारी) दी जाती है, उत्पाद के बारे में याद दिलाया जाता है।

विपणन संचार में वे सभी क्रियाएं शामिल की जाती हैं जिनसे व्यावसायिक इकाई अपने उत्पादकों, थोक व्यापारियों, फुटकर व्यापारियों, एजेन्सियों, वर्तमान व भावी उपभोक्ताओं के साथ वस्तुओं व सेवाओं के विपणन हेतु संचार करती है। विपणन संचार का प्रमुख कार्य लक्षित श्रोताओं को उत्पाद व संगठन के बारे में आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराना है, जिससे उत्पाद के विपणन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो सके। ये संचार क्रियाएं वैयक्तिक, गैर-वैयक्तिक, भुगतान वाली या बिना भुगतान के हो सकती हैं। मुख्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय संवर्धन-संमिश्र के 6 तत्व हैं- विज्ञापन, वैयक्तिक-विक्रय, पब्लिसिटी, प्रत्यक्ष-विपणन, इंटरनेट विपणन और विक्रय-संवर्धन। परन्तु इन 6 तत्वों के अलावा विपणन-संचार-संमिश्र में पैकेज डिजाइनिंग, पैकेजिंग, लेबलिंग आदि को भी शामिल किया जाता है क्योंकि ये क्रियाएं भी ग्राहकों को कोई न कोई संदेश देती हैं। उदाहरण के तौर पर उत्पाद के पैकेज के ऊपर दी गई सूचनाएं, जैसे- उत्पाद का निर्माण करने की तिथि, उत्पाद के खराब होने की तिथि (Expiry-date), उत्पाद में प्रयुक्त तत्व, उसे प्रयोग करने की विधि, उत्पाद संबंधी निर्देश, उत्पाद को किस तापमान पर स्टोर किया जाए, उत्पाद की कीमत, उत्पाद को प्रयोग करने से होने वाले संभावित दुष्परिणाम (Side Effects) आदि सभी सूचनाएं उपभोक्ताओं को उत्पाद के बारे में निर्देश देती हैं। संचार-संमिश्र/संवर्धन-संमिश्र की मुख्य परिभाषाएं इस प्रकार हैं

(i) फिलिप कोटलर के अनुसार, **"किसी कंपनी के विपणन-संचार-संमिश्र जिसे संवर्धन-संमिश्र भी कहा जाता है, में विज्ञापन, वैयक्तिक-विक्रय, विक्रय-संवर्धन, जन-संपर्क और प्रत्यक्ष विपणन तरीकों के मिश्रण को शामिल किया जाता है, जिनसे कंपनी अपने विज्ञापन और विपणन उद्देश्यों को पूरा करती है।"** (A company's total marketing communication-mix, which is also called its promotion-mix, consists of specific blend of advertising, personal selling, sales promotion, public relations and direct marketing tools that the company uses to pursue its advertising and marketing objectives. — **Philip Kotler**)

(ii) गैरी आर्मस्ट्रांग के अनुसार, **"किसी कंपनी के संवर्धन-संमिश्र में विज्ञापन, वैयक्तिक-विक्रय, विक्रय-संवर्धन, लोक सम्पर्क, प्रत्यक्ष विपणन को शामिल किया जाता है। इसमें उत्पाद के डिजाइन, रूप, पैकेज, रंग, लेबल आदि को भी शामिल किया जाता है क्योंकि ये सभी ग्राहकों को उत्पाद के बारे में सूचना देते हैं।"** (A company's promotional mix includes advertising, personal selling, sales promotion, public relations, direct marketing. It also includes product's design, shape, package, colour, label etc. as all these communicate something to the buyers. — **Gary Armstrong**)

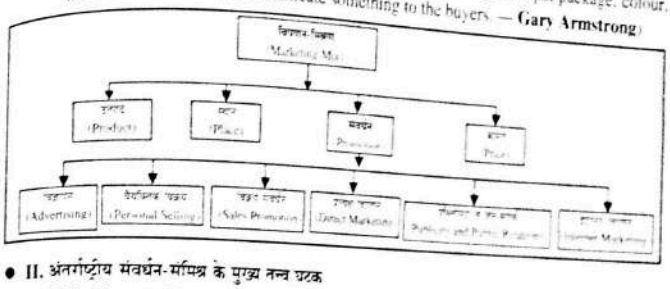

- **II. अंतर्राष्ट्रीय संवर्धन-संमिश्र के मुख्य तत्व घटक (Main Elements/Components of International Promotion Mix)**

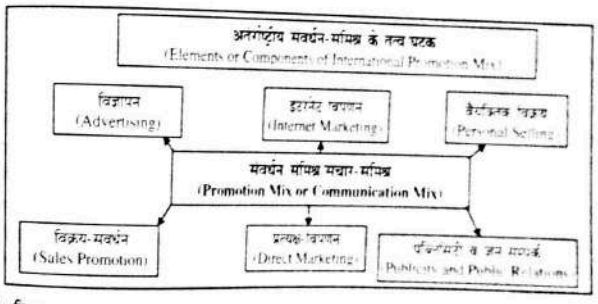

संचार-संमिश्र के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं

- **(1) विज्ञापन (Advertising)**

विज्ञापन सामूहिक-संचार (Mass-communication) के लिए प्रयोग होने वाला मुख्य तरीका है। विज्ञापन का तात्पर्य परिचित प्रायोजक (Identified Sponsor) द्वारा विचारों, वस्तुओं व सेवाओं के अवैयक्तिक प्रस्तुतिकरण और प्रवर्तन करने के ढंग से है, जिसके लिए प्रायोजक को किसी लोक मीडिया (Mass Media) की मदद लेनी पड़ती है और इसके लिए प्रायोजक, मीडिया को भुगतान करता है। यहाँ **सामूहिक-संचार** का अर्थ है कि, विज्ञापन में लोक-मीडिया, जैसे- टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र, पत्र-पत्रिकाएं, यातायात के वाहनों पर प्रदर्शन, बाह्य प्रदर्शन (Outdoor Displays), इंटरनेट आदि का इस्तेमाल किया जाता है। विज्ञापन के द्वारा एक ही समय में लाखों लोगों को संदेश दिया जा सकता है। **गैर-वैयक्तिक** संचार का अर्थ है कि इसमें प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य कोई प्रत्यक्ष वार्तालाप नहीं होता। लक्षित श्रोता के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने के कारण प्रेषक को संदेश भेजने पर, श्रोता की प्रतिक्रिया की तुरंत जानकारी नहीं मिलती। **परिचित-प्रायोजक** का अर्थ है कि विज्ञापन किसी संस्था/संगठन द्वारा करवाया जा रहा है। संस्था का विज्ञापन पर, विज्ञापन में दिए जाने वाले संदेश पर, संदेश के माध्यम पर नियंत्रण होता है। विज्ञापन और पब्लिसिटी में मुख्यतया अन्तर यही है कि विज्ञापन कंपनी स्वयं करवाती है, और यह कंपनी के नियंत्रण में होता है, जबकि पब्लिसिटी की दशा में यह कार्य कोई बाहरी व्यक्ति भी करवा सकता है और वह कंपनी के नियंत्रण से बाहर भी हो सकता है।

विज्ञापन लोक-संचार का एक बहुत ही अच्छा तरीका है। इसके द्वारा एक ही समय पर हजारों-लाखों श्रोताओं/दर्शकों को संदेश दिया जा सकता है। अतः इसमें प्रति श्रोता संचार लागत कम होती है। विज्ञापन द्वारा दिया गया संदेश मीडिया में दोहराया भी जाता है। विज्ञापन ब्रांड-पहचान व ब्रांड-प्रसिद्धि को बढ़ाने में बहुत सहायक है। हालांकि, विज्ञापन के विक्रय पर प्रभाव को मापना कठिन है, इसके बावजूद भी, विज्ञापन सामूहिक-संचार का एक बहुत ही अच्छा तरीका है।

अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में भाषा, संस्कृति, नीति-व्यवस्था (Value-system) में भिन्नता पायी जाती है। अतः एक जैसे विज्ञापन संदेश को विश्वस्तर पर नहीं दिया जा सकता। इसके अलावा पोलिसैंट्रिक दृष्टिकोण में जहाँ वैश्विक कंपनी विभिन्न देशों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्पाद बनाती है, वहाँ सभी देशों में एक ही तरह का विज्ञापन संदेश प्रभावकारी नहीं होगा। यदि उत्पादक देश की उसके उत्पाद के लिए बहुत ही अच्छी छवि है, तो विज्ञापन-संदेश में इस तथ्य पर अवश्य ही विशेष रोशनी डाली जानी चाहिए, जैसे-स्टाइल वाले उत्पादों के लिए इटली व फ्रांस की छवि बहुत ही अच्छी है। इसी प्रकार इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों के लिए जापान की छवि बहुत अच्छी है। अतः इन देशों में बने ऐसे उत्पादों के विज्ञापन में इस तथ्य पर अवश्य ही जोर डाला जाना चाहिए। वैश्विक उत्पादकों को विभिन्न देशों की स्थानीय विज्ञापन-एजेंसियों की सहायता से ही विज्ञापन कार्यक्रम चलाने चाहिए क्योंकि ये स्थानीय विज्ञापन एजेंसियाँ अपने-अपने देश की संस्कृति, पसंद, प्राथमिकताओं, दृष्टिकोण से भली-भाँति परिचित होती हैं।

● **(2) वैयक्तिक विक्रय (Personal Selling)**

यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें विक्रयकर्ता भावी व वर्तमान ग्राहकों से प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क करके उन्हें उत्पाद के बारे में जानकारी देता है, व उत्पाद को खरीदने के लिए राजी करता है। **फिलिप कोटलर** के अनुसार, ''**वैयक्तिक विक्रय में किसी कंपनी के विक्रयकर्ता उत्पाद को बेचने के लिए, व ग्राहक के साथ अच्छे संबंध स्थापित करने के लिए सम्भावित क्रेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करते हैं।**'' इसमें विक्रयकर्ता संभावित ग्राहकों के समक्ष जाकर उत्पाद को प्रस्तुत करते हैं। संचार के इस प्रारूप में विक्रयकर्ता श्रोताओं की प्रतिक्रिया को तुरन्त जान सकता है। यदि श्रोता सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं दिखा रहा, या उसे उत्पाद के बारे में कुछ शंकाएं हैं, तो विक्रयकर्ता उसे उत्पाद के बारे में विस्तृत जानकारी देकर उसकी शंकाओं को दूर करने का प्रयास करता है, व उसे उत्पाद खरीदने के लिए राजी करता है। औद्योगिक वस्तुओं, तकनीकी-वस्तुओं, व विशिष्ट वस्तुओं की दशा में वैयक्तिक-संचार बहुत ही प्रभावकारी है। तकनीकी व औद्योगिक वस्तुओं को बेचने के लिए संभावित ग्राहकों को उत्पाद की तकनीकी विशेषताओं के बारे में समझाना पड़ता है व उत्पाद के बारे में उनकी शंकाओं को दूर करना पड़ता है। वैयक्तिक-संचार उस दशा में भी बहुत प्रभावकारी है, जहां लक्षित श्रोताओं की संख्या कम है। ऐसे उत्पाद जिन्हें विशेषज्ञों की सलाह पर खरीदा जाता है, वहाँ उन विशेषज्ञों के साथ वैयक्तिक-संचार बहुत प्रभावकारी है जिनकी सलाह पर उत्पाद क्रय किया जाता है।

प्रत्येक संभावित उपभोक्ता से सम्पर्क स्थापित करना बहुत ही खर्चीला व अधिक समय लेने वाला है। इसके बावजूद भी यह विपणन-संचार की एक अच्छी विधि मानी जाती है, क्योंकि इसमें श्रोता की प्रतिक्रिया को तुरत जाना जा सकता है और संदेश को समायोजित करके तुरन्त पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है और श्रोताओं की उत्पाद के बारे में शंकाओं को दूर किया जा सकता है। प्रभावकारी वैयक्तिक विक्रय कार्यक्रम चलाने के लिए वैश्विक कंपनियों को स्थानीय विक्रयकर्ताओं को भी नियुक्त करना चाहिए क्योंकि वे स्थानीय भौगोलिक स्थानों, रस्मों, रीति-रिवाजों, भाषा, विक्रय शैली (Selling Style), क्रेताओं की पसंद व प्राथमिकताओं को भली-भाँति जानते हैं।

● **(3) पब्लिसिटी व जन-संबंध (Publicity and Public Relations)**

पब्लिसिटी संचार का गैर-वैयक्तिक तरीका है, जिसके लिए प्रायः कंपनी को भुगतान नहीं करना पड़ता। यह प्रायः संगठन के बारे में, नये ब्रांड, नये उत्पाद, उच्च अधिकारियों के हस्तान्तरण या परिवर्तन, उपभोक्ताओं द्वारा लिखे प्रशंसा पत्र, कंपनी के द्वारा किए गये आयोजनों (Functions) आदि के बारे में हो सकता है। इसका प्रेषण समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि में खबर के रूप में या एक लेख के रूप में हो सकता है। प्रायः संगठन को इसके लिए भुगतान नहीं करना पड़ता। परन्तु इसे पूर्ण रूप से मुफ्त नहीं मानना चाहिए, विपणन प्रबंधक को कंपनी के बारे में या इसके द्वारा बनाये गये उत्पाद, इसके द्वारा आयोजित कार्यक्रमों के बारे में खबर, लेख लिखवाने पड़ते हैं। इनको प्रिंट करवाना पड़ता है, और मीडिया को यह खबर, लेख प्रकाशित करवाने के लिए राजी करवाना पड़ता है। जो कंपनियाँ पब्लिसिटी के द्वारा संचार करवाती हैं, वे प्रायः संगठन में जन-सम्पर्क विभाग की स्थापना करती है, जिसमें विशिष्ट कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता है या कंपनी किसी बाहरी जन-सम्पर्क-फर्म या विज्ञापन-एजेन्सी की सेवायें लेती है। संचार के अन्य घटकों की तुलना में पब्लिसिटी अधिक विश्वसनीय व कम खर्चीली है। पब्लिसिटी में दिया गया संदेश अधिक विश्वसनीय होता है क्योंकि यह पक्षपात रहित स्रोत द्वारा दिया जाता है। पब्लिसिटी से कंपनी के उत्पाद व इसके ब्रांड की प्रसिद्धि को बढ़ावा मिलता है, व इससे कंपनी व इसके उत्पाद की छवि में सुधार होता है।

पब्लिसिटी हमेशा फर्म के नियंत्रण में नहीं होती। पब्लिसिटी का प्रभाव नकारात्मक भी हो सकता है। फर्म के बारे में छापी गयी बुरी खबर फर्म के लिए बहुत घातक भी सिद्ध हो सकती है। उदाहरण के तौर पर पेप्सी व कोक सॉफ्ट ड्रिंक में पेस्टीसाइड के निर्धारित मात्रा से अधिक होने की खबर ने, इनकी बिक्री व छवि को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया। यद्यपि बाद में कंपनी के उच्च अधिकारियों ने यह स्पष्ट किया कि यह खबर झूठी, गलत व निराधार है, तथापि सामान्य जनता का इन सॉफ्ट ड्रिंक्स में विश्वास कम हो गया है। इसके अतिरिक्त विपणनकर्ता का पब्लिसिटी के समय व इसके तत्वों (Contents) पर भी पूरी तरह नियंत्रण नहीं होता। इन सब कमियों के बावजूद सुनियोजित पब्लिसिटी संचार का एक प्रभावकारी घटक है।

जन-संबंध का अभिप्राय उन क्रियाओं से है, जो कंपनी समाज के विभिन्न समूहों से अच्छे संबंध बनाने के लिए करती है। उपभोक्ताओं, कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओं, अंशधारियों, सरकारी अधिकारियों, समाज व साधारण जनता के साथ कंपनी के संबंधों को जन-संबंध कहा जाता है। जन-संबंध का उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गों के साथ कंपनी के अच्छे संबंध स्थापित करना है। इसके लिए कंपनी अपने संगठन में जनसम्पर्क विभाग की स्थापना करती है। इस विभाग में जन-संबंध कला में निपुण व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। समाज में कंपनी की छवि को सुधारने के लिए कंपनी विभिन्न सामाजिक क्रियाएं करती है, जैसे सामाजिक घटनाओं के लिए राशि इकट्ठी करना, चैरिटेबल-संस्थाओं के लिए चंदा इकट्ठा करना, सामाजिक-कार्यक्रमों में भाग लेना, सामाजिक कार्यक्रमों का आयोजन (Sponsor) करना, अंशधारियों, उपभोक्ताओं, पूर्तिकर्ताओं, कर्मचारियों के साथ अच्छे सम्पर्क बनाए रखने के लिए इनके साथ सामूहिक पार्टियों (Get-together), कार्यक्रमों का आयोजन करना, स्कूल, कॉलेज के छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्ति देना, वृक्षारोपण करना, विकलांगों, विधवाओं, अनाथ बच्चों के लिए आश्रम बनवाना, अस्पताल बनवाना, शिक्षण संस्थान बनवाना आदि। इन सामाजिक क्रियाओं से उत्पाद व संगठन की लोक छवि में सुधार आता है।

● **(4) विक्रय-संवर्धन (Sales Promotion)**

उत्पाद व बिक्री को बढ़ाने के लिए अल्पकालीन उत्प्रेरकों (Short Term Incentives) को विक्रय संवर्धन कहा जाता है। विक्रय-संवर्धन ऐसा प्रत्यक्ष प्रोत्साहन है, जिसके अंतर्गत ग्राहकों, मध्यस्थों को पहले वाली कीमत में अधिक मूल्य का सामान दिया जाता है। यह कम्पनी द्वारा प्रायः अनियमित रूप से दिया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य संस्था के विक्रय में तुरंत वृद्धि करना है। **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन** के अनुसार, ''विक्रय-संवर्धन में वैयक्तिक विक्रय, विज्ञापन, पब्लिसिटी के अतिरिक्त वे सभी क्रियाएं आती हैं, जो उपभोक्ता को शीघ्र क्रय करने के लिए प्रेरित करती हैं, जैसे-सजावट, तमाशे, नुमाइशें, प्रदर्शन तथा विभिन्न अनियमित विक्रय प्रयत्न जो साधारणतया नहीं किए जाते हैं।'' इसमें कूपन, मुफ्त नमूने, मुफ्त उपहार, छूट, प्रतियोगिताएं, ट्रेड शो, व्यापारिक मेले, व्यापारिक प्रीमियम, विज्ञापन सामग्री का प्रदर्शन, धन वापसी प्रस्ताव, मुफ्त विक्रय उपरान्त सेवाएं, निःशुल्क प्रशिक्षण, विक्रय-प्रतियोगिताएं आदि शामिल हैं। विक्रय-संवर्धन अल्पकाल में विक्रय बढ़ाने में काफी प्रभावकारी है। इसमें उपभोक्ताओं, विक्रयकर्ताओं, वितरकों आदि को उत्पाद खरीदने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। विक्रय संवर्धन तीन प्रकार का हो सकता है

(i) उपभोक्ताओं के लिए विक्रय-संवर्धन (Consumers Oriented Sales Promotion): उपभोक्ता के लिए विक्रय-संवर्धन के अंतर्गत विक्रय-संवर्धन की वे समस्त विधियां सम्मिलित हैं जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता से संबंधित हैं। इसके अंतर्गत अन्तिम उपभोक्ता (Ultimate Consumer) को क्रय करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। इसमें

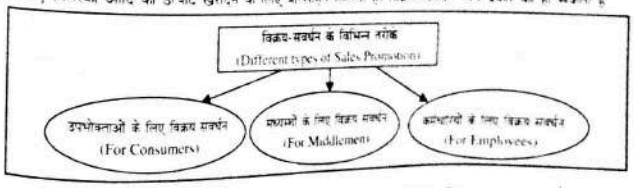

छूट, धन-वापसी, प्रदर्शन, कूपन, मुफ्त नमूने, मुफ्त उपहार, गेम्स, कीमत में छूट, उपभोक्ता-प्रतियोगिताएं, लक्की ड्रा, विक्रय उपरान्त-मुफ्त सेवायें, कम-ब्याज पर या 0% ब्याज पर ऋण की उपलब्धता, नि:शुल्क प्रशिक्षण आदि शामिल है। उपभोक्ता को उसी कीमत में उत्पाद की अधिक मात्रा दी जाती है, या कम कीमत में उत्पाद की वही मात्रा दी जाती है। उदाहरण के लिए, कोलगेट टूथपेस्ट खरीदने पर एक टूथब्रश मुफ्त।

(ii) **मध्यस्थों के लिए विक्रय-संवर्धन** (Middlemen Oriented Sales Promotion): विक्रय-संवर्धन योजनाएं विपणन-मध्यस्थों, जैसे- फुटकर विक्रेताओं, थोक-विक्रेताओं के लिए भी चलाई जाती हैं। इसमें मध्यस्थों को अधिक मात्रा में उत्पाद खरीदने के लिए, उन्हें उत्पाद खरीदने के लिए, कंपनी द्वारा बनाये गये उत्पाद को अपने शो रूम में बेहतर ढंग से प्रदर्शित करने के लिए तथा बिक्री को बढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाता है। इसमें शामिल योजनाएँ इस प्रकार हैं- क्रय छूट, विक्रय-प्रतियोगिताएं, माल को स्टोर करने के लिए वित्तीय-सहायता, मुफ्त उपहार, बिल के भुगतान में अधिक समय देना, अधिक बिक्री पर कमीशन की दर को बढ़ाना, कूपन, पोस्टर्स, सामान स्टोर करने के शेल्फ, विक्रय साहित्य उपलब्ध करवाना, मुफ्त प्रशिक्षण, मुफ्त यात्रा आदि।

(iii) **अपने कर्मचारियों के लिए विक्रय-संवर्धन** (Sales Promotion for Own Employees): ये योजनाएं कंपनी अपने विक्रयकर्ताओं के लिए चलाती है। इन योजनाओं के अन्तर्गत विक्रयकर्ताओं को नये ग्राहक ढूंढने के लिए, नये उत्पाद बेचने के लिए, विक्रय बढ़ाने के लिए, ग्राहकों से ठीक तरीके से बात करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इसमें शामिल तरीके इस प्रकार हैं- बोनस, उपहार, कमीशन की ऊंची दर, नौकरी में तरक्की, मुफ्त यात्रा आदि। अत: इन योजनाओं के अन्तर्गत विक्रय कर्मचारियों को विभिन्न वित्तीय व गैर-वित्तीय प्रलोभन दिये जाते हैं, जिससे उन्हें विक्रय बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिले।

विभिन्न विक्रय-संवर्धन योजनाएँ (Various Sales Promotion Schemes)

1. मुफ्त नमूने (Free-Sample)	उपभोक्ताओं, फुटकर विक्रेताओं को उत्पाद के मुफ्त नमूने दिये जाते हैं। यह एक खर्चीली विधि है परन्तु इससे सम्भावित ग्राहकों को उत्पाद को खरीदने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह विधि उस दशा में उपयुक्त है, जब उत्पाद की क्वालिटी अच्छी है।
2. मूल्यों में कटौती (Reduction in Price Offer)	इसमें अल्पकाल के लिए कीमतों में छूट दी जाती है। इसमें विक्रय में तुरन्त बढ़ोत्तरी होती है। यह विधि विक्रेताओं का पुराना इकट्ठा हुआ स्टॉक निकालने के लिए प्रभावकारी है।
3. अधिक मात्रा प्रस्ताव (More Quantity Offer)	इसके अन्तर्गत पहले वाली कीमत पर उत्पाद की अधिक मात्रा दी जाती है।
4. कन्टेनर-प्रीमियम (Container-Premium)	उत्पाद को आकर्षक डिब्बों में पैक करना या ऐसे डिब्बों में पैक करना, जिन्हें ग्राहक किसी अन्य कार्य में भी प्रयोग कर सकता है।
5. व्यापारिक-प्रदर्शन एवं प्रदर्शनियाँ (Trade Shows/Fairs/Exhibitions)	कंपनी व्यापारिक प्रदर्शन, प्रदर्शनी लगाकर या व्यापारिक मेलों में हिस्सा लेकर जनता को व मध्यस्थों को अपना उत्पाद प्रदर्शित करती है।
6. धन-वापसी प्रस्ताव (Refund Offer)	इस प्रस्ताव में कंपनी अपने ग्राहकों को क्रय का सबूत दिखाने पर कुछ धन वापसी का वादा करती है। यह धन-वापसी निर्धारित अवधि के बाद होती है।
7. कूपन (Coupon)	कूपन एक ऐसा सर्टिफिकेट है, जिसके होने पर क्रेता को किसी उत्पाद की खरीद पर निर्धारित दर से छूट दी जाती है। यह कूपन कंपनी अपने अंशधारियों, कर्मचारियों या पुराने ग्राहकों को देती है।
8. प्रतियोगिताएं (Game Shows/Contests)	इन संवर्धन प्रतियोगिताओं में लक्की ड्रा (Lucky-draw) के द्वारा या कुछ स्लोगन (Slogan) पूरा करने पर विजेता को नकद इनाम, मुफ्त उपहार, मुफ्त यात्राएं इनाम के रूप में दी जाती हैं।
9. मुफ्त उपहार (Free Gifts)	इसके अन्तर्गत उत्पादक उपभोक्ता को किसी विशेष उत्पाद के खरीदने पर कोई उत्पाद मुफ्त में उपहार के रूप में देता है, जैसे– कैलेंडर, चाबी के छल्ले, डायरियाँ, पेन, दीवार घड़ी, हैंड बैग, कप, गिलास आदि।

(5) प्रत्यक्ष विपणन (Direct-Marketing)

आज से कुछ वर्ष पूर्व प्रत्यक्ष विपणन को संचार-मिश्रण का एक अलग तत्व नहीं माना जाता था परन्तु आजकल इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तेजी से विकास होने के कारण प्रत्यक्ष विपणन संचार-मिश्रण का एक अलग तत्व माना जाने लगा है। प्रत्यक्ष विपणन के अन्तर्गत कंपनी लक्षित श्रोताओं/सम्भावित ग्राहकों से प्रत्यक्ष संचार करती है ताकि उनको उत्पाद के बारे में तुरन्त प्रतिक्रिया जानी जा सके और उपभोक्ताओं के साथ दीर्घकालीन संबंध बनाये जा सकें। क्रेडिट कार्ड, टोल फ्री टेलीफोन नम्बर, बढ़ती आय तथा बाजार के स्टोर में जाकर सामान क्रय करने के लिए कम समय के कारण प्रत्यक्ष विपणन का महत्व बढ़ रहा है। इसके अन्तर्गत कंपनी टेलीफोन, ई-मेल, फैक्स व अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों को अपनाती है। इसमें मुख्यत: निम्न शामिल हैं:

(i) **टेली-मार्केटिंग** (Tele-Marketing): इसके अन्तर्गत वर्तमान व भावी ग्राहकों से टेलीफोन के द्वारा सम्पर्क स्थापित किया जाता है। आजकल बड़े शहरों में कॉल-सेन्टर खुल रहे हैं, जो टेली-मार्केटिंग सेवाएं प्रदान करते हैं। ये समाज के विभिन्न वर्गों के टेलीफोन-नम्बरों का रिकॉर्ड रखते हैं। कंपनी की माँग पर ये लक्षित श्रोताओं/सम्भावित ग्राहकों से टेलीफोन के द्वारा सम्पर्क स्थापित करते हैं और कंपनी का संदेश उन तक पहुंचाते हैं।

(ii) **मोबाइल फोन विपणन** (Mobile Phone Marketing): मोबाइल फोन के तीव्र प्रचलन से मोबाइल फोन विपणन का प्रयोग बढ़ रहा है। इसके अन्तर्गत विपणन संदेश, सम्भावित ग्राहकों को मोबाइल फोन पर SMS व MMS के द्वारा भेजा जाता है। संचार के इस रूप में टेली-मार्केटिंग की तरह ग्राहकों से फोन पर बात भी की जा सकती है या लक्षित ग्राहकों के मोबाइल पर लिखित संदेश या वीडियो इमेज (Video Image) भेजा जाता है।

(iii) **प्रत्यक्ष डाक द्वारा** (Direct Mail): प्रत्यक्ष विपणन की इस विधि में कंपनी अपने ग्राहकों को डाक के द्वारा प्रकाशित सामग्री (Printed-Material) उपलब्ध करवाती है। इसमें कंपनी अपने वर्तमान व भावी ग्राहकों को कंपनी के बारे में, उत्पाद की विशेषताओं, कीमत, नये खोले गये उपलब्धता के स्थानों (स्टोरों), चल रही संवर्धन योजनाओं आदि के बारे में जानकारी देती है।

प्रत्यक्ष विपणन में कंपनी विपणन-संदेश भावी ग्राहकों को सामूहिक रूप से न देकर, प्रत्येक सम्भावित ग्राहक को पृथक-पृथक रूप में प्रेषित करती है। टेली-मार्केटिंग की दशा में, प्रेषक श्रोताओं से वार्तालाप करते समय अपने संदेश को श्रोताओं की प्रतिक्रिया जानने पर समायोजित कर सकता है। प्रत्यक्ष विपणन, संचार-मिश्रण का एक महत्वपूर्ण तत्व बन रहा है, क्योंकि इसमें ग्राहकों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित किया जाता है। सेवा-क्षेत्र (Service-Sector) में लगी कम्पनियाँ अपने विपणन संचार का अधिकतर कार्य प्रत्यक्ष विपणन के द्वारा कर रही हैं। शॉपिंग मॉलों, बैंकों, बीमा कंपनियों, दूर संचार सेवा प्रदान करने वाली कंपनियों आदि द्वारा विपणन संचार के इस तरीके का प्रयोग किया जा रहा है।

(6) परस्पर संबंध विपणन/इंटरनेट विपणन (Interactive Marketing/Internet Marketing)

पिछले कुछ वर्षों में इंटरनेट का विपणन व विज्ञापन में महत्व बढ़ गया है। इंटरनेट विश्वव्यापी स्तर पर परस्पर जुड़े कम्प्यूटरों के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है। आजकल इंटरनेट के द्वारा संचार में बहुत वृद्धि हो रही है। यह द्विपक्षीय संचार का साधन है। इसमें लक्षित श्रोता अपनी शंकाओं व समस्याओं से संबंधित पूछताछ करने के अलावा उत्पाद व सेवाओं की क्रय भी कर सकते हैं। आजकल प्राय: सभी बड़ी कंपनियों ने अपनी वेबसाइट विकसित कर ली है। इस वेबसाइट पर कंपनी द्वारा आवश्यक सूचना उपलब्ध करवायी जाती है। इसमें विक्रयकर्ता संभावित क्रेताओं के द्वार पर जाए बिना उनसे द्विपक्षीय संचार कर सकता है। इस दृष्टि से यह वैयक्तिक विक्रय से भी अधिक अच्छा संचार साधन है। इसमें द्विपक्षीय संचार होता है, इस दृष्टि से यह विज्ञापन से भी अधिक अच्छा संचार साधन है। यह संचार का बहुत ही कम खर्चीला साधन है। इंटरनेट संचार मिश्रण के अन्य तत्वों, जैसे विज्ञापन, विक्रय संवर्धन के संचालन में भी सहायक है, जैसे-विज्ञापन को वेबसाइट पर दिया जा सकता है, इसी तरह विक्रय संवर्धन कार्यक्रम से संबंधित विभिन्न छूट योजनाओं (Discount Schemes) के बारे में जानकारी वेबसाइट पर दी जा सकती है। परन्तु इंटरनेट के द्वारा उन्हीं व्यक्तियों के साथ संचार किया जा सकता है, जिनके पास इंटरनेट कनेक्शन है।

III. कुछ चुने गए आधारों पर विभिन्न संवर्धन तरीकों की तुलना
(Comparison of Promotional Tools on Selected Criteria)

चुने गए आधार (Criteria)	विज्ञापन (Advertising)	वैयक्तिक विक्रय (Personal Selling)	प्रचार/पब्लिसिटी (Publicity)	विक्रय-संवर्धन (Sales Promotion)	प्रत्यक्ष विपणन (Direct Marketing)	इंटरनेट विपणन (Internet Marketing)
1. प्रति श्रोता लागत	कम	अधिक	बहुत कम	अधिक	सामान्य	कम
2. जटिल संदेश पहुंचाना	मुश्किल	आसान	मुश्किल	सामान्य	आसान	आसान
3. विश्वसनीयता	कम	सामान्य	अधिक	सामान्य	सामान्य	सामान्य
4. वैयक्तिक/गैर-वैयक्तिक	गैर-वैयक्तिक	वैयक्तिक	गैर वैयक्तिक	वैयक्तिक या गैर वैयक्तिक	वैयक्तिक	गैर-वैयक्तिक

संवर्धन के विभिन्न घटकों के तुलनात्मक लाभ और हानियाँ
(Relative Advantages and Disadvantages of Promotional Components)

संवर्धन घटक (Promotional Component)	लाभ (Advantages)	हानियाँ (Disadvantages)
1. विज्ञापन (Advertising)	बहुत अधिक श्रोताओं से कम समय में संदेशवाहन।	तुरत प्रतिक्रिया जानना मुश्किल।
2. वैयक्तिक विक्रय (Personal Selling)	लोचशील व प्रतिक्रिया की तुरत जानकारी।	बहुत अधिक श्रोताओं की दशा में अधिक लागत व अधिक समय।
3. विक्रय संवर्धन (Sales Promotion)	विक्रय में तुरत वृद्धि।	दीर्घकाल में सम्भव नहीं।
4. प्रचार/पब्लिसिटी (Publicity)	बहुत अधिक विश्वसनीयता।	प्रेषक का संदेश पर नियंत्रण नहीं।
5. प्रत्यक्ष विपणन (Direct Marketing)	लोचशील व प्रतिक्रिया की तुरत जानकारी।	श्रोताओं का पता व फोन नम्बर जानना मुश्किल।
6. इंटरनेट विपणन (Internet Marketing)	दो-तरफा (Two way) संचार सम्भव है।	केवल उन्हीं व्यक्तियों के साथ संचार किया जा सकता है जिनके पास इंटरनेट सुविधाएं है।

IV. युग्मित/एकीकृत संवर्धन/विपणन संचार की आवश्यकता
(Need for Integrated Promotion/Marketing Communication)

संचार-मिश्रण के विभिन्न घटक-विज्ञापन, वैयक्तिक-विक्रय, विक्रय-संवर्धन, पब्लिसिटी, प्रत्यक्ष-विपणन एवं इंटरनेट विपणन है। इन घटकों को विभिन्न विभागों या विशेषज्ञों द्वारा चलाया जाता है। विज्ञापन बनवाने व करवाने का कार्य विज्ञापन-विभाग या विज्ञापन-एजेन्सी द्वारा किया जाता है। वैयक्तिक-विक्रय का कार्य विक्रय-विभाग द्वारा किया जाता है। संचार के अन्य घटकों को विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा चलाया जाता है। एकीकृत विपणन-संचार के अभाव में यह सम्भव है कि संचार-मिश्रण के विभिन्न घटक एक-दूसरे से समन्वित (Coordinated) होकर कार्य न कर सकें और उपभोक्ता को अलग-अलग संदेश पहुचे। इससे विपणन-संचार के उद्देश्यों को पूरा नहीं किया जा सकता। श्रोताओं को स्पष्ट और प्रभावकारी संदेश देने के लिए यह आवश्यक है कि संचार-मिश्रण के विभिन्न घटकों में एक-दूसरे से समन्वय बनाया जाये ताकि ये घटक एक दूसरे के विरोधाभास (Conflicting) कार्य न करें। कुछ कम्पनियाँ, जैसे Nestle, IBM, Microsoft, Nike आदि ने एकीकृत विपणन-संचार-नीति को अपनाया है। इन्होंने अपनी कंपनी में विशेषज्ञों की नियुक्ति की हुई है, जिनका कार्य संचार-मिश्रण के विभिन्न घटकों में तालमेल स्थापित करना है, ताकि अनुकूलतम संवर्धन को चुना जाये और संचार-संमिश्र के विभिन्न घटकों के समन्वित प्रयोग के द्वारा विपणन-संचार के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। एकीकृत संचार में संचार के प्रत्येक घटक का अन्य घटकों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

V. अनुकूलतम अंतर्राष्ट्रीय संवर्धन-संमिश्र (Optimum International Promotion Mix)

संवर्धन-संमिश्र से हमारा अभिप्राय विभिन्न संवर्धन तरीकों के संयोग से है जिन्हें एक फर्म द्वारा अपने उत्पाद या सेवाएं बेचने के लिए अपनाया जाता है। संवर्धन-संमिश्र के छः तत्व- वैयक्तिक-विक्रय, विज्ञापन, विक्रय-संवर्धन, प्रचार व जन-सम्पर्क, प्रत्यक्ष विपणन व इंटरनेट विपणन है। संवर्धन-मिश्रण के प्रत्येक तत्व के अपने कुछ लाभ व कमिया है। आजकल प्रतिस्पर्धा में वृद्धि के कारण कोई भी व्यावसायिक इकाई किसी एक ही संवर्धन-तरीके पर निर्भर नहीं रह सकती। विभिन्न संवर्धन तरीकों का संयोजन (Combination) करके ही प्रभावकारी संवर्धन सम्भव है। विभिन्न संवर्धन तरीकों का प्रयोग विभिन्न मात्राओं में किया जा सकता है। विभिन्न संवर्धन तरीकों का संयोजन अनेक घटकों पर निर्भर करता है। संवर्धन-संमिश्र को अनुकूलतम तब माना जाता है, जब संचार या संवर्धन-उद्देश्यों को न्यूनतम लागत पर प्राप्त किया जा सके। वर्तमान संवर्धन-संमिश्र को उस समय अनुकूलतम कहा जायेगा, जब उसमें किया गया कोई भी परिवर्तन, संगठन के विक्रय व लाभ को न बढ़ा सके। विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों का अनुकूलतम संवर्धन मिश्रण अलग-अलग हो सकता है। यह उत्पाद की प्रकृति, व्यावसायिक इकाई के आकार, बाजार के आकार, वित्त की उपलब्धता, संचार के उद्देश्यों आदि पर निर्भर करता है। **फिलिप कोटलर** के अनुसार, **"संवर्धन-मिश्रण को उस दशा में अनुकूलतम कहा जाता है, जब उसमें किया गया कोई भी समायोजन संगठन के विक्रय या लाभ को न बढ़ा सके।"**

अनुकूलतम संवर्धन-मिश्रण में किसी बदलाव की आवश्यकता नहीं होती। यह विभिन्न संवर्धन तरीकों का सर्वोत्तम संयोग होता है। उदाहरण के लिए- यदि किसी व्यापारिक उपक्रम का उद्देश्य विक्रय में वृद्धि है और वह अपने संवर्धन-मिश्रण में कोई भी परिवर्तन करके विक्रय को वर्तमान स्तर से नहीं बढ़ा पा रहा, तब वर्तमान संवर्धन-संमिश्र को उस व्यापारिक इकाई का अनुकूलतम संवर्धन संमिश्र कहा जायेगा। अनुकूलतम संवर्धन-संमिश्र को चुनते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए

(1) विज्ञापन (Advertising): विज्ञापन निम्न दशाओं में प्रभावकारी है (i) **तुरंत विपणन-संचार** के लिए। (ii) **सामूहिक संचार** के लिए। (iii) जब **पर्याप्त धन** की उपलब्धता हो। (iv) जब लक्षित श्रोता विभिन्न भौगोलिक **क्षेत्रों में फैले हुए** हों। (v) जब भेजे जाने वाले **संदेश सरल** हों। (vi) **उपभोक्ता-वस्तुओं** के विपणन संचार के लिए। (vii) जब उत्पाद **ब्रांडेड** (branded) हो।

(2) वैयक्तिक विक्रय (Personal Selling): वैयक्तिक विक्रय निम्न दशाओं में प्रभावकारी है (i) **औद्योगिक उत्पादों** व तकनीकी उत्पादों के विपणन के लिए। (ii) बहुत **महंगे उत्पादों** के विपणन के लिए। (iii) जब श्रोता को भेजा जाने वाला **संदेश बहुत जटिल** हो। (iv) जब **शीघ्र प्रतिक्रिया** (Feedback) की आवश्यकता हो। (v) जब उत्पाद **बिना ब्रांड** के बेचा जाना हो। ब्रांड के अभाव में विज्ञापन तो सम्भव ही नहीं है। यहाँ भावी ग्राहकों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके उन्हें उत्पाद खरीदने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। (vi) जब लक्षित श्रोताओं की संख्या बहुत **अधिक नहीं** है। (vii) जब भावी क्रेता **केंद्रित** हो, अर्थात् बहुत दूर के क्षेत्रों में फैले हुए नहीं हों। (viii) **सेवा-विपणन** की दशा में, जैसे बीमा, बैंकिंग सेवाओं के विपणन के लिए, प्रशिक्षित सेल्समैन नियुक्त किए जाते है, जो लक्षित श्रोताओं को इन सेवाओं के लाभ व विभिन्न योजनाओं के बारे में जानकारी देते है व उन्हे सेवा खरीदने के लिए तैयार करते है।

(3) विक्रय-संवर्धन (Sales Promotion): विक्रय-संवर्धन निम्न दशाओं में प्रभावकारी होता है (i) जब **मध्यस्थ**, उत्पादक की तुलना में **अधिक प्रसिद्ध** हो। तब मध्यस्थों के लिए संवर्धन योजनाएं बहुत उचित होती है। (ii) **मौसमी-उत्पादों** की दशा में, उत्पादों को **गैर-मौसम में बेचने के लिए** विक्रय-संवर्धन योजनाएं बहुत प्रभावकारी है। (iii) **बिना ब्रांड वाले उत्पादों** की दशा में, जहां विज्ञापन तो सम्भव ही नहीं है। इस दशा में फुटकर विक्रेताओं को अधिक कमीशन देकर, उन्हें उत्पाद को शो रूम में रखने व भावी ग्राहक को बेचने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। (iv) **यदि पुराना इकट्ठा हुआ माल बेचना है।** यहाँ स्टॉक-क्लीयरेन्स-सेल (Stock-Clearance-Sale) के लिए विशेष छूट या कोई अन्य विक्रय-संवर्धन योजना बहुत प्रभावकारी है। (v) यदि **विक्री में तुरंत वृद्धि** करनी हो।

(4) **प्रत्यक्ष विपणन** (Direct Marketing): यहाँ विपणन संचार टेलीफोन, प्रत्यक्ष डाक द्वारा किया जाता है। यह निम्न दशाओं में प्रभावकारी है: (i) जब भावी क्रेताओं के रिहायशी पते (Addresses) व टेलीफोन नम्बरों का पता आसानी से लगाया जा सके। (ii) जब संभावित ग्राहकों की संख्या बहुत अधिक न हो। (iii) संभावित ग्राहक शिक्षित हों। (iv) सेवा-विपणन की दशा में; जैसे- बैंकिंग, बीमा, दूर-संचार, शिक्षण-संस्थान आदि।

(5) **इंटरनेट विपणन** (Internet/Interactive Marketing): इंटरनेट विपणन निम्न दशाओं में प्रभावकारी होता है: (i) जब लक्षित ग्राहक पढ़े-लिखे हों। (ii) जब लक्षित ग्राहकों के पास कम्प्यूटर व इंटरनेट कनेक्शन हों। (iii) जब कंपनियों ने अपनी वेबसाइट विकसित कर रखी हों।

अत: अनुकूलतम संवर्धन-मिश्रण का चयन वैश्विक उत्पादक या विपणनकर्ता द्वारा विभिन्न संवर्धन-तरीकों की ऊपर दी गई उपयुक्तता के आधार पर किया जाना चाहिए।

■ 5. अंतर्राष्ट्रीय विपणन में कठिनाइयाँ (Difficulties in International Marketing)

(1) **उपभोक्ताओं की पसंद व प्राथमिकताओं में अंतर** (Difference in Consumers' Tastes and Preferences): विभिन्न देशों में उपभोक्ताओं की पसंद, प्राथमिकताएँ, वातावरणीय दशाएँ, भोजन-आदतें, शिक्षा स्तर, आर्थिक विकास का स्तर आदि भिन्न-भिन्न होने के कारण उपभोक्ताओं की उत्पाद की विशेषताओं के प्रति विभिन्न प्राथमिकताएँ होती हैं। ऐसी स्थिति में वैश्विक कंपनियों के लिए विभिन्न तरह के उपभोक्ताओं के लिए भिन्न-भिन्न उत्पाद बनाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

(2) **सरकार की नीतियों में अनिश्चितताएँ** (Uncertainties in Government Policy): यदि मेजबान देश में या मूल देश में राजनीतिक अस्थिरता है तो ऐसी स्थिति में सरकार की नीतियों में बहुत अनिश्चितता रहती है। टैरिफ दरें, आयात लाइसेंस, आयात कोटा, परमिट व विदेशी व्यापार संबंधी अन्य प्रावधानों आदि के संबंध में अनिश्चितता बनी रहती है। अतः विदेशी कंपनी अंतर्राष्ट्रीय विपणन से संबंधित दीर्घकालीन योजनाएँ नहीं बना सकती। मेजबान देश की सरकार कभी भी आयात या निर्यात पर प्रतिबंध लगा देती है या पैकिंग संबंधी प्रावधानों में परिवर्तन कर देती है। मेजबान देश व मूल देश के मध्य संबंध कभी भी तनावपूर्ण हो सकते हैं, जिससे इन दोनों देशों के मध्य व्यापारिक संबंध समाप्त हो सकते हैं।

(3) **प्रशासनिक बाधाएँ** (Bureaucratic Hurdles): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में अत्यधिक कागजी कार्यवाही होती है। विदेशी कंपनियों को विभिन्न सरकारी विभागों से मंजूरी लेनी पड़ती है, जो बहुत ही जटिल कार्य है। कस्टम विभाग से क्लीयरेंस (Custom Clearance) लेना बहुत ही कठिन कार्य है। कई बार सरकारी अधिकारी बिना किसी ठोस त्रुटि के विदेशी विपणन इकाइयों को उलझा देते हैं।

(4) **विदेशी विनिमय में उतार-चढ़ाव** (Foreign Exchange Fluctuations): दो देशों के मध्य विनिमय दर कभी भी स्थिर नहीं रहती। इसमें वृद्धि या गिरावट आती रहती है। इससे निर्यातकों व आयातकों के लिए अनिश्चितता का माहौल बना रहता है।

(5) **घरेलू उत्पादकों द्वारा विरोध** (Opposition by Domestic Manufacturers): प्रायः मेजबान देश की व्यावसायिक इकाइयाँ विदेशी कंपनियों के उत्पादों का विरोध करती हैं, क्योंकि इससे मेजबान देश की घरेलू व्यावसायिक इकाइयों को अत्यधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। कई बार घरेलू देश के सामाजिक संगठन भी विदेशी उत्पादों के विरुद्ध प्रदर्शन करते हैं। इससे विदेशी उत्पादों की छवि खराब हो जाती है।

(6) **टेक्नोलॉजी की चोरी** (Technological Piracy): कई बार कुछ मेजबान देशों में पेटेन्ट संबंधी अधिनियम बहुत सख्त नहीं होते। इससे मेजबान देश में विदेशी कंपनी की नवाचारी टेक्नोलॉजी, कॉपीराइट आदि की चोरी हो जाती है। मेजबान देश में इसके नकली उत्पाद बनने लग जाते हैं। अतः वैश्विक कंपनियाँ ऐसे देशों में जाने में हिचकिचाती हैं।

(7) **राशिपातन** (Dumping): कई बार विदेशी कंपनियाँ अपने फालतू उत्पादन को मेजबान देशों में बहुत ही कम कीमतों पर बेचती हैं ताकि मेजबान देश की घरेलू इकाइयों को हानि पहुँचायी जा सके। इससे मेजबान देश की इकाइयाँ विदेशी

प्रति-व्यापार व्यवहार तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का संयंत्र
(Counter-Trade Practices and Mechanism of International Trade)

■ 1. प्रति-व्यापार का परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning of Counter-trade)

प्रति-व्यापार ऐसा अनुबंध है जिसमें निर्यात करने के लिए उसी मूल्य का आयात करना होता है। जब यह समझौता दो राष्ट्रों के बीच होता है तब एक देश, दूसरे देश से इस शर्त पर आयात करता है कि दूसरा देश भी पहले देश से बराबर मूल्य की वस्तुओं का आयात करेगा। आजकल विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों के बीच भी प्रति-व्यापार समझौते किये जाते हैं। इसके अंतर्गत एक व्यावसायिक इकाई दूसरी व्यावसायिक इकाई से इस शर्त पर आयात करती है कि दूसरी व्यावसायिक इकाई भी पहली व्यावसायिक इकाई से निर्धारित समय में बराबर मूल्य की वस्तुओं का आयात करेगी। इस तरह के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती और देश के भुगतान शेष पर कोई भार नहीं पड़ता। यह एक तरह का वस्तु विनिमय व्यापार (Barter Trade) है। प्राचीन काल में विभिन्न देशों के बीच इसी तरह का व्यापार होता था, क्योंकि इसमें मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। समय के साथ मुद्रा का विकास हुआ और मुद्रा को विभिन्न व्यवहारों के विनिमय में स्वीकार किया जाने लगा। मुद्रा के विकास से प्रति-व्यापार में और भी लोचशीलता आ गई। अब दो देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं का विनिमय एक ही समय पर होना अनिवार्य नहीं रहा। इससे प्रति-व्यापार का विकास हुआ। अब एक देश आयात करते समय, दूसरे देश पर एक निश्चित अवधि में उतने ही मूल्य की वस्तुओं को आयात करने की शर्त लगाता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रति-व्यापार आज भी प्रचलित है। बहुत से देश आपस में प्रति-व्यापार समझौते करके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रति-व्यापार उन दशाओं में बहुत उपयोगी है जब देश के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा न हो। प्रति-व्यापार विभिन्न देशों में प्रायः पाया जाता है।

■ 2. प्रति-व्यापार के प्रकार (Types of Counter-trade)

(1) **वस्तु विनिमय व्यापार** (Barter Trade): यह प्रति-व्यापार का सबसे साधारण प्रारूप है। इसमें दो देशों के मध्य बिना नकद भुगतान के उत्पाद/सेवाओं का प्रत्यक्ष विनिमय होता है। यह एक ही समय में या एक निश्चित समय अवधि के अंदर, दो अलग-अलग समय पर, हो सकता है। कई बार एक देश को ऐसे उत्पाद भी आयात करने पड़ते हैं, जिनका आयातक देश के लिए विशेष महत्त्व नहीं होता। इसके अलावा, यदि इन दो विनिमय व्यवहारों में समय-अंतराल अधिक है, तो निर्यातक देश को हानि होती है क्योंकि इसे निर्यात के बदले प्रतिफल कुछ समय के बाद मिलेगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि निर्यातक देश आयातक देश को कुछ समय के लिए वित्तीय सहायता दे रहा है।

(2) **प्रति-क्रय** (Counter-purchase): इस समझौते में व्यावसायिक इकाई यह समझौता करती है कि यह जिस देश में अपना उत्पाद बेचेगी, उससे कुछ विशेष उत्पाद क्रय करेगी। मान लो, एक अमेरिकन कंपनी भारत में अपना उत्पाद बेचती है। भारत ने इस कंपनी को अमेरिकन डॉलर के रूप में इसका भुगतान करना था। परंतु अमेरिकन कंपनी इस भुगतान को नकद में लेने के स्थान पर यह समझौता करती है कि यह निर्धारित समय में भारत से टेक्सटाइल क्रय करेगी। इन दोनों व्यवहारों में मुद्रा का लेन-देन केवल लेखा पुस्तकों में ही होता है। वास्तव में मुद्रा का आदान-प्रदान नहीं होता।

(3) **ऑफसेट** (Offset): इस तरह के समझौते में अन्य देश को माल बेचने वाली कम्पनी इस बात पर सहमत होती है कि वह बदले में आयातक देश से कुछ उत्पाद खरीदेगी। यह प्रति क्रय समझौते का ही संशोधित रूप है। अन्तर केवल इतना है कि प्रति क्रय में पहले से निर्धारित वस्तु ही खरीदनी पड़ती है, जबकि ऑफसेट में निर्यातक देश एक निश्चित मूल्य तक की कोई भी वस्तु आयात कर सकता है। अतः इस समझौते में निर्यातक के पास अधिक विकल्प (Choice) होते हैं।

(4) **प्रतिफल** (Compensation): इस समझौते को क्रय वापसी (Buyback) समझौता भी कहते हैं। इसमें किसी एक देश की व्यावसायिक इकाई दूसरे देश में पूँजी या टेक्नोलॉजी या दोनों उपलब्ध करवा कर वहां फैक्टरी लगाने में सहायता करती है। इसके बदले में वह एक निर्धारित समय तक दूसरे देश की उस फैक्टरी के उत्पादन का एक निर्धारित प्रतिशत प्रतिफल के रूप में लेती है।

(5) **स्विच ट्रेडिंग** (Switch Trading): यह एक तरह का प्रति क्रय समझौता है। इसमें निर्यातक को निर्यात के प्रतिफल के रूप में कुछ प्रति क्रय क्रेडिट (Counter Purchase Credits) मिलते हैं। इसे निर्यातकर्ता किसी तृतीय पार्टी को बेच/हस्तान्तरित कर सकता है। अर्थात् यदि निर्यातकर्ता स्वयं उत्पाद क्रय नहीं करना चाहता तो क्रेडिट का यह अधिकार वह किसी अन्य तृतीय पार्टी को या ट्रेडिंग हाउस को बेच सकता है। जैसे मान लो, भारत डेनमार्क को सॉफ्टवेयर निर्यात करता है तथा इसके प्रतिफल के रूप में इसे कुछ प्रति क्रय क्रेडिट मिलते हैं। इससे भारत एक निर्धारित मूल्य के डेनमार्क उत्पाद एक निर्धारित समय में क्रय कर सकता है। अब यदि भारत को डेनमार्क से उत्पाद आयात करने की आवश्यकता नहीं है तो भारत इस क्रेडिट को किसी अन्य ट्रेडिंग हाउस को बेच सकता है, जो डेनमार्क के उत्पाद खरीदना चाहता है। प्रायः ट्रेडिंग हाउस ये क्रेडिट कम कीमत (Discount) पर खरीदते हैं।

(6) **चुकता लेन देन समझौता** (Clearing Agreement): इस समझौते में निर्यातक व आयातक दोनों देशों के केंद्रीय बैंकों में चुकता लेन देन खाता खोलते हैं। निर्यात व आयात बिना मुद्रा के आदान प्रदान से होता है। निर्यातक को आयातक से कोई भुगतान नहीं मिलता। बल्कि उसे अपने देश के केंद्रीय बैंक से अपनी घरेलू मुद्रा में भुगतान प्राप्त होता है। दूसरी तरफ, आयातक आयात के लिए भुगतान निर्यातक को न करके अपने देश के केंद्रीय बैंक को करता है। दोनों देशों के केंद्रीय बैंक चुकता लेन देन गृह (Clearing House) के रूप में कार्य करते हैं।

3. प्रति-व्यापार के लाभ (Advantages of Counter Trade)

(1) **भुगतान शेष पर कोई भार नहीं** (No Burden on Balance of Payments): प्रति व्यापार व्यवहारों में एक देश के आयात व निर्यात बराबर होते हैं। अतः प्रति व्यापार का भुगतान शेष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रति व्यापार एक तरह का वस्तु विनिमय (Barter) व्यापार है, इसलिए इस व्यापार में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे देश के भुगतान शेष पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह व्यापार उन देशों के लिए और भी उपयोगी है जिनका भुगतान शेष प्रतिकूल है।

(2) **अधिक ऋणों से दबे देशों के लिए सहायक** (Helpful to Highly Indebted Countries): अधिकतर विकासशील देश ऋण संकट से गुजर रहे हैं। इनके ऊपर विदेशी ऋणों का भार काफी अधिक है। ये देश अपने आयातों का भुगतान करने के लिए और विदेशी ऋण लेने की स्थिति में नहीं है। प्रति व्यापार ऐसे देशों को बिना अतिरिक्त विदेशी ऋणों के अनिवार्य आयात करने में मदद देता है। क्योंकि प्रति व्यापार में आयातों का भुगतान विदेशी मुद्रा से न करके अपने निर्यातों से किया जाता है। अतः प्रति व्यापार विदेशी ऋणों से दबे देशों के लिए बहुत सहायक है।

(3) **विकासशील देशों के निर्यातों में वृद्धि** (Increase in Exports of Developing Countries): प्रति व्यापार में अपने आयातों का भुगतान निर्यातों से किया जाता है। प्रति व्यापार में एक देश आयात करते समय, दूसरे देश के साथ एक निश्चित अवधि में बराबर मूल्य के निर्यात की पूर्व शर्त लगाता है। इससे इन देशों के निर्यातों में वृद्धि होती है। इससे विकासशील देशों के निर्यातकों को नये अन्तर्राष्ट्रीय बाजार व नये विदेशी ग्राहक मिलते हैं।

(4) **निर्यातों में स्थिरता** (Stability in Exports): प्रति व्यापार में निर्यात आदेश सुनिश्चित होते हैं। इससे निर्यातों में स्थिरता आती है। निर्यातों में स्थिरता से निर्यात उत्पादों की माँग का जोखिम समाप्त हो जाता है। दीर्घकालीन प्रति व्यापार व्यवहार निर्यातकों को दीर्घकालीन लाभ प्रदान करते हैं। प्रति व्यापार में सुनिश्चित आदेशों के कारण निर्यातक अपने उत्पाद की किस्म में सुधार लाते हैं। इससे भी निर्यातों में स्थिरता आती है।

(5) **नये बाजार क्षेत्रों में आसानी से प्रवेश** (Easy to Enter in New Market Areas): प्रति व्यापार समझौता से एक देश नये बाजारों में आसानी से प्रवेश कर सकता है। प्रति व्यापार समझौतों से एक देश अपने अतिरिक्त उत्पादन के लिए विभिन्न देशों के बाजारों में पहुँच प्राप्त कर लेता है। इन समझौतों में विदेशी व्यापार के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः ये समझौते एक देश को नये बाजार क्षेत्रों की उपलब्धता करवा कर व्यापार विविधीकरण में सहायक होते हैं।

(6) **आगतों की आपूर्ति सुनिश्चित करवाने के लिए विकसित देशों को सहायक** (Helps the Developed Nations to Secure Supply of Inputs): विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य होने वाले प्रति व्यापार समझौते विकसित देशों को विकासशील देशों से कच्चे माल की नियमित आपूर्ति करवाने में सहायक होते हैं। सामान्यतया इन समझौतों में औद्योगिक राष्ट्र (विकसित देश) निर्मित माल या पूँजीगत सामान विकासशील देशों को उपलब्ध करवाते हैं तथा इसके प्रतिफल में विकासशील देशों से कच्चा माल, कल पुर्जे (Spare parts, Components) आदि प्राप्त करते हैं।

(7) **कीमत विभेदीकरण की नीति को चलाना आसान** (Easy to Manage Price Discrimination Policy): प्रति व्यापार समझौते निर्यातकों को कीमत विभेदीकरण की नीति लागू करने में सहायक होते हैं। यदि कोई देश विदेशी विनिमय की कमी महसूस कर रहा हो तो वह देश प्रति व्यापार समझौतों से दूसरे देशों से आवश्यक आयातों के बदले अपनी वस्तुएं छिपी हुई कटौती (Concealed Discount) पर उपलब्ध करवा सकता है। यह छिपी हुई कटौती देने की नीति किसी देश को अपने अतिरिक्त उत्पादन का विक्रय करने में या घरेलू बाजार में मंदी का सामना करने में सहायक होती है।

(8) **प्रतिबंधात्मक विदेशी व्यापार नीति के नकारात्मक प्रभाव को दूर करने में सहायक** (Helps to Overcome the Negative Effect of Restrictive Foreign Trade Policy): कुछ राष्ट्र अधिक टैरिफ लगाकर तथा गैर टैरिफ प्रतिबन्ध लगाकर प्रतिबंधात्मक विदेशी व्यापार नीति अपनाते हैं। प्रति व्यापार समझौतों से विभिन्न देशों के बीच वस्तु विनिमय संबंधी दीर्घकालीन समझौते हो जाते हैं, इससे प्रतिबंधात्मक विदेशी व्यापार नीति का ऋणात्मक प्रभाव कम हो जाता है।

4. प्रति-व्यापार के दोष/आलोचना (Disadvantages/Criticism of Counter-trade)

(1) **अधिक जटिल** (More Complex): प्रति-व्यापार के अंतर्गत विदेशी व्यापार का प्रबन्ध जटिल हो जाता है। प्रति व्यापार में वस्तु विनिमय व्यापार (Barter Trade) की सभी कमियाँ शामिल हैं। ऐसे देश का पता लगाना बहुत कठिन है, जहाँ हम अपने अतिरिक्त उत्पादन का निर्यात कर सकते हैं तथा वह देश इसके बदले में हमें हमारी जरूरत की वस्तुएं दे सकता है। कई बार दूसरे देश द्वारा निम्न-क्वालिटी की वस्तुएं भेज दी जाती हैं या सही समय पर ऐच्छिक उत्पाद उपलब्ध नहीं करवाए जाते। अतः सामान्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की तुलना में प्रति व्यापार अधिक जटिल होता है।

(2) **विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता** (Requires Services of Experts): प्रति व्यापार में उचित देश का चयन, व्यापार की शर्तें निर्धारित करने में विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। कुछ बड़ी अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाइयाँ, प्रति-व्यापार को प्रबंधित करने के लिए दूसरे देशों में अपने शाखा कार्यालय (Branch Offices) खोल देती हैं व इन कार्यालयों में विशेषज्ञों की नियुक्ति करती है। इससे प्रति-व्यापार समझौतों की प्रशासनिक लागत बढ़ जाती है।

(3) **स्वतंत्र व्यापार की मौलिक कार्यप्रणाली के विरुद्ध** (Against the Fundamental Operations of Free Trade): प्रति-व्यापार समझौते स्वतंत्र व्यापार के मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध हैं। इन समझौतों में व्यापार उन्हीं देशों के मध्य हो सकता है जिन्हें एक-दूसरे द्वारा निर्मित सामान की आवश्यकता हो। माँग के दोहरे संयोग के अभाव (Lack of Double Coincidence of Demand) में प्रति-व्यापार का क्षेत्र सीमित हो जाता है। इसके अलावा प्रति-व्यापार में

लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। ... [illegible] नहीं हो सकता क्योंकि प्रति-व्यापार में संलग्न देश/व्यावसायिक इकाइयाँ स्वतंत्र व्यापार के लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। प्रति-व्यापार व्यवस्था उत्पादों के स्वतंत्र प्रवाह को रोकती है, अर्थात् इस व्यापार प्रणाली में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतिस्पर्धा का लाभ नहीं मिल पाता।

(4) **प्रति-व्यापार में प्राप्त वस्तुओं को बेचने में कठिनाई** (Difficult to Resell Goods Received from Counter Trade): प्रति व्यापार समझौतों में व्यावसायिक इकाई को वस्तुओं के निर्यात के बदले, कुछ वस्तुएँ का आयात करना पड़ता है। कई बार एक व्यावसायिक इकाई को प्रति-व्यापार में ऐसी वस्तुएं प्राप्त होती है जिनके बारे में उसे अधिक ज्ञान नहीं है या जिन वस्तुओं की उस व्यावसायिक इकाई को आवश्यकता नहीं है। इन दशाओं में व्यावसायिक इकाई को प्रति-व्यापार में प्राप्त वस्तुओं को बेचने में कठिनाई आती है।

(5) **अधिक समय लगना** (More Time Consuming): प्रति-व्यापार समझौतों को प्रबंधित करने में अधिक समय लग जाता है। ऐसा हो सकता है कि एक देश अब वस्तुएं निर्यात कर रहा है, तथा एक लम्बे समय अंतराल के बाद वह निर्यात प्रतिफल के रूप में वस्तुएं आयात कर पाता है।

प्रति-व्यापार में लगे देशों की संख्या 1983 में 88 थी जोकि 2009 में बढ़कर 157 हो गई। प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी सामान्य करार (गैट) जिसे बाद में WTO कहा गया, ने प्रति-व्यापार की आलोचना की। WTO के अनुसार प्रति-व्यापार एक देश की दूसरे देश से स्वतंत्र व्यापार व्यवस्था को रोकता है, इससे उत्पादों का स्वतंत्र प्रवाह नहीं हो पाता और प्रतियोगिता का लाभ आम उपभोक्ता तक नहीं पहुंच पाता। वर्तमान समय में WTO की बढ़ती भूमिका में प्रति-व्यापार का महत्व धीरे-धीरे कम हो रहा है।

■ 5. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहारों का संयंत्र (Mechanism of International Trade Transactions)

एक देश के दूसरे देश के साथ वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विक्रेता (निर्यातक) तथा क्रेता (आयातक) अलग-अलग देश से होते है और इनमें एक-दूसरे पर विश्वास का अभाव होता है। निर्यातक बिना भुगतान प्राप्त किये वस्तुओं को आयातक को भेजने को तैयार नहीं होता और इसी तरह आयातक बिना वस्तुओं को प्राप्त किये, निर्यातक को भुगतान राशि भेजने को तैयार नहीं होता। विदेशी व्यापार में अधिक दूरी, साख-गुणवत्ता (Creditworthiness) के ज्ञान के अभाव, विभिन्न भाषा, विभिन्न संस्कृति, विभिन्न करेन्सी, विभिन्न कानून व्यवस्था आदि के कारण, व्यापार के दोनों पक्षों का एक दूसरे पर विश्वास नहीं होता। उदाहरण के लिए फ्रांस का निर्यातक इस बात को लेकर चिंतित हो सकता है कि यदि वह भारतीय आयातक को बिना पूर्व भुगतान प्राप्त किये सामान भेज देता है तो ऐसा हो सकता है कि भारतीय आयातक सामान प्राप्त करने के बाद भी फ्रांस के निर्यातक को भुगतान न करे या निर्धारित राशि का निर्धारित समय पर भुगतान न करे। इसी प्रकार भारतीय आयातक इस बात को लेकर चिंतित हो सकता है कि यदि वह वस्तुओं को प्राप्त किये बिना फ्रांस के निर्यातक को एडवांस (Advance) में भुगतान भेज देता है तो ऐसा हो सकता है कि फ्रांस का निर्यातक भुगतान प्राप्त करके, भारतीय आयातक को सामान न भेजे या निर्धारित समय में निर्धारित सामान न भेजे। अतः विदेशी व्यापार व्यवहारों में जब तक दोनों पक्षों में विश्वास न बन पाए तब तक विदेशी व्यापार नहीं हो सकता। इस विश्वास के अभाव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहार घरेलू व्यापार व्यवहारों से अलग होते है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में निर्यातक व आयातक के बीच विश्वास के अभाव की समस्या का समाधान दोनों पक्षों के बैंकों के माध्यम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहारों में बैंक मध्यस्थ की भूमिका निभाते है।

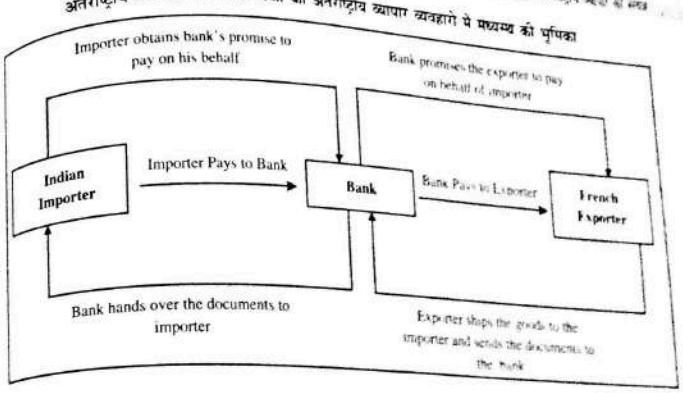

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संयंत्र तथा बैंको की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहारों में मध्यस्थ की भूमिका

ऊपर दिये चार्ट में बैंक निर्यातक तथा आयातक के मध्य मध्यस्थ की भूमिका निभा रहा है। इस चार्ट में यह दिखाया गया है कि आयातक, बैंक से उसकी ओर से भुगतान करने का वचन प्राप्त कर लेता है। बैंक द्वारा जारी इस वचन पत्र को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में **साख-पत्र** (Letter of Credit) कहा जाता है। इस पत्र में बैंक, आयातक की ओर से, निर्यातक को निर्धारित राशि के भुगतान का वचन देता है। जब आयातक, बैंक से साख-पत्र लेकर निर्यातक को भेजता है तब निर्यातक अपने निर्यात राशि के भुगतान के बारे में सुरक्षित अनुभव करता है तथा उसका व्यापार व्यवहार में विश्वास बन जाता है। निर्यातक यह जानता है कि बैंक अपने भुगतान के वचन से मुकर नहीं करेगा और वह इस साख-पत्र को प्राप्त करने पर वस्तुओं को आयातक के पते पर [illegible] या किसी अन्य यातायात कंपनी के द्वारा रवाना कर देता है। जब निर्यातक वस्तुओं को शिपिंग कंपनी या यातायात कंपनी को सौंपता है तब शिपिंग कंपनी या यातायात कंपनी द्वारा निर्यातक को जहाजी बिल्टी (Bill of Lading) जारी की जाती है। यह जहाजी बिल्टी भेजी गई वस्तुओं के स्वामित्व के प्रमाण का कार्य करती है। निर्यातक यह जहाजी बिल्टी एवं अन्य जरूरी प्रपत्र बैंक को भेज देता है। बैंक [illegible] आयातक से आवश्यक प्रतिभूति/गारण्टी लेकर, आयातक को जहाजी बिल्टी एवं अन्य प्रपत्र दे देता है। जहाजी बिल्टी व अन्य प्रपत्रों के आधार पर आयातक शिपिंग कंपनी/यातायात कंपनी से वस्तुओं की सुपुर्दगी ले लेता है। बाद में बैंक आयातक से भुगतान प्राप्त करके निर्यातक को भुगतान दे देता है। बैंक निर्यात-आयात व्यवहार में मध्यस्थ का कार्य करते हुए दोनों पक्षों में [illegible] है। बैंक की मध्यस्थता से दोनों पक्षों का एक दूसरे पर विश्वास बन जाता है।

अधिकतर निर्यात-आयात के व्यवहारों में निर्यातक तथा आयातक के दो बैंक होते है, जिनमें से एक बैंक को आयातक का बैंक तथा दूसरे बैंक को निर्यातक का बैंक कहा जाता है। आयातक का बैंक आयातक के साथ तथा निर्यातक का बैंक निर्यातक के साथ व्यवहार करता है। ये दोनों बैंक एक दूसरे के साथ लेन देन करके विदेशी व्यापार व्यवहारों में मध्यस्थ की भूमिका निभाते है। आयातक का बैंक आयातक को साख-पत्र जारी करता है तथा इस साख-पत्र को निर्यातक के बैंक के पास भेज देता है। निर्यातक का बैंक साख-पत्र को प्राप्त करने पर इस साख-पत्र को निर्यातक को दे देता है। निर्यातक साख-पत्र प्राप्त करने पर निर्यात वस्तुओं को आयातक के पास भेजने के लिए इन वस्तुओं को शिपिंग कंपनी/ट्रांसपोर्ट कैरियर को दे देता है। शिपिंग कंपनी ट्रांसपोर्ट कैरियर से जहाजी बिल्टी (Bill of Lading) व अन्य प्रपत्र प्राप्त करके निर्यातक इन प्रपत्रों को अपने बैंक को सौंप देता है। निर्यातक भुगतान प्राप्त करने के लिए एक विनिमय बिल (Bill of Exchange) भी लिखता है तथा इस बिल को भी अपने बैंक को सौंप देता है। निर्यातक का बैंक जहाजी बिल्टी, अन्य प्रपत्र व बिल को प्राप्त करने पर, बिल की स्वीकृति के लिए इस बिल को आयातक के बैंक को देता है। आयातक के बैंक से बिल की स्वीकृति मिलने पर, निर्यातक का बैंक निर्यात वस्तुओं की सुपुर्दगी से सम्बन्धित सभी प्रपत्रों को आयातक के बैंक के पास भेज देता है। इन प्रपत्रों को प्राप्त करने पर आयातक का बैंक, प्रपत्रों के आने की सूचना आयातक को देता है। आयातक, आयात की

वस्तुओं का भुगतान अपने बैंक को करता है तथा अपने बैंक से आयात की गई वस्तुओं से संबंधित जहाजी बिल्टी व अन्य प्रपत्र प्राप्त करता है। इन प्रपत्रों के आधार पर आयातक, आयात की गई वस्तुओं की सपुर्दगी ले लेता है। आयातक का बैंक देय तिथि पर बिल का भुगतान निर्यातक को उसके बैंक के माध्यम से कर देता है। ये दोनों बैंक अपने ग्राहकों को साख भी प्रदान कर देते है, ऐसी दशा में ये बैंक अपनी कमीशन के साथ-साथ ब्याज आय भी अर्जित करते है।

संक्षेप में, विदेशी व्यापार व्यवहार चार पक्षों आयातक, आयातक का बैंक, निर्यातक व निर्यातक के बैंक की सहायता से किया जाता है। इन पक्षों में विदेशी व्यापार व्यवहार में साख पत्र, जहाजी बिल्टी, विनिमय बिल [प्राप्यबिल (B/R), भुगतान बिल (B/P)] का प्रयोग किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहार में शामिल विभिन्न चरणों की चर्चा इस प्रकार है:

■ 5.1 एक विशेष अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहार में शामिल चरण

(Steps Involved in a Typical International Trade Transaction)

(1) आयातक, निर्यातक को वस्तुओं को क्रय करने का आदेश देता है।

(2) निर्यातक क्रय-आदेश प्राप्त करने पर, आयातक को निर्धारित वस्तुए, निर्धारित दरों पर उपलब्ध करवाने की सहमति व्यक्त करता है।

(3) आयातक अपने बैंक से साख-पत्र (Letter of Credit) प्राप्त करने के लिए आवेदन करता है। बैंक आयातक की साख-गुणवत्ता से संतुष्ट होकर साख-पत्र जारी करने के लिए राजी हो जाता है। इसके लिए बैंक आयातक को कुछ राशि जमा कराने या प्रतिभूति देने या सहायक प्रतिभूति देने को कहता है। बैंक साख पत्र जारी करने के लिए निर्धारित दर से कमीशन लेता है। साख-पत्र में बैंक निर्यातक को निर्यात व्यवहार की शर्तें पूरी करने पर, निर्धारित राशि देने का वचन देता है। निर्यातक इस साख-पत्र के आधार पर अपने बैंक से पूर्व निर्यात वित्त भी प्राप्त कर सकता है। अर्थात् इस साख पत्र के आधार पर निर्यातक अपने बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है।

(4) आयातक का बैंक, साख-पत्र को निर्यातक के बैंक के पास भेज देता है। निर्यातक का बैंक साख-पत्र प्राप्त करने पर इसकी सूचना निर्यातक को देता है।

(5) निर्यातक अपने बैंक से साख-पत्र प्राप्ति की सूचना पाकर, आयातक को निर्धारित वस्तुए भेज देता है। इसके लिए निर्यातक, इन वस्तुओं को शिपिंग कम्पनी या ट्रांसपोर्ट कैरियर को दे देता है। यह शिपिंग कपनी या ट्रांसपोर्ट कैरियर वस्तुओं को प्राप्त करने पर जहाजी बिल्टी (Bill of Lading) जारी करती है। जहाजी बिल्टी वस्तुओं की प्राप्ति व स्वामित्व के प्रमाण का प्रपत्र (Document of Title) माना जाता है। आयातक इस जहाजी बिल्टी की मूल प्रति के आधार पर ही शिपिंग कंपनी या ट्रांसपोर्ट कैरियर से सामान की सपुर्दगी ले सकता है।

(6) निर्यातक एक विनिमय पत्र लिखता है जिसमें वह आयातक के बैंक को निर्धारित समय पर निर्धारित राशि अदा करने का निर्देश देता है। यह बिल, निर्यातक के लिए प्राप्य बिल (B/R) तथा आयातक के बैंक के लिए भुगतान बिल (B/P)कहलाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सामान्यता दो प्रकार के बिल प्रचलित है— दर्शनी बिल (Sight Bill) तथा सामयिक बिल (Time Bill)। दर्शनी बिल का भुगतान बिल के प्रस्तुत करने पर तथा सामयिक बिल का भुगतान निर्धारित अवधि के बाद करना होता है।

(7) निर्यातक विनिमय पत्र, जहाजी बिल्टी एवं अन्य आवश्यक प्रपत्रों को अपने बैंक को भेज देता है। निर्यातक का बैंक विनिमय पत्र को स्वीकृति के लिए आयातक के बैंक के पास भेज देता है। आयातक का बैंक बिल पर अपनी स्वीकृति देकर इसे निर्यातक के बैंक के पास भेज देता है। निर्यातक का बैंक जहाजी बिल्टी एवं अन्य आवश्यक प्रपत्रों को भी आयातक के बैंक के पास भेज देता है। निर्यातक इस बिल की कटौती (Discount) करवाकर, निर्धारित समय से पूर्व भी निर्यात राशि को प्राप्त कर सकता है।

(8) आयातक का बैंक जहाजी बिल्टी एवं अन्य आवश्यक प्रपत्रों की प्राप्ति की सूचना आयातक को देता है। आयातक का बैंक, आयातक को इस आयात व्यवहार की अन्तिम राशि (Final Payment) जमा करवाने का निर्देश देता है। आयातक का बैंक इस राशि को आयातक के नाम पर ऋण के रूप में भी दिखा सकता है। इस दशा में आयातक अपनी सुविधा के अनुसार बैंक को भुगतान कर सकता है। बैंक इस ऋण राशि पर आयातक से ब्याज आय प्राप्त करता है।

(9) आयातक का बैंक, आयातक को जहाजी बिल्टी एवं अन्य आवश्यक प्रपत्र दे देता है जिसके आधार पर आयातक शिपिंग कंपनी/ट्रांसपोर्ट कैरियर से सामान की सपुर्दगी प्राप्त कर लेता है।

(10) बिल की देय तिथि पर, निर्यातक का बैंक भुगतान के लिए बिल को आयातक के बैंक के पास प्रस्तुत करता है, आयातक का बैंक इस राशि का भुगतान निर्यातक बैंक को कर देता है।

■ 5.2 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहारों से जुड़े प्रपत्र

(Instruments Used in International Trade Transactions)

(1) **साख-पत्र** (Letter of Credit) : आयातक के आवेदन पर, आयातक का बैंक साख पत्र जारी करता है। जब आयातक निर्यातक को वस्तुओं के आयात का आदेश देता है तब निर्यातक आयातक को साख पत्र प्रस्तुत करवाने को कहता है। साख पत्र, आयातक के बैंक द्वारा जारी एक ऐसा आश्वासन/गारंटी है जिसमें वह निर्यातक या उसके बैंक को निर्धारित राशि अदा करने का वचन देता है। चूंकि साख पत्र को आयातक के बैंक द्वारा जारी किया जाता है, इसलिए साख पत्र प्राप्त करने पर निर्यातक को भुगतान प्राप्त करने का विश्वास हो जाता है तथा वह भुगतान प्राप्त करने के बारे में अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। आयातक का बैंक, आयातक की साख गुणवत्ता को जांचने के बाद ही साख पत्र को जारी करता है। आयातक का बैंक, साख-पत्र जारी करने के लिए आयातक को कुछ राशि जमा करवाने, प्रतिभूति या गारंटी देने को कहता है। साख-पत्र जारी करने पर आयातक का बैंक आयातक से निर्धारित दर से कमीशन लेता है। साख पत्र के आधार पर निर्यातक भी पूर्व निर्यात वित्त प्राप्त कर सकता है। हालांकि साख पत्र में आयातक का बैंक, भुगतान का आश्वासन देता है, लेकिन साख-पत्र की राशि को आयातक का ही वित्तीय दायित्व माना जाता है।

(2) **ड्राफ्ट (विनिमय पत्र)** [Draft (Bills of Exchange)] : ड्राफ्ट (विनिमय पत्र) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रयोग किया जाने वाला महत्वपूर्ण प्रपत्र है। इस बिल में निर्यातक, आयातक या उसके एजेंट (आयातक के बैंक) को निर्धारित समय पर निर्धारित राशि के भुगतान का निर्देश देता है। निर्यातक इस बिल को लिखता है व आयातक या उसका बैंक इस बिल पर हस्ताक्षर करके इसे स्वीकार करता है। यह बिल निर्यातक के लिए प्राप्य बिल (B/R) तथा आयातक या उसके बैंक के लिए भुगतान बिल (B/P) कहलाता है। यह विनिमय पत्र दो प्रकार का होता है– दर्शनी बिल या सामयिक बिल। दर्शनी बिल का भुगतान, बिल के लेखक द्वारा प्रस्तुत करने पर करना पड़ता है, जबकि सामयिक बिल का भुगतान एक निर्धारित अवधि की समाप्ति (देय तिथि) पर करना पड़ता है। बिल के लिखने की तिथि में निर्धारित अवधि जोड़कर ग्रेस (Grace) के 3 अतिरिक्त दिनों को जोड़ने पर बिल की देय तिथि (Due Date) निकाली जाती है। सामयिक बिल की दशा में निर्यातक बिल की कटौती करवाकर, देय तिथि से पूर्व भुगतान प्राप्त कर सकता है। यदि बिल की कटौती बैंक से करवा ली जाए तब देय तिथि पर बैंक को बिल का भुगतान प्राप्त होता है। यदि आयातक द्वारा बिल को स्वीकार किया जाए तब इसे व्यापारिक स्वीकृति कहते है। यदि इसे आयातक के बैंक द्वारा स्वीकार किया जाए तब इसे बैंकर स्वीकृति कहा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान के बारे में सुरक्षित महसूस करने व इस व्यापार में विश्वास को बढ़ावा देने के लिए निर्यातक बिल की बैंक द्वारा स्वीकृति को अधिक महत्त्व देते है।

(3) **जहाजी बिल्टी** (Bill of Lading) : जब निर्यातक, निर्यात वस्तुओं को जहाज के कैप्टन को सौंप देता है तब जहाज का कैप्टन मेट रसीद (Mate's Receipt) जारी करता है। इस रसीद में निर्यात वस्तुओं की संख्या, क्वालिटी, दशा, वजन, समय व तिथि आदि का ब्यौरा दिया जाता है। पोर्ट ऑथॉरिटी, इस मेट रसीद के आधार पर निर्यातक को जहाजी बिल्टी जारी करती है। यह बिल्टी, निर्यातक तथा शिपिंग कंपनी के बीच अनुबंध का कार्य करती है। इसके अनुसार शिपिंग कंपनी को निर्धारित स्थान पर वस्तुओं की सुपुर्दगी संबंधी निर्देश दिये जाते है। यह बिल्टी वस्तुओं को सही दशा में प्राप्त करने की रसीद का कार्य भी करती है। यह बिल्टी वस्तुओं के स्वामित्व का प्रमाण मानी जाती है व इस बिल्टी की मूल प्रति के आधार पर ही आयातक निर्धारित पोर्ट से वस्तुओं की सुपुर्दगी ले सकता है। निर्यातक इस बिल्टी को प्राप्त करके इसे अपने बैंक को विनिमय बिल के साथ भेज देता है। निर्यातक का बैंक, आयातक के बैंक से बिल की स्वीकृति मिलने पर इस बिल्टी को आयातक के बैंक के पास भेज देता है। आयातक का बैंक इस बिल्टी को, आयातक से आयात राशि को प्राप्त करने पर उसे सौंप देता है।

अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन
(International Accounting)

1. परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

लेखांकन व्यवसाय की भाषा है। लेखांकन में व्यवसाय में हित रखने वाले विभिन्न पक्षकारों; जैसे-विनियोगकर्ताओं, लेनदारों, पूर्तिकर्ताओं, कर्मचारियों, सरकार, अनुसंधानकर्ताओं, आदि को व्यवसाय की वित्तीय स्थिति के बारे में जानकारी दी जाती है। प्रत्येक व्यावसायिक इकाई यह जानना चाहती है कि उन्हें वर्ष में कितना लाभ या कितनी हानि हुई है, उन्हें किस-किस व्यक्ति से कितना रुपया लेना है या कितना रुपया देना है। व्यावसायिक इकाई, व्यवसाय की वित्तीय स्थिति अर्थात् व्यवसाय की क्या संपत्तियाँ हैं तथा व्यवसाय के क्या दायित्व हैं, के बारे में जानना चाहती है। व्यवसाय के प्रबंधकों को नियोजन, निर्णय लेने, कार्यकुशल ढंग से व्यवसाय को चलाने, व्यवसाय के वास्तविक निष्पादन पर नियंत्रण रखने तथा इसका मूल्यांकन करने के लिए विभिन्न लेखांकन सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। लेखांकन से व्यावसायिक लेन-देनों के बारे में संपूर्ण तथा व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है। लेखांकन से सरकार को दिए जाने वाले करों तथा शुल्कों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। लेखांकन सूचनाएँ विश्वसनीय, समझने में आसान, तुलना योग्य तथा वैधानिक मापदण्डों के अनुरूप होनी चाहिएं। लेखांकन सूचनाओं में संपूर्णता, समयबद्धता (Timeliness), निष्पक्षता आदि गुण भी होने चाहिएं। कुशल लेखांकन व्यवस्था व्यवसाय को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाइयाँ, विभिन्न लेखांकन समस्याओं का सामना करती हैं, जो एक घरेलू व्यावसायिक इकाई को सामना नहीं करनी पड़तीं। विभिन्न देशों में लेखांकन प्रमापों (Accounting Standards) में एकरूपता का अभाव है। विभिन्न देशों में अलग-अलग लेखांकन प्रमापों को अपनाया गया है। बहुराष्ट्रीय निगम की सहायक कंपनियाँ विभिन्न देशों में कार्यरत होती हैं। ये सहायक कंपनियाँ जिस देश में कार्यरत होती हैं उस देश के लेखांकन प्रमापों, लेखांकन नियमों, लेखांकन पद्धति एवं व्यवहार के आधार पर लेखांकन रिकार्ड तैयार करती हैं। सहायक कंपनियाँ जिस देश में कार्यरत हैं उस देश की घरेलू करेंसी में लेखे तैयार करती हैं। विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के लेखांकन व्यवहार तथा पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। उदाहरण के लिए यूरोप के देशों में चिट्ठे या स्थिति विवरण को स्थायित्व क्रम (In the Order of Permanence) में बनाया जाता है। स्थायित्व क्रम में स्थाई सम्पत्तियों (जिन्हें रोकड़ में परिवर्तित करना मुश्किल है) को संपत्ति पक्ष में सबसे पहले लिखा जाता है तथा तरल संपत्तियों; जैसे-रोकड़ को संपत्ति पक्ष में सबसे अंत में लिखा जाता है। भारत में भी स्थिति विवरण को स्थायित्व क्रम में ही बनाया जाता है। जबकि अमेरिका में स्थिति विवरण को तरलता क्रम (Liquidity Order) में बनाया जाता है। तरलता क्रम में सर्वाधिक तरल संपत्ति जैसे रोकड़ को स्थिति विवरण के संपत्ति पक्ष में सबसे पहले तथा स्थाई संपत्तियों को सबसे अंत में दिया जाता है। बहुराष्ट्रीय निगमों को एकीकृत वित्तीय विवरण तैयार करते समय विभिन्न समस्याओं; जैसे-करेंसी अनुवाद, विभिन्न प्रकार के लेखांकन व्यवहारों, लेखांकन नीतियों, लेखांकन प्रमापों आदि का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा विभिन्न लेखांकन व्यवहारों के कारण, विभिन्न देशों में कार्यरत सहायक कंपनियों के निष्पादन मूल्यांकन तथा तुलना में भी कठिनाई आती है। अमेरिका में बहुराष्ट्रीय निगम केवल एकीकृत लेखे (Consolidated Accounts) ही प्रस्तुत करते है जबकि यूरोप के देशों में बहुराष्ट्रीय निगम अपने मूल देश के लेखों को तथा एकीकृत लेखों दोनों को प्रस्तुत करते है। आजकल वैश्वीकरण के बढ़ने से निवेशक तथा व्यावसायिक इकाइयों की शाखाएँ विश्वभर में फैल गई है। व्यावसायिक इकाइयों को विभिन्न देशों के निवेशकों को वित्तीय परिणामों से अवगत करवाना पड़ता है। अतः वैश्वीकरण के बढ़ने से वैश्वीक अनुरूप लेखांकन की आवश्यकता बढ़ गई है।

...नताओं में अनुरूपता लाने की आवश्यकता
(Need for Harmonising Accounting Differences Across Nations)

विभिन्न देशों में लेखांकन प्रमाप, लेखांकन नीतियाँ, लेखांकन व्यवहार अलग-अलग होने के कारण विभिन्न देशों के लेखांकन रिकार्डों में एकरूपता का अभाव है। लेखांकन में अनुरूपता लाने की आवश्यकता निम्न चर्चा से स्पष्ट हो जाती है:

(1) **बढ़ता वैश्वीकरण** (Increasing Globalisation): पहले व्यावसायिक क्रियाएँ एक देश तक सीमित थी। अब वैश्वीकरण के बढ़ने से ऐसी व्यावसायिक इकाइयों की संख्या बहुत बढ़ गई है जिनका व्यवसाय विश्व के विभिन्न देशों में फैला हुआ है। आजकल बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपनी शाखाएँ या सहायक कंपनियाँ विभिन्न देशों में खोली हुई है। विभिन्न देशों के लेखांकन व्यवहारों में विभिन्नता होने से ये सहायक कंपनियाँ लेखांकन रिकार्ड तैयार करने में व इसे मूल देश में रिपोर्ट करने में कठिनाई का सामना करते है। उत्प्रवासी (Expatriates) भी मेजबान देशों के लेखांकन व्यवहारों से परिचित न होने के कारण लेखांकन रिकार्ड तैयार करने में कठिनाई का सामना करते है। [उत्प्रवासी– ऐसे कर्मचारी, जिन्हें बहुराष्ट्रीय कंपनी, किसी अन्य देश में काम करने के लिए भेजती है।]

(2) **वित्तीय परिणामों में तुलनात्मकता बढ़ाने के लिए** (To Increase Comparability of Financial Results): विभिन्न देशों के लेखांकन अलग-अलग प्रमापों, नीतियों, व्यवहारों के कारण तुलना-योग्य नहीं होते तथा इनमें एकरूपता का अभाव होता है। उदाहरण के लिए ख्याति को अपलिखित (Write off) करने, अनुसंधान एवं विकास पर किए व्यय को लेखों में दर्शाने, समता पूँजी पर प्रत्याय की गणना करने, विक्रय किये गए माल की लागत निकालने आदि के प्रावधान अलग-अलग देशों में अलग-अलग है। अमेरिका में व्यवसाय खरीदने पर ख्याति के लिए दी गई राशि को अपलिखित कर दिया जाता है, लेकिन कुछ देशों में ख्याति को निरंतर संपत्ति में दिखाया जाता है तथा इसे अपलिखित नहीं किया जाता। स्पेन में अनुसंधान एवं विकास (R&D) पर किए गए व्यय को संपत्ति में दिखाया जाता है, कुछ देशों में R&D पर किए व्यय को उसी वर्ष में अपलिखित कर दिया जाता है तथा कुछ देशों में इस व्यय को कुछ वर्षों में अपलिखित कर दिया जाता है। कुछ देशों; जैसे-भारत, जर्मनी, जापान में लेखांकन ऐतिहासिक लागत अवधारणा (Historical Cost Concept) पर आधारित है जबकि निदरलैंड में चालू लागत (Current Cost) अवधारणा को अपनाया गया है। निदरलैंड के लेखापालकों का यह मानना है कि ऐतिहासिक लागत अवधारणा से संपत्तियों पर ह्रास लगाकर संपत्तियों को परिस्थापित करने के लिए पर्याप्त कोष उपलब्ध नहीं होते। इस प्रकार अलग-अलग लेखांकन परिपाटियों के कारण विभिन्न देशों में कार्यरत सहायक कंपनियों के वित्तीय परिणाम तुलना योग्य नहीं होते।

(3) **एक देश से दूसरे देश में किए गए निवेशों में वृद्धि** (Increase in Transnational Investment): आजकल निवेशक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निवेश करने लगे है। वैश्विक पूँजी बाजारों के विकास से, प्रतिभूतियों के ऑनलाइन क्रय-विक्रय से, इंटरनेट बैंकिंग के विकास से, एक निवेशक एक देश से विभिन्न देशों की प्रतिभूतियों (अंशों, ऋणपत्रों, बॉण्डों आदि) में निवेश कर सकता है। आजकल निवेशक ऐसे देश में निवेश करना पसंद करते है जहाँ विकास की संभावनाएँ अधिक हो। लेकिन ये निवेशक विभिन्न देशों की कंपनियों द्वारा जारी लेखांकन विवरणों को समझने में मुश्किलों का सामना कर रहे है क्योंकि विभिन्न देशों में लेखांकन नीतियों में विभिन्नता होने के कारण लेखा रिकार्ड अलग-अलग तरह से तैयार किए जाते हैं। इससे अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों को निवेश के लिए अनुकूलतम पोर्टफोलियों का चयन करने में मुश्किल आती है।

(4) **ट्रांसनेशनल फाइनेंसिंग में वृद्धि** (Increase in Transnational Financing): ट्रांसनेशनल फाइनेंसिंग में एक देश की व्यावसायिक इकाई विभिन्न देशों के पूँजी बाजारों में प्रतिभूतियाँ निर्गमित करके वित्त एकत्रित करती है; जैसे- विभिन्न भारतीय कंपनियों ने अमेरिका के पूँजी बाजारों में अमेरिकन जमा प्राप्तियाँ (American Depository Receipts–ADRs) तथा यूरोपियन पूँजी बाजारों में विश्व जमा प्राप्तियाँ (Global Depository Receipts–GDRs) जारी करके वित्त एकत्रित किया है। वैश्विक पूँजी बाजारों से वित्त एकत्रित करते समय इन कंपनियों को उन देशों के लेखांकन प्रमापों के अनुसार वित्तीय विवरण तैयार करने पड़ते है। अतः इन कंपनियों को दो तरह के वित्तीय विवरण तैयार करने पड़ते है- एक घरेलू देश के लेखांकन प्रमापों के अनुसार तथा दूसरा ऐसे देश के लेखांकन प्रमापों के अनुसार जहाँ के पूँजी बाजारों से वित्त एकत्रित किया गया है। विभिन्न लेखांकन प्रमापों के कारण प्रायः दो तरह के वित्तीय विवरणों के परिणाम एक-दूसरे से असंगत होते है। इससे अंतर्राष्ट्रीय व घरेलू निवेशक उलझन में पड़ जाते है, जैसे- एक वित्तीय विवरण लाभ दिखा रहे है व दूसरे वित्तीय विवरण हानि दिखा रहे हों, तो निवेशक कंपनी के वित्तीय विवरणों से निष्कर्ष निकालते समय उलझ जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारत की इनफोसिस (Infosys) कंपनी, जिसने भारतीय पूंजी बाजार से वित्त एकत्रित किया है, तथा अमेरिका के पूँजी बाजारों से भी वित्त एकत्रित किया है, यह कंपनी भारत में भारतीय लेखांकन प्रमापों के अनुसार तथा अमेरिका में वहाँ के लेखांकन प्रमापों के अनुसार लेखे तैयार करती है।

(5) **वित्तीय विवरणों को एकीकृत करने में समस्या** (Difficulty in Consolidation of Financial Statements): बहुराष्ट्रीय निगमों को अपने घरेलू देश (मूल देश), जहाँ इन निगमों के मुख्यालय स्थित है, के लेखांकन प्रमापों के अनुसार एकीकृत वित्तीय विवरण बनाने पड़ते है। लेकिन इन बहुराष्ट्रीय निगमों की सहायक कंपनियाँ जिन देशों में कार्यरत हैं, वहाँ के लेखांकन प्रमापों के अनुसार लेखे तैयार करती है। इसमें एकीकृत वित्तीय विवरण (मूल कंपनी व इसकी सहायक कंपनियों के संयुक्त वित्तीय विवरण) बनाने में समस्या आती है।

(6) **विभिन्न सहायक कंपनियों के निष्पादन मूल्यांकन के तुलनात्मक विश्लेषण में समस्या** (Difficulty in Comparative Analysis of Performance Evaluation of Various Subsidiaries): बहुराष्ट्रीय निगम अपनी विभिन्न देशों में कार्यरत सहायक कंपनियों के निष्पादन मूल्यांकन का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते है। विभिन्न सहायक कंपनियों में से कुशल सहायक कंपनियों का पता लगा कर इसके आकार के विस्तार की योजना बनाई जाती है। विभिन्न सहायक कंपनियों के तुलनात्मक निष्पादन मूल्यांकन के लिए एकरूप/समरूप लेखांकन का होना अति आवश्यक है।

(7) **बढ़ता आर्थिक एकीकरण** (Increasing Economic Unification): क्षेत्रीय आर्थिक समूहों के बढ़ते प्रसार से विभिन्न देश एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं। उदाहरण के लिए, यूरोपियन यूनियन (European Union), जो 28 यूरोपियन देशों का क्षेत्रीय आर्थिक समूह है, आर्थिक एकीकरण की ओर बढ़ रहा है, जिसमें वस्तुओं व सेवाओं के स्वतंत्र प्रवाह पर, पूँजी और श्रम के एक देश से दूसरे देश में आने जाने पर कोई रोक-टोक नहीं होती तथा इस संघ के सभी सदस्य देशों की व्यापारिक व आर्थिक नीतियों में समरूपता होती है। यह आर्थिक एकीकरण, आर्थिक समूह के सदस्य देशों के लेखांकन व्यवहारों में एकरूपता होने पर और भी कार्यकुशल, व्यावहारिक तथा सदस्य देशों को स्वीकृत होगा।

3. विभिन्न देशों के लेखांकन व्यवहारों में विभिन्नता के कारण
(Causes for Differences in Accounting Practices Across World)

विभिन्न देशों के लेखांकन व्यवहार अलग-अलग है। निम्न घटकों के कारण विभिन्न देशों के लेखांकन व्यवहारों में विभिन्नता है:

(1) **राष्ट्रीय लेखांकन प्रमापों में अंतर** (Differences in National Accounting Standards): विभिन्न देशों में लेखांकन प्रमापों की विभिन्नता के कारण लेखे तैयार करने संबंधी वैधानिक व्यवस्था अलग-अलग है। उदाहरण के लिए- भारत में लेखांकन प्रमापों को इंस्टीटयूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स ऑफ इण्डिया द्वारा जारी किया गया है। अमेरिका में लेखांकन प्रमापों को 'वित्तीय लेखांकन प्रमाप बोर्ड' (Financial Accounting Standard Board – FASB) द्वारा तैयार किया गया है। आस्ट्रेलिया में लेखांकन प्रमाप 'आस्ट्रेलियन लेखांकन प्रमाप बोर्ड' द्वारा जारी किए गए है। फ्रांस तथा जर्मनी में लेखांकन व्यवहारों को पेशेवर लेखापालकों द्वारा न बनाकर इन्हें कानून द्वारा या न्यायालय के फैसलों के आधार पर बनाया गया है। विभिन्न देशों में लेखांकन संबंधी अलग-अलग नियमों तथा प्रमापों के कारण वहाँ के लेखांकन व्यवहारों में विभिन्नता है।

(2) **व्यावसायिक इकाइयों तथा निवेशकों के बीच संबंध में अंतर** (Difference in Relationship between Business Units and Investors): कुछ राष्ट्रों; जैसे-अमेरिका व इंग्लैंड में व्यावसायिक इकाइयाँ पूँजी बाजारों से वित्त एकत्रित करती हैं। ये व्यावसायिक इकाइयाँ अपनी वित्त की आवश्यकता के लिए व्यक्तिगत निवेशकों पर निर्भर है। इन देशों के लेखांकन विवरण अधिक पारदर्शी है व इनमें अधिक सार्वजनिक प्रकटीकरण (Public Disclosure) होता

…, जापान में व्यावसायिक इकाइयों की वित्त की निर्भरता बैंकों तथा वित्तीय …ओं पर है। इन देशों की व्यावसायिक इकाइयाँ सार्वजनिक प्रकटीकरण तथा पारदर्शिता पर अधिक जोर नहीं देती। ये व्यावसायिक इकाइयाँ बैंकों व वित्तीय संस्थाओं को व्यक्तिगत संपर्क द्वारा व सभाओं द्वारा कंपनी के निष्पादन, लाभदायकता, तरलता, ऋण चुकाने की क्षमता आदि के बारे में अवगत करवाते हैं। अतः व्यावसायिक इकाइयों के निवेशकों के साथ संबंधों में अंतर के कारण विभिन्न देशों के लेखांकन व्यवहारों में अंतर पाया जाता है।

(3) **औपनिवेशिक प्रभाव** (Colonial Influence): विभिन्न देशों के विभिन्न राजनैतिक व आर्थिक संबंधों के कारण इन देशों के लेखांकन व्यवहारों में विभिन्नता है। जो देश ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहे हैं; जैसे- भारत, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड के लेखांकन व्यवहारों में कुछ समरूपता है। फिलीपिंस जो अमेरिका के अधीन था, के लेखांकन व्यवहार अमेरिका से मिलते हैं। इसी तरह फ्रांस व उसके अधीन रहे राष्ट्रों के लेखांकन व्यवहारों में काफी एकरूपता है। लेकिन अमेरिका, इंगलैंड तथा फ्रांस के लेखांकन व्यवहारों में काफी विभिन्नताएँ हैं।

(4) **क्षेत्रीय आर्थिक समूह** (Regional Economic Groupings): विश्व में विभिन्न क्षेत्रीय समूह कार्यरत हैं। एक आर्थिक समूह के सदस्य देशों के लेखांकन व्यवहारों में कुछ समानता है। उदाहरण के लिए, अमेरिका, कनाडा तथा मैक्सिको के लेखांकन व्यवहारों में काफी समानता है क्योंकि ये तीनों देश क्षेत्रीय आर्थिक समूह, नाफ्टा (NAFTA) के सदस्य हैं। इसी तरह यूरोपियन यूनियन (EU), जो क्षेत्रीय आर्थिक समूह है, के सदस्य देशों के लेखांकन व्यवहारों में काफी एकरूपता है। लेकिन विभिन्न क्षेत्रीय आर्थिक समूहों के लेखांकन व्यवहारों में काफी विभिन्नताएँ हैं।

(5) **संस्कृति में अंतर** (Difference in Culture): किसी देश की संस्कृति भी उस देश के लेखांकन व्यवहारों को प्रभावित करती है। जर्मनी के लोग संकीर्ण विचारधारा (Conservative Attitude) वाले हैं जबकि इंग्लैंड के लोग आशावादी हैं। संकीर्ण मानसिकता से जुड़े व्यावसायिक प्रबंधक जोखिमपूर्ण परियोजनाओं को लेने से डरते हैं। संकीर्णवादी लेखापालक छिपे हुए दायित्वों के लिए अधिक आयोजन (Provision) बनाते हैं जिससे इन व्यावसायिक इकाइयों का लाभ कम हो जाता है। दूसरी ओर आशावादी विचारधारा के लोग, जोखिमपूर्ण परियोजनाओं को शुरू करने में पीछे नहीं हटते तथा आकस्मिक घटनाओं के लिए कम आयोजन करते हैं। अतः संस्कृति में अंतर के कारण विभिन्न देशों के लेखांकन व्यवहारों में विभिन्नता है।

4. विभिन्न देशों के लेखांकन की अनुरूपता के पक्ष में तर्क

(Arguments for Harmonisation of Accounting Across Nations)

(1) **निवेशकों को लाभ** (Benefits to Investors): लेखांकन में वैश्विक स्तर पर अनुरूपता आने से निवेशकों के लिए विभिन्न देशों की विभिन्न कंपनियों के वित्तीय विवरणों का विश्लेषण आसान हो जाएगा। इससे निवेशक अपने कोषों को वैश्विक स्तर पर सर्वाधिक लाभदायक पोर्टफोलियो बनाकर निवेश कर सकते हैं। इससे वैश्विक स्तर पर कोषों के प्रवाह को भी प्रोत्साहन मिलता है।

(2) **बहुराष्ट्रीय निगमों को लाभ** (Benefit to MNCs): वैश्विक स्तर पर लेखांकन व्यवहारों में एकरूपता आने से बहुराष्ट्रीय निगम को निम्न लाभ प्राप्त हो सकेंगे:

(i) समूह के एकीकृत वित्तीय विवरणों को बनाने में आसानी।

(ii) विभिन्न सहायक कंपनियों के निष्पादन की परस्पर तुलना व मूल्यांकन में आसानी।

(iii) सहायक कंपनी व मूल सूत्रधारी कंपनी के बीच तथा विभिन्न सहायक कंपनियों के बीच आंतरिक लेखांकन रिपोर्टिंग में एकरूपता।

(iv) लेखांकन उत्प्रवासियों (Accounting Expatriates) को विभिन्न देशों में लेखांकन कार्य के लिए भेजना आसान।

(v) कंपनी के लेखांकन कार्यों की लागत को कम किया जाना संभव, क्योंकि लेखांकन अनुरूपता से कम लागत वाले राष्ट्र को लेखांकन कार्य दिया/आउटसोर्स (Outsource) किया जा सकता है।

(3) **कर की चोरी की कम संभावना** (Less Scope for Tax Evasion): लेखांकन में एकरूपता आने से लेखांकन में पारदर्शिता बढ़ती है। इससे लेखांकन जटिलताओं में कमी आती है। इससे कर अधिकारी सहायक कंपनियों के वित्तीय विवरणों को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। इससे कर की चोरी की संभावना में कमी आती है।

(4) **अंकेक्षण कार्य में एकरूपता** (Uniformity in Auditing): लेखांकन में एकरूपता से अंकेक्षण कार्य में सुविधा होती है। इससे अंकेक्षण कार्य की जटिलताओं में कमी आती है। वैश्विक स्तर पर लेखांकन कार्य में एकरूपता आने से वैश्विक स्तर की अंकेक्षण फर्में कार्य करना शुरू कर देंगी। ये फर्में अंकेक्षण कार्यों के लिए अपने स्टॉफ को एक देश से दूसरे देश में भेज सकती हैं। लेखांकन कार्यों में एकरूपता आने से अंकेक्षण कार्य में प्रमापीकरण (Standardisation) बढ़ता है।

(5) **बहुराष्ट्रीय निगमों पर बेहतर नियंत्रण** (Better Control over MNCs): ऐसे देश जिनमें बहुराष्ट्रीय निगमों का कार्यक्षेत्र फैला हुआ है, की सरकार का इन निगमों पर बेहतर नियंत्रण हो सकता है। लेखांकन व्यवहारों में एकरूपता आने से ये निगम अपने लाभों को छिपा नहीं पाएँगे।

(6) **आर्थिक एकीकरण में सहायक** (Facilitates Economic Integration): लेखांकन व्यवहारों में वैश्विक स्तर पर एकरूपता आने से क्षेत्रीय आर्थिक समूहों को बढ़ावा मिलेगा, जिससे आर्थिक समूहों के सदस्य देशों के मध्य आर्थिक एकीकरण में वृद्धि होगी।

(7) **बेहतर अंतर्राष्ट्रीय साख रेटिंग** (Better International Credit Rating): लेखांकन में अनुरूपता आने से अंतर्राष्ट्रीय साख रेटिंग एजेंसियाँ विदेशी कंपनियों की तरलता, शोधन-क्षमता (Solvency) तथा लाभदायकता का बेहतर मूल्यांकन कर सकती है तथा उचित रेटिंग निर्धारित कर सकती है।

(8) **वैश्विक पूँजी बाजारों का एकीकरण** (Integration of Capital Markets across the World): लेखांकन में एकरूपता आने से वैश्विक पूँजी बाजारों में एकीकरण के अवसर बढ़ते है। इससे विभिन्न देशों के बीच निवेशों के प्रवाह में वृद्धि होती है। इससे वैश्वीकरण (Globalisation) को बढ़ावा मिलता है।

(9) **बुद्धिजीवियों तथा अनुसंधानकर्ताओं को लाभ** (Benefits to Academicians and Researchers):

(i) अनुसंधानकर्ता विभिन्न देशों की व्यावसायिक इकाइयों की लेखांकन सूचनाओं का बेहतर विश्लेषण कर सकेंगे।

(ii) लेखांकन में अनुरूपता आने से विद्यार्थी तथा शिक्षक, शिक्षा प्राप्त करने तथा अध्यापन कार्य करने एक देश से दूसरे देश में जा सकते हैं।

(iii) इससे लेखांकन लिटरेचर में प्रमापीकरण को बढ़ावा मिलेगा। एक देश का लेखांकन लिटरेचर दूसरे देशों में पढ़ा व आसानी से समझा जा सकता है।

5. अनुरूप लेखांकन के क्रियान्वयन में बाधाएँ/कठिनाइयाँ

(Obstacles/Difficulties in the Path of Harmonised Accounting)

(1) **राष्ट्रीय भावना** (Nationalism): प्रत्येक राष्ट्र यह मानता है कि उस देश के लेखांकन प्रमाप अन्य देशों में प्रचलित लेखांकन प्रमापों से बेहतर हैं। प्रत्येक देश यह चाहता है कि उसके द्वारा लागू लेखांकन प्रमापों को अन्य देशों द्वारा अपना लिया जाए। कोई भी देश अपने लेखांकन प्रमापों को छोड़कर दूसरे देश के लेखांकन प्रमापों को अपनाने के लिए तैयार नहीं होता।

(2) **विभिन्न कानून व्यवस्था** (Different Legal Systems): विभिन्न देशों में लेखांकन व्यवहारों से संबंधित कानून व्यवस्था अलग-अलग है। कुछ राष्ट्रों; जैसे-जर्मनी तथा फ्रांस में बहुत कठोर लेखांकन नियम है। इन देशों में लेखांकन व्यवहारों को पेशेवर लेखापालकों द्वारा निर्धारित न करके कानून द्वारा निर्धारित किया जाता है।

(3) पेशेवरों में सर्वसहमति का अभाव (Lack of Consensus among Accounting Professionals) जब विभिन्न देशों के लेखांकन पेशेवर वैश्विक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमाप निर्धारित करने के लिए इकट्ठे होते हैं तब उनमें सर्वसहमति का अभाव पाया जाता है। जब विभिन्न देशों के लेखांकन विशेषज्ञ अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमाप समिति (International Accounting Standards Committee) में आते हैं तब वे लेखांकन अनुरूपता के संबंध में सर्वसहमति नहीं बना पाते।

(4) परिवर्तन का विरोध (Resistance to Change) वर्तमान व्यवस्था में जब भी परिवर्तन किया जाए, तब लोग परिवर्तन का विरोध करते हैं। विभिन्न व्यावसायिक इकाइयाँ अपने परम्परागत लेखांकन व्यवहारों में भली भाँति परिचित होने के कारण एकरूप लेखांकन व्यवहारों को अपनाना नहीं चाहती।

एकरूप लेखांकन व्यवहारों में अधिकतर रुकावटें भावनात्मक हैं। एकरूप लेखांकन व्यवहारों को न अपनाये जाने के पीछे कोई विवेकशील तर्क नहीं दिया जा सकता। विभिन्न देशों को आपसी मतभेद भुला कर एकरूप लेखांकन व्यवहारों व प्रमापों को अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में वृद्धि होगी तथा वैश्विक संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग को बढ़ावा मिलेगा।

■ 6. अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमाप (International Accounting Standards)

विभिन्न देशों में लेखांकन प्रमापों में एकरूपता लाने के लिए 1973 में अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमाप समिति (International Accounting Standards Committee -IASC) की स्थापना की गई। इस समिति का उद्देश्य विश्व स्तर पर लेखांकन प्रमापों की स्थापना करना है। विश्व के 104 देशों की 140 से अधिक पेशेवर लेखांकन संस्थाएँ इस समिति की सदस्य हैं। बहुत से देशों में, जो IASC के सदस्य हैं, में एक से अधिक पेशेवर संगठन कार्यरत हैं। अब तक **अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमाप समिति** ने 41 लेखांकन प्रमाप जारी किए हैं।

1995 में **अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभूति आयोग संगठन** (International Organisation of Security Commission) जो विश्व के स्टॉक बाजारों को नियमित करने के लिए एक महत्वपूर्ण संगठन है, ने IASC द्वारा जारी लेखांकन प्रमापों को मान्यता प्रदान की है। इस संगठन ने लेखांकन प्रमापों में सुधार के लिए IASC को विश्व स्तर का बोर्ड गठित करने का सुझाव दिया। इस आधार पर **अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमाप बोर्ड** (International Accounting Standards Board -IASB) की स्थापना की गई। IASB ने सभी अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमापों को अपना लिया है, तथा प्रत्येक प्रमाप को सुधारने का कार्य शुरू कर दिया है। इस बोर्ड ने नए लेखांकन प्रमापों को भी जारी किया है, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय रिपोर्टिंग प्रमाप (International Financial Reporting Standards - IFRS) भी कहा जाता है। यूरोपियन संघ ने अपने सदस्य देशों को IFRS को अपनाने के निर्देश दिए हैं। यदि इन प्रमापों को EU के सदस्य देशों द्वारा पूरी तरह से अपना लिया जाता है तो अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन में एकरूपता की ओर यह एक महत्वपूर्ण कदम माना जाएगा। अभी तक IASB द्वारा जारी लेखांकन प्रमापों को विभिन्न देशों द्वारा अपनाया जाना स्वैच्छिक है। IASB के पास ऐसी कोई शक्तियाँ नहीं हैं जिनसे इन लेखांकन प्रमापों को विभिन्न देशों में सख्ती से लागू करवाया जाए।

■ 6.1 अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमाप बोर्ड के उद्देश्य

[Objectives of International Accounting Standards Board (IASB)]

(i) वित्तीय विवरणों तथा अन्य वित्तीय रिपोर्टिंग में आँकड़ों के प्रस्तुतीकरण के लिए उच्च क्वालिटी के अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमापों को विकसित करना।

(ii) इन लेखांकन प्रमापों के प्रयोग को बढ़ावा देना।

(iii) छोटे व मध्यम स्तर के उपक्रमों तथा उभरती अर्थव्यवस्थाओं की विशेष आवश्यकताओं का ध्यान रखना।

(iv) राष्ट्रीय लेखांकन प्रमापों तथा अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमापों के बीच एकरूपता लाने हेतु कार्य करना।

6.2 अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन प्रमापों की सूची

[List of International Accounting Standards (IAS)]

IAS -1	Disclosure of Accounting Policies
IAS -2	Valuation and Presentation of Inventories in the context of the Historical Cost System
IAS -3	Consolidated Financial Statements
IAS -4	Depreciation Accounting
IAS -5	Information to be Disclosed in Financial Statements
IAS -6	Accounting Responses to Changing Prices (superseded by IAS-15)
IAS -7	Cash Flow Statements
IAS -8	Unusual and Prior Period Items and Changes in Accounting Policies
IAS -9	Accounting for Research and Development Activities
IAS -10	Contingencies and Events occurring after the Balance Sheet Date
IAS -11	Accounting for Construction Contracts
IAS -12	Accounting for Taxes on Income
IAS -13	Presentation of Current Assets and Current Liabilities
IAS -14	Reporting Financial Information by Segment
IAS -15	Information Reflecting Effects of Changing Price
IAS -16	Accounting for Property, Plant and Equipment
IAS -17	Accounting for Leases (Revised)
IAS -18	Revenue Recognition
IAS -19	Accounting for Employee Benefits
IAS -20	Accounting for Government Grants and Disclosure of Government Assistance
IAS -21	Accounting for Effects of Changes in Foreign Exchange Rates
IAS -22	Accounting for Business Combinations (revised)
IAS -23	Capitalisation of Borrowing Costs
IAS -24	Related Party Disclosure
IAS -25	Accounting for Investment
IAS -26	Accounting and Reporting by Retirement Benefit Plans
IAS -27	Consolidation of Financial Statements and Accounting for Investments in Subsidiaries
IAS -28	Accounting for Investments in Associates
IAS -29	Financial Reporting in Hyper Inflationary Economies
IAS -30	Disclosures in the Financial Statements of Banks and similar Financial Institutions
IAS -31	Financial Reporting of Interests in Joint Ventures
IAS -32	Financial Instruments: Disclosure and Presentation

IAS – 33	Earning per Share
IAS – 34	Interim Financial Reporting
IAS – 35	Accounting for Discontinuing Operations
IAS – 36	Accounting for Impairment (or Loss) of Assets
IAS – 37	Provisions, Contingent Liabilities and Contingent Assets
IAS – 38	Intangible Assets (Supersedes IAS 9)
IAS – 39	Financial Instruments (Supplements IAS 32)
IAS – 40	Investment Property (Supersedes IAS 25)
IAS – 41	Agriculture Accounting

■ 7. एकीकृत वित्तीय विवरण (Consolidated Financial Statements)

जब दो या दो से अधिक कंपनियों के वित्तीय विवरणों को मिलाकर एकीकृत रूप से तैयार किया जाता है तब इसे वित्तीय विवरणों का एकीकरण कहा जाता है। बहुराष्ट्रीय निगमों की सहायक कंपनियाँ बहुत से देशों में कार्यरत होती हैं। ये सभी सहायक कंपनियाँ तथा बहुराष्ट्रीय कंपनी अपने अलग-अलग वित्तीय विवरण तैयार करती हैं। बाद में बहुराष्ट्रीय कंपनी अपने वित्तीय विवरणों तथा अपनी सभी सहायक कंपनियों के वित्तीय विवरणों को मिलाकर एक एकीकृत वित्तीय विवरण तैयार करती है। एकीकृत वित्तीय विवरणों से मूल देश के सूत्रधारी कंपनी तथा विभिन्न देशों में कार्यरत सहायक कंपनियों की इकट्ठी वित्तीय स्थिति का पता चलता है। इससे पूरे समूह की वित्तीय स्थिति का ज्ञान हो जाता है। एकीकृत वित्तीय विवरणों में पूरे समूह यानि मूल कंपनी एवं इसकी सभी सहायक कंपनियों का एक ही लाभ-हानि खाता तथा एक ही स्थिति विवरण तैयार किया जाता है।

एकीकृत लाभ-हानि खाते से पूरे समूह के कुल लाभ का तथा एकीकृत स्थिति विवरण से पूरे समूह की वित्तीय स्थिति का पता लग जाता है। यदि सहायक कंपनी के कुछ अंश बाहरी पक्षों के पास हैं, तब सहायक कंपनी की शुद्ध संपत्तियों में बाहरी पक्षों के आनुपातिक हिस्से को अल्पमत हित (Minority Interest) के रूप में एकीकृत स्थिति विवरण के दायित्व पक्ष में दिखाया जाता है। एकीकृत वित्तीय विवरण तैयार करते समय समूह की कंपनियों के आपसी लेन-देनों को आपस में समायोजित कर दिया जाता है, जैसे-यदि सूत्रधारी कंपनी को सहायक कंपनी से कुछ पैसा लेना है तो यह सूत्रधारी कंपनी के लिए संपत्ति है व सहायक कंपनी के लिए दायित्व है। एकीकृत वित्तीय विवरण बनाते समय इन आपसी व्यवहारों को खातों में नहीं दिखाया जाता, अर्थात् ऐसे व्यवहार को न तो एकीकृत स्थिति विवरण के संपत्ति पक्ष में व न ही दायित्व पक्ष में दिखाया जाता है। इसके लिए इन राशियों को एक कंपनी की संपत्ति से व दूसरी कंपनी के दायित्व से घटा दिया जाता है। इसी प्रकार यदि सूत्रधारी कंपनी तथा सहायक कंपनियों के बीच कोई आय-व्यय का आपसी व्यवहार है, जैसे-यदि सूत्रधारी कंपनी को सहायक कंपनी से रायल्टी प्राप्त करनी है तो यह व्यवहार सूत्रधारी कंपनी के खाते में आय के रूप में तथा सहायक कंपनी के खाते में व्यय के रूप में होगा। एकीकृत खाते तैयार करते समय इन पारस्परिक/अन्तः कंपनी व्यवहारों को आय पक्ष तथा व्यय पक्ष दोनों से घटा लिया जाता है।

■ 7.1 एकीकृत वित्तीय विवरणों के लिए करेंसी अनुवाद विधियाँ

(Currency Translation Methods for Consolidated Financial Statements)

बहुराष्ट्रीय निगमों की सहायक कंपनियाँ विश्वभर में कार्यरत होती हैं। बहुराष्ट्रीय निगम एवं इसकी सहायक कंपनियाँ उस देश की करेंसी में वित्तीय विवरण बनाती है जिस देश में ये कार्यरत होती हैं। जब सहायक कंपनियों तथा सूत्रधारी बहुराष्ट्रीय निगम के मूल देश के खातों को एकीकृत करना पड़ता है तब करेंसी अनुवाद की समस्या आती है। करेंसी अनुवाद में सहायक कंपनियों के खातों को मूल देश की करेंसी में अनुवाद किया जाता है। सहायक कंपनियों के खातों को बहुराष्ट्रीय कंपनी की मुख्य करेंसी (मूल देश की करेंसी) में अनुवाद करके ही एकीकृत वित्तीय विवरण बनाए जा सकते हैं। मूल देश की करेंसी तथा सहायक कंपनियों के देश की करेंसी के बीच विनिमय दर (Exchange Rate) बदलती रहती है। इससे यह समस्या आती है कि किस विनिमय दर को आधार बनाकर सहायक कंपनियों के

वित्तीय विवरणों की करेंसी का मूल देश की करेंसी में अनुवाद किया जाए। वित्तीय विवरणों की करेंसी अनुवाद के लिए दो विधियाँ प्रचलित हैं:

(1) चालू दर विधि (Current Rate Method)

(2) टेम्पोरल विधि (Temporal Method)

इन विधियों का विवरण इस प्रकार है:

● (1) चालू दर विधि (Current Rate Method)

चालू दर विधि में स्थिति विवरण/चिट्ठे के बनाये जाने वाली तिथि पर चल रहे विनिमय दर के आधार पर सहायक कंपनियों के वित्तीय विवरणों को मूल देश की करेंसी में बदला जाता है। इस विधि को अंतिम दर विधि भी कहते हैं। करेंसी अनुवाद की यह विधि बहुत सरल है क्योंकि इसमें एक ही विनिमय दर के आधार पर सहायक कंपनियों के खातों को मूल देश की करेंसी में बदला जाता है। इस विधि में अलग-अलग विनिमय दरों का प्रयोग नहीं किया जाता। लेकिन यह विधि ऐतिहासिक लागत अवधारणा (Historical Cost Concept) के असंगत है। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है:

मान लो अमेरिका की मूल कंपनी ने भारत में एक सहायक कंपनी में एक लाख डॉलर निवेश किए, मान लो उस समय डॉलर तथा भारतीय रुपये का विनिमय दर 1\$ = ₹45 था। इस विनिमय दर पर भारत में सहायक कंपनी को ₹45,00,000 (1,00,000 × 45) प्राप्त होंगे। मान लो भारतीय सहायक कंपनी ने इस राशि से भूमि (Land) संपत्ति खरीद ली। अब स्थिति विवरण में भारतीय सहायक कंपनी इस संपत्ति को ₹45,00,000 पर दिखाएगा। अब मान लो चिट्ठे के बनने की तिथि को भारतीय मुद्रा का मूल्य अमेरिकन डॉलर की तुलना में बढ़ जाता है व मान लो रुपये तथा डॉलर की अब विनिमय दर 1\$ = ₹40 है। अमेरिका की मूल कंपनी इस संपत्ति को चालू दर विधि से \$ 1,12,500 (₹ 45,00,000 /40) पर अपनी लेखा पुस्तकों में दिखाएगी। यह लागत ऐतिहासिक लागत अवधारणा के विरुद्ध है क्योंकि संपत्ति की मौलिक लागत/वास्तविक लागत \$ 1,00,000 थी। इस संपत्ति का मूल्य \$ 1,00,000 से बढ़कर मूल देश के चिट्ठे में \$ 1,12,500 हो गया। संपत्ति के मूल्य में यह परिवर्तन केवल विनिमय दर उतार-चढ़ाव उच्चावचनों (भारतीय मुद्रा का अमेरिकन डॉलर की तुलना में सुदृढ़ होने से) के कारण हुआ है। संपत्ति के मूल्य में यह अंतर \$ 12,500 (\$ 1,12,500 – \$1,00,000) को करेंसी अनुवाद लाभ कहा जाएगा। इस परिवर्तन को विनिमय दर उच्चावचन समायोजन भी कहा जाता है। दूसरी ओर यदि भारतीय मुद्रा का मूल्य अमेरिका के डॉलर की तुलना में गिर जाता है तब मूल देश को करेंसी अनुवाद पर हानि होती है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय कंपनी द्वारा बनाए गए एकीकृत वित्तीय विवरण ऐतिहासिक लागत अवधारणा की अवहेलना करते हैं तथा वास्तविक वित्तीय स्थिति को प्रदर्शित नहीं करते।

● (2) टेम्पोरल विधि (Temporal Method)

इस विधि में सहायक कंपनियों के खातों का मूल देश की करेंसी में अनुवाद करते समय विभिन्न विनिमय दरों का प्रयोग किया जाता है। संपत्ति को खरीदने वाले दिन की विनिमय दर को उस संपत्ति की करेंसी के अनुवाद में प्रयोग किया जाता है। चूंकि सहायक कंपनी विभिन्न संपत्तियों को विभिन्न तिथियों पर खरीद सकती है, तब इन विभिन्न संपत्तियों का मूल देश की करेंसी में अनुवाद करते समय विभिन्न विनिमय दरों का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में भी मूल देश की करेंसी तथा सहायक कंपनियों के देश की करेंसी के बीच विनिमय दर के उच्चावचनों से गुमराह करने वाले परिणाम प्राप्त होते हैं। इस विधि की कार्य प्रणाली निम्न उदाहरण से स्पष्ट है:

मान लो अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनी (मूल कंपनी) ने भारत में अपनी सहायक कंपनी में 1 अप्रैल 2010 को \$1,00,000 निवेश किए। मान लो इस दिन भारत तथा अमेरिका की करेंसी के बीच विनिमय दर 1\$= ₹45 था। इस प्रकार भारतीय सहायक कंपनी को ₹45,00,000 प्राप्त होंगे। मान लो 30 जून 2010 को भारतीय सहायक कंपनी ने इस राशि में से ₹25,00,000 भूमि को खरीदने पर खर्च किए। मान लो इस तिथि को भारतीय रुपये तथा अमेरिका के डॉलर की विनिमय दर 1\$= ₹42.50 थी। मान लो भारतीय सहायक कंपनी ने 15 सितंबर 2010 को प्लांट (Plant) क्रय करने के लिए ₹20,00,000 खर्च किए। मान लो इस दिन भारतीय रुपये तथा अमेरिका के डॉलर की विनिमय दर 1\$= ₹40 थी। टेम्पोरल विधि में इन दोनों संपत्तियों को मूल देश की करेंसी में संपत्ति क्रय करने की तिथि की विनिमय दर के आधार पर परिवर्तित किया जाता है। अतः भूमि को मूल देश की स्थिति विवरण में \$58,824 (25,00,000/42.50) पर तथा प्लांट को \$50,000 (20,00,000/40) पर दर्शाया जाएगा। इस प्रकार अमेरिका की मूल कंपनी इन

...,00,000 निवेश किए थे = $1,08,824 ($58,824 + $ 50,000) पर दर्शाएगी जबकि इस कम्पनी ने भारतीय सहायक... इस अन्तर की राशि $8,824 ($1,08,824 – $ 1,00,000) को **करेंसी अनुवाद लाभ** व **विनिमय दर उच्चावचन समायोजन** कहा जाता है। यदि भारत की करेंसी के मूल्य का अमेरिकी डॉलर की तुलना में मूल्य कम (कमी) हो जाता तब अमेरिका के एकीकृत लेखों में करेंसी अनुवाद हानि होती।

- **किस विधि का प्रयोग किया जाए? (Which Method is to be Used?)**

सामान्यतया आय विवरण (लाभ-हानि खाते) को वर्ष की औसत विनिमय दर के आधार पर तथा स्थिति विवरण को चालू दर के आधार पर, करेंसी अनुवाद किया जाता है। सहायक कम्पनियों के वित्तीय विवरणों को पहले मूल देश के लेखांकन प्रमापों के अनुसार समायोजित किया जाता है। तब इन वित्तीय विवरणों का मूल देश की करेंसी में अनुवाद किया जाता है।

करेंसी अनुवाद विधि का चयन सहायक कम्पनी की कार्यात्मक करेंसी पर भी निर्भर करता है। कार्यात्मक करेंसी से अभिप्राय उस करेंसी से है जिस करेंसी में सहायक कम्पनी अपने वित्तीय लेखे तैयार करती है। प्रायः सहायक कम्पनी की कार्यात्मक करेंसी उस देश की करेंसी होती है जिस देश में वे सहायक कम्पनियाँ कार्यरत है। इस दशा में स्थिति विवरण के करेंसी अनुवाद में चालू दर विधि तथा आय विवरण के करेंसी अनुवाद में औसत विनिमय दर का प्रयोग किया जाता है। यदि सहायक कम्पनी की कार्यात्मक करेंसी, मूल देश की करेंसी ही है तब सहायक कम्पनी के वित्तीय विवरणों को बिना किसी समायोजन के मूल देश के वित्तीय विवरणों के साथ एकीकृत कर दिया जाता है। इस दशा में सहायक कम्पनी तथा मूल देश की करेंसी एक जैसी होने के कारण करेंसी अनुवाद की आवश्यकता नहीं होती।

■ 8. लेसर्ड-लोरेंज मॉडल (The Lessard – Lorange Model)

किन्हीं दो देशों के मध्य विनिमय दर वर्ष भर एक समान नहीं रहती। इसमें परिवर्तन आते रहते है, कई बार वर्ष के प्रारम्भ और अन्त के विनिमय दर में अत्यधिक अन्तर होता है। किसी भी व्यावसायिक इकाई का बजट साल के आरम्भ में बनाया जाता है, जबकि वास्तविक निष्पादन को वर्ष के अन्त में मापा जाता है। यदि बजट में निर्धारित प्रमापों की तुलना वास्तविक निष्पादन के साथ घरेलू करेंसी में की जाती है तो विनिमय दर में बदलाव इस तुलनात्मक अध्ययन को प्रभावित नहीं करते। परन्तु यदि मूल कम्पनी (Parent Company) तथा सहायक कम्पनी अलग-अलग देशों में है तथा सहायक कम्पनी के वित्तीय परिणामों का मूल्यांकन मूल कम्पनी द्वारा किया जाता है तो सहायक कम्पनी के वित्तीय विवरणों (Financial Statements) को मूल देश की घरेलू मुद्रा में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रक्रिया में विनिमय दरों का प्रयोग किया जाता है। ऐसा प्रायः तब होता है जब बहुराष्ट्रीय कम्पनी की विभिन्न देशों में सहायक कम्पनियाँ हों। अब यदि सहायक कम्पनी के बजट को मूल देश की मुद्रा में परिवर्तित करने के लिए वर्ष के शुरू में विनिमय दर को आधार बनाया जाता है, तथा सहायक कम्पनी के वास्तविक वित्तीय परिणामों को मूल देश की मुद्रा में परिवर्तित करने के लिए वर्ष के अन्त में विनिमय दर को आधार बनाया जाता है, तो ऐसा सम्भव है कि विनिमय दर में बदलाव के कारण सहायक कम्पनी के निष्पादन को या तो वास्तविक से अधिक आँका जाए (Over-rated) या वास्तविक से कम आँका जाए (Under-rated)। जैसे मान लो एक अमेरिकन मूल कम्पनी की भारत में सहायक कम्पनी है। भारतीय सहायक कम्पनी की बजटेड विक्रय (Budgeted Sales) ₹ 40 लाख है। मान लो वर्ष के प्रारम्भ में विनिमय दर 1$ = ₹ 40 है। मान लो वर्ष के अन्त में वास्तविक विक्रय ₹ 48 लाख है तथा उस समय विनिमय दर 1$ = ₹ 50 है, अर्थात भारतीय मुद्रा का मूल्य गिर गया है। अब भारतीय करेंसी के आधार पर भारतीय सहायक कम्पनी का निष्पादन अच्छा है क्योंकि वास्तविक विक्रय, बजट की प्रमापित विक्रय से अधिक है। परन्तु अमेरिकन करेंसी में परिवर्तित करने पर बजटेड विक्रय US $1,00,00 (400,0000 ÷ 40) है तथा वास्तविक विक्रय US $96,000 (48,00,000 ÷ 50)) है। अतः अमेरिकन मुद्रा के आधार पर भारतीय सहायक कम्पनी का निष्पादन अच्छा नहीं है क्योंकि वास्तविक विक्रय बजटेड विक्रय से कम है। यहाँ भारतीय मुद्रा का मूल्य अमेरिकन करेंसी की तुलना में गिरने से भारतीय सहायक कम्पनी के निष्पादन को कम आँका (Under-rating) जा रहा है। दूसरी तरफ यदि भारतीय मुद्रा का मूल्य अमेरिकन करेंसी की तुलना में बढ़ जाए, तो भारतीय सहायक कम्पनी के निष्पादन को अधिक आँका (Over-rated) जाएगा।

ऐसी समस्या का हल निकालने के लिए डोनाल्ड लेसर्ड तथा पीटर लोरेंज ने एक मॉडल विकसित किया है, जिसे 'लेसर्ड-लोरेंज मॉडल' कहते हैं। इस मॉडल में तीन विनिमय दरों का विचार दिया गया है। इन तीन विनिमय दरों के आधार पर सहायक कम्पनी के वित्तीय आँकड़ों को मूल कम्पनी की मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है। ये तीन विनिमय दरें हैं:

(i) **प्रारंभिक दर** (Initial Rate): वर्ष के प्रारम्भ में विनिमय दर।

(ii) **पूर्वानुमानित दर** (Projected Rate): वर्ष के अन्त में पूर्वानुमानित विनिमय दर। इसे आगामी दर (Forward Rate) भी कहते है।

(iii) **अंतिम दर** (Ending Rate): बजट अवधि के अन्त में वास्तविक विनिमय दर।

इन तीनों विनिमय दरों को आधार बना कर बजटेड आँकड़ों व वास्तविक निष्पादन की तुलना में निम्नलिखित संयोग हो सकते है:

वास्तविक निष्पादन व बजट की तुलना के अनुवाद में प्रयोग होने वाली विनिमय दरें

(Rates Used to Translate Actual Performance for Comparison with Budget)

Rates used for Translating Budget	Initial (I)	Projected (P)	Ending (E)
Initial (I)	(II) Budget at Initial Actual at Initial	(IP) Budget at Initial Actual at Projected	(IE) Budget at Initial Actual at Ending
Projected (P)	(PI) Budget at Projected Actual at Initial	PP Budget at Projected Actual at Projected	PE Budget at Projected Actual at Ending
Ending (E)	(EI) Budget at Ending Actual at Initial	EP Budget at Ending Actual at Projected	EE Budget at Ending Actual at Ending

इस सारणी में, II संयोग का यह अभिप्राय है कि बजटिड आँकड़ों तथा वास्तविक निष्पादन दोनों को प्रारंभिक दर पर अनुवाद किया गया है। IP संयोग में बजटिड आँकड़ों को प्रारंभिक दर पर तथा वास्तविक निष्पादन को पूर्वानुमानित दर पर अनुवाद किया गया है तथा IE संयोग में बजटिड आँकड़ों को प्रारंभिक दर पर तथा वास्तविक निष्पादन को अंतिम दर पर अनुवाद किया गया है। इस तरह इन संयोगों में विभिन्न दरों का प्रयोग किया गया है। लेसर्ड व लोरेंज का यह मत है कि इन 9 सम्भावनाओं में से 4 सम्भावनाएँ PI, EI, EP तर्कहीन व असंगत (Illogical and Inconsistent) है। शेष 5 संयोगों (Combinations) को आधार बना कर बजटिड आँकड़ों की वास्तविक आँकड़ों के साथ तुलना की जा सकती है। तीन संयोगों II, PP तथा EE में बजटिड आँकड़ों व वास्तविक निष्पादन के लिए एक ही विनिमय दर को आधार बनाया गया है। शेष दो संयोगों IE तथा PE में बजटिड आँकड़ों व वास्तविक निष्पादन के लिए अलग-अलग विनिमय दरों का प्रयोग किया गया है। अतः इन दोनों संयोगों में भी विनिमय दर परिवर्तन से गलत अंकन हो सकता है।

इस मॉडल में यह सुझाव दिया गया है कि PP संयोग का प्रयोग किया जाना चाहिए अर्थात बजटिड आँकड़ों व वास्तविक आँकड़ों के लिए पूर्वानुमानित विनिमय दरों को आधार बनाया जाना चाहिए।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. **अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में बजटिड तथा वास्तविक निष्पादन के अनुवाद के लिए लेसर्ड-लोरेंज मॉडल का वर्णन करें।**
   Discuss Lessard-Lorange Model for translating budgeted and actual performance in international business.
2. **बहुराष्ट्रीय निगमों के वित्तीय विवरणों को तैयार करने में करेंसी अनुवाद की चालू दर विधि तथा टेम्पोरल विधि का वर्णन करें।**
   Discuss current rate method and temporal method of currency translation while preparing financial statements of multinational corporations.
3. **अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन में लेखांकन विभिन्नताओं में अनुरूपता लाने की क्या आवश्यकता है? विभिन्न देशों की लेखांकन विभिन्नताओं में अनुरूपता कैसे लाई जा सकती है?**
   What is the need of harmonising accounting differences in international accounting? How can accounting differences across nations be harmonised?

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सांस्कृतिक विभिन्नताओं संबंधी चुनौतियाँ
(Cross Cultural Challenges in International Business)

1. परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

सम्कृति किसी भी देश के कार्यगत (Operating) वातावरण का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसका आशय रीति रिवाजों, प्रथाओं, आदतों, प्राथमिकताओं, दृष्टिकोण, मूल्यों, जीवन शैली, समाज में नारी की स्थिति, वृद्धों की स्थिति आदि से है। इसमें समाज के लोगों के व्यवहार ढांचे (Behaviour Pattern) व उनकी सोच को शामिल किया जाता है। सांस्कृतिक घटक ही अन्य कई बातों को, जैसे- शिक्षा में प्रसार, लोगों की सोच के तरीके, जीवनयापन के ढंग आदि को प्रभावित करता है। संस्कृति समाज में सही व गलत व्यवहार तथा सोच को परिभाषित करती है। यह समाज में उत्पादों की छवि का भी निर्माण करती है, जैसे- पश्चिमी देशों में यदि स्त्रियाँ शराब का सेवन करती है, तो समाज में उन्हें बुरी नजर से नहीं देखा जाता। परन्तु पूर्वी देशों में समाज स्त्रियों को शराब के सेवन की अनुमति नहीं देता। सम्कृति की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है:

(i) **ई.बी. टेलर के अनुसार, ''संस्कृति किसी सभ्यता का ऐसा जटिल हिस्सा है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज और मनुष्य द्वारा समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त योग्यताएँ और आदतें शामिल हैं।''** (Culture is a part of civilization which includes knowledge, belief, art, morals, law, customs and other capabilities and habits acquired by a person as a member of society. – **E.B. Taylor**)

(ii) **क्लकहोन के अनुसार, ''संस्कृति से अभिप्राय लोगों की कुल जीवन शैली से है।''** (Culture is the total life-style of people. – **Kluckhohn**)

(iii) **ज़ियर्ट होफ्सटडे के अनुसार, ''संस्कृति दिमाग का ऐसा सॉफ्टवेयर है जो हमारी ऐसी सामाजिक प्रोग्रामिंग करता है जिसके अनुसार हम सोचते हैं, कार्य करते हैं तथा अपने व दूसरों के बारे में समझते हैं।''** (Culture is the software of the mind — the social programming that runs the way we think, act and perceive ourselves and others– **Geert Hofstede**)

(iv) **थिल तथा बोवी के शब्दों में, ''संस्कृति को एक ऐसी पद्धति के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमे व्यवहार संबंधी चिह्नों, विश्वास, दृष्टिकोण, मूल्य, आकांक्षा तथा आदर्श व्यवहार में समानता आती है।''** (Culture may be defined as a system of shared symbols, beliefs, attitudes, values, expectations and norms for behaviour–**Thill and Bovee**)

(v) **लेसिकर के अनुसार, ''संस्कृति एक समूह के सदस्यों द्वारा जीवन जीने का तरीका है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक पीढ़ी अपने सोचने-विचारने की शैली, व्यवहार शैली इत्यादि भाषा एवं अन्य अनुसरणों से आगामी पीढ़ी को सौंपती है।''** (Culture is a way of life of group of people, the stereotyped

patterns of learning behaviour, which are handed down from one generation to the next through means of language and imitation–**Lesikar**)

(vi) **माल्रा ट्रैस के अनुसार, "संस्कृति से अभिप्राय भाषा, मूल्यों, विश्वासों, प्रथाओं, धर्म, कला, शिक्षा, एवं शिष्टता की समस्त प्रणाली से है। इसमें देश की आर्थिक प्रणाली भी सम्मिलित एवं प्रभावित होती है। संस्कृति का विकास पीढ़ी दर पीढ़ी होता है।"** (The word culture means the total system of language, value, beliefs, customs, religions, art, education, and manners. It also includes and is affected by the economic system of the country. Culture develops over generations–**Malra Treece**)

(vii) **मिच्चेल के अनुसार, "संस्कृति का आशय व्यक्तियों व समाज में सीखे गए मूल्यों, विश्वासों, प्रमापों, ज्ञान, नैतिकता, कानून व व्यवहार से है, जिससे यह निर्धारित किया जाता है कि व्यक्ति अपने बारे में व दूसरों के बारे में कैसे सोचेगा व समझेगा एवं अपना कार्य करेगा।"** (Culture is a set of learned core values, beliefs, standards, knowledge, morals, laws and behaviour shared by individuals and societies that determines how an individual acts, feels, views oneself and others. –**Mitchell**)

संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैः

(1) यह समाज में आपसी तालमेल/विचार-विमर्श से उत्पन्न होती है।

(2) सांस्कृतिक-मूल्य एक पीढ़ी (Generation) से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते है।

(3) इन्हें मानव अपने बाल्यकाल से ही सीखना शुरू कर देता है और आजीवन सीखता रहता है।

(4) यह पारिवारिक व्यवस्था और समाज से प्रभावित होती है।

(5) इसमें अल्पकाल में बदलाव नहीं आते।

(6) यह मानवीय मूल्यों, विश्वासों, प्राथमिकताओं, जीवन शैली, आदि को प्रभावित करती है। संस्कृति से मानव यह सीखता है कि क्या सही है और क्या गलत। किस तरह के आचरण की प्रशंसा की जाएगी तथा किस तरह का आचरण दण्डनीय है।

(7) संस्कृति व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। यह किसी मनुष्य के सोचने, कार्य करने व अनुभव करने के तरीके को प्रभावित करती है।

(8) यह शिक्षा से भी प्रभावित होती है। शिक्षा मानवीय आचरण व सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित करती है।

(9) यह बहुत जटिल प्रकृति की है।

संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को समझने से व्यवसाय के विभिन्न पहलुओं में बहुत सहायता मिलती है; जैसे- उत्पाद विकास, मानव संसाधन प्रबंध, व्यावसायिक लेनदेन, संवर्धन कार्यक्रम आदि तभी प्रभावपूर्ण ढंग से चलाए जा सकते हैं यदि संस्कृति के विभिन्न आयामों की भलीभाँति जानकारी है। व्यवसाय लोगों के इर्द-गिर्द ही चलता है। प्रत्येक व्यवसाय व्यक्तियों को नियुक्त करता है, व्यक्तियों से माल क्रय करता है, व्यक्तियों को माल बेचता है, व्यक्तियों द्वारा चलाया जाता है। इसका स्वामित्व भी लोगों के पास ही होता है। घरेलू व्यवसाय में ये लोग एक ही देश से संबंधित होते हैं। परंतु अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में ये लोग विभिन्न देशों व विभिन्न संस्कृतियों से संबंधित होते हैं। जब भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्कृति के लोग एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं, तो सांस्कृतिक-टकराव (Cultural Collisions) होते हैं। संस्कृति के कुछ पहलू तो बहुत ही जटिल होते हैं। जब एक बहुराष्ट्रीय कंपनी किसी ऐसे देश में व्यवसाय करती है, जहाँ का सांस्कृतिक वातावरण बिल्कुल भिन्न है, तो इसे वहा व्यवसाय स्थापित करने में बहुत अधिक मुश्किलें आती है। व्यावसायिक विशेषज्ञ यह स्वीकार करते हैं कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि ये कंपनियाँ सांस्कृतिक चरों का ठीक से विश्लेषण नहीं करतीं, तो इन्हें गंभीर समस्याओं का सामना भी करना पड़ सकता है।

2. अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सांस्कृतिक विभिन्नताओं संबंधी चुनौतियाँ (Cross Cultural Challenges in International Business)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में विभिन्न सांस्कृतिक आयामों का गहन अध्ययन करना अति अनिवार्य है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में स्थान का चयन करने से पहले, उत्पाद नियोजन व विकास से पहले, व्यावसायिक क्रियाओं के निष्पादन के लिए, स्टॉफ का चयन करने से पहले, विज्ञापन कार्यक्रम निर्धारित करने से पहले, संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन अति अनिवार्य है। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण यह अध्ययन बहुत ही जटिल हो जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सांस्कृतिक विभिन्नताओं संबंधी निम्नलिखित मुश्किलें आती हैः

(1) **देशों के आधार पर सांस्कृतिक विश्लेषण में कठिनाई** (Difficulty in Country to Country Cultural Analysis): बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ स्थानीकरण (Location) हेतु देश का चयन करने से पहले विभिन्न देशों की संस्कृति का अध्ययन करती हैं। अर्थात् एक देश को एक संस्कृति मानती हैं। परंतु वास्तविकता तो यह है कि एक देश के अंदर भी सांस्कृतिक विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। जैसे-भारत के अंदर ही कितनी ही उप-संस्कृतियाँ (Sub-cultures) पायी जाती हैं। एक ही देश के अंदर ग्रामीण व शहरी संस्कृति में अत्यधिक अंतर देखने को मिलता है। इसी तरह एक ही देश में विभिन्न धर्मों में सांस्कृतिक विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। दूसरी तरफ दो विभिन्न विकसित देशों की शहरी संस्कृतियाँ एक जैसी हो सकती हैं। अतः एक ही देश में भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ हो सकती है, जबकि दो अलग-अलग देशों में सांस्कृतिक समानताएँ हो सकती हैं। अतः देशों के आधार पर सांस्कृतिक विश्लेषण में बहुत कठिनाई आती है। अर्थात् बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एक देश को एक संस्कृति नहीं मान सकतीं। इससे सांस्कृतिक विश्लेषण में कठिनाई आती है।

(2) **भाषा संबंधी समस्या** (Language Problem): भाषीय विभिन्नता अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में बहुत बड़ी समस्या है। विश्व में 10,000 से भी अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। अफ्रीका महाद्वीप में विश्व में सर्वाधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ तक कि एक भाषा में भी एक ही शब्द की वर्तनी (Spelling) भिन्न-भिन्न होती है। एक ही भाषा में शब्दों का उच्चारण भिन्न-भिन्न होता है। एक ही शब्द का एक ही भाषा में विभिन्न देशों में अलग-अलग अर्थ निकाला जाता है। अमेरिकन व ब्रिटिश अंग्रेजी में वर्तनी में बहुत अंतर हैं। अधिकतर भाषाएँ बाँये से दाँये की ओर पढ़ी जाती हैं जबकि अरबी भाषा दाँये से बाँये की ओर पढ़ी जाती है। एक बहुराष्ट्रीय कंपनी ने अपने वाशिंग पाउडर (Ariel) के विज्ञापन में मैले कपड़ों को विज्ञापन प्रति के बाँयी ओर, बीच में वाशिंग पाउडर के पैकेट का चित्र तथा दाँयी ओर साफ कपड़ों को दिखाया। इस विज्ञापन प्रति में कंपनी यह दर्शाना चाहती थी कि उनके वाशिंग पाउडर से बहुत मैले-कुचैले कपड़ों को धोकर एक दम साफ-सुथरा नए जैसा बनाया जा सकता है। यह विज्ञापन विश्व के बहुत से देशों में बहुत सफल रहा। परंतु अरब देशों में इस विज्ञापन का गलत अर्थ निकालने से यह वाशिंग पाउडर वहा बहुत बुरी तरह से पिट गया। क्योंकि अरब देश में भाषा को दाँये से बाँए पढ़ा जाता है। इससे इस विज्ञापन का यह अर्थ निकाला गया कि इस वाशिंग पाउडर से साफ-सुथरे नए जैसे दिखने वाले कपड़े एक दम मैले-कुचैले हो जाते हैं। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि भाषीय विभिन्नता से अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा भाषीय विभिन्नता के कारण ब्रांडिंग व विपणन संचार में भी बहुत मुश्किल आती है। विभिन्न भाषाओं में एक ही ब्रांड का भिन्न-भिन्न अर्थ निकाला जाता है।

(3) **अशाब्दिक संचार में मुश्किल** (Difficulty in Non-Verbal Communication): विभिन्न देशों में अशाब्दिक संचार में अंतर होने से अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में बहुत मुश्किलें आती हैं। दैहिक भाषा (Body Language) का विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार का अर्थ निकाला जाता है। चेहरे की किसी एक अभिव्यक्ति, भंगीमा (Gesture) का किसी एक संस्कृति में तो अर्थ सकारात्मक रूप से निकाला जाता है, जबकि किसी अन्य संस्कृति में इसका अर्थ नकारात्मक रूप से निकाला जाता है; जैसे-सिर को बाँयी से दाँयी दिशा में घुमाने का अमेरिका में अर्थ 'मनाही' (Disapproval) या 'न' (No) कहने से है, जबकि बुल्गारिया, मलेशिया में इसका अर्थ 'मंजूरी' (Approval) या 'हाँ' (Yes) करने से है। इसी तरह अंगूठा ऊपर तथा चार अंगुलियों को फोल्ड (Fold) करने का अर्थ विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है।

अमेरिका में इसका अर्थ मंजूरी (Approval) से है; ईरान में इसका अर्थ 'असभ्य' (Rude) है। इसी तरह कंधे पर हाथ थपथपाने का कुछ देशों में अर्थ सहानुभूति दिखाना है जबकि कुछ अन्य देशों में इसका अर्थ असभ्यता या क्रोध दर्शाने से है।

(4) **शिष्टाचार में अंतर** (Difference in Etiquettes): विभिन्न संस्कृतियों में शिष्टाचार के तरीके में बहुत अंतर है। दूसरों का अभिवादन करने, दुःख, सहानुभूति, खुशी, सम्मान, भोजन-मेज पर सभ्यता, सभाओं में शिष्टाचार आदि प्रकट करने में विभिन्न संस्कृतियों में बहुत अंतर है। किसी एक संस्कृति में जिसे सदाचार मानते है, उसे अन्य संस्कृति में असभ्यता या रूखापन मानते है। यह निम्न चर्चा से स्पष्ट है:

(i) **हँसी** (Laughter): हँसी का विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से अर्थ निकाला जाता है; जैसे- कुछ संस्कृतियों में हँसी का तात्पर्य खुशी प्रकट करना है, जबकि कुछ अन्य सभ्यताओं में इसका आशय सामने वाले व्यक्ति की खिल्ली उड़ाने से है, जिससे उस व्यक्ति को अपमान अनुभव होता है। अतः इस संस्कृति में हँसने का नकारात्मक अर्थ निकाला जाता है।

(ii) **हाथ मिलाना** (Handshake): कुछ संस्कृतियों में हाथ मिलाना अभिवादन का प्रतीक है। प्रायः इन संस्कृतियों में व्यावसायिक उच्च अधिकारी व्यवसाय संबंधी सभाओं में एक-दूसरे को मिलने पर अभिवादन हेतु हाथ मिलाते है, चाहे वह उच्च अधिकारी स्त्री हो या पुरुष। परंतु मुस्लिम देशों में यदि एक पुरुष उच्च अधिकारी स्त्री उच्च अधिकारी का अभिवादन करने के लिए हाथ मिलाता है, तो इसे बहुत ही गलत नजर से देखा जाता है, क्योंकि मुस्लिम देशों में स्त्रियों को पर्दे में रखने की प्रथा है। उनमे पुरुष द्वारा पर-स्त्री को छूना एक सामाजिक अपराध माना जाता है। जिन देशों में हाथ मिला कर अभिवादन किया जाता है वहां भी विभिन्न देशों में हाथ मिलाने के तरीके में बहुत अंतर पाया जाता है; जैसे-स्पेन में हाथ मिलाते समय उसे कम से कम पाँच-सात बार दबाया जाता है। यदि हाथ एक बार दबाया जाता है तो यह अस्वीकृति (Rejection) का सूचक है। फ्रांस में हाथ मिलाते समय उसे एक ही बार दबाया जाता है। विभिन्न संस्कृतियों में मेहमान का स्वागत करने के ढंग भी भिन्न-भिन्न है।

(iii) **उचित दूरी** (Appropriate Distance): शिष्टाचार का अन्य पहलू व्यावसायिक चर्चाओं, सभाओं में उचित दूरी बनाकर रखना है; जैसे- अमेरिका में व्यावसायिक सभाओं में भाग लेने वाले अधिकारी एक-दूसरे से 5 से 8 फुट की दूरी पर बैठ कर चर्चा करते है। यदि यह दूरी इससे कम या ज्यादा है, तो इसे असभ्यता माना जाता है। अतः यदि अमेरिकन उच्च अधिकारी किसी बिज़नेस मीटिंग (Business Meeting) में अफ्रीकन उच्च अधिकारी से इतनी अधिक दूरी पर बैठता है तो हो सकता है कि अफ्रीकन अधिकारी को यह बहुत बुरा लगे, क्योंकि वहां अधिकारी एक-दूसरे के पास बैठ कर ही बातचीत करते है।

(iv) **समय के बारे में अवबोध** (Perception of Time and Punctuality): समय के बारे में अवबोध को भी विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से समझा जाता है। इससे विभिन्न संस्कृति के लोगों में उलझन (Confusion) हो सकती है; जैसे-अमेरिकन उच्च अधिकारी बिजनेस मीटिंग में निर्धारित समय से थोड़ा पहले आना शिष्टाचार मानते है। रात्रि-भोज के आमंत्रण में कुछ मिनट देरी से पहुँचने का रिवाज़ है, जबकि कॉकटेल (Cocktail) पार्टियों में निर्धारित समय से काफी देर से जाने का रिवाज़ है। परंतु अन्य संस्कृतियों में व्यावसायिक शिष्टाचार (Business Etiquettes) में ऐसा करने की प्रथा नहीं है। अतः यदि गैर-अमेरिकन उच्च-अधिकारी अमेरिकन उच्च अधिकारी के साथ बिज़नेस मीटिंग पर कुछ देर से पहुँचता है, तो अमेरिकन अधिकारी को अत्यधिक बुरा लगेगा।

(v) **गर्व के अर्थ में अंतर** (Difference in the meaning of Prestige): विभिन्न संस्कृतियों में गर्व के अर्थ में बहुत अंतर है। कुछ संस्कृतियों में निजी कार्यों को स्वयं करना गर्व का विषय है, जबकि अन्य संस्कृतियों में कुछ निजी कार्य स्वयं करने से मान सम्मान व गर्व में गिरावट आती है; जैसे-अमेरिकन संस्कृति में अपने जूते, बाथरूम, शौचालय को स्वयं साफ करना, अधिकारी द्वारा अपने कमरे का दरवाजा स्वयं खोलना, चाय, कॉफी पीने के बाद अपने जूठे बर्तनों को स्वयं उठाना अच्छा मानते है। जबकि भारत जैसी कुछ अन्य संस्कृतियों में इस तरह के निजी

कार्य स्वयं करने का अर्थ यह है कि आपका जीवन-स्तर ऊँचा नहीं है, क्योंकि वहां ये काम नौकरों, चपरासियों से करवाने की प्रथा है। अतः जब एक गैर-अमेरिकन व्यावसायिक अधिकारी अमेरिकन अधिकारी को बिजनेस मीटिंग में अपनी कॉफी/चाय स्वयं बनाते हुए या पीने के बाद, जूठे बर्तन संभालते हुए देखता है, तो उसे अमेरिकन अधिकारी का यह व्यवहार यह संदेश देगा कि इसका जीवन-स्तर निम्न है। इसी तरह, विभिन्न संस्कृतियों में नीति-मूल्य व्यवस्था (Value-System), किसी कार्य के प्रति सम्मान, स्तर व दृष्टिकोण में अत्यधिक अंतर पाए जाते है, जैसे कुछ संस्कृतियों में उत्पादन कार्य में संलग्न उच्च अधिकारियों को प्रबंध कार्य में संलग्न उच्च अधिकारियों से अधिक श्रेष्ठ माना जाता है, जबकि कुछ अन्य संस्कृतियों में प्रबंधन उच्च अधिकारियों को उत्पादन उच्च अधिकारियों से ऊपर का दर्जा दिया जाता है।

(5) **व्यवसाय को प्रभावित करने वाली व्यवहार प्रथाओं में अंतर** (Difference in Behavioural Practices Affecting Business): विभिन्न संस्कृतियों में व्यवहार करने के ढंग में अत्यधिक भिन्नता पाई जाती है। किसी व्यवसाय, पेशे को विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न स्तर दिए जाते है। किसी एक व्यवहार को एक संस्कृति में अच्छा माना जाता है, जबकि किसी अन्य संस्कृति में उसी व्यवहार को बुरा माना जाता है। व्यवसाय को प्रभावित करने वाले व्यवहारों में अंतर की चर्चा निम्नलिखित है:

(i) **मोनोक्रोनिक बनाम पोलीक्रोनिक संस्कृति** (Monochronic vs. Polychronic Culture): कोई व्यक्ति किसी एक समय में साथ-साथ कितने कार्य करता है, उसके आधार पर संस्कृति मोनोक्रोनिक या पोलीक्रोनिक हो सकती है। मोनोक्रोनिक संस्कृति वाले व्यक्ति कार्यों को एक सुव्यवस्थित क्रम (Sequence) में करते है, जैसे वे पहले अपने एक कार्य को समाप्त करते है, जब वह कार्य समाप्त हो जाता है, तब वे दूसरे कार्य को आरंभ करते है, जबकि पोलीक्रोनिक संस्कृति के लोग एक साथ कई काम (Multi-tasking) इकट्ठे शुरू कर लेते है। यदि रिटेल स्टोर पर कई ग्राहक इकट्ठे आ जाते है तो मोनोक्रोनिक संस्कृति वाले लोग पहले एक ग्राहक से बातचीत करेंगे, उसे सामान देंगे, जब उससे व्यवहार (Transaction) समाप्त हो जाएगा, तब उसके बाद वे अगले ग्राहक से व्यवहार प्रारंभ करते है। वे एक समय पर एक ही ग्राहक को अटेंड (Attend) करते है, तथा अन्य ग्राहकों को इंतजार करना पड़ता है। दूसरी तरफ पोलीक्रोनिक संस्कृति के लोग एक साथ कई ग्राहकों से व्यवहार करते है। उत्तरी यूरोप के लोग मोनोक्रोनिक (Mono-tasking) दृष्टिकोण के है। जबकि दक्षिणी यूरोप के लोग पोलीक्रोनिक (Multi-tasking) दृष्टिकोण के है। यदि किसी दशा में इन दोनों संस्कृतियों के लोग व्यवसाय के कारण एक-दूसरे के सम्पर्क में आते है, तो उन्हें एक-दूसरे के बारे में गलतफहमी हो सकती है; जैसे- दक्षिणी यूरोपियन व्यक्ति को उत्तरी यूरोपियन व्यक्ति का व्यवहार बुरा लगेगा क्योंकि उत्तरी यूरोपियन व्यक्ति उसको इंतजार करवाता है तथा उसे विभाजित एकाग्रता (Divided Attention) नहीं देता है। इसी तरह उत्तरी यूरोपियन व्यक्ति को दक्षिणी यूरोपियन का व्यवहार बुरा लगेगा क्योंकि वह बीच-बीच में उसे छोड़ कर अन्य कामों की ओर भी ध्यान देता है। उसे लगता है कि दक्षिणी यूरोपियन व्यक्ति उसे अविभाजित एकाग्रता (Undivided Attention) नहीं दे रहा; अतः वह उसके साथ व्यवसाय करने में अधिक इच्छुक नहीं है।

(ii) **उच्च संदर्भ संस्कृति बनाम निम्न संदर्भ संस्कृति** (High Context Culture vs. Low Context Culture): वैश्विक व्यवसाय में व्यावसायिक व्यवहार करने से पहले यह जान लेना चाहिए कि अन्य व्यावसायिक साझेदार उच्च संदर्भ संस्कृति से है या निम्न संदर्भ संस्कृति से। निम्न संदर्भ संस्कृति के व्यक्ति केवल तथ्यों व आँकड़ों पर विश्वास करते है। वे घुमा-फिरा कर बात नहीं करते। वे सीधे मतलब की बात ही करते है। वे इधर उधर की बेफिजूल बातों में समय न व्यर्थ करके स्पष्ट शब्दों में काम की ही बात करते है। दूसरी तरफ, उच्च संदर्भ संस्कृति के व्यक्ति केवल तथ्यों व आकड़ों पर ही विश्वास नहीं करते। वे निर्णय लेने से पहले सामने वाले व्यक्ति से बातचीत करके आँकड़ों के अलावा अन्य जानकारी भी एकत्रित करते है, जैसे- उस व्यक्ति की सोच, दृष्टिकोण, नीति-मूल्य-व्यवस्था (Value System), सम्मान, समाज में छवि आदि। वे जल्दी निर्णय न लेकर इधर-उधर से अतिरिक्त जानकारी एकत्रित करने के बाद सहज भाव से अधिक समय में अंतिम निर्णय लेते है। यदि कोई निम्न संदर्भ संस्कृति वाला व्यक्ति उच्च संदर्भ वाले व्यक्ति से व्यवसाय करना चाहता है तो निम्न संदर्भ वाले व्यक्ति को

उच्च सदर्भ वाले व्यक्ति का व्यवहार बुरा लगेगा। उसे लगेगा कि उच्च संदर्भ वाला व्यक्ति अपने कार्य मे अकुशल
है, क्योंकि वह निर्णय लेने मे देर लगाता है। दूसरी तरफ उच्च सदर्भ वाले व्यक्ति को निम्न सदर्भ वाले व्यक्ति का
व्यवहार पसद नही आएगा उसे यह लगेगा कि निम्न सदर्भ वाला व्यक्ति बहुत उतावला है तथा वह जल्दी-से-जल्दी
काम हथियाना चाहता है। जापानी, अरब तथा लैटिन अमेरिकी सस्कृतियाँ उच्च सदर्भ संस्कृतियां है, जबकि जर्मन,
अमेरीकी सस्कृतियाँ निम्न सदर्भ सस्कृति है।

(iii) **अनिश्चितता से दूर भागना/जोखिम सहन व्यवहार** (Uncertainty Avoidance/Risk Taking
Behaviour): कुछ सस्कृतियो में लोग जोखिम से बहुत दूर भागते है, वे स्पष्ट रूप से परिभाषित व निर्धारित
शर्तों व नियमो के अनुसार ही काम करना पसद करते है। ऐसी सस्कृति के कर्मचारी वर्तमान नियोक्ता के साथ
दीर्घकाल तक काम करना पसद करते है, यदि उन्हें यह आश्वासन है कि यह वेतनमान उन्हें बिना किसी
अनिश्चितता के लबे समय तक मिलता रहेगा। यदि कोई अन्य नियोक्ता उन्हें अधिक वेतन देकर अपनी ओर
आकर्षित भी करेगा, तो वे वहाँ नही जाएँगे क्योंकि वहाँ उन्हे अनिश्चितता अनुभव होती है। यदि किसी देश के
कर्मचारी ऐसी सस्कृति वाले है, तो इस देश में बहुराष्ट्रीय कपनी को अपने कर्मचारियों के पारिश्रमिक का अधिक
अश स्थायी (Fixed) वेतनमान के रूप में देना चाहिए। उनकी कार्य सबधी पद्धतियाँ पूर्व निर्धारित होनी चाहिए। वे
नियमों व पद्धतियों में अधिक परिवर्तनों को पसद नहीं करते। दूसरी तरफ, जिन संस्कृतियों में कर्मचारी जोखिम से
घबराते नही है, वहाँ लोचशील नियम, कार्य शैली, कार्य पद्धतिया हो सकती है। बहुराष्ट्रीय कपनियो को अपने
कर्मचारियों के इस सास्कृतिक आयाम का गहराई से अध्ययन कर लेना चाहिए।

(iv) **व्यक्तिवाद बनाम समूहवाद** (Individualism vs. Collectivism): कुछ संस्कृतियों मे लोग व्यक्तिवादी
प्रकृति के होते है, जबकि कुछ अन्य सस्कृतियो मे लोग समूहवादी प्रकृति के होते है। व्यक्तिवादी लोग अपनी
योग्यताओं मे सुधार के लिए, लाभ अर्जन के लिए व अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठन पर अधिक
निर्भर नहीं होते। दूसरी तरफ, समूहवादी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठन पर निर्भर करते है।
वे सगठन में अच्छी कार्य दशाओं को प्राथमिकता देते है। सगठन से योग्यता विकास के लिए उचित प्रशिक्षण की
उम्मीद करते है। व्यक्तिवादी लोग स्वय ही अपनी आवश्यकताओ को पूरा कर लेते है। वे संगठन से अधिक नही
जुड़ते। समूहवादी प्रकृति के कर्मचारी स्वयं को समूह/सगठन का हिस्सा मानते है। जो लोग व्यक्तिवादी होते है, वे
आत्म-प्राप्ति (Self-actualisation) को अधिक महत्व देते है। उन्हें यदि उच्च आत्म-सम्मान संबंधित
प्रोत्साहन दिए जाते है, तो वे बहुत अभिप्रेरित होते है। चुनौतीपूर्ण कार्य करने से उन्हें संतुष्टि मिलती है। दूसरी
तरफ, समूहवादी व्यक्ति कार्य सुरक्षा, कार्य स्थल पर अच्छा भौतिक वातावरण तथा अच्छी कार्य दशाओं से अधिक
अभिप्रेरित होते है। एक अध्ययन के अनुसार, पश्चिमी देशों के लोग व्यक्तिवादी हैं, जबकि पूर्वी देशों के लोग
समूहवादी है। एक अन्य अध्ययन के अनुसार, जापान में कर्मचारी व्यक्तिवादी है, परंतु अमेरिका, एशिया, इंग्लैंड
में कर्मचारी समूहवादी है। अभिप्रेरण कार्यक्रम डिजाइन करने से पहले वैश्विक कंपनी को कर्मचारियों के इस
सास्कृतिक आयाम का अध्ययन कर लेना चाहिए। इसके अलावा जब व्यक्तिवादी लोग समूहवादी लोगों के संपर्क में
आते है तब उन्हें एक-दूसरे को समझने में कठिनाई आती है। अतः वैश्विक कंपनी को मेज़बान देश के व्यावसायिक
अधिकारियों के इस सास्कृतिक आयाम को समझ लेना चाहिए।

(v) **भावनाहीन बनाम भावनात्मक संस्कृति** (Neutral vs. Emotional Culture): भावनाहीन संस्कृति में
भावनाओं को खुले रूप से व्यक्त नहीं किया जाता। भावनाओं पर नियंत्रण रखा जाता है। ऐसे व्यक्ति खुशी व गम
में शात ही रहते है। परंतु भावनात्मक संस्कृति के व्यक्ति भावनाओं को खुलेपन से व्यक्त करते है, वे व्यक्ति
मुस्कुराते है, हँसते है, रोते हैं, नाराज होते है, एक-दूसरे का अभिवादन करते है। एक अध्ययन के अनुसार यूरोपियन
देशों व जापान के व्यक्ति भावनाहीन सस्कृति के होते है जबकि एशियन देशों के व्यक्ति भावनात्मक संस्कृति के
होते है। जब इन दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के व्यक्ति व्यवसाय के संदर्भ में एक-दूसरे के सम्पर्क में आते है, तो
उन्हें एक-दूसरे के व्यवहार को समझना चाहिए। भावनात्मक व्यक्तियों को यह नहीं सोचना चाहिए कि भावनाहीन
व्यक्ति उनसे व्यवसाय करने में इच्छुक नहीं है या घमंडी है। इसी तरह भावनाहीन व्यक्तियों को भावनात्मक

व्यक्तियों से व्यवसाय सबधी व्यवहार करते हुए अच्छी प्रतिक्रिया करनी चाहिए तथा उनकी भावनाओं का मान
करना चाहिए।

(vi) **पुरुषत्व बनाम स्त्रीत्व संस्कृति** (Masculine vs. Feminine Culture): पुरुषत्व प्रधान सस्कृति वाले
व्यक्ति भौतिकवादी, गुस्सीले, अपनी बात मनवाने वाले (Assertive) होते है, जबकि स्त्रीत्व प्रधान सस्कृति मे
लोग भौतिकवादी न होकर आदर्शवादी होते है। वे उच्च क्वालिटी जीवनशैली को प्राथमिकता देते है। ऐसे व्यक्ति
भावनाओ का मान करते है, परस्पर सबधों को महत्व देते है, दूसरों की भावनाओं को ठेस नही पहुँचाते। एक
अध्ययन के अनुसार, जापान, मैक्सिको, जर्मनी, अमेरिका, आस्ट्रेलिया के व्यक्ति पुरुषत्व सस्कृति वाले है,
जबकि स्वीडन, नीदरलैंड, डेनमार्क, थाइलैंड के व्यक्ति स्त्रीत्व सस्कृति वाले है। भारत, अर्जेंटाइना, कनाडा के
व्यक्ति मध्यम पुरुषत्व (Moderate Masculinity) सस्कृति वाले व्यक्ति है। पुरुषत्व प्रकृति की अधिकता
वाले व्यवसायी बहुत प्रतिस्पर्धी (Highly Competitive) व कार्यकुशल होते है। ऐसी सस्कृति व्यवसाय के
फैलाव व औद्योगिक विकास के लिये बहुत उपयुक्त है। बहुराष्ट्रीय कपनियाँ ऐसी सस्कृति वाले देशों में अपनी
शाखाएं खोलना पसद करती है। दूसरी तरफ, स्त्रीत्व सस्कृति में व्यावसायिक व्यवहारों में परस्पर सबधों को बहुत
महत्त्व दिया जाता है तथा व्यावसायिक साझेदारों को दोस्त ही समझा जाता है। उनमें लिखित अनुबध के स्थान पर
मौखिक अनुबध ही किए जाते है। ऐसी सस्कृति के लोग बहुत भाग-दौड़ करने वाले नही होते

(vii) **भाग्यवाद में विश्वास** (Belief in Fatalism): कुछ सस्कृतियो मे लोग भाग्यवादी होते है, वे भाग्य में बहुत
विश्वास करते है। उनका यह मानना है कि जीवन में प्रत्येक घटना भाग्य के अनुसार होती है। वे अधिक परिश्रमी नही
होते तथा जोखिम से दूर भागते है; वे उत्तरदायित्व से बचते है। वे प्रयासों व परिणामों (work and reward) के
मध्य संबंध को नही मानते। वे भविष्य के लिए अधिक नियोजन नही करते। वे जोखिमपूर्ण व्यवसाय नही करते।
दूसरी तरफ, भाग्य में कम विश्वास करने वाले लोग परिश्रम व दृढ सकल्प मे विश्वास करते है। वे जोखिम को
चुनौती समझ कर स्वीकार करते है, उत्तरदायित्व से बचते नही है। जिन देशों में लोग अधिक भाग्यवादी है, वहा
बीमा संबंधी व्यवसाय अधिक नहीं चलता क्योंकि लोग भविष्य-नियोजन (Future-planning) नही करते। एक
अध्ययन के अनुसार एशियाई देशों के लोग अधिक भाग्यवादी है। जबकि पश्चिमी देशों के लोग कम भाग्यवादी है।
एक अन्य अध्ययन के अनुसार स्विट्ज़रलैंड, नीदरलैंड, कनाडा के लोग अधिक भविष्योन्मुखी
(Future-oriented) हैं, जबकि एशिया व पोलैंड के व्यक्ति वर्तमान मे जीने (Present-oriented) है।

(viii) **सार्वभौमिकवाद बनाम विशेषवाद** (Universalism vs. Particularism): सार्वभौमिकवाद एक ऐसा
विश्वास है जिसका मानना है कि कोई विचार, सोच, पद्धति, व्यवहार बिना किसी परिवर्तन के सब जगह लागू होता
है। विशेषवाद एक ऐसा विश्वास है जिसका मानना है कि कोई विचार, सोच, व्यवहार, दृष्टिकोण सभी स्थानों मे
लागू नहीं होता। इसे परिस्थितियों के अनुसार बदलना पड़ता है। किसी नियम, पद्धति, कार्यशैली को किस तरह से
लागू करना है, यह वातावरणीय तत्वों पर निर्भर करता है। सार्वभौमिकवाद विचारधारा की अधिकता होने पर नियमों
व प्रावधानों पर अधिक ज़ोर दिया जाता है, जबकि सबधों को कम महत्व दिया जाता है। ऐसे दृष्टिकोण मे
व्यावसायिक अनुबंधों मे संशोधन सरलता से नही किए जा सकते। इन अनुबधों की शर्तों का सख्ती से पालन किया
जाता है। दूसरी तरफ, विशेषवाद दृष्टिकोण का आधिक्य होने पर वैधानिक अनुबधों मे परिस्थितियों के अनुसार
संशोधन किए जाते है। जब विशेषवाद प्रधान संस्कृति वाले व्यावसायिक अधिकारी सार्वभौमिकवाद प्रधान सस्कृति
वाले व्यावसायिक साझेदारों के संपर्क में आते है, तो उन्हें मानसिक रूप से इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि
व्यावसायिक अनुबधों की शर्तों का बहुत सख्ती से पालन किया जाएगा, उनमें सशोधन बहुत मुश्किल है।

(ix) **अधीनस्थों के साथ शक्तियों की साझेदारी** (Power Sharing with Subordinates): अधिकारियों द्वारा
अधीनस्थों के साथ शक्तियों की साझेदारी को **शक्ति-दूरी** (Power-distance) कहते है। कुछ सस्कृतियों में
अधीनस्थों के साथ शक्तियों की साझेदारी नही की जाती। नीति-निर्माण व निर्णय लेने की शक्तियाँ उच्च
अधिकारियों तक केन्द्रित रहती है। इसमे **लंबवत् संगठनात्मक ढांचे** (Vertical Organisational

Structure) को अपनाया जाता है। एक अध्ययन के अनुसार मैक्सिको, इंडोनेशिया, ब्राज़ील तथा कुछ एशियाई देशों में शक्ति दूरी अधिक है, अर्थात् शक्तियों की साझेदारी नहीं होती। ऐसे देशों में अधीनस्थ केवल अन्य अधीनस्थों के साथ अर्थात् समानान्तर स्तर पर (Horizontal level) पर शक्तियों की साझेदारी करते हैं; लंबवत् स्तर पर शक्तियों की साझेदारी नहीं होती। दूसरी तरफ, कुछ देशों; जैसे- इजराइल, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, अमेरिका, स्वीडन, जर्मनी में शक्ति-दूरी कम है, अर्थात् अधिकारी अधीनस्थों के साथ शक्तियाँ साझी करते हैं।

(x) **उपलब्धि बनाम एसक्रिप्शन** (Achievement vs. Ascription): उपलब्धि प्रधान संस्कृति में उस व्यक्ति को उच्च दर्जा दिया जाता है जिसकी उपलब्धियाँ अधिक है। यदि कोई व्यक्ति अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक निभाता है तो उसे अच्छी पहचान दी जाती है। एसक्रिप्शन संस्कृति वाले समाज में किसी व्यक्ति को समाज में दर्जा उसके सामाजिक संबंधों, आयु, जाति, लिंग, पारिवारिक पृष्ठभूमि (Family Background) आदि के आधार पर दिया जाता है। जब उपलब्धि प्रधान संस्कृति (मान लो ग्रुप A) के अधिकारी एसक्रिप्शन संस्कृति (मान लो ग्रुप B) के किसी अधिकारी से बिज़नेस मीटिंग (Business Meetings) करते है तो ग्रुप A को मीटिंग की सफलता के लिए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई वरिष्ठ उच्च अधिकारी मीटिंग में कंपनी (A) के प्रतिनिधि के रूप में अवश्य हो ताकि यह प्रतिनिधि मीटिंग में लिए जाने वाले निर्णय को दूसरे पक्ष (B) से मनवा सके। दूसरी तरफ, ग्रुप B को मीटिंग की सफलता के लिए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ग्रुप B से प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई तकनीकी विशेषज्ञ, अच्छे ज्ञान वाला अधिकारी प्रतिनिधि टीम में हो ताकि वह मीटिंग में लिए जाने वाले निर्णय को मनवाने के लिए दूसरे पक्ष (A) को राजी करवा सके।

(6) **धर्म एवं वैश्विक व्यवसाय** (Religion and Global Business): विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन किया जाता है। लगभग प्रत्येक देश में विभिन्न धर्मों के लोग रहते है परंतु इसके बावजूद भी प्रत्येक देश में किसी एक धर्म के अधिक अनुयायी होते हैं। यहाँ तक कि व्यावसायिक मामले भी धर्म द्वारा प्रभावित होते हैं। प्रत्येक धर्म की अपनी कुछ विशेष विचारधाराएँ तथा विश्वास होते है, जो व्यवसाय के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करते है; जैसे-कुछ विशेष उत्पादों के प्रयोग की मनाही; किसी विशेष कार्य को एक विशेष समय पर ही करना या न करना; जैसे - इस्लाम धर्म में पैसा उधार देने का व्यवसाय (Money Lending Business) करने पर मनाही है। इस्लाम की पवित्र किताब कुरान में ब्याज लेने व भुगतान करने की मनाही है। इस्लामिक बैंक व वित्तीय संस्थाएँ जमाकर्ताओं को पूर्व निर्धारित दर पर ब्याज नहीं देतीं तथा ऋणों पर नियमित रूप से ब्याज भी नहीं लेतीं। इसके स्थान पर जमाकर्ताओं को लाभों में हिस्सा दिया जाता है। जैन धर्म में चमड़े से संबंधित व्यवसाय व मांसाहारी भोजन से संबंधित व्यवसाय में संलग्न होने की मनाही है। इसी तरह विभिन्न धर्मों में भिन्न-भिन्न रंगों के अर्थ में विभिन्नता है; जैसे - इस्लाम धर्म में हरा रंग शुभ माना जाता है, ईसाई लोग सफेद रंग को अच्छा मानते हैं। वहाँ यह रंग खुशी का प्रतीक है। जबकि हिंदू धर्म में सफेद रंग दुःख, शोक का प्रतीक है। हिंदू धर्म में व्यवसाय से संबंधित मुख्य निर्णय ज्योतिषी व वास्तुशास्त्र के मार्गदर्शन में लिए जाते है; जैसे-व्यवसाय किस दिन शुरू करना है, किस स्थान पर उपक्रम स्थापित किया जाना चाहिए, व्यावसायिक इकाई का नाम, ब्रांड का नाम, उत्पाद-सम्मिश्र आदि, यह सब वास्तुशास्त्र व ज्योतिषियों द्वारा ग्रहों व सितारों की दशा के आधार पर पूर्वानुमान तकनीकों (Forecasting Techniques) से निर्धारित किया जाता है। व्यवसाय को प्रारंभ करने के लिए कुछ विशेष दिनों को शुभ जबकि कुछ विशेष दिनों को अशुभ माना जाता है; जैसे-शुक्रवार को इस्लाम धर्म के अनुयायी मुख्य रूप से नमाज़ पढ़ते है व अन्य धार्मिक कार्य करते है, व इस दिन को शुभ माना जाता है। इस दिन व्यवसाय का अवकाश (Holiday) होता है। धर्म को लेकर कई बार साम्प्रदायिक दंगे-फसाद भी हो जाते है, जिससे व्यवसाय के कार्यों में रुकावट आ जाती है। व्यवसाय का उपभोक्ताओं, ग्राहकों व पूर्तिकर्ताओं से संबंध टूट जाता है। कुछ धर्मों में मांसाहारी भोजन के सेवन की मनाही है। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जो खाद्य-उत्पादों के व्यवसाय में संलग्न है, उन्हें अपने खाद्य उत्पादों को वैसे ही समायोजित करना पड़ता है; जैसे-मैकडोनल्ड भारत में मुख्य तौर पर शाकाहारी भोजन ही बेचता है, मांसाहारी भोजन में भी यहाँ गाय व सुअर के मांस वाले खाद्य उत्पाद नहीं बेचे जाते, क्योंकि भारत में हिंदुओं में गाय और मुसलमानों में सुअर के मांस का सेवन वर्जित है तथा भारत में हिंदू व मुसलमानों की अधिकता है।

संक्षेप में, सांस्कृतिक आयाम मानवीय व्यवहार को प्रभावित करते हैं। सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण विभिन्न देशों में मानवीय व्यवहार में अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओं, ग्राहकों, अंशधारियों तथा विपणन मध्यस्थों के व्यवहार में भिन्नता आती है। संस्कृति व्यवसाय के विभिन्न अन्य पहलुओं व निर्णयों को भी प्रभावित करती है, जैसे-उत्पाद संबंधी निर्णय, संगठनात्मक ढांचे संबंधित निर्णय, वित्तीय निर्णय, मानवीय संसाधन प्रबंध संबंधी निर्णय, ब्रांडिंग, पैकेजिंग व विज्ञापन संबंधी निर्णय, व्यवसाय के विस्तार हेतु स्थान का चयन, व्यावसायिक क्रियाओं को नियोजन व प्रबंधन करने संबंधी निर्णय भी संस्कृति से प्रभावित होते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की सफलता के लिए विभिन्न सांस्कृतिक आयामों का गहन अध्ययन अति अनिवार्य है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को व्यवसाय की सफलता के लिए विभिन्न मेज़बान देशों की संस्कृति को समझ लेना चाहिए।

3. अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक विभिन्नताओं संबंधी चुनौतियों के समाधान हेतु दृष्टिकोण (Approaches for Dealing with Global Cultural Diversities)

विभिन्न मेज़बान देशों की सांस्कृतिक विभिन्नताओं को समझने के बाद बहुराष्ट्रीय कंपनियों को इन विभिन्नताओं के अनुरूप व्यावसायिक नीतियाँ व रणनीतियाँ बनानी होती है, इसके लिए बहुराष्ट्रीय कंपनी निम्न में से कोई भी दृष्टिकोण अपना सकती है।

(1) **पोलीसेन्ट्रिक/क्षेत्रीय-केन्द्रित दृष्टिकोण** (Polycentric/Regioncentric Approach): इस दृष्टिकोण में मूल कंपनी अपनी विभिन्न नीतियों, जैसे-उत्पाद डिज़ाइनिंग, मानवीय संसाधन प्रबंध, विज्ञापन आदि को मेज़बान देश के स्थानीय वातावरण के अनुसार संशोधित करती है। इसमें स्थानीय उपभोक्ता, कर्मचारी, पूर्तिकर्ता, इत्यादि बहुराष्ट्रीय कंपनी के उत्पादों व कार्यशैली को सरलता से स्वीकार कर लेते हैं।

(2) **एथनोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण** (Ethnocentric Approach): इस दृष्टिकोण में बहुराष्ट्रीय कंपनी अपने उत्पादों, नीतियों व रणनीतियों को स्थानीय सांस्कृतिक वातावरणीय आयामों के अनुसार संशोधित नहीं करती, बल्कि मूल देश में अपनाए गए उत्पादों, नीतियों, रणनीतियों को ही मेज़बान देश में लागू किया जाता है। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि मूल देश की संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है, तथा मूल देश की संस्कृति के आधार पर बनायी गयी नीतियाँ, रणनीतियाँ, कार्यशैली, उत्पाद आदि विभिन्न मेज़बान देशों में भी सुचारू रूप से चलेंगी। इस दृष्टिकोण में मूल देश के कर्मचारियों को मेज़बान देशों में एक्सपेट्रिएट्स (Expatriates) के रूप में भेजना बहुत प्रभावकारी होता है, क्योंकि वे अपने मूल कंपनी की कार्यशैली व नीतियों को भली-भाँति समझते हैं।

(3) **जियोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण** (Geocentric Approach): यह दृष्टिकोण पोलीसेन्ट्रिक व एथनोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण का सम्मिश्र है। इसमें नवाचार व प्रबंध के सर्वश्रेष्ठ तरीकों को बढ़ावा दिया जाता है। यह मूल देश की संस्कृति व मेज़बान देश की संस्कृति के मध्य संतुलन स्थापित करता है। इसमें दोनों तरह के सांस्कृतिक आयामों को ध्यान में रखते हुए ऐसी नीतियाँ अपनायी जाती हैं, जो मूल देश व मेज़बान देश में सर्वश्रेष्ठ ढंग से चल सकें।

3.1 सांस्कृतिक विभिन्नताओं के समाधान में सावधानियाँ (Precautions in Handling Cultural Diversities)

विभिन्न मेज़बान देशों में व्यावसायिक क्रियाएँ करते समय बहुराष्ट्रीय कंपनियों को निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए:

(1) **संचार में सावधानी** (Caution in Communication): वैश्विक कंपनी को लिखित, मौखिक तथा दैहिक भाषा में अत्यधिक सावधानी रखनी चाहिए, अन्यथा इसे बहुत गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। दूसरी संस्कृति के व्यावसायिक अधिकारियों के साथ बिज़नेस मीटिंग करने से पहले अच्छे इंटरप्रेटर, दुभाषिया, अनुवादक का प्रबंध किया जाना चाहिए। इस इंटरप्रेटर को न केवल दोनों देशों की भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए, अपितु उसे दोनों देशों की संस्कृति तथा व्यवसाय के बारे में अच्छी जानकारी होनी चाहिए।

(2) **उत्पाद में संशोधन** (Product Modification): बहुराष्ट्रीय कंपनी को अपने उत्पादों में मेज़बान देशों की संस्कृति के अनुसार आवश्यक संशोधन करने चाहिए। उत्पादों के रंग, ब्रांड नाम, डिज़ाइन व अन्य विशेषताओं को मेज़बान देश के सांस्कृतिक आयामों के अनुसार संशोधित करना चाहिए। जैसे-वर्लपूल कंपनी ने भारतीय बाज़ार में बिकने वाली अपनी वाशिंग मशीन में आवश्यक संशोधन किए ताकि इसमें भारतीय ड्रेस साड़ी को धोया जा सके। इसी तरह मैकडोनल्ड ने

भारतीय बाजार में शाकाहारी भोजन प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए खाद्य-उत्पादों में आवश्यक संशोधन किए। इसके द्वारा अन्य देशों में बेचे जाने वाले गाय-मास (Beef) व सूअर-मीट (Pork) वाले खाद्य उत्पादों को भारतीय बाजार में नहीं बेचा जाता।

(3) **अन्य संस्कृतियों के नीति-शास्त्र को ध्यान में रखना** (Observing Ethics of Opposite Culture): मेजबान देश में व्यावसायिक क्रियाएँ करते समय वहाँ के स्थानीय व्यावसायिक नीति-शास्त्र का भी पालन किया जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई में कार्यरत उत्प्रवासियों को मेजबान देश के शिष्टाचार संबंधी प्रमाणों को ध्यान में रखना चाहिए। इससे मेजबान देश की संस्कृति के प्रति सम्मान की भावना प्रकट होती है।

(4) **सांस्कृतिक झटके को व्यवस्थित करना** (Handling Cultural Shock): जब एक्सपेट्रिएट्स को व्यवसाय संबंधी कार्य हेतु ऐसे मेजबान देश में भेजा जाता है जहाँ सांस्कृतिक वातावरण में बहुत भिन्नता है तो प्रारंभ में कुछ दिनों के लिए तो उन्हें बहुत अच्छा लगता है। इसे टूरिस्ट अवस्था (Tourist Stage) कहते हैं। परंतु कुछ ही समय में उन्हें सांस्कृतिक झटका लगता है। उन्हें विभिन्न मुश्किलों; जैसे-पहनावे, शिष्टाचार, नीति-शास्त्र, कार्य-शैली, भाषा, बोलचाल, भोजन-आदतों आदि में भिन्नता की समस्या का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा अपने परिवारजनों से दूर होने के कारण वे उदास व निराश रहते हैं। वे मानसिक तनाव की बीमारी का शिकार हो जाते हैं। यदि इस अवस्था से उन्हें ठीक से बाहर न निकाला जाए, तो वे मूल देश में वापिस चले जाते हैं। इससे कंपनी को बहुत हानि होती है, क्योंकि मेजबान देश में उसका कार्य रुक जाता है। उसका स्थान लेने के लिए किसी नए एक्सपेट्रिएट को भी जल्दी से तैयार नहीं किया जा सकता। अतः सांस्कृतिक झटके की समस्या न आए, इसके लिए उन्हें पहले से अच्छा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। यदि उसके साथ उसका जीवन-साथी (Spouse) भी विदेश जा रहा है, तो उसे भी वहाँ की संस्कृति से अवगत करवाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। यदि जीवन-साथी मूल देश में नौकरी छोड़ कर जा रहा/रही है, तो विदेश में उसकी नौकरी का प्रबंध भी किया जाना चाहिए। एक्सपेट्रिएट को विदेश की भाषा, कार्य शैली, शिष्टाचार, पहनावे, नीति-शास्त्र, भोजन-आदतों के बारे में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(5) **मानवीय संसाधन प्रबंध में समायोजन** [Making Adjustment in Human Resource Management (HRM) Strategies]: मूल देश की संस्कृति को ध्यान में रखते हुए HRM रणनीतियों व नीतियों में आवश्यक समायोजन किए जाने चाहिएं। सांस्कृतिक विभिन्नताओं संबंधी समस्या के समाधान के लिए मानवीय संसाधन प्रबंध में निम्न समायोजन किए जाते हैं:

(i) यदि कर्मचारी भविष्य-उन्मुखी (Future-oriented) है, तो स्थायी पारिश्रमिक योजना, रिटायरमेंट अनुलाभ (Retirement Benefits); जैसे- पेंशन, प्रोविडेंट फंड, ग्रेच्यूटी, आदि दिए जाने चाहिएं।

(ii) यदि कर्मचारी वर्तमान में जीते है, भविष्य के बारे में अधिक चिंतित नहीं है तो उन्हें वर्तमान में अधिक नकद अनुलाभ (Cash Benefits), उपहार, आदि देकर अभिप्रेरित किया जाना चाहिए; जैसे- नकद बोनस, मुफ्त उपहार, मुफ्त पर्यटन सुविधाएँ आदि दिए जाने चाहिए।

(iii) यदि कर्मचारी उत्तरदायित्व से बचते है तो निरंकुश प्रबंधन शैली (Autocratic Management Style) को अपनाना चाहिए। संगठन की संरचना लंबवत् रूप (Vertical Form) में होनी चाहिए।

(iv) यदि अरब देशों में सहायक कंपनी स्थापित की जानी है, तो वहाँ स्त्रियों को बहुत उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वहां आज भी स्त्रियों को पर्दे में रखने की प्रथा है। यदि स्त्री-कर्मचारियों को नियुक्त करना आवश्यक है, तो उन्हें रात की शिफ्ट (Night Shift) में नहीं बुलाया जाना चाहिए।

(v) यदि कर्मचारी अनिश्चितता से बचना चाहते हैं, तो कार्य संबंधी नियम, कार्य-पद्धतियाँ, काम करने के तरीके व काम के बदले प्रतिफल/वेतन भी पूर्व-निर्धारित होने चाहिएं। ऐसे कर्मचारी नौकरी की सुरक्षा को प्राथमिकता देते है, चाहे वेतन कम ही क्यों न हो। उदाहरण के लिए, जापान व जर्मनी के लोग अनिश्चितता से बचना पसंद करते हैं, जबकि

इंग्लैंड व संयुक्त राज्य अमेरिका के लोग जोखिम लेकर अधिक प्रतिफल/आय को प्राथमिकता देते है। वे अधिक वेतन को कार्य-सुरक्षा की तुलना में अधिक पसंद करते है।

(6) **संगठनात्मक ढांचे की उपयुक्त डिज़ाइनिंग** (Designing Suitable Organisational Structure): यदि कंपनी के कर्मचारी व अधिकारी जोखिम से बचते है तथा उत्तरदायित्व लेने से घबराते है तो लंबवत् संगठनात्मक ढांचा बहुत उपयुक्त होता है। इसमें शक्तियों व उत्तरदायित्वों को उच्च स्तर पर ही केंद्रित रखा जाता है। दूसरी तरफ, यदि कर्मचारी व अधिकारी जोखिम से नहीं घबराते, उत्तरदायित्व लेना पसंद करते है, आत्म-प्रतिष्ठा उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण अभिप्रेरक तत्व है तो शक्ति-दूरी (Power-distance) कम होनी चाहिए। शक्तियों व जिम्मेवारियों की साझेदारी अधीनस्थों के साथ की जानी चाहिए। नीति-निर्माण व निर्णय लेने संबंधी शक्तियों व दायित्वों का विकेन्द्रीयकरण किया जाना चाहिए।

(7) **संवर्धन अपील में समायोजन** (Adjustment in Promotional Appeal): एक ही तरह की संवर्धन अपील सभी तरह की संस्कृतियों में प्रभावकारी नहीं हो सकती। विभिन्न संस्कृतियों में उपभोक्ताओं की एक ही उत्पाद से भिन्न-भिन्न अपेक्षाएँ (Expectations) होती है, जैसे-पश्चिमी देशों में भाप में पका मक्का दाना (Steamed Corn) सूप, पैकड जूसों को नाश्ते के रूप में विज्ञापित किया जाता है। परंतु कुछ विकासशील व कम विकसित देशों में इसे अल्पाहार, शक्तिवर्धक (Snacks, Energizer), स्वादिष्ट व्यंजन के रूप में विज्ञापित किया जाता है। इसी तरह कुछ इस्लामिक देशों में समाज औरतों को कार चलाने की अनुमति नहीं देता। अतः ऐसे देशों में कार के विज्ञापन में औरतों को कार-चालक मॉडल के रूप में नहीं चुना जाना चाहिए।

■ 4. सांस्कृतिक विभिन्नताओं को समझने की आवश्यकता
(Need to Understand Cultural Differences)

(1) **प्रभावी उत्पाद नियोजन के लिए** (For Effective Product Planning): विभिन्न संस्कृतियों में उपभोक्ताओं की पसंद, फैशन, स्वाद, प्राथमिकताएँ, भिन्न-भिन्न होती है। एक ही तरह के उत्पाद सभी तरह की संस्कृतियों में नहीं बेचे जा सकते। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विभिन्न तरह की संस्कृतियों के लिए भिन्न भिन्न तरह के उत्पाद बनाने पड़ते है। अतः सांस्कृतिक आयामों का गहन अध्ययन बहुत अनिवार्य है।

(2) **संवर्धन कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण ढंग से डिज़ाइन करने के लिए** (For Effective Designing of Promotional Programmes): एक ही तरह का विज्ञापन संदेश विभिन्न संस्कृतियों में प्रभावी नहीं हो सकता। विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न तरह की विज्ञापन अपीलें दी जानी चाहिए, जैसे- भारत में किसी उत्पाद के टिकाऊपन (Durability) पर ज़ोर देने के लिए इसकी विज्ञापन अपील 'इतना टिकाऊ, जैसे जीवन साथी' (As long as life-partner) दी जाती है। परंतु यह स्लोगन पश्चिमी देशों में असफल रहेगा क्योंकि वहां शादियाँ बहुत ही जल्दी टूटती हैं। इसी तरह पश्चिमी देशों में जूस, सूप, बिस्कुट आदि को नाश्ते के रूप में विज्ञापित किया जाता है, जबकि विकासशील देशों में इन्हें स्नैक्स (Snacks) के रूप में विज्ञापित किया जाता है। इसी तरह साइकिल को विकसित देशों में शारीरिक व्यायाम (Physical Exercise) के उपकरण के रूप में या स्पोर्ट्स उत्पाद (Sports-item) के रूप में विज्ञापित किया जाता है। जबकि निर्धन देशों में इसे यातायात के सस्ते साधन के रूप में विज्ञापन किया जाता है।

(3) **प्रभावकारी मानवीय संसाधन प्रबंध हेतु** (For Effective Human Resource Management): सांस्कृतिक विभिन्नताओं का अध्ययन प्रभावी मानवीय संसाधन प्रबंध में निम्न तरह से सहायक है

(i) सांस्कृतिक आयामों के अध्ययन से उपयुक्त अभिप्रेरक तत्वों (Motivators) को पहचाना जा सकता है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपनी बेहतर अभिप्रेरण कार्यक्रम बना सकती है।

(ii) विभिन्न देशों व संस्कृतियों में मानवीय व्यवहार के अध्ययन से कर्मचारियों की मानसिकता को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। इससे कर्मचारियों के लिए बेहतर पारिश्रमिक योजनाएँ बनायी जा सकती है, जैसे यदि कर्मचारी भविष्य-उन्मुखी है तो दीर्घकालीन लाभ, जैसे प्रोविडेंट फंड, पेंशन, ग्रेच्यूटी पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

यदि कर्मचारी वर्तमान में जीते हैं, भविष्य के बारे में अधिक चिंता नहीं करते, तो नकद वेतन, नकद अनुलाभ; जैसे- नकद बोनस, मुफ्त पर्यटन सुविधाओं पर जोर दिया जाना चाहिए। यदि कर्मचारी अनिश्चितता से घबराते हैं तो उनके वेतन का अधिक अंश स्थायी (Fixed) होना चाहिए।

(iii) कर्मचारियों की प्रबंध में भागीदारी के बारे में निर्णय प्रभावपूर्ण ढंग से तभी लिया जा सकता है, जब विभिन्न देशों की संस्कृति का गहन अध्ययन करके कर्मचारियों की मानसिकता को समझा गया है।

(iv) उपयुक्त कर्मचारियों के चयन के लिए मेज़बान देश की संस्कृति का अध्ययन बहुत अनिवार्य है।

(v) उत्प्रवासियों (Expatriates) के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम डिज़ाइन करने के लिए मेज़बान देश की संस्कृति का ज्ञान होना बहुत ज़रूरी है। मेज़बान देश की संस्कृति के विभिन्न आयामों को जानने के बाद ही यह निर्धारित किया जा सकता है कि एक्सपेट्रिएट्स को प्रशिक्षण कार्यक्रम में क्या सिखाया जाना है।

(4) संगठनात्मक संरचना की बेहतर डिज़ाइनिंग हेतु (Better Designing of Organisational Structure): कंपनी के संगठनात्मक ढांचे की सही डिज़ाइनिंग हेतु मेज़बान देश की संस्कृति को समझना अति आवश्यक है। संगठनात्मक ढांचे में केंद्रीयकरण पर जोर दिया जाना है, या विकेंद्रीयकरण पर; यह ढांचा लंबवत् हो या समानांतर; लंबा हो या छोटा आदि; इन सभी निर्णयों हेतु मेज़बान देश की संस्कृति के विभिन्न आयामों को समझना बहुत अनिवार्य है।

(5) विभिन्न देशों में बिज़नेस मीटिंगों में बेहतर प्रदर्शन हेतु (For Better Show in Meetings Across Nations): अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में विभिन्न देशों के डीलरों, पूर्तिकर्ताओं, विपणन मध्यस्थों, ग्राहक-प्रतिनिधियों, अंशधारियों, सरकारी अधिकारियों आदि के साथ बिज़नेस मीटिंग्स आयोजित की जाती हैं। इन सभाओं में अच्छे प्रदर्शन हेतु यह आवश्यक है कि दूसरे देशों के सांस्कृतिक आयामों; जैसे- व्यावसायिक नीति-शास्त्र, शिष्टाचार, संस्कार, अभिवादन-शैली, आदि को समझा जाए।

अंतर्राष्ट्रीय मानव संसाधन प्रवंध
(International Human Resource Management)

■ 1. परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

वैश्वक मानव संसाधन प्रवंध का तात्पर्य कर्मचारियों की भर्ती, चुनाव, प्रशिक्षण, विकास एव उनके सर्वोत्तम उपयोग से सबंधित है। इसके अंतर्गत बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यह निर्धारित करती है कि कितने कर्मचारियों की आवश्यकता है। फिर भर्ती के स्रोत ढूँढे जाते है। ये स्रोत आंतरिक या बाहरी हो सकते है। उपयुक्त उम्मीदवारों को कंपनी की ओर आकर्षित करने के प्रयास किए जाते है। प्रार्थियों (Applicants) मे से ऐसे उम्मीदवारो का चयन किया जाता है, जो आवश्यक शैक्षणिक योग्यताओं व अन्य जरूरतो को पूरा करते है; जैसे भाषा पर अच्छी पकड, आत्म-विश्वास (Confidence), प्रबंध शैली मे लोचशीलता, नए सास्कृतिक वातावरण मे ढलने की क्षमता, मानसिक व शारीरिक शक्ति आदि। चुने गए श्रम बल को प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि वे अपनी योग्यताओ में सुधार कर सके। उनके पारिश्रमिक पैकेज निर्धारित किए जाते है। उन्हे सर्वश्रेष्ठ कार्य करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। फिर उन्हे उपयुक्त कार्य सौप दिए जाते है, तथा उन्हें अपने कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक अधिकार व उत्तरदायित्व सौप दिए जाते है। कुछ समय अंतराल के बाद नियमित रूप से उनके कार्य निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है, ताकि उनकी शक्तियों व कमजोरियों को पहचाना जा सके। फिर उनकी कमजोरियों को दूर करने के लिए उचित उपाय किए जाते है, ताकि वे पहले से अधिक कुशल मानव संसाधन बन सकें।

- **मानव संसाधन प्रबंध की परिभाषाएँ (Definitions of Human Resource Management)**

(i) जार्ज आर० टैरी के अनुसार, **"मानवीय संसाधन प्रबंध का संबंध संतोषजनक कार्य करने वालों व संतुष्ट कर्मचारियों को ढूँढने, प्राप्त करने व बनाए रखने मे है।"** (Human resource management is concerned with obtaining and maintaining a satisfactory and a satisfied work force. **–George R. Terry**)

(ii) पॉल जी० हेस्टिंग्स के अनुसार, **"मानव संसाधन प्रबंध, सामान्य प्रबंध का वह पहलू है, जिसका उद्देश्य एक संगठन के श्रम संसाधनों का प्रभावशाली उपयोग करना है।"** (Human resource management is an aspect of management that has the goal of effective utilisation of human resources of an organisation. **–Paul G. Hastings**)

(iii) एडविन ब्राउन फ्लिपो के अनुसार, **"मानव संसाधन प्रबंध का संबंध संगठन के प्रमुख लक्ष्यों या उद्देश्यों की प्राप्ति मे योगदान देने के लिए संगठन के कर्मचारियों को प्राप्त करने, उनका विकास करने, उन्हे प्रशिक्षण देने, एकीकरण करने तथा उन्हें बनाए रखने मे है।"** (The human resource management is concerned with the procurement, development, compensation, integration and maintenance of the personnel of an organisation for the purpose of contributing towards the accomplishment of the organisation's major goals or objectives. **–Edwin Brown Flipoo**)

(iv) एम०जे० जूसीयस के अनुसार, **"मानव संसाधन प्रबंध, सामान्य प्रबंध का वह क्षेत्र है जो श्रम शक्ति के चयन, विकास, उन्हें बनाए रखने हेतु योजनाएँ बनाने, संगठित करने तथा नियंत्रित करने से संबंधित है, जिससे कंपनी अपने उद्देश्यों की पूर्ति प्रभावपूर्ण ढंग से तथा मितव्ययिता से कर सके तथा कर्मचारियों एवं समुदाय दोनों को अधिकतम सेवाएँ प्रदान कर सके।"** (Human resource management is that field of management which has to do with planning, organising and controlling various operative activities of procuring, developing, maintaining and utilising work force in order that the objectives and interest for which the company is established are attained as effectively and economically as possible and the objectives and interest of all levels of personnel are served to the highest degree. **– M.J. Jucious**)

■ 2. अंतर्राष्ट्रीय नियुक्तिकरण/स्टाफिंग निर्णय (International Staffing Decisions)

अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों में कर्मचारियों से संबंधित निर्णय लेना एक जटिल कार्य है, क्योंकि मानवीय संसाधन विभिन्न देशों मे (Value System), व्यावसायिक नीति-शास्त्र आदि अपनाते है। वैश्वक स्टाफिंग नीति कर्मचारियों के चयन व नियुक्ति से संबंधित होती है। इन कर्मचारियों का चयन घरेलू देश से, मेजबान देश से या किसी अन्य तीसरे देश से किया जा सकता है, जब किसी कर्मचारी का चयन किसी एक देश मे किया जाता है, परंतु उसे काम करने के लिए किसी अन्य देश में भेजा जाता है, तो ऐसे कर्मचारी को एक्सपेट्रिएट (Expatriate) कहते है। वह मूल देश या तीसरे देश का निवासी हो सकता है। जब वह उस देश का निवासी होता है, जहाँ वैश्वक कंपनी का मुख्यालय होता है, तो उसे मूल देश या घरेलू देश का निवासी कहते है। जब वह किसी ऐसे देश में होता है, जो न तो मूल देश है, और न ही मेजबान देश, तो उसे तृतीय देश से एक्सपेट्रिएट कहते है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय मे स्टाफिंग नीतियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

(1) एथनोसेन्ट्रिक स्टाफिंग नीति (Ethnocentric Staffing Policy)
(2) पोलिसेन्ट्रिक स्टाफिंग नीति (Polycentric Staffing Policy)
(3) जियोसेन्ट्रिक स्टाफिंग नीति (Geocentric Staffing Policy)

इन स्टाफिंग नीतियों की चर्चा निम्नलिखित है:

- **(1) एथनोसेन्ट्रिक स्टाफिंग नीति (Ethnocentric Staffing Policy)**

इस नीति के अंतर्गत विदेशी सहायक कंपनी में सभी मुख्य पदो पर नियुक्ति मूल देश के लोगो मे से की जाती है। यह नीति इस मान्यता पर आधारित है कि मूल देश के सिद्धांत, प्रबंध व्यवहार (Management Practices), तकनीकी कौशल आदि मेजबान देश के कौशल से अधिक बेहतर है। इसके अलावा घरेलू उच्च अधिकारी सुप्रशिक्षित व अनुभवी होते है, वे संगठन की नीतियों, कार्यक्रमो, प्रबंध शैली मे भली भाँति परिचित होते है। अत: वे मेजबान देश के उच्च अधिकारियों की तुलना मे विदेशी सहायक कंपनियों का अधिक अच्छे तरीके से प्रबंध कर सकते है। यह नीति एकीकृत संस्थागत संस्कृति (Unified Corporate Culture) तथा विदेशी सहायक कंपनियों पर बेहतर नियंत्रण सुनिश्चित करती है।

परंतु यह नीति मेजबान देश के अधिकारियों की स्थानीय योग्यताओं की अवहेलना करती है। इससे मेजबान देश मे स्थित विदेशी सहायक कंपनी के अधिकारियों में निराशा, निम्न उत्पादकता स्तर, उच्च कार्यबल आवर्तन दर (Higher Workforce Turnover) को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा एक्सपेट्रिएट्स मेजबान देश की संस्कृति, भाषा, कार्यशैली, व्यावसायिक नीतिशास्त्र से भलीभाँति परिचित नहीं होते। यह नीति केवल मूल देश के अधिकारियों में से ही विदेशी सहायक कंपनी के लिए अधिकारियों का चयन करती है। मेजबान देश व अन्य देशों में भी उच्च कौशल वाले अधिकारी उपलब्ध हो सकते है। एथनोसेन्ट्रिक स्टाफिंग नीति उस दशा मे प्रभावकारी होती है, जब मेजबान देश में उच्च कौशल वाले अधिकारी उपलब्ध नहीं होते, जैसे यदि कंपनी का मुख्यालय तो विकसित देश मे है, परंतु सहायक कंपनी अल्पविकसित देश में स्थापित है। ऐसी स्थिति मे घरेलू देश के अधिकारी अधिक कौशल वाले हो सकते है। प्रोक्टर एड गैम्बल, फिलिप्स, टोयोटा, सैमसंग, विप्रो (Proctor and Gamble, Philips, Toyota, Samsung, Wipro) आदि ने यही नीति अपनायी है।

- **एथनोसेन्ट्रिक नीति के गुण (Advantages of Ethnocentric Policy)**

(i) जब मेजबान देश में कुशल अधिकारी उपलब्ध नहीं है (Local Talent Gap), तो यह नीति बहुत उपयुक्त है।

(ii) यह नीति वैश्विक कंपनी को विभिन्न सहायक कंपनियों में एकीकृत निगमित संस्कृति (Unified Corporate Culture) बनाए रखने में सहायक होती है। अर्थात् सभी सहायक कंपनियों में कार्य शैली, कार्य-पद्धतियाँ एक जैसी रहती है।

(iii) जब तकनीकी कौशल व प्रबंधकीय कौशल पर अधिक नियंत्रण की जरूरत है, तो यह नीति बहुत उपयुक्त है।

- **एथनोसेन्ट्रिक नीति के दोष (Disadvantages of Ethnocentric Policy)**

(i) यह नीति स्थानीय कौशल की अवहेलना करती है।

(ii) सहायक कंपनी के कर्मचारी विदेशी अधिकारियों के अधीन काम करना पसंद नहीं करते। इससे उनकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है। यह नीति मेजबान देश के अधिकारियों के लिए प्रबंधकीय विकास अवसरों को कम करती है। इससे उनमें निराशा बढ़ती है, उनकी उत्पादकता व मनोबल में कमी आती है, कार्यबल आवर्तन दर (Workforce Turnover) में वृद्धि होती है।

(iii) स्थानीय अधिकारियों की तुलना में एक्सपेट्रिएट्स को बहुत अधिक वेतन देना पड़ता है। इससे मानव संसाधन लागत बढ़ जाती है।

(iv) प्रारंभिक अवस्था में एक्सपेट्रिएट्स मेजबान देश की संस्कृति, भाषा, कार्यशैली, विपणन रणनीतियाँ आदि समझने में असफल हो सकते है।

- **(2) पोलिसेन्ट्रिक क्षेत्रीय-केन्द्रित स्टाफिंग नीति (Polycentric/Regioncentric Staffing Policy)**

इस नीति में मेजबान देश के लोगों को ही विदेशी कंपनी की सहायक कंपनियों के सभी पदों पर नियुक्त किया जाता है। सर्वोच्च पदों पर भी मेजबान देश के लोग ही नियुक्त किए जाते है। कुछ बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जैसे- HSBC, जॉनसन एवं जॉनसन, माइक्रोसॉफ्ट, आदि में इस स्टाफिंग नीति को अपनाया गया है। यह नीति इस मान्यता पर आधारित है कि मेजबान देश में पर्याप्त स्थानीय कौशल उपलब्ध है, तथा उन्हें स्थानीय विपणन दशाओं, सरकारी नीतियों, प्रबंध शैली, कार्य-संस्कृति (Work-culture), व्यावसायिक नीतिशास्त्र आदि के बारे में बहुत अच्छी जानकारी है। इसके अलावा यह माना जाता है कि उनमें इतना कौशल है कि वे रणनीतिक निर्णय ले सकें। मेजबान देश के अधीनस्थ (Subordinates) भी उन्हें उच्च अधिकारी के रूप में स्वीकार कर लेते है, क्योंकि वे भी अपने देश के निवासी के अधीन कार्य करना पसंद करते है, न कि विदेशी अधिकारी के अधीन। इसके अलावा मानव संसाधन लागत भी कम पड़ती है, क्योंकि स्थानीय प्रबंधक एक्सपेट्रिएट्स की तुलना में कम वेतन पर उपलब्ध हो जाते है। परंतु यदि स्थानीय प्रबंधक बहुत कुशल नहीं है, तो यह नीति बहुत प्रभावकारी नहीं है। ऐसा उस स्थिति में होता है, जब मूल कंपनी का मुख्यालय विकसित देश में है, जबकि मेजबान देश अल्पविकसित है। इसके अलावा, इस नीति में नियंत्रण अधिक प्रभावी नहीं होता, क्योंकि सहायक कंपनी के उच्च अधिकारी व अधीनस्थ दोनों ही एक देश के होने के कारण आपस में अनौपचारिक संबंध (Informal Relations) स्थापित कर लेते है। इस नीति में मूल कंपनी व सहायक कंपनी में समन्वय स्थापित करने में समस्या आती है, क्योंकि मूल कंपनी के अधिकारी व सहायक कंपनी के अधिकारी भिन्न-भिन्न देशों से संबंधित होते है, उनकी संस्कृति, भाषा, कार्यशैली भी भिन्न-भिन्न होती है। सहायक कंपनी एक पृथक इकाई बन कर रह जाती है। यह मूल कंपनी के साथ एकीकृत नहीं रहती।

- **पोलिसेंट्रिक दृष्टिकोण के लाभ (Advantages of Polycentric Policy/Approach)**

(i) कम मानव संसाधन लागत।

(ii) अधीनस्थों द्वारा स्थानीय प्रबंधकों को सरलता से स्वीकार करना।

(iii) मेजबान देश के स्टाफ को पदोन्नति के अच्छे अवसर मिलते है। इससे कार्यबल की उत्पादकता व मनोबल में वृद्धि होती है।

(iv) सहायक कंपनियों का प्रबंध बहुत कुशलता से होता है क्योंकि स्थानीय प्रबंधक स्थानीय पूर्तिकर्ताओं, बाजार, वित्तीय संस्थाओं, सरकारी नीतियों, प्रतिस्पर्धी इकाइयों से भली-भाँति परिचित होते हैं।

- **पोलिसेन्ट्रिक दृष्टिकोण के दोष (Disadvantages of Polycentric Policy/Approach)**

(i) स्थानीय प्रबंधकों में रणनात्मक/उच्च पद पर कार्य करने की कुशलता का अभाव हो सकता है।

(ii) सहायक इकाई व मुख्यालय (मूल कंपनी) में समन्वय व एकीकरण स्थापित करने में समस्या आती है।

(iii) एथनोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण की तुलना में इस नीति में नियंत्रण कम प्रभावकारी होता है।

- **(3) जियोसेन्ट्रिक स्टाफिंग नीति (Geocentric Staffing Policy)**

इस नीति में सर्वोच्च पदों के लिए सर्वश्रेष्ठ अधिकारियों का चयन किया जाता है। चाहे वे किसी भी देश से संबंधित क्यों न हों, ये सर्वोच्च अधिकारी मूल देश के हो सकते है, मेजबान देश के या किसी अन्य देश के भी हो सकते है। यह नीति इस मान्यता पर आधारित है कि सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ही सर्वोच्च पदों पर नियुक्त किए जाने चाहिए, चाहे वे किसी भी देश से संबंधित क्यों न हों। जियोसेन्ट्रिक नीति से देशे अंतर्राष्ट्रीय उच्च अधिकारियों की टीम तैयार हो जाती है, जो किसी भी सांस्कृतिक माहौल में कुशलता से काम कर सकते है। इन अधिकारियों का दृष्टिकोण बहुत व्यापक होता है। इनकी प्रबंध शैली बहुत लोचशील होती है, जो विश्व के किसी भी देश में ढल सकती है अतः वैश्विक कंपनियाँ मुख्य कौशल (Core Competence) सरलता से एक सहायक कंपनी से दूसरी सहायक कंपनियों में हस्तांतरित कर सकती है। परंतु इस नीति में मानव संसाधन प्रबंध की लागत बहुत अधिक आती है। इसके अलावा जब अन्य देशों के लोगों को सहायक कंपनी में सर्वोच्च पद पर नियुक्त किया जाता है तो इससे सहायक कंपनी के अधिकारियों की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है। वे विदेशी अधिकारी के अधीन काम करना पसंद नहीं करते। उनका मनोबल व उत्पादकता कम हो जाती है। इस नीति में सांस्कृतिक टकराव की समस्या भी आती है क्योंकि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के व्यक्ति एक साथ सहायक कंपनी में काम करते है। स्टाफिंग की यह नीति जे०पी० मोर्गन, कैनन, जनरल इलेक्ट्रिक मोटर्ज (J.P. Morgan, Canon, General Electric Motors) आदि द्वारा अपनायी गयी है।

■ 3. उत्प्रवासियों का पारिश्रमिक (Compensating Expatriates)

उत्प्रवासियों को उनकी सेवाओं के बदले में उचित पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। उन्हें सहायक कंपनी में तभी टिकाया जा सकता है जब उन्हें पर्याप्त वेतनमान व अन्य अनुलाभ दिए जाएँगे। परंतु यदि उन्हें अत्यधिक पारिश्रमिक दिया जाता है, तो इससे कंपनी की मानव संसाधन लागत बढ़ जाएगी। दूसरी तरफ, कम पारिश्रमिक मिलने पर वे किसी अन्य कंपनी में चले जाएँगे। अतः उचित पारिश्रमिक योजना डिजाइन करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। पारिश्रमिक योजना में मौद्रिक व गैर-मौद्रिक दोनों तरह के प्रॉतफल शामिल किए जाते है। वैश्विक कंपनी के कार्यबल के लिए पारिश्रमिक योजना डिजाइन करना बहुत ही जटिल कार्य है, क्योंकि विभिन्न देशों में वेतन संरचना, कर-संरचना, हाउसिंग लागत, क्रय क्षमता आदि भिन्न-भिन्न होते है। जब वैश्विक कंपनी में कार्य कर रहे किसी कर्मचारी को किसी अन्य देश में उत्प्रवासी के रूप में भेजा जाता है, तो उसका पारिश्रमिक पैकेज इस तरह से समायोजित किया जाना चाहिए कि वह विदेश में जा कर अपने वर्तमान जीवन-स्तर को बनाए रख सके या उसमें कुछ सुधार कर सके। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मेजबान देश में विभिन्न कटौतियों, जैसे-कर व अन्य वैधानिक कटौतियों के बाद भी उसका वेतन (Take Home Salary) पर्याप्त हो। उत्प्रवासी के पारिश्रमिक पैकेज में आधार वेतन (Basic Salary), विदेशी सेवा प्रीमियम/प्रोत्साहन (Foreign Service Premium/Incentive), भत्ते (Allowances), करों में सापेक्षिक अंतर (Tax-differentials), अनुषंगी लाभ (Fringe Benefits) आदि शामिल होते है। विदेशी सेवा प्रीमियम व भत्ते के कारण उत्प्रवासी का कुल पारिश्रमिक घरेलू देश के पारिश्रमिक से अधिक हो जाता है। इससे कंपनी पर वित्तीय बोझ बढ़ जाता है। इसलिए कुछ वैश्विक कंपनियाँ क्षेत्रीयकेंद्रित दृष्टिकोण (Polycentric Approach) अपनाती है जिसमें मेजबान देश के लोगों को ही सहायक कंपनी में नियुक्त किया जाता है। बहुत-सी कंपनियाँ जो एथनोसेन्ट्रिक या जियोसेन्ट्रिक दृष्टिकोण अपनाती है, उन्हें उत्प्रवासियों के अतिरिक्त वेतन का यह भार वहन करना ही पड़ता है।

■ 3.1 उत्प्रवासियों के पारिश्रमिक का अर्थ (Meaning of Compensating Expatriates)

योग्य व कुशल कर्मचारियों को संस्था में तभी टिकाया जा सकता है, जब उनकी सेवाओं के बदले में उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक दिया जाये। एक श्रेष्ठ पारिश्रमिक योजना, योग्य कर्मचारियों को संस्था की ओर आकर्षित करती है, उनको अभिप्रेरित करती है और उन्हें संस्था को छोड़कर न जाने की प्रेरणा देती है। कर्मचारियों के पारिश्रमिक में उनकी सेवाओं के बदले उन्हें वित्तीय और गैर-वित्तीय लाभ दिये जाते है। वेतन, कमीशन, बोनस, अनुषंगी लाभ या इनका सयोग किसी पारिश्रमिक योजना के मुख्य तत्व होते हैं। पारिश्रमिक योजना को

अच्छा तभी माना जाता है- जब यह कर्मचारियों को नियमित आय उपलब्ध करवाये और उन्हें अधिक कार्य करने के लिये प्रेरित करे। पारिश्रमिक योजना के दो मुख्य घटक है: (i) स्थिर तत्व (Fixed Element) (ii) चल तत्व (Variable Element)।

पारिश्रमिक का स्थिर तत्व कर्मचारियों को स्थिर आय उपलब्ध करवाता है। यह तत्व वेतन के रूप में दिया जाता है। पारिश्रमिक योजना का चल तत्व कर्मचारियों को अधिक कार्य करने के लिये प्रेरित करता है। यह तत्व कर्मचारियों के कार्य-निष्पादन (Job Performance) के साथ सबंधित होता है। यह प्राय: कमीशन के रूप में दिया जाता है, यह कर्मचारियों को अधिक कमीशन प्राप्त करने के लिये, अधिक कार्य करने की प्रेरणा देता है। एक श्रेष्ठ पारिश्रमिक योजना वह है जो कर्मचारियों को उचित व पर्याप्त पारिश्रमिक उपलब्ध करवाये और उन्हें अधिक कार्य करने के लिये प्रेरित करे। अच्छी पारिश्रमिक योजना न्यायोचित, सरल, लोचशील, समझने में आसान व मितव्ययी होनी चाहिए। इसे संगठन के विक्रय उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होना चाहिए। अच्छी पारिश्रमिक योजना भर्ती प्रक्रिया के समय योग्य, अनुभवी, कुशल व पढ़े-लिखे आवेदकों को संस्था की ओर आकर्षित करने में समर्थ होनी चाहिए। अच्छी पारिश्रमिक-योजना से उत्प्रवासियों की आवर्तन दर (Expatriates Turnover Rate) में कमी आती है, और वे संस्था को छोड़कर नहीं जाते। पारिश्रमिक योजना की मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित है:

(i) कन्डिफ व स्टिल के अनुसार, **"कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के कार्यक्रम में पारिश्रमिक योजना एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। पारिश्रमिक योजना में निम्न तीन अभिप्रेरण तत्व होने चाहिए: (i) जीवनयापन हेतु उचित मजदूरी प्रदान करना। (ii) वेतनमान को निष्पादन-स्तर के अनुसार समायोजित करना अर्थात् निष्पादन-स्तर कम होने पर पारिश्रमिक कम हो जाये तथा निष्पादन-स्तर बढ़ने पर पारिश्रमिक बढ़ जाये। (iii) संस्था के उद्देश्यों और व्यक्तिगत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना।"** (Compensation plan is an essential part of total program for motivating work force. A compensation plan should have three motivational roles: (i) Provide a living wage. (ii) Adjust pay-scales to performance level, thereby relating job performance with remuneration. (iii) Provide a mechanism for attaining company goals and individual goals. **–Cundiff and Still**)

(ii) फिलिप कोटलर के अनुसार, **"श्रेष्ठ पारिश्रमिक योजना में निम्न तीन तत्व अवश्य होने चाहिएं: (i) कुशल व शिक्षित कर्मचारियों को संस्था की ओर आकर्षित करना। (ii) कर्मचारियों का अभिप्रेरण करना। (iii) कुशल कर्मचारियों को संस्था में टिका कर रखना।"** (A sound compensation plan must have three elements: (i) Attract skilled and well-qualified personnels towards organisation. (ii) Motivate workforce. (iii) Retain efficient persons in the organisation. **–Philip Kotler**)

■ 3.2 पारिश्रमिक योजना के उद्देश्य (Objectives of Remuneration/Compensation Plan)

(i) कर्मचारियों की उत्पादकता व कुशलता को बढ़ाना।

(ii) कर्मचारियों को विक्रय कार्यों एवं गैर-विक्रय कार्यों को करने के लिये अभिप्रेरित करना।

(iii) कुशल व योग्य कर्मचारियों को संस्था की ओर आकर्षित करना।

(iv) अनुभवी, योग्य व कुशल कर्मचारियों को संस्था में टिका कर रखना।

(v) कर्मचारियों को उचित एवं पर्याप्त पारिश्रमिक देकर मनोबल बढ़ाना।

(vi) कर्मचारियों के प्रयासों व पारिश्रमिक में समता व सन्तुलन बनाना तथा व्यर्थ व्ययों को नियंत्रित करना।

(vii) संस्था की छवि को सुधारना।

■ 3.3 अच्छी पारिश्रमिक योजना के आवश्यक तत्व/विशेषताएँ

(Requirements/Characteristics of a Good Compensation Plan)

(1) उचित पारिश्रमिक (Fair Salary Package): श्रेष्ठ पारिश्रमिक योजना कार्यकर्ताओं को उचित पारिश्रमिक देने वाली होनी चाहिए, जिससे कार्यकर्ताओं को लगे कि उनकी सेवाओं के बदले में उन्हें उचित पारिश्रमिक मिल रहा है। अन्यथा

कार्यकर्ताओं को जैसे ही किसी अन्य संस्था में कार्य का अवसर मिलेगा, तो वे वर्तमान संस्था को छोड़कर अन्य संस्था में चले जाएंगे।

(2) अभिप्रेरक (Motivational): अच्छी पारिश्रमिक योजना वह है जो कार्यकर्ताओं को अधिक कार्य के लिये प्रोत्साहित करे। कार्यकर्ताओं की कार्यकुशलता व अच्छे निष्पादन (Performance) का उचित प्रतिफल उन्हें अवश्य दे। यदि कोई कार्यकर्ता अधिक कार्य करता है और उसका निष्पादन स्तर अन्य कार्यकर्ताओं से अधिक है तो उसे उसकी कार्यकुशलता के इनाम में अधिक पारिश्रमिक मिलना चाहिए। प्राय: यह पारिश्रमिक विक्रय पर कमीशन के रूप में दिया जाता है।

(3) न्यायोचित (Equitable): पारिश्रमिक योजना समानता के सिद्धांत (Principle of Equality) पर आधारित होनी चाहिए। अर्थात् यदि दो कर्मचारी एक जैसा कार्य कर रहे है, तो उन्हें एक जैसा पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। पारिश्रमिक योजना में कर्मचारियों को उन कारणों या तत्वों के कारण दण्डित (Penalise) नहीं करना चाहिए, जो कर्मचारियों के नियंत्रण से बाहर है।

(4) सरल व समझने में आसान (Simple and Understandable): पारिश्रमिक योजना समझने में आसान होनी चाहिए, जिससे कर्मचारी स्वयं ही अपने पारिश्रमिक की गणना कर सकें।

(5) लोचशील (Flexible): एक अच्छी पारिश्रमिक योजना लोचशील होनी चाहिए, जिसे बदलती हुई परिस्थितियों के साथ बदला जा सके। एक लोचशील पारिश्रमिक योजना, मन्दी के दिनों में कम और तेजी के दिनों में अधिक पारिश्रमिक देने वाली होनी चाहिए।

(6) मितव्ययी (Economical): पारिश्रमिक योजना मितव्ययी होनी चाहिए। पारिश्रमिक संस्था के ऊपर अनावश्यक भार नहीं होना चाहिए, अर्थात् पारिश्रमिक आवश्यकता से अधिक नहीं होना चाहिए। यदि पारिश्रमिक देने का तरीका विक्रय या लाभों के साथ सबंधित है; जैसे- विक्रय पर कमीशन या लाभों पर कमीशन, तब इस तरह का पारिश्रमिक संस्था पर भार नहीं होता।

(7) प्रतियोगी (Competitive): संस्था की पारिश्रमिक योजना, प्रतियोगी इकाइयों की पारिश्रमिक योजनाओं के अनुरूप होनी चाहिए। यदि संस्था की पारिश्रमिक योजना प्रतियोगी इकाइयों से कम पारिश्रमिक दे रही है तो हमारे प्रतिभाशाली कर्मचारी अवसर मिलने पर प्रतियोगी इकाइयों में चले जाएंगे। इसलिए पारिश्रमिक योजना प्रतियोगी इकाइयों में भी अच्छी होनी चाहिए।

(8) मुद्रा स्फीति से बचाव (Hedge Against Inflation): यदि अर्थव्यवस्था में कीमतें बढ़ रही हों, तो इस दशा में रहन-सहन का स्तर बनाये रखने के लिए अधिक आय की आवश्यकता पड़ती है। अत: एक अच्छी पारिश्रमिक योजना कर्मचारियों को बढ़ती कीमतों के दुष्प्रभाव से बचाने वाली होनी चाहिए। मुद्रा स्फीति के प्रभाव से बचाने के लिए, कर्मचारियों को वेतन के साथ महंगाई भत्ता (Dearness Allowance) दिया जाता है।

(9) कार्य की प्रकृति से संबंधित (Linked to Nature of Job): यदि कार्य तकनीकी हो और उसे करने के लिए तकनीकी योग्यता की आवश्यकता हो, तब ऐसी दशा में पारिश्रमिक अधिक होना चाहिए। इसी तरह यदि किसी कार्य में जोखिम अधिक हो या कार्य में उत्तरदायित्व अधिक हो, तो पारिश्रमिक भी अधिक होना चाहिए। इसी तरह यदि कार्य दशाएँ, कठिन (Tough Working Conditions) हों या कर्मचारियों को ग्राहकों से सपर्क करने के लिये लंबी दूरियाँ तय करनी पड़ें और उस क्षेत्र में यातायात के अच्छे साधन उपलब्ध न हों, या वह विक्रय-क्षेत्र अशांत/दंगे-फसाद वाला (Disturbed Area) हो, तो पारिश्रमिक की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

(10) प्रभावी नियंत्रण (Effective Control): पारिश्रमिक योजना ऐसी हो, जिससे संस्था कर्मचारियों पर प्रभावी नियंत्रण बनाये रख सके। कर्मचारियों पर प्रभावी नियंत्रण रखने के लिये पारिश्रमिक का एक हिस्सा उनकी उत्पादकता व कुशलता के साथ सबंधित (Linked) होना चाहिए, जिससे कर्मचारी यदि कुशलता से कार्य न करें, तो उन्हें पारिश्रमिक का यह हिस्सा न दिया जाये।

(11) समय पर भुगतान (Timely Payment): पारिश्रमिक योजना कर्मचारियों को निश्चित समय पर भुगतान करने वाली होनी चाहिए। अर्थात् पारिश्रमिक योजना में यह स्पष्ट होना चाहिए कि पारिश्रमिक का भुगतान कितने समय अंतराल में या किस तिथि को किया जायेगा। वेतन की दशा में प्राय: यह भुगतान महीने की पहली या अंतिम तिथि को किया जाता है। विक्रय पर कमीशन के भुगतान की तिथि भी निश्चित होनी चाहिए, जिससे कर्मचारी अपने खर्च को उसके अनुसार नियोजित कर सके।

■ 3.4 उत्प्रवासियों के लिए पारिश्रमिक योजना की स्थिति-विवरण विचारधारा (Balance-Sheet Approach of Compensation Plan for Expatriates)

उत्प्रवासियों के लिए पारिश्रमिक योजना डिजाइन करने में बैलेंस शीट (Balance Sheet) विधि सबसे अधिक प्रचलित है। इस विधि में विभिन्न देशों में क्रय क्षमता को ध्यान में रखते हुए पारिश्रमिक योजना इस तरह डिजाइन की जाती है, जिससे उत्प्रवासी वही जीवन स्तर बनाए रख सके जो वे अपने मूल देश में यापन कर रहे थे। इस विधि में न तो कंपनी का वित्तीय बोझ बढ़ता है और न ही उत्प्रवासी को कोई हानि होती है। बैलेंस शीट विधि को दो प्रकार से लागू किया जा सकता है।

(1) घरेलू देश पर आधारित (Home-based Method): इस विधि में उत्प्रवासी का पारिश्रमिक पैकेज डिजाइन करते हुए घरेलू देश में उस व्यक्ति के पारिश्रमिक पैकेज को ध्यान में रखा जाता है जो पारिश्रमिक उसे घरेलू देश में मिल रहा था। उसी के आस-पास वेतनमान उसे मेजबान देश में भी दिया जाता है; जैसे एक कंपनी, जिसका मुख्य कार्यालय (Headquarters) अमेरिका में है, अमेरिका में कार्य कर रहे अपने एक कर्मचारी को चीन में उत्प्रवासी के रूप में भेजती है, तो घरेलू देश पर आधारित विधि में उसे चीन में भी वही पारिश्रमिक पैकेज दिया जाएगा जो उसे अमेरिका में मिल रहा था। जब उत्प्रवासी को अल्पकाल के लिए किसी अन्य देश में भेजा जाता है, तब यह विधि अपनायी जाती है।

(2) मेजबान देश पर आधारित (Host-based Method): इस विधि में उत्प्रवासी का पारिश्रमिक पैकेज डिजाइन करते हुए मेजबान देश में उसी तरह के कार्य के लिए दिए जा रहे पारिश्रमिक पैकेज को आधार बनाया जाता है। उसमें विदेशी सेवा प्रीमियम, अतिरिक्त भत्ते (Extra Allowances), कर-अंतरों (Tax-differentials) को जोड़ दिया जाता है। यह विधि तब अपनायी जाती है, जब उत्प्रवासी को दीर्घकाल के लिए किसी अन्य देश में भेजा जाता है। इस विधि में मेजबान देश में उत्प्रवासी को वही वेतन दिया जाता है, जो उस देश में कार्य कर रहे वहाँ के स्थानीय कर्मचारियों को मिलता है। अत: उन्हें उत्प्रवासियों से ईर्ष्या नहीं होती।

■ 3.5 पारिश्रमिक योजना के मुख्य संघटक/प्रकार (Main Components/Types of Compensation Plan)

(1) मूल वेतन (Basic Salary): इसका अभिप्राय आधारभूत वेतन से है, जो उत्प्रवासी को विदेश में की गयी सेवाओं के बदले मिलता है। घरेलू देश में एक ही प्रकार का काम कर रहे सभी कर्मचारियों का मूल वेतन लगभग एक समान होता है।

(2) विदेशी सेवा प्रीमियम (Foreign Service Premium): विदेश में काम पर जाने में उत्प्रवासी को असुविधा होती है, उसे अपने परिवार-जनों, दोस्तों, रिश्तेदारों, अपनी संस्कृति व अपनी मातृभूमि से अलग होकर रहना पड़ता है। उसे नए वातावरण में, नए लोगों के साथ, नयी संस्कृति में अलग भाषा बोलने वाले लोगों के साथ रहना पड़ता है। इन सब कष्टों व असुविधाओं के लिए उसे अतिरिक्त प्रीमियम दिया जाता है। इसे गतिमान प्रीमियम (Mobility Premium) भी कहते हैं।

(3) भत्ते (Allowances): उत्प्रवासियों को कई तरह के भत्ते दिए जाते हैं। इनमें से मुख्य भत्ते निम्नलिखित हैं:

(i) जीवन स्तर भत्ता (Standard of Living Allowance): मेजबान देश में जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए यह भत्ता दिया जाता है। यह प्राय: तब दिया जाता है, जब मेजबान देश में कीमत-स्तर घरेलू देश की तुलना में अधिक होता है। यह भत्ता मिलने से उसकी क्रय क्षमता वही हो जाती है, जो घरेलू देश में थी।

(ii) कठिनाई भत्ता/कठिन स्थान भत्ता (Hardship Allowance/Difficult Location Allowance): जब उत्प्रवासी को विदेश में किसी ऐसे स्थान पर भेजा जाता है, जहां बहुत प्रतिकूल भौगोलिक वातावरण है, जहां जीवन की आधारभूत सुविधाएँ, जैसे उच्च क्वालिटी चिकित्सा देखरेख (Quality Healthcare), शैक्षणिक सुविधाएँ, आदि ठीक से उपलब्ध नहीं है, या जहां सुरक्षा को खतरा है, कानून व्यवस्था संबंधी समस्याएं है। ऐसी स्थिति में उत्प्रवासी को कठिनाई भत्ता/कठिन स्थान भत्ता दिया जाता है। इसके अलावा कई बार उसकी व उसके परिवार की सुरक्षा के लिए उसे अतिरिक्त सुरक्षा आवरण (Security Cover) भी प्रदान किया जाता है। कठिन भौगोलिक परिस्थितियों में जीवनयापन करने के लिए उसे अलग से प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

(iii) हाउसिंग (गृह प्रबंध) भत्ता (Housing Allowance): कुछ देशों में किराए बहुत अधिक होते है, जैसे लंदन, टोकियो में मकान खरीदना या किराए पर लेना बहुत ही महगा है। अत: उत्प्रवासियों को गृह प्रबंध के लिए यह भत्ता दिया जाता है।

(iv) महंगाई भत्ता (Dearness Allowance): यदि मेजबान देश में मूल देश की तुलना में मुद्रा स्फीति की दर अधिक हो, तब उत्प्रवासियों को मुद्रा-स्फीति के कुप्रभाव से बचाने के लिए उन्हें महगाई भत्ता दिया जाता है। इससे उत्प्रवासियों के जीवन स्तर में कमी नहीं आती।

(v) पति/पत्नी भत्ता (Spouse Allowance): कई बार उत्प्रवासी के स्पाउस को घरेलू देश में अपनी नौकरी छोड़कर विदेश में जाना पड़ता है। वहाँ स्पाउस (Spouse) को नयी नौकरी ढूंढने में भी कठिनाई आती है। नये देश में जाकर नए सांस्कृतिक वातावरण में ढलने में भी कठिनाई आती है। इन सब कठिनाइयों के कारण उसे प्रतिफल के रूप में दंपत्ति भत्ता दिया जाता है।

(vi) कर अंतर (Tax Differentials): यदि मेजबान देश में कर की दर घरेलू देश की तुलना में अधिक है जो उत्प्रवासी को अतिरिक्त कर बोझ के प्रतिफल के रूप में अतिरिक्त राशि दी जाती है, ताकि विदेश में उच्च कर दर के कारण उसे कठिनाई न हो।

(4) अनुषंगी लाभ (Fringe Benefits): अनुषंगी लाभ में आवासीय सुविधा, वाहन सुविधा, ऋण सुविधा, ग्रेच्युटी, पेंशन, प्रोविडेंट फंड, मातृत्व अवकाश (Maternity-Leave), अध्ययन अवकाश (Study-Leave), बीमा आवरण (Insurance Cover), चिकित्सा व्यय पुनर्भुगतान (Medical Reimbursement), वेतन के साथ अवकाश (Paid leave) आदि सुविधाएँ शामिल है। उत्प्रवासियों को वही अनुषंगी लाभ दिए जाते है, जो उन्हें घरेलू देश में मिल रहे थे। यदि विकसित देश में काम कर रहे किसी अधिकारी को विकासशील या अल्पविकसित देश में भेजा जाता है तो ऐसा संभव है कि अल्पविकसित/विकासशील देश में अधिकारियों को कम अनुषंगी लाभ मिल रहे हों। तब भी उत्प्रवासी को वही अनुषंगी लाभ दिए जाएँगे, जो उसे विकसित देश में मिल रहे थे।

(5) कमीशन (Commission): उत्प्रवासियों को उनके निष्पादन, कार्यकुशलता व उत्पादकता के आधार पर कमीशन दिया जाता है। कमीशन उत्प्रवासियों को दिये जाने वाले पारिश्रमिक का एक चल तथा अभिप्रेरणात्मक तत्व है। कमीशन विक्रय की मात्रा, विक्रय-राशि या लाभों के आधार पर दिया जाता है।

(6) बोनस (Bonus): बोनस एक अतिरिक्त वित्तीय ईनाम है जो उत्प्रवासियों को पूर्व निर्धारित स्तर से अधिक निष्पादन पर दिया जाता है। बोनस का भुगतान सामान्य पारिश्रमिक राशि के अतिरिक्त दिया जाता है।

■ 4. उत्प्रवासी स्टाफ का निष्पादन मूल्यांकन (Performance Appraisal of Expatriate Staff)

निष्पादन मूल्यांकन का तात्पर्य परिमाणात्मक व गुणात्मक विधियों के प्रयोग द्वारा कर्मचारियों के कार्य निष्पादन व व्यवहार के मूल्यांकन से है। इसका आशय कर्मचारी को सौंपे गए कार्य में उसके निष्पादन-स्तर के मूल्यांकन से है। इससे प्रबंध को यह पता चलता है कि कर्मचारी अपने कार्यों को सुचारू रूप से कर रहे है या नहीं। इसका संबंध कर्मचारियों की वर्तमान योग्यताओं का उनकी जॉब की आवश्यकताओं के संदर्भ में मूल्यांकन से है। इसका उद्देश्य कर्मचारियों की योग्यताओं में कमी तथा चुनौतियों का सामना करने की क्षमता का पता लगाना है। इससे कंपनी को सही कार्य के लिए सही व्यक्ति का पता लगाने में सहायता मिलती है। इससे कर्मचारियों के वास्तविक

निष्पादन की तुलना पूर्व निर्धारित प्रमापों से करके उनकी त्रुटियों व कमियों का पता लगाया जाता है। जब कर्मचारियों का निष्पादन मूल्यांकन सभी पहलुओं/दृष्टिकोणों से एक ही साथ सुपरवाइजरों, सहकर्मियों, विशेषज्ञों, अधीनस्थों, ग्राहकों, अधिकारियों द्वारा किया जाए तो उसे 360° निष्पादन मूल्यांकन कहते है। निष्पादन मूल्यांकन को विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा अलग-अलग तरीकों से परिभाषित किया गया है। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित है:

(i) **डेल एस बीच** के अनुसार, "**निष्पादन मूल्यांकन व्यक्ति का उसके कार्य के संबंध में तथा उसकी विकास क्षमता का सुव्यवस्थित मूल्यांकन है।**" (Performance appraisal is a systematic evaluation of the individual with respect to his or her performance on the job and his or her potential for development. **–Dale S. Beach**)

(ii) **हैपेल** के अनुसार, "**यह कर्मचारियों की जिस कार्य के लिए उन्हें नियुक्त किया गया है, उनके संदर्भ में उनकी योग्यता मूल्यांकन की प्रक्रिया है। यह प्रशासन जिसमें नियुक्ति, पदोन्नति, आर्थिक लाभ देने एवं समूह के विभिन्न सदस्यों में भिन्नता तथा ऐसे कार्यों जो कि सभी सदस्यों को समान रूप से प्रभावित करते है, में सहायक है।**" (Performance appraisal is the process of evaluating the performance and qualification of the employees in terms of the requirement of the job for which he is employed, for the purpose of administration including placement, selection for promotion, providing financial rewards and other actions which require differential treatment among the members of a group as distinguished from action affecting all members equally. **–Heypel**)

(iii) **डेल योडर** के अनुसार, "**निष्पादन मूल्यांकन में एक संगठन में समूह के सदस्यों के व्यक्तित्व एवं योग्यताओं के विश्लेषण की सभी औपचारिक कार्यविधियाँ सम्मिलित हैं।**" (Performance appraisal includes all formal procedures used to evaluate personalities and contributions and potentials of group members in a working organisation. **–Dale Yoder**)

निष्पादन मूल्यांकन एक निरंतर प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया प्रमापों के निर्धारण से शुरू होती है, और सुधारात्मक कार्य करने पर समाप्त होती है। इसके अंतर्गत वास्तविक निष्पादन को मापा जाता है, वास्तविक निष्पादन की पूर्व-निर्धारित प्रमापों से तुलना की जाती है। इस प्रक्रिया में उत्प्रवासियों की कमियों व दुर्बलताओं को पहचाना जाता है और इन दुर्बलताओं को सुधारात्मक कार्यों द्वारा दूर करने का प्रयास किया जाता है।

■ 4.1 उत्प्रवासियों के निष्पादन मूल्यांकन में चरण

(Steps in Performance Appraisal of Expatriates)

वैश्विक कंपनी के संदर्भ में निष्पादन मूल्यांकन बहुत ही जटिल कार्य है क्योंकि संगठनात्मक संस्कृति, कार्य-आयामों (Job-dimensions), व्यावसायिक नीतिशास्त्र, अनुशासन-सिद्धांत, कार्य संबंधी व्यवहार आदि के प्रमाप विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होते है। वैश्विक कंपनी में निष्पादन मूल्यांकन ऐसे अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए जिन्हें वैश्विक वातावरण के विभिन्न मापदंडों की गहराई में समझ हो, कार्य निष्पादन के लिए अनिवार्य योग्यताओं, कार्य निष्पादन की पद्धति, संगठनात्मक ढाँचे आदि के बारे में पूर्ण जानकारी हो। वैश्विक कंपनी उत्प्रवासियों के निष्पादन मूल्यांकन के लिए केवल मेजबान देश द्वारा किए गए निष्पादन मूल्यांकन पर निर्भर नहीं रह सकती, क्योंकि मेजबान देश के उच्च अधिकारी उत्प्रवासी के विदेशी होने के कारण, उसके कार्य की अनावश्यक आलोचना करते है व उसके निष्पादन मूल्यांकन में उसकी खराब रिपोर्ट पेश कर सकते है। इसी तरह उत्प्रवासी का निष्पादन मूल्यांकन केवल मूल देश द्वारा ही करवाना भी उचित नहीं होगा, क्योंकि मूल देश के उच्च अधिकारी उत्प्रवासी के साथ प्रत्यक्ष संपर्क में नहीं होते। अतः उत्प्रवासी के कार्य का निष्पादन मूल्यांकन मेजबान व मूल देश के उच्च अधिकारियों द्वारा, ग्राहकों, अधीनस्थों व स्वयं उत्प्रवासी के द्वारा; किया जाना है। इस प्रकार उसके कार्यों का उचित मूल्यांकन हो पाता है। उत्प्रवासी के निष्पादन मूल्यांकन में मुख्य चरण निम्नलिखित है:

(1) **निष्पादन के प्रमाप निर्धारित करना** (Setting Performance Standards): उत्प्रवासियों के निष्पादन मूल्यांकन के प्रथम चरण में प्रमाप निर्धारित किए जाते है, जिनके आधार पर उत्प्रवासियों के कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है। ये

प्रमाप निर्धारित करने के लिए वैश्विक कंपनी की ख्याति, वैश्विक प्रतिस्पर्धा, मेजबान व मूल देश की आर्थिक दशाओं, सांस्कृतिक वातावरणीय आयामों, राजनैतिक वातावरणीय आयामों संबंधी विस्तृत जानकारी होनी चाहिए। इसके अलावा निष्पादन प्रमाप निर्धारित करते समय उत्प्रवासियों की योग्यता व अनुभव का भी ध्यान रखना चाहिए। निष्पादन प्रमाप दोनों संख्यात्मक तथा गुणात्मक प्रकृति के हो सकते है। संख्यात्मक प्रमाप स्पष्ट रूप से परिभाषित होते है और इनके साथ वास्तविक निष्पादन की तुलना आसानी से की जा सकती है। गुणात्मक प्रमापों को अंकों के रूप में/संख्या के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता व इनका स्पष्ट माप संभव नहीं है। उत्प्रवासियों के गुणात्मक निष्पादन मूल्यांकन में उनके अपने सहकर्मचारियों के साथ संबंध, अपने अधिकारियों व अपने अधीनस्थों के साथ संबंध, ग्राहकों व पूर्तिकर्ताओं के साथ संबंध, विश्वसनीयता, समय-पाबंदी, नयी परिस्थितियों के अनुसार बदलना, वार्तालाप योग्यता आदि को शामिल किया जाता है। व्यवहार में प्रायः संख्यात्मक प्रमापों को निष्पादन मूल्यांकन में शामिल किया जाता है।

(2) **वास्तविक निष्पादन को मापना** (Measuring Actual Performance): उत्प्रवासियों के वास्तविक निष्पादन का मूल्यांकन मेजबान देश व घरेलू देश के सुपरवाइजरों, अधीनस्थों, सहकर्मियों, ग्राहकों, डीलरों, विक्रेताओं की रिपोर्टों आदि के आधार पर किया जाता है। इसके अलावा उत्प्रवासियों को स्वयं के निष्पादन मूल्यांकन (Self-appraisal) का भी अवसर दिया जाता है। इन विभिन्न वास्तविक निष्पादन रिपोर्टों को भार (Weights) दिए जाते है। इस भारित रेटिंग (Weighted Ratings) के आधार पर वास्तविक निष्पादन की औसतन दर निकाली जाती है। यह भारित औसतन निष्पादन दर उत्प्रवासियों के वास्तविक निष्पादन की उचित झलक देती है।

(3) **वास्तविक निष्पादन की प्रमापों से तुलना** (Comparing Standards with Actual Work Performance): इस चरण में वास्तविक निष्पादन की तुलना पूर्व निर्धारित प्रमापों से की जाती है। इस चरण में दोनों संख्यात्मक व गुणात्मक प्रमापों के साथ वास्तविक निष्पादन की तुलना की जाती है। यदि किसी एक प्रमाप के आधार पर किसी उत्प्रवासी का वास्तविक निष्पादन प्रमाप से कम हो, तो उस उत्प्रवासी का निष्पादन मूल्यांकन अन्य प्रमापों के आधार पर भी किया जाता है। इस तुलना के आधार पर उत्प्रवासियों को निम्न श्रेणियों में बाँटा जाता है:

(i) ऐसे उत्प्रवासी जिनका वास्तविक निष्पादन प्रमापों से अधिक हो, उन्हें श्रेष्ठ उत्प्रवासी (Achievers) कहा जाता है।

(ii) ऐसे उत्प्रवासी जिनका वास्तविक निष्पादन प्रमापों के लगभग बराबर हो, उन्हें संतोषजनक उत्प्रवासी (Satisfactory Expatriates) कहा जाता है।

(iii) ऐसे उत्प्रवासी जिनका वास्तविक निष्पादन प्रमापों से कम हो, उन्हें कमजोर उत्प्रवासी कहा जाता है। इन उत्प्रवासियों की कमजोरियों व दुर्बलताओं को पहचाना जाता है।

(4) **आवश्यक कार्यवाही करना** (Taking Necessary Actions): उत्प्रवासियों के वास्तविक निष्पादन की प्रमापों से तुलना करने पर उत्प्रवासियों की शक्तियों व दुर्बलताओं (Strengths and Weaknesses) को पहचाना जाता है।

(i) यदि वास्तविक निष्पादन और प्रमाप लगभग **एक समान** है, तो ऐसी दशा में कोई कार्यवाही नहीं की जाती।

(ii) यदि वास्तविक निष्पादन प्रमापों **से अधिक** है, तो उत्प्रवासी को पदोन्नति, पहचान, इनाम, वेतन-वृद्धि, बोनस, मुफ्त यात्राएँ आदि प्रोत्साहन दिये जाते है। कुछ दशाओं में संस्था भविष्य के लिये प्रमाप बढ़ा देती है।

(iii) यदि वास्तविक निष्पादन प्रमापों **से कम है**, तब कार्यवाही निम्न प्रकार की हो सकती है:

(a) उत्प्रवासियों को प्रशिक्षण देना ताकि उनकी कमजोरियों को दूर किया जा सके।

(b) भविष्य में प्रमापों को कम करना।

(c) यावसायिक योजनाओं व नीतियों में परिवर्तन करना; जैसे- विक्रय संवर्धन योजनाएं बदलना, विपणन मिश्रण के तत्वों को बदलना, अधीनस्थों, सहकर्मियों, अधिकारियों, ग्राहकों, डीलरों व मध्यस्थों के साथ संबंध सुधारना आदि।

(d) प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिये प्रभावकारी रणनीतियों का निर्माण करना।

इन सुधारात्मक क्रियाओं से उत्प्रवासियों की कमियों व दुर्बलताओं को दूर किया जाता है। इससे संस्था के विक्रय, लाभ व बाजार हिस्से में वृद्धि होती है।

4.2 प्रभावी कार्यबल नियंत्रण व्यवस्था के अनिवार्य तत्व/विशेषताएँ

(Essentials/Characteristics of an Effective Work Force Control System)

(1) प्रमापों को निर्धारित करना (Setting of Standards): कार्यबल नियंत्रण व्यवस्था में विक्रय मात्रा, विक्रय व्ययों, उत्पादन लागत, लाभ दर आदि के रूप में प्रमाप निर्धारित किए जाते हैं। कर्मचारियों की व्यक्तिगत योग्यता, विपणन क्षेत्रों की विक्रय क्षमता, प्रतिस्पर्धा का स्तर, पिछली अवधि का निष्पादन, सांस्कृतिक आयाम, राजनीतिक वातावरण, वैधानिक प्रावधान आदि को ध्यान में रखकर प्रमाप निर्धारित किए जाते हैं। निष्पादन प्रमाप गुणात्मक या संख्यात्मक या दोनों हो सकते हैं। निष्पादन प्रमाप अनुभवी व कुशल विक्रय प्रबंधकों द्वारा निर्धारित किये जाने चाहिए।

(2) स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य (Well Defined Objectives): प्रभावी नियंत्रण के लिए व्यावसायिक उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए। उद्देश्य ऐसे नहीं होने चाहिए जिन्हें स्पष्ट रूप से मापा न जा सके, जैसे- विक्रय में वृद्धि करना एक स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य नहीं है। लेकिन यदि विक्रय वृद्धि का उद्देश्य इस प्रकार परिभाषित किया जाए कि विक्रय स्तर को आने वाले छः महीने में वर्तमान स्तर $1.5 बिलियन से बढ़ाकर $2 बिलियन करना है तो यह उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिभाषित है।

(3) सरल (Simple): कार्यबल नियंत्रण व्यवस्था सरल होनी चाहिए ताकि प्रत्येक कर्मचारी को यह आसानी से समझ आ जाए। कर्मचारियों को यह स्पष्ट होना चाहिए कि उनसे क्या-क्या अपेक्षाएं (Expectations) हैं। कर्मचारियों के लिए निर्धारित प्रमाप उन्हें पता होने चाहिए। यदि नियंत्रण के लिए निर्धारित प्रमाप जटिल हों और कर्मचारियों को समझ न आए तब इससे उनका अभिप्रेरणा स्तर कम हो जायेगा।

(4) निष्पक्ष (Impartial): निष्पादन प्रमापों को निष्पक्ष रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए। यदि व्यावसायिक प्रबंधक द्वारा किसी कर्मचारी के लिए कम प्रमाप निर्धारित किए जाते तो अन्य कर्मचारियों के मनोबल में कमी आ जायेगी। ऐसी नियंत्रण व्यवस्था जिसमें प्रमापों के निर्धारण में पक्षपात हो, वह कर्मचारियों के निष्पादन स्तर में सुधार लाने के लिए प्रभावी नहीं होगी।

(5) लोचशील (Flexible): निष्पादन प्रमाप लोचशील होने चाहिए। निष्पादन का स्तर व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न घटकों पर निर्भर करता है। विपणन वातावरण के विभिन्न घटकों में परिवर्तन आने से निष्पादन में परिवर्तन आ जाता है। अतः नियंत्रण के लिये प्रमाप लोचशील होने चाहिए।

(6) मितव्ययी (Economical): कार्यबल नियंत्रण व्यवस्था में धन एवं समय का अपव्यय नहीं होना चाहिए। अन्य शब्दों में, नियंत्रण व्यवस्था की लागत इसके लाभों से कम होनी चाहिए। इसके लिए नियंत्रण व्यवस्था में महत्वपूर्ण क्रियाओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए तथा दैनिक कार्यों पर कम नियंत्रण किया जाना चाहिए।

(7) अभिप्रेरणात्मक (Motivational): कार्यबल नियंत्रण प्रक्रिया अभिप्रेरणात्मक होनी चाहिए। इसमें ऐसे व्यक्तियों को पुरस्कार दिया जाना चाहिए जिन्होंने अपने प्रमापों को पूरा किया है। इससे ऐसे कर्मचारी जिनका निष्पादन स्तर प्रमापों से कम है, उन्हें भी निष्पादन स्तर बढ़ाने के लिए अभिप्रेरणा मिलती है। इससे संस्था की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

(8) निरन्तरता (Continuity): कार्यबल नियंत्रण प्रक्रिया संस्था की एक निरन्तर प्रक्रिया है। इससे वास्तविक निष्पादन की कमियों का समय रहते सुधार जा सकता है और भविष्य में इन कमियों की पुनरावृत्ति (Repetition) को रोका जा सकता है।

(9) भविष्योन्मुखी (Future Oriented): कार्यबल नियंत्रण व्यवस्था भविष्योन्मुखी होनी चाहिए। यदि वास्तविक निष्पादन स्तर, निर्धारित प्रमापों से कम है तो आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए ताकि भविष्य में निष्पादन स्तर को सुधारा जा सके।

(10) उपयुक्तता (Suitability): कार्यबल नियंत्रण व्यवस्था संस्था के व्यवसाय की प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए। एक बड़े आकार वाली संस्था की कार्यबल नियंत्रण प्रणाली एक छोटे आकार वाली संस्था से भिन्न होगी। इसी प्रकार एक संस्था के विभिन्न विभागों के लिए भी नियंत्रण व्यवस्था अलग-अलग होती है, जैसे- साख संग्रह विभाग, विक्रय संवर्द्धन विभाग, भौतिक वितरण विभाग आदि में नियंत्रण व्यवस्था अलग-अलग होती है। इन सभी विभागों के लिए अलग-अलग तरह के प्रमाप निर्धारित किए जाते हैं।

(11) महत्त्वपूर्ण क्रियाओं पर नियंत्रण (Control on Critical Points): इस सिद्धांत के अनुसार ऐसी क्रियाओं का पता लगाना चाहिए जहाँ पर कमियाँ होने की अधिक संभावना है तथा जिनका वास्तविक निष्पादन स्तर पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इन महत्त्वपूर्ण क्रियाओं पर अधिक सतर्कता से नियंत्रण किया जाना चाहिए। इन क्रियाओं में कम वास्तविक निष्पादन संस्था के लिए अधिक हानिकारक हो सकता है। अतः व्यावसायिक प्रबंधकों को नियंत्रण के लिए महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का पता लगाकर इन पर अधिक कठोरता से नियंत्रण करना चाहिए।

(12) शीघ्र रिपोर्ट व्यवस्था (Quick Reporting System): प्रभावपूर्ण नियंत्रण के लिए कर्मचारियों के वास्तविक एवं प्रमापित परिणामों में अंतर अथवा विचलन की सूचना संबंधित अधिकारियों तक शीघ्र पहुंचनी चाहिए ताकि समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही करके संभावित हानि से बचा जा सके।

(13) दोनों सकारात्मक तथा ऋणात्मक विचलनों का विश्लेषण (Analysing both Positive and Negative Deviations): व्यावसायिक प्रबंधकों को दोनों ही सकारात्मक तथा ऋणात्मक विचलनों का विश्लेषण करना चाहिए। दोनों प्रकार के विचलनों के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि वास्तविक विक्रय प्रमापों से अधिक है और यदि इसका कारण संस्था का प्रभावी विज्ञापन कार्यक्रम है, तो भविष्य में विज्ञापन पर जोर देकर विक्रय स्तर में और भी अधिक वृद्धि की जा सकती है। दूसरी ओर, यदि वास्तविक विक्रय राशि, प्रमापों से कम है (ऋणात्मक विचलन) तब इसके कारणों की खोज करके इसके लिए आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है, जिससे भविष्य में निष्पादन स्तर को बढ़ाया जा सके।

(14) स्पष्ट रूप से परिभाषित उत्तरदायित्व (Clearly Defined Responsibility): प्रत्येक कर्मचारी का उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए। ऐसा होने से ऋणात्मक विचलनों की दशा में विभिन्न कर्मचारी एक दूसरे को दोष नहीं देंगे। अतः अच्छी नियंत्रण व्यवस्था में व्यक्तिगत रूप से सभी कर्मचारियों का उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए।

4.3. कार्यबल नियंत्रण प्रणाली/निष्पादन मूल्यांकन की सीमाएँ अथवा कठिनाइयाँ

(Limitations of or Difficulties in Work Force Control System/Performance Appraisal)

नियंत्रण प्रणाली से अधिकतम लाभ उठाने के लिए प्रबंधक को कार्यबल नियंत्रण प्रणाली की सीमाओं व कठिनाइयों की जानकारी होनी चाहिए। कार्यबल नियंत्रण प्रणाली की मुख्य सीमाएँ, कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं:

(1) मानवीय समस्याएँ (Human Problems): नियंत्रण प्रणाली मानवीय समस्याओं को अनदेखा करती है। प्रायः नियंत्रण प्रणाली कर्मचारियों से मशीन की तरह काम करने की उम्मीद रखती है। कर्मचारी यह अनुभव करते हैं कि नियंत्रण प्रणाली केवल उनकी आलोचना करने के लिये ही बनाई गई है। यह केवल कर्मचारियों को निराश ही करती है। अतः कर्मचारी कार्यबल नियंत्रण प्रणाली में निर्धारित प्रमापों की प्राप्ति में प्रबंधक को सहयोग नहीं देते।

(2) महंगी प्रक्रिया (Expensive Process): नियंत्रण एक खर्चीली प्रक्रिया है। कई बार नियंत्रण व्यवस्था से इतना लाभ नहीं होता, जितना इसे लागू करने में खर्च आ जाता है। ऐसा प्रायः छोटे संगठनों में होता है। इससे नियंत्रण प्रणाली का महत्त्व कम हो जाता है।

(3) **बाहरी वातावरणीय घटकों में निरंतर परिवर्तन** (Continuous Change in External Environmental Factors): व्यावसायिक वातावरण के बाहरी घटक स्थिर नहीं रहते। इनमें निरंतर बदलाव आता रहता है, जैसे- सरकारी नीति, राजनैतिक वातावरण, उपभोक्ताओं की पसंद, रुचि, फैशन, प्रतिस्पर्धा स्तर आदि में निरंतर बदलाव आता रहता है। इनमें परिवर्तनों के फलस्वरूप नियंत्रण प्रणाली में निर्धारित प्रमाप अर्थहीन हो जाते है, जिससे नियंत्रण प्रणाली प्रभावहीन हो जाती है।

(4) **व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के निर्धारण में कठिनाई** (Difficulty in Fixing Individual Responsibility): ऐसी कई व्यावसायिक क्रियाए है जिन्हे कर्मचारी सामूहिक रूप से करते है। अर्थात् कुछ प्रमापों की प्राप्ति के लिए सामूहिक क्रियाए की जाती है। ऐसी क्रियाओं के लिए व्यक्तिगत उत्तरदायित्व निर्धारित नही किया जा सकता, अर्थात् प्रमापों की प्राप्ति न होने पर किसी एक कर्मचारी को जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। ऐसी स्थिति में कार्यबल नियंत्रण प्रभावहीन हो जाता है।

(5) **प्रमापों के निर्धारण मे कठिनाई** (Difficulty in Fixing Standards): कार्यबल पर नियंत्रण पूर्व निर्धारित प्रमापों के आधार पर किया जाता है। परन्तु प्रमापों का निर्धारण करना बहुत ही मुश्किल कार्य है। कुछ क्रियाए ऐसी होती है जिनके लिए प्रमाप निर्धारित नहीं किए जा सकते, जैसे- विक्रय उपरान्त सेवाएँ प्रदान करना, उपभोक्ता सन्तुष्टि को बढाना आदि। इसके अलावा प्रमाप भविष्य के लिए निर्धारित किए जाते है और भविष्य अनिश्चित है, फलस्वरूप ये प्रमाप पूरी तरह से सही नहीं होते।

(6) **अकुशल नियंत्रक** (Inefficient Controllers): कई बार नियत्रण व्यवस्था में नियत्रण करने वाले व्यक्ति स्वयं ही नियत्रण मे बाधा बन जाते है। अनुभव व ज्ञान के अभाव मे, वे न तो सही प्रमाप निर्धारित कर पाते है और न ही वास्तविक निष्पादन का सही मूल्याकन कर पाते है। इसके फलस्वरूप उनके द्वारा बताई गई सुधारात्मक कार्यवाही भी गलत हो जाती है। इससे कार्यबल नियत्रण प्रणाली असफल हो जाती है।

■ 5. उत्प्रवासियों की विफलता (Failure of Expatriates)

जब कोई उत्प्रवासी विदेश मे सौंपे गए कार्य को बिना पूरा किए ही, अपने घरेलू देश में वापस आ जाता है, तो इसे उत्प्रवासी विफलता कहते है। यद्यपि उत्प्रवासियो का चयन करते समय ऐसे अधिकारियों को ही चुना जाता है, जो मानसिक रूप से सुदृढ व परिपक्व (Mentally Mature) है, सास्कृतिक रूप से पुष्ट (Culturally Tough) है, जिनकी प्रबध शैली लोचशील है, परतु इन सब के बावजूद भी प्राय: उत्प्रवासी विफल हो जाते है। विभिन्न देशों में विफलता दर 10 प्रतिशत से 40 प्रतिशत तक होती है। इस विफलता का मुख्य कारण मेजबान देश व मूल देश में सास्कृतिक विभिन्नता है तथा नए वातावरण को समझने व उसके अनुसार ढलने में कठिनाई है। प्रारभ में तो उत्प्रवासी नए वातावरण को पसंद करते है, सौंपे गए कार्य को करना उन्हें अच्छा लगता है। इस प्रारंभिक अवस्था को **पर्यटक अवस्था** (Tourist Stage) कहते है। इस अवस्था में वे मेजबान देश के नए सास्कृतिक वातावरण को पसद करते है, नए पर्यटन स्थानों पर घूमते है, नए कार्य को हर्षोल्लास से करते है। परतु शीघ्र ही यह अवस्था समाप्त हो जाती है। उन्हें घर की याद सताने लगती (Home-sickness) है। उन्हें नए वातावरण में भाषा, भोजन, सस्कृति सबधी समस्याओं का सामना करना मुश्किल लगने लगता है। वे उदासीन हो जाते है। उनका तनाव बढ़ता ही जाता है। यदि मानसिक तनाव (Depression) की इस अवस्था को मनोवैज्ञानिक ढग से नहीं सभाला जाता तो वे मानसिक तनाव से पीड़ित व निराशावादी बनते चले जाते हैं। और फिर वे सौंपे गए कार्य को अधूरा छोड़ कर ही अपने देश वापस चले जाते है। अत: सास्कृतिक झटके की अवस्था का सही उपचार अत्यावश्यक है। सही उपचार मिलने पर वे नए सास्कृतिक वातावरण के अनुरूप ढलने लगते है। सहकर्मियो के साथ औपचारिक, अनौपचारिक व सामाजिक सबध स्थापित करने लगते है। उनमे सामाजिक सुदृढता आने लगती है। उनका आत्मविश्वास, मनोबल व उत्पादकता बढ़ने लगती है।

उत्प्रवासी की विफलता वैश्विक कपनी को बहुत महगी पड़ती है। वैश्विक कंपनी उत्प्रवासियों व उनके परिवारजनों को विदेश भेजने से पहले उनके प्रशिक्षण पर बहुत खर्च करती है, उनके विदेश तक के यात्रा-व्ययों को भी वहन करती है। यदि ये उत्प्रवासी विदेश में सौंपे गए कार्य को बीच में ही अधूरा छोड़ कर वापस आ जाते है, तो उनके स्थान पर किसी अन्य उत्प्रवासी को प्रशिक्षण देना, उनके यात्रा-व्ययों को वहन करना आदि बहुत महगा पड़ता है। विदेशी बाजार में इस बीच व्यावसायिक कार्यों में भी बाधा उत्पन्न हो जाती है इससे कपनी की छवि भी खराब हो जाती है। जब कोई उत्प्रवासी विफल होकर स्वदेश वापिस लौटता है, तो इससे अन्य कर्मचारियों के

मनोबल पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है, वे भी विदेश जाने मे हिचकिचाते है। इस तरह उत्प्रवासी की विफलता से वैश्विक कपनी को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से बहुत हानि उठानी पड़ती है।

- **उत्प्रवासी की विफलता के कारण** (Reasons for Failure of Expatriates)
  - (i) तकनीकी कौशल का अभाव।
  - (ii) नए वातावरण में ढलने में कठिनाई।
  - (iii) उत्प्रवासी के स्पाउस (Spouse) या अन्य परिवारजनों को नए वातावरण मे ढलने मे कठिनाई।
  - (iv) सांस्कृतिक झटका (Cultural Shock) अर्थात् नए सामाजिक वातावरण में ढलने मे कठिनाई।
  - (v) स्थानीय कर्मचारियों द्वारा उत्प्रवासी का अत्यधिक विरोध।
  - (vi) विदेश मे भौगोलिक वातावरण, जलवायु आदि का उत्प्रवासी या उसके परिवारजन को रास न आना।
  - (vii) विदेशी जिम्मेवारियों को समझने व पूरा करने में अयोग्यता।

■ 5.1 उत्प्रवासियों की विफलता को रोकने के उपाय (Prevention of Failure of Expatriates)

वैश्विक व्यावसायिक इकाई को उत्प्रवासियों की विफलता को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए क्योंकि उत्प्रवासियों की विफलता वैश्विक कपनी को बहुत महगी पड़ती है। कपनी को अन्य उत्प्रवासी को प्रशिक्षण देना पड़ता है, जिससे कपनी के व्ययों में वृद्धि होती है। तथा पहले उत्प्रवासी को सौंपी गयी व्यावसायिक क्रियाओं में भी रूकावट आती है। अत: उत्प्रवासी की विफलता को रोकने के लिए पर्याप्त उपाय किए जाने चाहिए। इनमें से मुख्य उपाय निम्नलिखित है:

(i) उत्प्रवासी को पर्याप्त तकनीकी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि विदेश में सौंपे गए कार्य को वह उचित ढग से कर सके।

(ii) उत्प्रवासी की अकेलेपन, निराशा, उदासहीनता जैसी मानसिक समस्याओं के निवारण हेतु उसे मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(iii) कई बार उत्प्रवासी की पत्नी/पति या अन्य परिवारजन भी उत्प्रवासी के साथ विदेश जाते है। ऐसे कर्मचारी को उत्प्रवासी के रूप में विदेश नहीं भेजा जाना चाहिए, जिसके परिवारजन विदेश के वातावरण मे ढल नही सकते।

(iv) शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति को उत्प्रवासी के रूप मे नहीं भेजा जाना चाहिए, क्योंकि नए भौगोलिक वातावरण में उसके बीमार होने की अधिक संभावना होती है। इसी तरह, भावनात्मक रूप से कमजोर व्यक्ति भी उत्प्रवासी के रूप में अधिक सफल नहीं होगा, क्योंकि वह अपने परिवारजनों से दूर रहने के कारण उदासहीन रहेगा।

(v) मेजबान देश के स्थानीय कर्मचारियों द्वारा उत्प्रवासी के विरोध को रोकने की समस्या के समाधान हेतु उनमे वैश्विक भाईचारे की भावना को जागृत किया जाना चाहिए। मेजबान देश के कर्मचारियो को प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे उत्प्रवासी को अपने सहकर्मी के रूप में अपनाए।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. **''पारिश्रमिक योजना कार्यबल अभिप्रेरण कार्यक्रम का एक अनिवार्य हिस्सा है।'' इस कथन के संदर्भ में उत्प्रवासियो को दिये जाने वाले पारिश्रमिक के मुख्य संघटकों की व्याख्या करें।**
   "Compensation plan is an essential part of total programme for motivating work force." In the light of this statement, explain the main components of compensation plan for expatriates.
2. **उत्प्रवासियों के निष्पादन मूल्यांकन से आपका क्या अभिप्राय है? इस प्रक्रिया के विभिन्न चरणो की व्याख्या करें।**
   What do you mean by performance appraisal of expatriates? Explain various steps in its process.
   (M.D.U. 2014)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व एवं नैतिक पहलू

(Social Responsibility and Ethical Issues in International Business)

व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility of Business)

■ 1. सामाजिक उत्तरदायित्व की धारणा (Concept of Social Responsibility)

व्यवसाय समाज का एक हिस्सा है। व्यवसाय मे प्रयोग की जाने वाली आगते (Inputs); जैसे मानवीय समाधन, वित्तीय समाधन, भौतिक समाधन (मशीनरी, तकनीक) आदि समाज मे ही प्राप्त होती है। व्यवसाय का समाज के प्रति उत्तरदायित्व है। व्यवसाय समाज के विभिन्न वर्गों के साथ सम्पर्क मे आता है, जैसे- स्वामी, कर्मचारी, ग्राहक, सरकार, पूर्तिकर्ता, समुदाय (Community) आदि। व्यवसाय को इन सभी वर्गों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए। पहले उस व्यवसायिक संगठन को अच्छा समझा जाता था, जो केवल अपने स्वामी के लिए अधिकाधिक लाभ अर्जित कर रहा हो। लेकिन आज परिस्थितियाँ बदल चुकी है। अब व्यवसाय का उत्तरदायित्व केवल अपने स्वामी तक ही सीमित नही रहा है, बल्कि उसने अब एक विस्तृत रूप धारण कर लिया है। अब व्यवसाय को सभी सबंधित पक्षो के हितो का ध्यान रखना पड़ता है। व्यवसाय का स्वामी के अतिरिक्त, इन सभी सबंधित समूहो के हितो की रक्षा करने को व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व कहा जाता है। व्यवसाय को अपने लाभ मे से कुछ हिस्सा सामाजिक उत्तरदायित्वो को पूरा करने मे खर्च करना चाहिए; जैसे-पर्यावरण-सरक्षण, वृक्षारोपण, शैक्षणिक सस्थान बनवाना आदि। व्यावसाय को विभिन्न पक्षो जैसे- ग्राहको, कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओ, सरकार, समुदाय आदि के हितो की रक्षा भी करनी चाहिए। इसके अलावा व्यावसायिक इकाइयो का यह सामाजिक उत्तरदायित्व है कि वे अच्छे किस्म के उत्पाद बनाए, कर्मचारियो को अच्छी कार्यदशाए प्रदान कराए, प्राकृतिक ससाधनो जैसे- भूमि, जल, उर्जा आदि का न्यायोचित ढग से प्रयोग करें। ऐसा करने से व्यवसाय की लोक-छवि मे सुधार आता है और इससे व्यवसाय के दीर्घकालीन विकास के लिए उचित वातावरण तैयार होता है। व्यवसाय का समाज के प्रति उत्तरदायित्व इस मान्यता पर आधारित है कि यदि व्यवसाय समाज के हितों की रक्षा करेगा, तो समाज भी व्यवसाय के उत्पादो की अधिक माग करेगा। इससे व्यवसाय के विक्रय व लाभो में वृद्धि होगी, और व्यवसाय की लोक-छवि मे सुधार आयेगा।

निगमित क्षेत्र के सदर्भ में सामाजिक उत्तरदायित्व को निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व (Corporate Social Responsibility – CSR) कहा जाता है। CSR का तात्पर्य यह है कि निगम के प्रबधकों को अपने आर्थिक उद्देश्यो की प्राप्ति के साथ-साथ समाज कल्याण के लिए भी विशेष उपाय करने चाहिए। प्रत्येक व्यावसायिक क्रिया का कोई न कोई सामाजिक प्रभाव होता है, जैसे- श्रम प्रधान तकनीक के स्थान पर पूँजी प्रधान तकनीक का प्रयोग, अल्पविकसित व विकासशील देशो के बाजारो मे बहुराष्ट्रीय कपनियों का प्रवेश, व्यवसाय का विविधीकरण, व्यवसाय का प्रसार, व्यवसाय की किसी शाखा का बद होना, व्यावसायिक इकाई का एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानातरण, टेक्नोलॉजी में परिवर्तन या माग मे कमी के कारण कुछ कर्मचारियों की छटनी (Lay-off) करना, रात की शिफ्ट (Night-Shifts) में कार्य चलाना, ओवरटाइम (Overtime) शिफ्ट मे कार्य चलाना, व्यावसायिक क्रियाओ की आउटसोर्सिंग आदि, इन सभी व्यावसायिक निर्णयों के सामाजिक प्रभाव होते है। व्यवसाय सबधी निर्णय लेने से पहले कपनी के प्रबधको को इनके सामाजिक प्रभाव के बारे में सोच लेना चाहिए। इन व्यावसायिक निर्णयो के कर्मचारियों, ग्राहको, निवेशको, जन सामान्य, सरकार, आदि पर होने वाले कुप्रभाव का कोई उपचार अवश्य किया जाना चाहिए।

विभिन्न देशों में सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रकृति व स्तर भिन्न-भिन्न होता है। विकसित देशो में व्यावसायिक इकाइयो का सामाजिक उत्तरदायित्व, विकासशील देशों की तुलना में कहीं अधिक होता है। वैश्विक कपनियों के कुछ विशेष सामाजिक उत्तरदायित्व

देशों में सामान्य जनता का विदेशी कंपनियों के उत्पादों के प्रति दृष्टिकोण नकारात्मक होता है। कई बार तो इन्हें सार्वजनिक बायकाट (Boycott), इनके विरुद्ध प्रदर्शन आदि का भी सामना करना पड़ता है। यदि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए कुछ विशेष उपाय करती है, तो इससे उनकी पब्लिक छवि में सुधार आता है। इससे इनके विरुद्ध सामाजिक रोष में कमी आती है। कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बिक्री कई देशों के सकल घरेलू उत्पादन से भी अधिक है। अतः यदि MNCs अपनी बिक्री का एक बहुत छोटा हिस्सा भी सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करने में खर्च करती है तो इसमें इनकी ख्याति व छवि में सुधार आएगा। अतः इन MNCs को अपने दीर्घकालीन हित के लिए भी सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए, इसके अलावा इससे अच्छा सामाजिक वातावरण भी मिलेगा। एक सन्तुष्ट व स्वस्थ समाज में उत्पादों की माग अधिक होती है। माग के बढ़ने से इन कंपनियों की बिक्री व लाभों में वृद्धि होती है।

■ 2. सामाजिक उत्तरदायित्व की परिभाषाएं (Definitions of Social Responsibility)

(i) **जार्ज ए. स्टेनर** के अनुसार, **"वास्तविक अर्थों में, सामाजिक उत्तरदायित्व से हमारा अभिप्राय, समाज की आवश्यकताओं व इच्छाओं को समझने और उनकी पूर्ति के लिए अपना योगदान देने से है।"** (In real sense social responsibility implies recognition and understanding of the aspirations of society and determination to contribute towards their achievement. — **George A. Steiner**)

(ii) **एच.आर. बोवेन** के अनुसार, **"व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का अभिप्राय उन नीतियों का अनुसरण करने, उन निर्णयों को लेने तथा उन कार्यों को करने से है जो हमारे समाज के लक्ष्यों तथा मूल्यों की दृष्टि से वांछनीय हो।"** (Social Responsibility of business is to pursue those policies, to make those decisions or to follow those lines of action which are desirable in terms of the objectives and values of our society. — **H.R. Bowen**)

(iii) **कीथ डेविस** के अनुसार, **"व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से हमारा अभिप्राय व्यवसायी के उन निर्णयों व क्रियाओं से है जो आंशिक रूप से व्यवसाय के प्रत्यक्ष आर्थिक हित से नहीं जुड़े हुए।"** (Social responsibility of business implies that the businessman's decisions and actions are taken for reasons at least partially beyond the firm's direct economic interest. — **Keith Davis**)

(iv) **अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार नई दिल्ली 1965** के घोषणा पत्र के अनुसार, **"व्यवसाय के सामाजिक दायित्व का अर्थ ग्राहकों, कर्मचारियों, अंशधारियों और समाज के प्रति उत्तरदायित्वों से है।"** (Social responsibilities of business means responsibilities of business towards customers, workers, shareholders and the community. – **International Seminar New Delhi, 1965**)

इस प्रकार **व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व, जिसे निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व भी कहा जाता है, का अर्थ ग्राहकों, कर्मचारियों, अंशधारियों और समाज के प्रति व्यवसाय के उत्तरदायित्वों से है।**

■ 3. सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में तर्क/सामाजिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता

(Arguments in favour of Social Responsibility/Need for Social Responsibility/Case for Social Responsibility)

समाज, सरकार, गैर-सरकारी संगठनों, उपभोक्ताओं आदि का मानना है कि व्यवसाय को अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए। सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में निम्नलिखित मुख्य तर्क दिए जाते है:

(1) **अच्छी लोक छवि** (Good Public Image): सभी व्यवसायियों को अधिक ग्राहक आकर्षित करने के लिए अच्छी लोक-छवि बनानी होती है। इसके लिए व्यवसाय अपने सामाजिक-दायित्वों को पूरा करता है। अच्छी लोक छवि से अधिक लोग संस्था का उत्पाद खरीदेंगे और इससे लाभों में वृद्धि होगी।

(2) **सरकारी हस्तक्षेप से बचाव** (Avoidance of Government Interference): जब व्यावसायिक इकाई स्वेच्छा से अपने सामाजिक दायित्वों को पूरा करती है, तो उस दशा में सरकारी हस्तक्षेप से बचा जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि व्यवसाय स्वेच्छा से जल-प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि का ध्यान रखे, तब सरकार पर्यावरण सुरक्षा के मुद्दे को लेकर व्यावसायिक इकाई की क्रियाओं में हस्तक्षेप नहीं करेगी। दूसरी ओर यदि व्यावसायिक इकाई प्रदूषण फैला रही हो, तो सरकार इसकी क्रियाओं में हस्तक्षेप करेगी। ऐसी दशा में सरकार व्यावसायिक इकाई को बंद करने या इसका स्थान बदलने (Change in Location) के निर्देश दे सकती है। ऐसा होने पर व्यवसाय की ख्याति पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि इस तरह के समाचारों को मीडिया द्वारा सुर्खियों में छापा जाता है।

(3) **नैतिक रूप से न्यायसंगत** (Moral Justification): व्यवसाय समाज के भौतिक व मानवीय साधनों का प्रयोग करता है और समाज को ही अपने उत्पादों का विक्रय करता है। व्यावसायिक इकाई समाज की सामान्य सुविधाओं जैसे– सड़क, रेलवे, ऊर्जा, जल, कानून व्यवस्था का उपयोग करती है। अतः व्यवसाय का नैतिक दायित्व बनता है कि वह समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करे।

(4) **विभिन्न वर्गों में संघर्ष समाप्त करना** (To Avoid Class Conflicts): यदि व्यवसाय कर्मचारियों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करे, तो कर्मचारियों व नियोक्ता के मध्य मधुर संबंध स्थापित होंगे, व उनका आपसी संघर्ष समाप्त हो जायेगा। व्यवसाय को अपने कर्मचारियों को अच्छी कार्य दशाएं, निवास-सुविधा (Housing), चिकित्सा सुविधा, सेवानिवृत्ति लाभ (Retirement Benefits) आदि उपलब्ध करवाने चाहिए। इससे कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है और उनकी उत्पादकता में वृद्धि होती है। जिससे संगठन के उत्पादन व लाभ में वृद्धि होती है।

(5) **उपभोक्ता जागरूकता** (Consumer Awareness): आजकल उपभोक्ता अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो गए है। उन्हें अपने कानूनी अधिकार पता है। बड़े शहरों में उपभोक्ताओं ने अपने पंजीकृत संघ (Registered Association) बना लिए है। यदि कोई निर्माता ग्राहकों को धोखा देता है या उन्हें घटिया उत्पाद उपलब्ध करवाता है तो ये उपभोक्ता संघ, ऐसी व्यावसायिक इकाई के विरुद्ध शिकायत करते है। व्यावसायिक इकाइयाँ ऐसी शिकायतों से बचने के लिए अच्छी किस्म के उत्पाद उपलब्ध करवाती है, और अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करती है।

(6) **व्यवसाय समाज का एक अंग है** (Business is a Part of Society): क्योंकि व्यावसायिक संस्थाओं का निर्माण समाज में ही होता है इसलिए सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति इनका सकारात्मक रुख होना चाहिए। व्यवसाय समाज की ही एक **उप-पद्धति** (Sub-System) है और एक उप-पद्धति को **मुख्य पद्धति** (Main System) की भलाई में अपना पूरा योगदान देना चाहिए। अन्य शब्दों में, व्यवसायी द्वारा लिए गए निर्णय केवल व्यवसाय की भलाई में ही नहीं होने चाहिए बल्कि अन्य उप-पद्धतियों (समाज के अन्य अंग, जैसे ग्राहक, अंशधारी, कर्मचारी आदि) की भलाई का भी पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए जिससे पूरे समाज अथवा **पूर्ण पद्धति** (Complete System) का भला हो सके।

(7) **दीर्घकाल में व्यवसाय का हित** (Long-term Interest of Business): व्यवसाय द्वारा आज निष्पादित किए गए सामाजिक उत्तरदायित्व भविष्य में संस्था की सफलता को सुनिश्चित करते है। यह संभव है कि प्रारंभिक वर्षों में सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए अधिक लागतें सहन करनी पड़ें, लेकिन इससे संस्था का भविष्य सुरक्षित हो जाता है। इस तरह सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करके संस्था का दीर्घकालीन हित होता है।

(8) **व्यवसाय के लिए बेहतर वातावरण** (Better Environment for Business): जब व्यवसाय अपने संस्थागत सामाजिक दायित्वों (Corporate Social Responsibility) को पूरा करता है, तो इसे बदले में बेहतर सामाजिक वातावरण मिलता है। जिसमें व्यवसाय पहले की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी ढंग से अपनी क्रियाओं का निष्पादन कर सकता है। व्यवसाय को समाज से अच्छी प्रतिक्रिया, सन्तुष्ट उपभोक्ता व सन्तुष्ट कर्मचारी मिलते है। इसके परिणामस्वरूप श्रम आवर्तन दर (Labour Turnover Rate), व अनुपस्थिति (Absenteeism) में कमी आती है तथा उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। कुशल कर्मचारी ऐसी व्यावसायिक इकाइयों में काम करना पसंद करते है जो अपने सामाजिक दायित्वों को पूरा करती है। अतः यदि व्यवसाय अपने सामाजिक दायित्वों को पूरा करता है, तो समाज भी व्यवसाय को बदले में बेहतर वातावरण प्रदान करता है।

(9) **व्यवसाय के पास विशाल संसाधन होते हैं** (Business has Vast Resources): बड़ी व्यावसायिक इकाइयों, विशेषकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को समाज में व्यावसायिक क्रियाएं करने से बहुत अधिक आय प्राप्त होती है। कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बिक्री बहुत से देशों के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) से भी कहीं अधिक होती है। अतः यदि ये कंपनियाँ अपनी बिक्री का 1 प्रतिशत भी सामाजिक दायित्व पूरा करने में खर्च कर देती है, तो इससे MNCs पर कोई विशेष बोझ नहीं पड़ेगा, परंतु इससे समाज को अवश्य ही बहुत लाभ होगा।

(10) समाज को किए गए नुकसान के बदले क्षतिपूर्ति देना (To Compensate the Society for Harm Done to it): बड़ी निर्माणी इकाइयाँ अत्यधिक वायु प्रदूषण करती है, जैसे-ये हवा मे विषैली व अन्य हानिकारक गैसे तथा खतरनाक धुआँ छोड़ती है। फैक्ट्री के व्यर्थ पदार्थों व अवशेषों को नदियों मे फेंकती है। बड़ी व्यावसायिक इकाई स्थापित करने या इसके प्रसार के लिए बड़ी इमारते बनाने हेतु पेड काटती है। इस तरह ये वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा यहाँ तक कि मशीनों के शोर से ध्वनि प्रदूषण भी करती है, अत: समाज को किए गए नुकसान के बदले कुछ क्षतिपूर्ति भी दी जानी चाहिए। इसके लिए व्यावसायिक इकाई को कुछ विशेष उपाय करने चाहिए, जैसे-पेड लगाना, प्रदूषण नियंत्रण उपकरण लगाना, पार्क स्थापित करना आदि।

■ 4. सामाजिक उत्तरदायित्व के विपक्ष में तर्क/कठिनाइयाँ/रुकावटें/सीमाएँ (Difficulties/Limitations/Barriers/Arguments against Social Responsibility)

फ्रेडमेन तथा पीटर एफ॰ ड्रकर का मानना है कि सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना व्यावसायिक इकाइयों के लिए आवश्यक नहीं है। व्यावसायिक इकाई को सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह मे निम्न कठिनाइया आ सकती है:

(1) कीमतों में वृद्धि (Increase in Prices): सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह मे बहुत लागत आती है, जैसे- शैक्षणिक सस्थाओं को दिया जाने वाला दान, धर्मार्थ सस्थाओं को दिया जाने वाला दान, प्राकृतिक आपदाओं मे दी जाने वाली राहत सामग्री आदि। व्यवसाय में इस बढ़ी हुई लागत के कारण कीमतो को बढ़ा दिया जाता है। इससे सामाजिक उत्तरदायित्व की लागत को वास्तव में अधिक कीमतों के रूप मे समाज द्वारा ही चुकाया जाता है।

(2) सामाजिक समस्याओं को हल करने की योग्यता का अभाव (Lack of Skill to solve Social Problems): सामाजिक समस्याए बहुत जटिल प्रकृति की होती है। इन्हे हल करने के लिए विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। एक व्यवसायी अपनी व्यवसाय की समस्याओं को हल करने में तो निपुण हो सकता है, पर यह आवश्यक नहीं कि वह सामाजिक समस्याओं को भी हल करने की योग्यता रखता हो।

(3) सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना व्यवसाय के मुख्य उद्देश्य से भिन्न (Meeting Social Responsibility deviates from Main Objective of Business): व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है। सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना व्यवसाय के मुख्य उद्देश्य लाभ कमाने के विरुद्ध जाता है। सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह मे खर्च किए जाने वाले धन को व्यवसाय में निवेश करके, व्यवसाय की लाभ-क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा व्यवसाय एक आर्थिक सगठन है; यह कोई सामाजिक-कल्याण सगठन नहीं है। अत सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना व्यवसाय के लाभों को कम करता है।

(4) समय का अभाव (Shortage of Time): आजकल व्यवसाय बहुत जटिल हो गया है। व्यावसायिक क्रियाए करने मे बहुत अधिक समय लगता है। अब व्यवसाय के अन्तर्गत उत्पादों का केवल क्रय-विक्रय ही शामिल नहीं है। व्यवसाय चलाने के लिए और भी बहुत-सी क्रियाए करनी पड़ती हैं; जैसे-विज्ञापन करवाना, विक्रय-संवर्धन योजनाए चलाना, मीडिया में पब्लिसिटी करवाना, विज्ञापन अनुसंधान करवाना, करों का भुगतान करना, खाते बनाना, कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना, अंशधारियों की सभाओं का आयोजन करना आदि। इतनी अधिक व्यस्तता के कारण व्यावसायिक प्रबन्धकों के पास इतना समय ही नहीं होता कि वे सामाजिक समस्याओं का समाधान करें।

(5) नियमित भार (Regular Burden): यदि व्यावसायिक इकाई एक बार सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करती है, तो यह इस व्यावसायिक इकाई के लिए नियमित भार बन जाता है। समाज यह अपेक्षा करने लगता है कि यह व्यावसायिक इकाई भविष्य में भी हमेशा नियमित रूप से सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करेगी। ऐसे में यदि किसी वर्ष व्यावसायिक इकाई को वित्तीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, तो यह चाह कर भी सामाजिक उत्तरदायित्वों से बच नहीं सकती, क्योंकि इससे व्यावसायिक इकाई की छवि खराब हो जाएगी।

(6) उसी उद्योग में संलग्न अन्य व्यावसायिक इकाइयों द्वारा विरोध (Opposition by Other Firms in the same Industry): यदि एक व्यावसायिक इकाई सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने पर अधिक धन खर्च करती है, तो उसी उद्योग में सलग्न अन्य व्यावसायिक इकाइया इसका विरोध करती है। क्योंकि अन्य व्यावसायिक इकाइयों को ऐसा लगता है कि उन्हें भी इसी तरह से सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने पर धन खर्च करना पड़ेगा, क्योंकि समाज के

विभिन्न वर्ग फिर सभी व्यावसायिक इकाइयों से ऐसी उम्मीदें करने लगते है। अत: अन्य व्यावसायिक इकाइया ऐसी इकाई का कड़ा विरोध करती है जो सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने पर अधिक ध्यान देती है।

(7) शक्ति का अत्यधिक केंद्रीयकरण (Excessive Concentration of Power): व्यवसाय के पास पहले मे ही आर्थिक शक्ति केंद्रित है, यदि व्यवसाय को सामाजिक शक्तियाँ भी दे दी जाएँ, तब समाज की व्यवसाय पर निर्भरता बहुत बढ़ जाएगी। ऐसा होने पर व्यावसायिक इकाइयाँ समाज को अपने हित के अनुसार शोषित करने लगेंगी।

■ 5. विभिन्न वर्गों के प्रति व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility of Business Towards Various Parties)

अतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का विभिन्न वर्गों जैसे- स्वामियो, कर्मचारियो, उपभोक्ताओ, सरकार, पूर्तिकर्ताओ और समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व होता है। व्यवसाय को अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए।

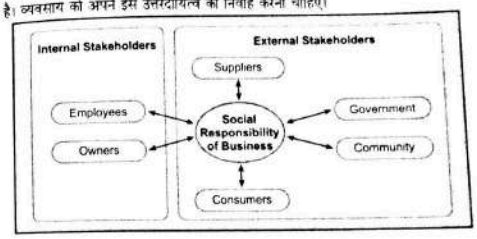

(1) स्वामियों/निवेशकों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards Owners/Investors): व्यवसाय के प्रबंधकों के स्वामियों (अंशधारियों/ निवेशकों) के प्रति मुख्य उत्तरदायित्व इस प्रकार है:

(i) पूँजी की सुरक्षा प्रदान करना।

(ii) पूँजी पर उचित दर से लाभांश देना।

(iii) लाभाश का समय पर भुगतान करना।

(iv) कंपनी की गतिविधियों के बारे में सही रिपोर्ट नियमित रूप से अंशधारियों को समय पर देना।

(v) एक जैसे वर्ग के अंशधारियों के साथ समानता का व्यवहार करना।

(vi) विनियोजित पूँजी का सदुपयोग करना।

(2) कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards Employees): कर्मचारी वर्ग व्यवसाय का विवेकशील तत्व है। यदि कर्मचारी वर्ग सतुष्ट है, तो व्यवसाय बहुत अधिक उन्नति कर सकता है। अत: व्यवसाय को कर्मचारियों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। कर्मचारियों के प्रति अतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई के मुख्य उत्तरदायित्व निम्नलिखित है:

(i) मेजबान देश में स्थापित सहायक कपनियों में मेजबान देश के लोगों को ही नियुक्त करना, न कि मूल देशों से उत्प्रवासियों (Expatriates) को नियुक्त करना, ताकि मेजबान देश मे रोजगार के अवसर उत्पन्न हों।

(ii) उचित पारिश्रमिक देना।

(iii) काम करने के लिए स्वच्छ वातावरण व उचित कार्य दशाएं प्रदान करना।

(iv) कर्मचारियों को उचित सम्मान देना व प्रबंध में कर्मचारियों की भागेदारी को प्रोत्साहन देना।

(v) चिकित्सा सुविधाएं, निवास-सुविधा, कैंटीन-सुविधा, सेवानिवृत्ति लाभ (Retirement-benefits) देना।

(vi) प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों को लागू करना।
(vii) लाभ में हिस्सा प्रदान करना व कर्मचारियों के लिए बोनस-योजना लागू करना।
(viii) नौकरी की सुरक्षा प्रदान करना व पदोन्नति के अवसर प्रदान करना।
(ix) श्रम समस्याओं का समय पर समाधान करना।
(x) कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना क्योंकि विदेशी टैक्नोलॉजी के बारे में उन्हें समझ नहीं होती।

(3) उपभोक्ताओं के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards Consumers): उपभोक्ता के बिना व्यवसाय का अस्तित्व ही संभव नहीं है। व्यवसाय के लिए उपभोक्ता का बहुत अधिक महत्व है। अतः व्यवसाय को उपभोक्ता के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करना चाहिए। उपभोक्ताओं के प्रति अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई के मुख्य उत्तरदायित्व निम्न है:

(i) अच्छी क्वालिटी की वस्तुएं उचित मूल्य पर उपलब्ध करवाना।
(ii) झूठे व धोखाधड़ी वाले विज्ञापन न देना तथा विज्ञापन में वास्तविकता को प्रकट करना।
(iii) वस्तुओं में मिलावट न करना।
(iv) विक्रय उपरांत सेवाएं प्रदान करना। उपभोक्ताओं की समस्याओं का उचित समय पर समाधान करना।
(v) उपभोक्ताओं की रुचियों के अनुसार उत्पादन करना।
(vi) ग्राहकों को निकटतम स्थान पर माल उपलब्ध करवाना।
(vii) उत्पाद व सेवाओं की नियमित पूर्ति (Regular Supply) उपलब्ध करवाना।
(viii) अनुचित व्यापार व्यवहार व एकाधिकारिक प्रवृत्तियों में संलग्न न होना, जैसे-कार्टेल (Cartel) बनाकर प्रतिस्पर्धा को रोकने जैसी क्रियाओं में संलग्न न होना।

(4) सरकार के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards Government): व्यवसाय को नियमित करने के लिए सरकार ने विभिन्न नियम बनाए हैं। व्यावसायिक इकाई को इन नियमों का पालन करना होता है। इसके अलावा सरकार द्वारा टैक्स-ढांचा तैयार किया जाता है। इसका पालन करते हुए व्यवसाय को देश के विकास में सरकार की मदद करनी चाहिए। सरकार के प्रति अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई के निम्नलिखित उत्तरदायित्व है।

(i) सरकार द्वारा निर्धारित करों का ईमानदारी से भुगतान करना।
(ii) गैर-कानूनी व्यवसाय न करना तथा सरकारी नियमों व अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के दिशा-निर्देशों का पालन करना।
(iii) अनुचित तरीकों से सरकारी तन्त्र (Government-Machinery) का लाभ न उठाना जैसे- सरकारी अधिकारियों को रिश्वत देकर अपने गलत काम निकलवाना अनैतिक कार्य है।

(5) पूर्तिकर्ताओं के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards Suppliers):

(i) व्यवसाय को पूर्तिकर्ताओं के साथ अच्छे व्यावसायिक-संबंध बनाकर रखने चाहिए।
(ii) पूर्तिकर्ता के साथ लेन-देन का हिसाब-किताब स्पष्ट होना चाहिए। पूर्तिकर्ता का भुगतान समय पर किया जाना चाहिए। यदि पूर्तिकर्ता को समय पर पूरे पैसे मिल जाते है, तो वह माल की सुपुर्दगी समय पर करेगा, तथा अच्छी क्वालिटी का माल भेजेगा।
(iii) भावी विकास योजनाओं के बारे में पूर्तिकर्ताओं को समय पर सूचित करना।

(6) समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards Community): व्यवसाय समाज का ही एक हिस्सा है. समाज के लोग अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाई से निम्नलिखित अपेक्षाएं रखते हैं:

(i) मेजबान देश में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना;
(ii) वातावरण को दूषित होने से बचाना;
(iii) मेजबान देश में जन-सामान्य के जीवन-स्तर के सुधार में योगदान देना;
(iv) धर्मशाला, चिकित्सालय, शिक्षण संस्थाओं आदि का निर्माण करके समाज कल्याण में भागीदार बनना;
(v) अस्पष्ट व अश्लील विज्ञापनों का सहारा न लेना, ऐसे विज्ञापन न करवाना, जो मेजबान देश की संस्कृति से मेल नहीं खाते.
(vi) उच्च किस्म के उत्पाद उपलब्ध करवाना;
(vii) मेजबान देश के सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों का सम्मान करना;
(viii) व्यावसायिक परिसर में सुरक्षात्मक उपाय करना ताकि कोई दुर्घटना न हो; जैसे- आकस्मिक आग लगने पर बचाव के उपाय क्योंकि ऐसी दुर्घटनाओं से जान-माल की बहुत हानि होती है, जैसे भोपाल गैस कांड में अमेरिकन कंपनी यूनियन कार्बाइड द्वारा सुरक्षा के अभाव में हजारों लोग मारे गए;
(ix) मेजबान देश में पिछड़े हुए इलाकों में उद्योग स्थापित करना, ताकि देश के पिछड़े क्षेत्रों का विकास हो;
(x) मेजबान देश में राशिपातन व्यवहारों में संलग्न नहीं होना। अर्थात् मेजबान देश की घरेलू औद्योगिक इकाइयों को हानि पहुँचाने के विचार से उत्पादों को बहुत ही कम कीमतों पर न बेचना।

■ 6. निगम सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए दस प्वांइट चार्टर (Ten-Point Charter of Corporate Social Responsibility)

पूर्व प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने भारत के निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए दस प्वाइंट चार्टर का सुझाव दिया। ये दस प्वाइंट निम्नलिखित है:

(i) कर्मचारियों का सम्मान करना व उनके कल्याण की रक्षा करना।
(ii) अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को रोजगार देना।
(iii) प्रवर्तकों व वरिष्ठ अधिकारियों को अत्यधिक पारिश्रमिक देने पर रोक।
(iv) व्यर्थ उपभोग पर रोक।
(v) कर्मचारियों की योग्यताएँ सुधारने पर ध्यान देना।
(vi) ऐसे समझौतों (Cartels) पर रोक लगाना जिसमें कुछ निर्माता मिलकर उत्पाद की कीमतें बढ़ा दें।
(vii) अनुसंधान व विकास को बढ़ावा।
(viii) ऐसी टेक्नोलॉजी को अपनाना जो वातावरण को प्रदूषित न करे।
(ix) सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार का विरोध करना।
(x) ऐसे मीडिया को बढ़ावा देना जो सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करे तथा सामाजिक परियोजनाएँ चलाए।

■ 7. भारत में निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व एवं कंपनी अधिनियम, 2013 (Corporate Social Responsibility in India and Companies Act, 2013)

कंपनी अधिनियम, 2013 के अंतर्गत निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति हेतु प्रावधान बनाए गए है। इस अधिनियम की धारा 135 के अनुसार, प्रत्येक कंपनी जिसकी शुद्ध पूँजी (Net Worth) ₹ 500 करोड़ या इससे अधिक है, या जिसकी कुल विक्रय ₹ 1,000 करोड़ या इससे अधिक है या जिसका शुद्ध लाभ ₹ 5 करोड़ या इससे अधिक है उसे पिछले तीन वर्षों के औसतन लाभ का कम से कम 2 प्रतिशत निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व संबंधी क्रियाओं पर खर्च करना होगा। कंपनी के विदेशी शाखाओं में अर्जित लाभों को इसके अंतर्गत शामिल नहीं किया जाएगा। कंपनी अधिनियम के निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व संबंधी प्रावधान 1 अप्रैल, 2014 से लागू किए गए हैं। प्रत्येक कंपनी जो उपरोक्त प्रावधानों के दायरे में आती है, उसे 'निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व समिति' का गठन करना होगा। इस समिति में तीन या इससे अधिक संचालकों की नियुक्ति की जाएगी, जिनमें से कम से कम एक संचालक स्वतंत्र संचालक होगा। निजी या विदेशी कंपनी की दशा में इस समिति में न्यूनतम दो संचालक होंगे। यह समिति कंपनी की निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व नीति का निर्माण करेगी तथा इससे संबंधी जानकारी कंपनी की वेबसाइट पर उपलब्ध करवायी जाएगी।

कंपनी अधिनियम 2013 की अधिसूची VII के अंतर्गत उन क्रियाओं को परिभाषित किया गया है, जिन पर निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व संबंधी राशि को खर्च किया जा सकता है। इसके अंतर्गत शामिल मुख्य क्रियाएं इस प्रकार हैं- निर्धनता उन्मूलन, शिक्षा प्रसार, लिंग समानता, स्वास्थ्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण, प्रधानमंत्री राष्ट्रीय राहत कोष में योगदान, स्वच्छ भारत अभियान, आदि। कोई भी कंपनी निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व नीति के अंतर्गत आबंटित राशि को सामाजिक उत्तरदायित्व संबंधी क्रियाओं पर खर्च करते समय, ऐसे स्थानीय क्षेत्र को प्राथमिकता देगी, जहां वह स्थित है या जहाँ वह अपनी व्यावसायिक क्रियाएँ करती है।

...ponsibility of Business–The Indian Situation)

हमारे देश में सामाजिक उत्तरदायित्व की धारणा बहुत ही पुरानी है। प्राचीन काल में धनी व्यापारी प्राकृतिक आपदा; जैसे-बाढ़, भूकाल, अकाल या महामारी आदि होने पर राहत प्रदान किया करते थे। वे समाज कल्याण के लिए धार्मिक पूजा स्थल, कूएँ, स्नान-घाट, अनाथाश्रम, वृद्धाश्रम, धर्मशालाएँ, अजायबघर आदि बनवाया करते थे। ऐसे व्यवसायी जो समाज कल्याण हेतु कार्य करते थे उन्हें समाज के लोग बहुत मान-सम्मान देते थे। धनी व्यवसायी शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास के लिए बहुत दान दिया करते थे।

अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ इन व्यवसायी परिवारों ने अपने बड़े औद्योगिक घराने स्थापित किए तथा विभिन्न कम्पनियाँ/व्यावसायिक इकाइयाँ बनायी। इन बड़े औद्योगिक घरानों ने समाज कल्याण हेतु कई स्कूल, कालेज, वैज्ञानिकी व तकनीकी अनुसंधान केंद्र, पुस्तकालय, अस्पताल, मेडिकल रिसर्च सेंटर, खेल-संस्थान, धार्मिक-स्थल, अनाथाश्रम, आर्ट-गैलरी, अजायबघर, वृद्धाश्रम, आदि खोले है। इन संस्थाओं की स्थापना से समाज का बहुत उत्थान हुआ है। भारतीय निगम क्षेत्र में कुछ बड़े औद्योगिक घरानों/कम्पनियों द्वारा सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए की गई क्रियाओं को निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

भारतीय निगम क्षेत्र द्वारा सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए की गयी क्रियाएँ
(Social Responsibility Activities Undertaken by Indian Corporate Sector)

Company / Groups	Major Institutions Established	Fields Supported
1. Tatas	• Indian Institute of Science • Tata Institute of Social Science • Tata Memorial Rural Cancer Project • Tata Agriculture and Rural Training Centre for the Blind, Gujarat. • Tata Memorial Centre for Cancer Research • Tata Institute of Fundamental Research • National Centre for Performing Arts • Tata Energy Research Institute • Advanced Studies • Management Centre for Human Values	Scientific research, health and community services, education, art and culture, medicine, energy research, rural development.
2. Birlas	• Birla Institute of Technology Pilani & Ranchi • Birla Institute of Scientific Research Foundation. • Birla Economic Research Foundation • Calcutta Medical Research Institute • BM Birla Heart Research Centre • JD Birla Institute of Home Science • Schools and Colleges, e.g. Modern High School, Rani Birla Girls College. • Planetariums in various cities • Temples—Laxmi Narayan, Kali, Hanuman, Natraj. • Sanskrit Kala Mandir, Varanasi • Birla Archaeological and Cultural Research Institute. • Birla Academy of Arts and Culture.	Technical education, agricultural research, medicine, art and culture, scientific research, education, temples, archaeology.
3. Singhania	• Institute of Applied Physics and Technology, Allahabad. • JK Institute of Sociology and Human Relations, Lucknow • Institute of Radiology and Cancer Research Centre • Institute of Cardiology • Lakshmipat Singhania Academy • Shripati Singhania Auditorium • Temples at various places • Pushpawati Singhania Research Institute for Liver and Renal and Digestive Diseases • Laksmipat Singhania Auditorium • Kamlapat Memorial Hospital, Kanpur • Sunitidevi Singhania Hospital and Medical Research Centre, Bombay	Sports, primary education, higher education, technical education, social sciences, medicine and health care, religion, city beautification.
4. Larsen and Toubro	• L & T Institute of Technology, Bombay • Polytechnics	Technical education, health, community welfare, etc in Mumbai at headquarter and around its manufacturing plants.
5. Thapar Group	• Thapar Institute of Engineering and Technology, Patiala • Football Academy, Punjab.	Technical education, sports, community welfare
6. Modis	• Shri Modi Eye Hospital and Opthalmic Research Centre. • MM Modi Degree College • Sanskrit Pathshala • Sainik Bhawan	Medicine, scientific research, welfare of women, education, community welfare, religious and spiritual education
7. Godrej	• Dr. BP Godrej Students Centre • SP Hakimji School • Foundation for Medical Research • Godrej Sailing Club • Godrej Technical Institute • Phirojsha Godrej Research Lab	Education, health and medicine, sports, protection of environment and wildlife, conservation of nature, family planning, arts.
8. Bajaj	• Institute of Gandhian Studies • Gandhi Centre for Science and Human Values • Jamnalal Bajaj Institute of Management Studies • Shiksha Mandal • Gita Pratishthan • Gandhi Gyan Mandir • Gita Mandir	Community development, higher education, upliftment of widow's/orphans, scholarships, cultural development, literacy.
9. Mafatlal (Arvind Mafatlal Group)	• Vidhyadham Higher Secondary School • Sri Ram Sanskrit Maha Vidyalaya • Shri Ram Mitar Mandal • Dr. Manibhai Desai Management Training Centre	Community health care, family welfare, sports, education, livestock development, agriculture development, empowerment of women through education, famine relief.

- Shri Ram College of Commerce
- Lady Shri Ram College for Women
- Shri Ram Bhartiya Kala Kendra
- Shri Ram Centre for Performing Arts
- Shri Ram Institute of Industrial Research

Education, technical and scientific research, art and culture

(Source: Adapted from Pushpa Sundar, Beyond Business, TMH, New Delhi pp. 368-377)

यद्यपि विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक इकाइयों/औद्योगिक घरानों ने सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने के लिए भिन्न भिन्न क्रियाएँ की है, तथापि ऐसी व्यावसायिक इकाइयों की प्रतिशत संख्या बहुत ही कम है। बहुत सी व्यावसायिक इकाइयाँ अधिक लाभ कमाने के लिए, अनुचित व्यापार व्यवहारों में संलग्न हो जाती है। ऐसी इकाइयाँ अपने सामाजिक कर्तव्यों को भूल जाती है। सजबान देश की सरकार को ऐसे नियम बनाने चाहिए जिनमें सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करने वाली व्यावसायिक इकाई को राजकोषीय रियायतें (जैसे करों में छूट) दी जाएँ। प्रत्येक व्यावसायिक इकाई के लिए, लाभ का एक निर्धारित प्रतिशत सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करने पर खर्च करना, कानूनी रूप से अनिवार्य होना चाहिए। इसके अलावा वैश्विक व्यावसायिक इकाइयों को भी सामाजिक आलोचना से बचने के लिए व अपनी दीर्घकालीन छवि में सुधार के लिए सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए।

व्यवसाय के नैतिक पहलू (Ethical Issues of Business)

1. व्यावसायिक नीतिशास्त्र का अर्थ (Meaning of Business Ethics)

Ethics शब्द ग्रीक शब्द Ethos से लिया गया है जिसका अर्थ व्यवसाय के लिए आदर्श और प्रमाप निर्धारित करना है। व्यावसायिक नीतिशास्त्र में व्यावसायिक क्रियाओं पर लागू होने वाले नैतिक नियमों/सिद्धान्तों को शामिल किया जाता है। नीतिशास्त्र व्यवसायों के लिए आचार संहिता (Code of Conduct) निर्धारित करता है। इस आचार संहिता के दायरे में रहकर ही व्यावसायिक प्रबंधकों को विभिन्न कार्य करने चाहिए। व्यावसायिक नीतिशास्त्र में स्वयं के लिए निर्धारित अनुशासन (Self Imposed Discipline) जागृत किया जाता है, ताकि व्यवसायी स्वयं ही अनुशासित हो जायें।

नीतिशास्त्र में व्यक्ति या व्यवसाय पर स्वेच्छा से लागू होने वाले आचार संहिता को शामिल किया जाता है। व्यावसायिक नीतिशास्त्र में व्यवसाय पर लागू होने वाली नैतिक बाध्यता (Moral Binding) को शामिल किया जाता है। व्यावसायिक नीतिशास्त्र के कुछ उदाहरण इस प्रकार है अधिक लाभ अर्जित करने के लिए अनुचित व्यापार व्यवहारों (Unfair Practices) को न अपनाना, जनता के साथ धोखा न करना, करों की चोरी न करना, सरकारी कर्मचारियों को रिश्वत न देना, आदि। व्यवसाय को अनैतिक तरीकों से दूर रखना ही व्यावसायिक नीतिशास्त्र का उद्देश्य है। व्यवसाय को नैतिक मूल्यों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

2. व्यावसायिक नीतिशास्त्र की परिभाषाएं (Definitions of Business Ethics)

(i) **डब्ल्यू. ओ. व्हीलर के अनुसार, "व्यावसायिक नीतिशास्त्र एक प्रकार की कला एवं विज्ञान है जो समाज एवं व्यवसाय के पृथक-पृथक समूहों व संस्थाओं के साथ शांतिपूर्ण संबंध बनाए रखने और व्यावसायिक व्यवहारों के औचित्य-अनौचित्य द्वारा नैतिक उत्तरदायित्व को मान्यता देने से संबंध रखती है।"** (Business ethics is an art and science of maintaining harmonious relationship with society, its various groups and institutions as well as recognising the moral responsibility for the rightness or wrongness of buisness conduct. — **W.O. Wheelar**)

(ii) **पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, "नीतिशास्त्र से अभिप्राय व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली सही क्रियाओं से है।"** (Ethics deal with the right actions of individuals. — **Peter F. Drucker**)

(iii) **रोजेन ए. बुचहोल्ज के अनुसार, "व्यावसायिक नीतिशास्त्र से हमारा अभिप्राय व्यावसायिक निर्णयों में उचित या अनुचित व्यवहार से है।"** (Business ethics refer to right or wrong behaviour in the business decisions. — **Rogene A. Buchholz**)

ऊपर दी गई परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि व्यावसायिक नीतिशास्त्र में उन सभी नियमों, सिद्धान्तों तथा मार्गदर्शनों को शामिल किया जाता है, जो व्यवसाय में लगे लोगों को दिन प्रतिदिन के निर्णय लेने में सहायक होते है और उन्हें सही व गलत की पहचान करने में मदद करते है। व्यावसायिक नीतिशास्त्र में व्यवसायों का मार्गदर्शन किया जाता है। कुछ व्यावसायिक इकाइयाँ अनैतिक व्यापार व्यवहारों को अपना लेती है; जैसे मिलावटी सामान बेचना, नकली वस्तुओं (Duplicate Goods) का विक्रय, ऐसे उत्पाद का विक्रय जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो, विज्ञापनों में गलत दावे करना व धोखा देने वाले विज्ञापन देना आदि। व्यावसायिक नीतिशास्त्र से अभिप्राय, नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर इस तरह के अनैतिक और अनुचित (Unethical and Unfair) व्यवहार को रोकना है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के संदर्भ में, विभिन्न देशों में व्यावसायिक नीतिशास्त्रों में कुछ अन्तर हो सकते है। बहुराष्ट्रीय कम्पनी को सभी मेजबान देशों के संबंध में नीतिशास्त्रों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए व इनका पालन करना चाहिए।

3. नैतिक व अनैतिक व्यवहारों के उदाहरण (Examples of Ethical and Unethical Practices)

- **नैतिक व्यवहारों के कुछ उदाहरण (Examples of Ethical Practices)**

  (i) उपभोक्ताओं से उत्पाद की उचित कीमत लेना।
  (ii) विज्ञापनों में सच्चे व सही दावे करना।
  (iii) करों का ईमानदारी से भुगतान करना।
  (iv) उचित लाभ कमाना।
  (v) कर्मचारियों को उचित वेतन देना व उनके साथ न्यायोचित व्यवहार करना।
  (vi) प्रदूषण-नियंत्रण उपकरण लगाना ताकि प्रदूषण फैलाने वाले तत्वों का नियंत्रण किया जा सके।
  (vii) अच्छी क्वालिटी के उत्पाद बनाना।

- **अनैतिक व्यवहारों के कुछ उदाहरण (Examples of Unethical Practices)**

  (i) झूठे व धोखेधड़ी वाले विज्ञापन देना।
  (ii) करों की चोरी करना।
  (iii) मिलावटी सामान बेचकर उपभोक्ताओं का शोषण करना।
  (iv) सरकारी अधिकारियों को रिश्वत देकर गलत काम निकलवाना।
  (v) प्रदूषण नियंत्रण उपकरण न लगाकर प्रदूषण फैलाना।
  (vi) कर्मचारियों को कम वेतन देकर उनका शोषण करना।

4. व्यावसायिक नीतिशास्त्र की विशेषताएँ (Characteristics of Business Ethics)

(1) **अच्छी सोच/अच्छा दृष्टिकोण** (Good Intention): व्यावसायिक नीतिशास्त्र अच्छी सोच, अच्छे विचार, अच्छे दृष्टिकोण, अच्छे निष्पादन आदि से संबंधित है। व्यावसायिक नीतिशास्त्र, अच्छे बुरे, सही गलत, उचित अनुचित क्रियाओं में भेद करना सिखाता है। व्यावसायिक नीतिशास्त्र का पालन करने पर, व्यवसाय में अच्छी सोच व अच्छा दृष्टिकोण पैदा होता है।

(2) **नीतिशास्त्र समाज की सुरक्षा करता है** (Ethics Protect Society): जब कानून समाज की रक्षा न कर सके तो इसे नीतिशास्त्र द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है। अर्थात् जिन क्रियाओं को कानून से नियंत्रित नहीं किया जा सकता, उन्हें नीतिशास्त्र से नियंत्रित किया जा सकता है।

(3) **मानवीय पहलुओं का अध्ययन** (Study of Human Aspects): व्यावसायिक नीतिशास्त्र मानवीय पहलुओं, जैसे ग्राहकों, कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओं आदि से जुड़ा होता है। इसमें ग्राहकों की दृष्टि से उत्पाद की शुद्धता (Purity), सुरक्षा, अच्छी किस्म, उचित कीमत, ग्राहकों के अधिकारों को सुरक्षित करना, गलत व गुमराह करने वाले विज्ञापन न देना आदि को शामिल किया जाता है। कर्मचारियों की दृष्टि से व्यावसायिक नीतिशास्त्र में मानवीय व्यवहार, अच्छी कार्य-दशाओं, उचित मजदूरी आदि को शामिल किया जाता है। पूर्तिकर्ताओं की दृष्टि से व्यावसायिक नीतिशास्त्र में इन्हें समय पर भुगतान शामिल है।

(4) **स्वत: धारित अनुशासन** (Self Imposed Discipline): व्यावसायिक नीतिशास्त्र का पहला तत्व स्वत: धारित अनुशासन पैदा करना है: अर्थात अनुशासन के लिए किसी को कहा नहीं जाता बल्कि नीतिशास्त्र को मानने वाले लोग स्वत: ही अनुशासित होते है: नीतिशास्त्र में नैतिक आधार पर व्यवसायियों को अनुशासित किया जाता है।

(5) **ईमानदारी** (Honesty): व्यावसायिक नीतिशास्त्र एक व्यवसायी के ईमानदार होने पर जोर देता है। अर्थात् व्यावसायिक नीतिशास्त्र की यह मान्यता है कि प्रत्येक व्यवसायी सभी सबंधित पक्षकारों के साथ पूरी ईमानदारी से व्यवहार करेगा।

(6) **समता** (Equity): व्यावसायिक नीतिशास्त्र में समता का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अनुसार व्यवसाय में सभी के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाना चाहिए। अर्थात् अमीर-गरीब, जाति व धर्म सबंधी मतभेद नहीं होने चाहिए।

(7) **मार्गदर्शन के रूप में** (As a Guiding Force): व्यावसायिक नीतिशास्त्र, व्यावसायिक इकाई को मार्गदर्शित करता है, जिससे व्यवसायी यह जान सके कि क्या सही है या क्या गलत है, अर्थात् किन क्रियाओं को किया जाना चाहिए और किन क्रियाओं को नहीं किया जाना चाहिए।

■ 5. व्यावसायिक नीतिशास्त्र का महत्त्व (Significance of Business Ethics)

(1) **दीर्घकालीन हित** (Long Term Interest): व्यावसायिक नीतिशास्त्र के नैतिक सिद्धान्तो को मानना व उनका पालन करना व्यवसायी के दीर्घकालीन हित में है: इन सिद्धान्तों को मानने से व्यावसायिक इकाई में ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है जिससे व्यवसाय को दीर्घकाल तक लाभ प्राप्त होता है। व्यवसायी के उचित और ईमानदार (Fair and Honest) व्यवहार का लाभ दीर्घकाल तक मिलता है।

(2) **समाज की सुरक्षा करना** (Protects Society): सरकार केवल कानून बनाकर समाज की रक्षा नहीं कर सकती, इसके लिए व्यावसायिक नीतिशास्त्र भी महत्त्वपूर्ण है। जहा कानून से नियत्रण नही रखा जा सकता, वहा नीतिशास्त्र से नियत्रण किया जा सकता है (Where law fails, ethics can succeed)। व्यावसायिक नीतिशास्त्र को मानने वाली व्यावसायिक इकाई समाज के हित में बहुत से कदम लेती है, जैसे- पर्यावरण को सुरक्षित रखना, ग्राहकों को धोखा देने के लिए अनुचित व्यवहारों को न अपनाना आदि।

(3) **सरकारी हस्तक्षेप से बचाव** (Avoids Government Intervention): यदि व्यवसाय, नीतिशास्त्र को मानने वाला है, और वह अनैतिक व्यवहारों (Unethical Practices) में सलग्न नहीं है तब सरकारी हस्तक्षेप से बचा जा सकता है। अर्थात् व्यावसायिक नीतिशास्त्र को मानने वाली व्यावसायिक इकाई की क्रियाओं में सरकार अधिक हस्तक्षेप नहीं करती। अनैतिक व्यवहार; जैसे- मिलावटी सामान का विक्रय, नकली सामान का विक्रय, धोखाधड़ी वाले विज्ञापन आदि की दशा में सरकारी हस्तक्षेप अधिक होता है और ऐसे व्यवसाय की लोक छवि भी खराब हो जाती है।

(4) **व्यवसाय में रुचि रखने वाले विभिन्न वर्गों के साथ तनाव से बचाव** (Avoids Confrontation with different Interest Groups): यदि व्यवसाय अनैतिक सिद्धातों का पालन कर रहा हो तब व्यवसाय में रुचि रखने वाले वर्गों, जैसे- ग्राहकों, कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओं, समाज, सरकार आदि के साथ होने वाले तनाव से बचा जा सकता है। व्यावसायिक नीतिशास्त्र को मानने से व्यवसाय में रुचि रखने वाले विभिन्न वर्ग, व्यवसाय के विकास में अपना-अपना योगदान देते है।

(5) **आत्म-सन्तुष्टि** (Self-Satisfaction): यदि व्यावसायिक इकाई, व्यावसायिक नीतिशास्त्र का पालन कर रही हो तो इसके अधिकारी अपने आप में भी सन्तुष्टि अनुभव करते हैं। इससे उन्हें यह लगता है कि वे किसी का नुकसान नहीं कर रहे, किसी को धोखा नहीं दे रहे, आदि। इससे वे आतंरिक प्रसन्नता का अनुभव करते है और अपने कार्यों से संतुष्ट होते है।

(6) **व्यावसायिक नीतिशास्त्र लोगों में विश्वसनीयता उत्पन्न करता है** (Business Ethics Create Credibility in the Public): यदि व्यवसाय, व्यावसायिक नीतिशास्त्र का पालन कर रहा हो तो ऐसे व्यवसाय की क्रियाओ में सामान्य जनता का विश्वास बढ़ता है। उन्हे यह लगता है कि ऐसा व्यवसाय उन्हें धोखा नही दे सकता, और इस व्यवसाय से व्यापार व्यवहार करने पर या वस्तु क्रय करने से उन्हें अपने धन का पूरा मूल्य प्राप्त होगा। इससे व्यवसाय की लोकछवि में भी सुधार आता है।

(7) **नीतिशास्त्र अच्छे निर्णय लेने में सहायक होते हैं** (Ethics Help Better Decision Making): व्यावसायिक नीतिशास्त्र से प्रबधकों को सही-गलत व अच्छे-बुरे का ज्ञान हो जाता है और ये प्रबधक ग्राहकों, कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओं

के हित को ध्यान में रखकर उचित निर्णय ले सकते है। ऐसी व्यावसायिक इकाई जो व्यावसायिक नीतिशास्त्र का पालन कर रही हो, उसके द्वारा लिए गए निर्णय समाज के सभी वर्गों को स्वीकृत होते है।

● बहुराष्ट्रीय निगमो के लिए व्यावसायिक नीतिशास्त्र सबंधी आचार-संहिता
(Code of Conduct on Business Ethics for Multinational Corporations)

सयुक्त राष्ट्र (United Nations) ने बहुराष्ट्रीय कपनियो के लिये नैतिक आचार सहिता बनाई है, इस आचार-सहिता को मानना वैधानिक नहीं है, परन्तु फिर भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे मेजबान देश के हितो की रक्षा के लिए इस आचार-संहिता का पालन करें। इस आचार-संहिता के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित है

(1) **मेजवान देश की अर्थव्यवस्था पर न्यूनतम नकारात्मक प्रभाव** (Minimise Negative Impact on Economy of Host Nation):

(i) बहुराष्ट्रीय कपनी को मेजबान देश के कर प्रावधानों (Tax Laws) के अनुसार करों का समय पर भुगतान करना चाहिए।

(ii) जहां तक सभव हो, बहुराष्ट्रीय कपनी को मेजबान देश के स्थानीय बाजारों से ही कच्चा माल खरीदना चाहिए।

(iii) बहुराष्ट्रीय कपनी को मेजबान देश में कमाए लाभों के कुछ निश्चित हिस्से का उसी देश की अर्थव्यवस्था मे निवेश करना चाहिए।

(iv) बहुराष्ट्रीय कपनी को मेजबान देश की आर्थिक व विकासात्मक नीतियो का पालन करना चाहिए।

(2) **मेजवान देश को टेक्नोलोज़ी का हस्तांतरण** (Transfer of Technology to Host Nation):

(i) बहुराष्ट्रीय कपनियों को मेजबान देशो में अच्छी टेक्नोलोजी का हस्तातरण करना चाहिए।

(ii) बहुराष्ट्रीय कंपनी को मेजबान देश मे अनुसधान व विकासात्मक कार्यों में भी निवेश करना चाहिए।

(iii) बहुराष्ट्रीय कंपनी को मेजबान देश की स्थानीय स्थितियों व आवश्यकताओ के अनुरूप ही टेक्नोलोजी को अपनाना चाहिए।

(3) **पर्यावरण संरक्षण** (Protection of Environment):

(i) बहुराष्ट्रीय कंपनी को मेजबान देश द्वारा पर्यावरण सरक्षण हेतु बनाए गए नियमों का पालन करना चाहिए तथा पर्यावरण प्रदूषण को रोकने हेतु प्रभावी कदम उठाने चाहिए।

(ii) बहुराष्ट्रीय कंपनी को पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रमाप निर्धारित करने चाहिए।

(4) **उपभोक्ता संरक्षण** (Consumer Protection):

(i) अनुचित व्यापार-व्यवहार में सलग्न न होना, जैसे- धोखे-धड़ी वाले विज्ञापन न देना, कार्टल (Cartel) का निर्माण न करना, अर्थात् निगमों को ऐसे सामूहिक समझौते नही करने चाहिए, जिनका उद्देश्य कीमतें बढाना, प्रतिस्पर्द्धा को कम करना, आदि हो।

(ii) मेजबान देश द्वारा उपभोक्ता सरक्षण हेतु बनाए अधिनियमो का पालन करना।

(5) **आधारभूत मानवीय अधिकारों का सम्मान करना** (Respect Basic Human Rights):

(i) बहुराष्ट्रीय कंपनी को ग्राहकों, कर्मचारियों, डीलरों, के साथ धर्म, जाति, भाषा, लिंग, समुदाय, आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए।

(ii) बहुराष्ट्रीय कंपनी को आधारभूत मानवीय अधिकारों का सम्मान करना चाहिए।

(6) **मेजबान देशों के राजनीतिक मामलों में दखलअंदाजी न करना** (Not to Interfere in Political Affairs of Host Nation):

(i) बहुराष्ट्रीय कंपनी को मेजबान देश के राजनीतिक मामलों में दखलअंदाजी नहीं करनी चाहिए।

(ii) बहुराष्ट्रीय कंपनी को मेजबान देश के राष्ट्रीय हित के विरुद्ध कार्य नही करना चाहिए।

(iii) मेजबान देश के अधिनियमो व नियमों में पक्षपातपूर्ण बदलाव करने के लिए, सरकारी अफसरों को रिश्वत न देना।

(7) मेजबान देश के कर्मचारियों को उचित वेतन, अच्छी कार्यदशाएँ देना तथा उनके साथ अच्छा बर्ताव करना।

(8) मेजबान देश के सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के विरुद्ध न जाना।